

KAU V.3



121876
LBSNAA

लाल बहा

L.B.S. f

सन अकादमी

Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

— 121876

अवाप्ति संख्या

Accession No.

~~13505~~

वर्ग संख्या

Class No.

GLH

398.2

पुस्तक संख्या

Book No.

KAU कौसल्या

V.3

भाग 3

जातक

[तृतीय खण्ड]

जातक

[तृतीय खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव
हिन्दी साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

प्राक्थन

सन् १४२ में जब द्वितीय-खण्ड प्रकाशित हुआ, तो स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि द्वितीय और तृतीय खण्ड के बीच इतना अधिक समय गुजर जायगा ।

सन् १४२ में ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) का मन्त्रित्व स्वीकार कर लेने से कुछ तो उधर व्यस्त रहना पड़ा, कुछ अगस्त आन्दोलन और युद्ध-जनित परिस्थिति इस प्रकार के सभी कार्यों में बाधक सिद्ध हुई ।

यूँ अनुवाद सन् १४४ में ही तय्यार था किन्तु इसे प्रकाशित होने के लिए सन् १४६ तक प्रतीक्षा करना पड़ी । हिन्दी साहित्य प्रेस ने यदि इन बीस-पच्चीस दिनों में रात-दिन एक करके इसे न छपा होता तो न जाने अभी इसे और कितने दिनों अमुद्रित तथा अप्रकाशित ही रहना पड़ता । मौलानासाहब तथा प्रेस के सभी कर्मचारियों का आभारी हूँ ।

तृतीय-खण्ड में हर तरह से पहले दोनों खण्डों के ही क्रम को जारी रखा गया है । हाँ, पहले दोनों खण्डों में प्रत्येक गाथा के साथ मूल पाली में दी गई कठिन शब्दावलि और उसके अर्थों का अर्थ भी रहा है । सारी गाथा का स्वतन्त्र अनुवाद दे देने के साथ वह पुनरुक्ति दोष ही नहीं, निष्प्रयोजन भी लगता था । इस खण्ड में उसे छोड़ दिया । हाँ, यदि कहीं कोई विशेष काम की बात दिखाई दी तो उसे पाद-टिप्पणी में दे दिया है ।

प्रथम-खण्ड और दूसरे खण्ड के ढाई-सौ जातकों के साथ इस खण्ड में प्रकाशित डेढ़ सौ जातक मिलकर कुल चार सौ जातक होजाते हैं । शेष एकसौ सैंतालीस जातक उत्तरोत्तर बढ़े हैं । आशा है वे सभी तीन खण्डों में समाप्त होंगे ।

चौथे खण्ड के अनुवाद में हाथ लगा है । यदि अवकाश मिला और परिस्थिति अनुकूल रही, तो पाठक उसे शीघ्र ही प्रकाशित देख सकेंगे ।

तृतीय-खण्ड का अधिकांश भाई जगदीश काश्यपजी की सहायता से
दोहरा लिया गया था । उन्हें धन्यवाद क्या दूँ ?

इस खण्ड में प्रकाशित चित्र के लिए जातक के अँग्रेजी अनुवाद का
ही कृतज्ञ हूँ ।

सत्यनारायण कुटीर
हि० सा० सम्मेलन
५-३-४६

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ

तीसरा परिच्छेद

१. सङ्कप्प वर्ग

१

२५१. सङ्कप्प जातक १

[राजा रानी को बोधिसत्व की सेवा की ओर से उदासीन न रहने के लिये कह इलाके में बगावत दबाने गया । उसकी अनुपस्थिति में बोधिसत्व का मन राजा की रानी के प्रति विकार-ग्रस्त हो गया ।]

२५२. तिलमुट्ठि जातक ९

[आचार्य्य ने बुढ़िया के तिलों की मुट्ठि खा लेने वाले राजकुमार-शिष्य को पिटाया । राजकुमार ने बड़े होने पर आचार्य्य का जान से मरवा डालना चाहा ।]

२५३. मणिकण्ठ जातक ११

[नाग तपस्वी से बड़ा स्नेह प्रदर्शित करता था । तपस्वी ने नाग से मणि की याचना की । तब नाग ने आने का नाम नहीं लिया ।]

२५४. कुण्डक कुब्जि सिन्धव जातक १२

[सिन्धव बछेरा बुढ़िया के घर कुल्ल भी खा लेता था, किन्तु गुणज्ञ व्यापारी के यहाँ पहुँच उसने सामान्य तृण-घास खाने से इनकार किया ।]

२५५. सुक जातक १०

[तोता माता पिता का कहना न मान बर्जित द्वीप में आम्र-रस पान करने गया ।]

२५६. जरुद्वान जातक २३

[पानी के लिये थोड़ा खनने पर तो धन की प्राप्ति हुई,
किन्तु लोभवश अत्यधिक खनने से विनाश को प्राप्त हुये ।]

२५७. गामणीचण्ड जातक २५

[बोधिसत्व ने अपने प्रजा-वल से बैल, पुत्र, घोड़े, बँस-
फोड़, ग्राम के मुखिया, गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर,
देवता, नाग, तपस्वी, और ब्राह्मण-विद्यार्थी के प्रश्नों का
उत्तर दिया ।]

२५८. मन्धाता जातक ३७

[चातुर्महाद्वीपों तथा चातुर्महाराजिकों का राज्य करके भी
मन्धाता विषयों में अतृप्त ही रहा ।]

२५९. तिरीटवच्छ जातक ४१

[बोधिसत्व ने कुयें में गिरे हुये राजा के प्राणों की रक्षा
की । राजा भी कृतज्ञ निकला ।]

२६०. दूत जातक ४४

[भोजन करते हुये राजा की थाली में एक आदमी ने
'दूत', 'दूत' कहते हुये आकर हाथ डाल दिया । राजा ने
पूछा—तू किसका दूत है ? उत्तर दिया—पेट का ।]

२. कोसिय वर्ग

४७

२६१. पदुम जातक ४७

[तीन सेठ-पुत्रों में से दो ने एक नकटे की झूठी प्रशंसा
कर तालाब के कमल लेने चाहे । नकटे ने केवल सच्ची बात
कहने वाले को दिये ।]

२६२. मुदुपाणी जातक ४८

[राजा लड़की पर अविश्वास कर उसे पास सुलाता था ।
एक बार उसने रात को भीगती वर्षा में स्नान करना चाहा
तो वह हाथ पकड़े रहा । इतने पर भी लड़की राजा के
भाञ्जे के साथ भागने में सफल हुई ।]

२६३. बुरलपखोमन जातक २३

[जो बचपन में स्त्री दाई का दूध भी नहीं पीता था, वह भी बड़ा होने पर स्त्री के फेर में आ ही गया ।]

२६४. महापणाद जातक २६

[इसकी सारी कथा सुरुचि जातक (४८६) में आयेगी ।]

२६५. खुरप्प जातक ६०

[सौदागर और उसकी पाँच सौ गाड़ियों को जंगल से पार कराया । डाकुओं से लड़ना पड़ने पर भी जंगल-रक्षक निर्भय रहा ।]

२६६. वातग्ग-सिन्धव जातक ६२

[गर्धी घोड़े पर आसक्त थी, किन्तु जब वह उसकी ओर प्रवृत्त हुआ तो दुलर्त्ता चलाकर भाग गई ।]

२६७. कक्कट जातक ६५

[हथिनी की मधुर-वाणी के फेर में केकड़े ने हाथी के पैर में से अपने अङ्गों का निकाल लिया । हाथी ने छूटते ही केकड़े की पीठ पर पैर रख उसका कचूमर निकाल दिया ।]

२६८. आरामवूसक जातक ६६

[बन्दरों ने पौदों को उखाड़ कर उन की जड़ें नाप-नाप कर पानी सींचा ।]

२६९. सुजाता जातक ७१

[सात प्रकार की भाय्याओं का वर्णन ।]

२७०. उल्लूक जातक ७६

[कौवे ने उल्लू को पक्षी-राज बनाने का विरोध किया ।]

३. अरण्य वर्ग ७६

२७१. उदपानवूसक जातक ७६

[शृगाल आकर जलाशय दूषित कर जाता था ।]

२७२. वयग्ग जातक ८१

[मूर्ख वृद्ध-देवता ने सिंह-व्याघ्र को अपने यहाँ से भगा दिया ।]

२७३. कच्छप जातक ८३
[बन्दर ने कछुवे के साथ अनाचार किया ।]
२७४. लोल जातक ८४
[मत्स्य-मांस के लोभ में कौवे ने रसोइये के हाथों जान गंवाई ।]
२७५. रुचिर जातक ८८
[पूर्व कथा सट्ठश ही ।]
२७६. कुरुधम्म जातक ८९
[कलिङ्ग राज ने इन्द्रप्रस्थ नरेश के पास ब्राह्मणों को कुरुधर्म सीखने के लिये भेजा ।]
२७७. रोमक जातक १०२
[कुटिल जटाधारी तपस्वी को एक दिन कचूतर का मांस खाने को मिला । उसने रस-लोभ से आश्रम पर आने वाले कचूतरों को मार कर खाना चाहा ।]
२७८. महिस जातक १०५
[शरारती बन्दर ने एक शान्त भैंसे को बहुत तंग किया । एक दूसरे प्रचण्ड भैंसे ने सींग से उसकी हठाती चीर डाली ।]
२७९. सतपत्त जातक १०७
[पुत्र ने शृगाली को जो उसका पूर्व-जन्म की माता थी शत्रु समझा और कटफोड़े को मित्र ।]
२८०. पुटदूसक जातक १११
[माली जो जो दूने बनाता था, बन्दर उन्हें नष्ट करते जाते थे ।]

४. अब्धन्तर वर्ग

११३

२८१. अब्धन्तर जातक ११३
[तोते ने देवी को अब्धन्तर का आम लाकर खिलाया ।]
२८२. सेव्य जातक १२०
[महासीलव जातक (५१) की तरह ही ।]

२८३. बबूकीसूकर जातक १२३
[सूअरों के संगठित दल ने व्याघ्र पर विजय पाई ।]
२८४. सिरि जातक १२४
[मुर्गे का मांस खाकर लकड़हारा राजा बना और उसकी भार्या पटरानी बनी ।]
२८५. मणिसूकर जातक १२५
[सूअर मणि को मैला करने के लिये ज्यों ज्यों रगड़ते थे त्यों त्यों वह और भी चमकता था ।]
२८६. सालुक जातक १२६
[सूअर को यवागु-भात खिला खिलाकर पोसा जाता था कि कुमारी के विवाह के समय इसका जल-पान होगा ।]
२८७. लाभगरह जातक १४१
[प्राणियों को वस्तुओं की प्राप्ति कैसे होती है ?]
२८८. मच्छुहान जातक १४३
[छोटे भाई ने बड़े भाई को धोखा देने के लिये एक हजार कार्पाण की पांटली पानी में डाल दी ।]
२८९. नानन्दनन्द जातक १४६
[ब्राह्मण के नक्षत्र ज्ञान पर प्रसन्न हो राजा ने उसे वर माँगने के लिये कहा ।]
२९०. सीलबीमंस जातक १४८
[पुरांडित ने शील की परीक्षा करने के लिये सुनार के तख्ते से दो दिन एक एक कार्पाण उठाया ।]

५. कुम्भ वर्ग

१५१

२९१. भद्रघट जातक १५१
[शक्र ने पुत्र-प्रेम के बशी-भूत हो उसे सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला घड़ा लाकर दिया ।]

२६२. सुपत्त जातक १२३
[कौवे ने जान पर खेलकर 'सुफस्सा' के लिये राजा के यहाँ से मत्स्य-मांस लाकर दिया ।]
२६३. कायविच्छिन्द जातक १२६
[पारङ्गु-रोग से पीड़ित ब्राह्मण प्रव्रजित हुआ ।]
२६४. जम्बुखादक जातक १२८
[गीदड़ ने कौवे की भूटी प्रशंसा कर जामुन खानी चाही । उसे निराश होना पड़ा ।]
२६५. अन्त जातक १६०
[जानवरों में सब से निकृष्ट शृगाल, पक्षियों में सब से निकृष्ट कौवा और वृक्षों में सब से निकृष्ट एरण्ड—तीनों एक जगह इकट्ठे हो गये ।]
२६६. समुद्र जातक १६१
[कौवा तृष्णा के बशी-भूत हो स्वयं सागर को पी जाने की इच्छा करता था ।]
२६७. कामविलाप जातक १६३
[कथा इन्द्रिय-जातक में आयेगी ।]
२६८. उदुम्बर जातक १६४
[दो वानरों ने परस्पर एक-दूसरे का ठगने का प्रयत्न किया । पहला सफल हुआ, दूसरा असफल ।]
२६९. कोमायपुत्त जातक १६७
[तपस्वियों की संगत में बन्दर ध्यानी हो गया ।]
३००. वक जातक १६९
[भेड़िये का उपोसथ-व्रत ।]

चौथा परिच्छेद

१. विवर वर्ग

१७२

३०१. चुल्लकालिङ्ग जातक १७२

[कालिङ्ग और अश्मक-राज के युद्ध में शक्र ने कालिङ्ग के विजयी होने की भविष्यवानी की थी । नन्दिमेन अमात्य के हिम्मत न हारने के कारण अश्मक-राज विजयी हुआ ।]

३०२. महाअस्सारोह जातक १७३

[प्रत्यन्त देश वासी ने राजा को महा अश्वारोह समझ उसकी सेवा की । राजा ने महलों में लौट बदला चुकाया ।]

३०३. एकराज जातक १८३

[राजा के मैत्री-बल के आगे चोर-राजा के पशु-बल की हार ।]

३०४. दहर जातक १८४

[पिता द्वारा नाग-भवन से निर्वासित दहर-बन्धु मेरुडक समझे जाकर अनाहत हुये ।]

३०५. सीखवीमंसन जातक । १८८

[आचार्य ने शिष्यों के शील की परीक्षा करने के लिये उन्हें अपने घर से सय की आख बचाकर वस्त्रालङ्कार आदि लाने के लिये कहा ।]

३०६. सुजाता जातक १९०

[राजा ने माली की लड़की को पटरानी बनाया ।]

३०७. पलास जातक १९२

[ब्राह्मण ने पलास-निवासी वृक्ष-देवता को अपनी सेवा से प्रसन्न किया ।]

३०८. जबसकुण जातक १९४

[कठफोड़ ने सिंह के मुँह में फंसी हुई हड्डी निकाली ।]

३०१. छवक जातक ११७

[अधार्मिक राजा आचार्य को नीचे आसन पर बिठा उससे (वेद-) मन्त्र सीखता था ।]

३१०. सयह जातक २००

[पुरोहित-पद के लिये भी एक बार परित्यक्त गृहस्थ-जीवन फिर स्वीकार नहीं किया ।]

२. पुचिमन्द वर्ग

३०३

३११. पुचिमन्द जातक २०३

[नीम के वृक्ष ने भावी भय का अनुमान कर सोते हुये चोर को उठाकर भगा दिया ।]

३१२. कस्सप मन्दिय जातक २०५

[बोधिसत्व ने पिता को लड़कों का उत्पात सहन करने का उपदेश दिया ।]

३१३. खन्तिवादी जातक २०८

[जिम राजा ने बोधिसत्व के हाथ-पाँव तथा कान-नाक कटवा दिये, उसे भी बोधिसत्व ने आशीर्वाद दिया ।]

३१४. लोहकुम्भी जातक २१२

[ब्राह्मण सर्व चतुष्क यज्ञ कराने जाकर अगणित पशु-घात कराने जा रहे थे । बोधिसत्व ने उनकी रक्षा की ।]

३१५. मंस जातक २१७

[शिकारी ने सेठ-पुत्रों को उनकी बाणी की मधुरता के अनुरूप मांस दिया ।]

३१६. सस जातक २२०

[चन्द्रमा का शशाङ्क नाम क्यों है ?]

३१७. मतरोदन जातक २२४

[बड़े भाई के मरने पर बोधिसत्व तनिक भी नहीं रोये ।]

✓ १८. कण्वेर जातक २२६

[श्यामा ने नगर-कांतवाल को हजार दे डाकू की जान बचाई और उस पर आसक्त होने के कारण उसे अपना स्वामी बनाया । डाकू उसके गहने-कपड़े ले चलता बना ।]

१९. तित्तिर जातक २३१

[चिड़मार फँमाऊ-तीतर की मदद से तीतरों को फँसाता था । तीतर को सन्देह हुआ कि वह पाप का भागी है वा नहीं ?]

२०. सुचज जातक २३३

[रानी ने राजा से पूछा—यदि यह पर्वत सोने का हो जाय, तो मुझे क्या मिलेगा ? राजा ने उत्तर दिया—तू कौन है, कुछ नहीं दूँगा ।]

३. कुटिदूसक वर्ग २३८

११. कुटिदूसक जातक २३८

[बर्दर ने बये के सदुपदेश से चिड़कर उसका घोंसला नोच डाला ।]

१२. दहम जातक २४२

[खरगोश को सन्देह हो गया कि पृथ्वी उलट रही है । सभी अन्ध-विश्वासियों ने उसके अनुकरण में भागना आरम्भ किया ।]

१३. ब्राह्मण जातक २४५

[ब्राह्मण ने बारह वर्ष के संकोच के बाद राजा से एक छाता और एक जोड़ा जूता भर माँगा ।]

१४. चम्मसाटक जातक २४६

[मेढा ब्राह्मण पर चोट करने के लिये पीछे की ओर हटा । ब्राह्मण ने समझा मेरे प्रति गौरव प्रदर्शित कर रहा है ।]

३२५. गोध जातक २५१
[दुष्ट तपस्वी धोखे से गोह को मारकर खा जाना चाहता था ।]
३२६. कक्कारु जातक २५३
[पुरोहित ने झूठ बोल कर देवताओं से दिव्य-कक्कारु पुष्प ले लिये । उसे लेने के देने पड़ गये ।]
३२७. काकाती जातक २५६
[गरुड़-राज अपनी प्रिया के जार को स्वयं अपने पंखों पर बिठाकर ले जाते और लिवा लाते रहे ।]
३२८. अननुसोचिय जातक २५८
[भार्या भी ब्राह्मण-तरुण के साथ प्रव्रजित हो गई । तरुण ने भार्या को मृत-अवस्था में देख कुछ अफसोस नहीं किया ।]
३२९. कालबाहु जातक २६२
[कालबाहु बन्दर ने अपनी करतूत से स्वयं अपना सत्कार गंवाया ।]
३३०. सीलवीमंस जातक २६५
[इसके समान दो कथायें पहले आ चुकी हैं ।]

४. कोकिल वर्ग २६८

३३१. कोकालिक जातक २६८
[बोधिसत्व ने अपनी चातुरी से राजा की वाचालता बन्द की ।]
३३२. रथलट्टि जातक २७०
[बिना दूसरे पक्ष की भी बात सुने न्याय करना उचित नहीं ।]
३३३. पक्षगोध जातक २७२
[पेड़ पर लटकाई हुई पकी गोह भाग गई ।]

३३४. राजोवाद् जातक २७२

[राजा के अधार्मिक होने पर फल अमधुर हो गये, और धार्मिक होने पर दुबारा मधुर ।]

३३५. जम्बुक जातक २७७

[गान्दड़ ने हाथी को मारना चाहा । हाथी का पाँव पड़ते ही चूर्ण-विचूर्ण हो गया ।]

३३६. ब्रह्मकुत्त जातक २८०

[ब्रह्मचारी लोहे की गागरों में से धन निकाल उसकी जगह तृण भर कर धन ले गया ।]

३३७. पीठ जातक २८३

[ब्रह्मचारी का आतिथ्य न कर सकने के लिये सेठ ने ब्रह्मचारी से क्षमा मांगी ।]

३३८. धुस जातक २८६

[आचार्य्य द्वारा सिखाई गई चार गाथाओं ने राजा की रक्षा की ।]

३३९. बावेरु जातक २८९

[बावेरु राष्ट्र में कौवा सौ कार्पापण में और मोर एक हजार कार्पापण में बिका ।]

३४०. विसरह जातक २९२

[सेठ ने घास खोद कर भी दान-परम्परा को जारी रखा ।]

५. चूतकुणाल वर्ग २९६

३४१. किलरी जातक २९९

[इसकी कथा कुणाल जातक में आयेगी ।]

३४२. बानर जातक २९८

[मगरमच्छनी ने बन्दर का हृदय मांस खाना चाहा ।]

१४३. कुन्तिनी-जातक २९८
[राजकुमारों ने लापरवाही से क्राँच-पत्नी के बच्चे मार डाले । क्राँच-पत्नी ने उनकी जान ले ली ।]
१४४. अम्ब जातक ३००
[दुष्ट तपस्वी ने सेठ की लड़कियों से कसमें खिलवाई कि ग्राम नहीं चुराये हैं ।]
१४५. राजकुम्भ जातक ३०३
[राजकुम्भ जन्तु ने जो सारे दिन चलने पर भी एक ही दो अंगुल चल सकता था बताया कि यदि जंगल में आग लग जाय और पास में कोई छिद्र न हो तो उसका मरण ही समझो ।]
१४६. बेसव जातक ३०५
[पाँच राज-वैद्य केशव तपस्वी को अच्छा न कर सके । उनके विश्वस्त शिष्य ने अलूना पत्तों के साथ सामाक-नीवार-दवागु देकर अच्छा कर लिया ।]
१४७. अयस्कूट जातक ३०६
[बाल न मिलने से असंतुष्ट यक्ष बोधिरुत्व को मारने के लिये आया । इन्द्र ने रक्षा की ।]
१४८. अरुञ्ज जातक ३११
[पिता ने पुत्र को सत्संगति के बारे में उपदेश दिया ।]
१४९. रुन्धिभेद जातक ३१२
[गीदड़ ने चुगल-खोरी कर सिंह और बैल को परस्पर लड़ा दिया ।]
१५०. देवतापन्ह जातक ३१५
[देवता-प्रश्नावलि उम्मग जातक (५४६) में आयेगी ।]

पाँचवाँ परिच्छेद

१. मणिकुण्डल वर्ग

३१३

३११. मणिकुण्डल जातक ३११

[कांशल-राज ने दुष्ट अमात्य के पड़यन्त्र से काशी राज को कारागार में डाल दिया। काशी-राज यांग-वज्र से विजयी हुआ।]

३१२. सुजात जातक ३१२

[पुत्र ने मरे हुये बैल को तृण खिलाने के आग्रह का नाटक कर पिता के हृदय से पितामह का मृत्यु-शोक दूर किया।]

३१३. धोनसाख जातक ३२०

[वाराणसी नरेश ने आचार्य की बात मान हजार नरेशों की आखें निकलवाईं। उसकी अपनी आखें एक दत्त निकाल ले गया।]

३१४. उरग जातक ३२४

[पुत्र साँप के डसने से मर गया। न पिता रोया, न माता रोई, न भार्या रोई, न बहिन रोई, न दासी रोई। कारण ?]

३१५. घत जातक ३३०

[दुर्गाचारी अमात्य को देश निकाला दे दिया गया था। उसने श्रावस्ती के धक्कू राजा से मिल राज्य जितवा दिया।]

३१६. कारण्डिय जातक ३३२

[ब्रह्मचारी ने कन्दरा में बड़ी-बड़ी शिलायें फेंकने का नाटक कर आचार्य को यह शिद्दा दी कि सभी को अपने मत का नहीं बनाया जा सकता।]

३१७. लडुकि जातक ३३५

[हाथी ने अपने अभिमान में चिड़िया की प्रार्थना न सुनी उसके बच्चे को मार ही डाला। चिड़िया ने भी कौवे, मक्खी और मेंढक का सहयोग ले हाथी को मार डाला।]

३१८. सुहृत्त धम्मपात्त जातक ३१८
[माँ बिलखती रह गई, राजा ने निरपराध अपने सात वर्ष के पुत्र के अङ्ग-अङ्ग कटवा दिये ।]
३१९. सुवण्णमिग जातक ३१९
[मृगी ने विनम्र प्रार्थना करके शिकारी के जाल से मृग को छुड़ाया ।]
३२०. सुसन्धि जातक ३२०
[गरुड़-राज सुसन्धि को अपने गरुड़-भवन में उड़ा ले गया । अग्र-गन्धर्व ने भरुकच्छ के व्यापारियों के साथ नौका पर जा पता लगाया ।]

२. वयणारोह वर्ग

३५२

३६१. वयणारोह जातक ३६२
[गीदड़ ने सिंह और व्याघ्र के परस्पर लड़ाने की कोशिश की ।]
३६२. सीलवीमंस जातक ३६२
[ब्राह्मण ने शील का अधिक महत्व है, वा बहुश्रुत होने का जाँचने के लिये तीन बार कार्पापण उटाये ।]
३६३. हिरि जातक ३६३
[पहले आ चुकी है ।]
३६४. खज्जोपनक जातक ३६४
[महा-उम्भगा जातक में विस्तार से आयेगी ।]
३६५. अहिगुण्डिक जातक ३६५
[कथा पूर्वोक्त सालक जातक में आ गई है ।]
३६६. शुम्भिय जातक ३६६
[जिन्होंने लोभ-वश यज्ञ के रखे हुये विष-मिश्रित मधु-पियूष खाये उन सब की जान गई ।]

३६०. सालिय जातक ३६३

[वैद्य ने लड़कों को साँप से कटवा कर, फिर उनकी चिकित्सा कर कुछ कमाना चाहा था। साँप ने वैद्यराज को ही यमलोक पहुँचा दिया।]

३६८. तच्चसार जातक ३६५

[पूर्व-जातक की तरह ही। इस कथा में लड़कों को मनुष्य-हत्यारा समझ कर राजा के सामने ले गये।]

३६९. मित्तविन्दक जातक ३७०

[कथा महामित्तविन्दक जातक में आयेगी।]

३७०. पलास जातक ३६३

[बट वृक्ष का पौदा बढ़कर पलास-वृक्ष के विनाश का कारण हुआ।]

३. अष्ट वर्ग ३७२

३७१. दीधिति जातक ३७२

[माता पिता के उपदेश के कारण दीर्घायुकुमार वाराणसी राजा की हत्या करने से रुक गया।]

३७२. मिश्रगतक जातक ३७४

[साथ रहने से चाहे मनुष्य हो चाहे पशु, हृदय में प्रेम पैदा हो ही जाता है।]

३७३. मूसिक जातक ३७६

[आचार्य की चार गायत्रियों ने राजा की जान बचाई।]

३७४. चुल्लधनुग्गह जातक ३८०

[स्त्री ने चोर के हाथ में तलवार दे अपने पति की हत्या करवा दी।]

३७५. कपोत जातक ३८५

[मत्स्य-मांस के लोभ के कारण कौवे ने जान गँवाई।]

छठा परिच्छेद

१. अवारिय वर्ग

३८८

३७६. अवारिय जातक ३८८

[जिस उपदेश को सुनकर राजा ने लाख की आमदनी का गंव दिया, उसी उपदेश को सुनकर नाविक ने बोधिसत्व का मुँह पीट दिया ।]

३७७. सेतुकेतु जातक ३९२

[क्या वेद-पाठ एक दम निष्फल है ?]

३७८. दरीमुख जातक ३९७

[वैभव की अधिकता में बोधिसत्व ने चालीस वर्ष तक अपने मित्र को दाद नहीं किया ।]

३७९. नेरु जातक ४०३

[जहाँ किसी को विशेषता का ख्याल न हो, वहाँ न रहे ।]

३८०. आसङ्क जातक ४०५

[राजा आसङ्क कुमारी का नाम बताकर उसे ले आया ।]

३८१. मिगालोप जातक ४११

[पिता का आदेश न मान बहुत ऊँचे उड़ने वाला गीध भ्रंभावात में फस टुकड़े टुकड़े हो गया ।]

३८२. सिरिकातकण्ण जातक ४१३

[लक्ष्मी किसके पास रहना पसन्द करती है और दरिद्रता किसके पास ?]

३८३. कुम्भट्ट जातक ४१६

[मुर्गा बिल्ली के चक्रमें में नहीं आया ।]

३८४. धम्मवज्ज जातक ४२२

[ढांगी कौवे ने धार्मिक वन कौवों के अण्डे-बच्चे खाये ।]

३८५. नन्दिय मिगराज जातक ४२४
[नन्दियमृग ने अपने मैत्री बल से सभी प्राणियों की रक्षा की ।]

२. सेनक वर्ग ४२६

३८६. खरपुत जातक ४२६
[सभी प्राणियों की बोली समझ सकने का मन्त्र ।]

३८७. सूची जातक ४३४
[बोधिसत्व एक अद्भुत सूई बनाकर अपनी शिल्प चतुराई के बल से लं हार की सुन्दर कन्या ले आये ।]

३८८. तुण्डिल जातक ४३८
[महातुण्डिल ने चुल्लतुण्डिल को मृत्यु से निर्भय रहने का उपदेश दिया ।]

३८९. सुदण्यककटक जातक ४४३
[केकट ने साँप और कौचे की गरदन दबोच अपने मित्र की जान बचाई ।]

३९०. मय्हक जातक ४४८
[दान देने से पहले, देते समय और देने के बाद मन प्रसन्न रहना चाहिये—तभी उसका महाफल होता है ।]

३९१. धजविहेठ जातक ४५३
[राजा ने एक साधु के दुराचार के कारण सभी साधुओं को राज्य से निकलवा दिया ।]

३९२. भिसपुप्फ जातक ४५७
[देवकन्या ने भ्रमण को पुष्प की गन्ध-चोरी करने पर टोका ।]

३९३. विघास जातक ४६०
[सच्चे विघासादि कौन हैं ?]

१६४. बहक ४६२

[कौवा स्निग्ध पदार्थ खाता हुआ भी कृप रहता है और
बटेर सूखे तिनके और दाने खाकर भी मोटा जाता है । क्यों ?]

१६५. कारु जातक ४६४

[कौवे ने मत्स्य-मांस के लोभ में जान गँवाई ।]

सातवाँ परिच्छेद

१. कुक्कु वर्ग ४६६

१६६. कुक्कु जातक ४६६

[बांधिसत्व ने राजा को उपमा द्वारा उपदेश दिया ।]

१६७. मनोज जातक ४६६

[घोड़े का मांस खाने वाले सिंघ दीर्घायु नहीं होते ।]

१६८. सुतनु जातक ४७३

[सुतनु अपने बुद्धि-बल से यक्ष से जान बचाने में सफल
हुआ ।]

१६९. गिउफ जातक ४७८

[सौ योजन ऊपर से मुर्दार देख सकने वाला गीध पास
का जाल नहीं देख सकता ।]

४००. वृम्भपुष्प जातक ४८०

[न्यायी-गीदड़ ने दो ऊद-विलाऊओं के बीच में बन्दर-
बाँट की ।]

तीसरा परिच्छेद

१. सङ्कल्प वर्ग

२५१. सङ्कल्प जातक

“सङ्कप्परागधोतेन...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक उद्दिग्ग-चिन्त भिन्नु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस श्रावस्ती-वासी तरुण ने बुद्धधर्म में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रव्रज्या ग्रहण की। एक दिन श्रावस्ती में भिक्षार्थ घूमते हुए अलङ्कारों से सजी एक स्त्री को देख कर कामुक्ता के वशीभूत हो वह अन्यमनस्क घूमने लगा। उसे आचार्य उपाध्याय आदि ने देख अन्यमनस्कता का कारण पूछा। उन्हें पता लगा कि यह गृहस्थ होना चाहता है। वे बोले—“आयुष्मान ! शास्ता रागादि क्लेश से पीड़ितों के क्लेश को दूर कर उन्हें सोतापत्ति फल आदि देते हैं। आ तुझे शास्ता के पास ले चलें।” इतना कह ले गए।

शास्ता ने पूछा—“भिन्नुओ, इस अनिच्छुक भिन्नु को लेकर क्यों आए हो ?” उन्होंने कारण बताया। तब शास्ता ने पूछा—“भिन्नु ! क्या तू सचमुच उद्दिग्गचिन्त है ?”

“सचमुच।”

“किस कारण से ?”

उसने कारण बताया।

शास्ता ने कहा—“भिन्नु ! इन स्त्रियों ने पूर्व समय में ध्यान-बल से जिन्होंने अपने चिन्त-मैल को एक ओर कर दिया ऐसे पवित्र प्राणियों के मन में भी कामुक्ता पैदा कर दी। तेरे जैसे तुच्छ आदमी तो क्यों उद्दिग्ग नहीं होंगे जब कि शुद्ध प्राणी भी उद्दिग्ग हो गए। उत्तम यशस्वी भी बदनाम हो जाते हैं, अशुद्धों का तो क्या कहना ! सुमेरु पर्वत को हिला देने वाली हवा

क्या पुराने पत्तों के ढेर को नहीं हिलाएगी ? बोधि (बृद्ध) के नीचे बैठकर बुद्धत्व प्राप्त करने वाले प्राणी को भी इस कामुक्ता ने हिला दिया था। तेरे जैसे को क्यों न चंचल करेगी ?”

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्ती करोड़ धन वाले ऊँचे ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तत्तशिला में सब विद्याएँ सीख वाराणसी लौट कर विवाह किया। माता पिता के मरने पर उनके मृतक संस्कार करवा हिरण्य की ओर ध्यान दिया। जब उसने देखा कि धन तो दिखाई देता है लेकिन जिन्होंने यह धन इकट्ठा किया वे नहीं दिखाई देते तो उसे संवेग हुआ। शरीर से पसीना छूटने लगा।

उसने चिरकाल तक गृहस्थी कर, महादान दे, काम-भोगों को छोड़, आसु बहाते बहाते रिश्तेदारों को त्याग, हिमालय में प्रवेश कर, रमणीय प्रदेश में पर्णशाला बना उच्छ्राचरिया^१ से जंगल के कन्दमूल फल खाते हुए जीवनयापन किया। थोड़े ही समय में अभिभ्रजा और ममापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-रत रह, चिरकाल तक वहाँ रहते हुए सोचा—आवादी में जाकर निमक-खटाई का सेवन करूँगा। ऐसा करने से मेरा शरीर भी स्वस्थ होगा और घूमना भी हो जायगा। जो मेरे जैसे सदाचारी को भिक्षा देंगे अथवा अभिवादन आदि करेंगे वे स्वर्ग जायेंगे।

उसने हिमालय से उतर क्रम से चारिका करते हुए, वाराणसी पहुँच, सूर्यास्त के समय निवासस्थान खोजते हुए राजोद्यान देखा। यह सोच कि यह योगाम्यास के अनुकूल होगा, यहाँ रहूँगा, उसने उद्यान में प्रवेश कर एक वृद्ध की जड़ में बैठ ध्यान-सुख में ही रात बिता दी। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, पूर्वाह्न समय जटा, अजिन (चर्म) तथा वल्कल धारण कर, भिक्षापात्र ले, शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त-मन हो, सुन्दर चाल-ढाल से युक्त, युगमात्र देखते हुए, अपने सब तरह के सौन्दर्य से लोगों की आँखों को खँच

^१ घूम फिर कर गिरे फल आदि चुग कर खाना।

लेते हुए की तरह, नगर में प्रवेश कर भिक्षा मांगता हुआ, राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा ।

राजा ने महातल्ले पर टहलते समय झरोखों से बोधिसत्व को देख कर उसकी चाल ढाल से ही प्रसन्न हो सोचा यदि शान्त-धर्म नाम की कोई चीज़ है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी । उसने एक अमात्य को मेजा—जाओ इस तपस्वी को ले आओ । उसने जाकर प्रणाम किया और भिक्षा-पात्र लेकर कहा—भन्ते ! राजा आपको बुलाता है । बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महापुण्य ! हमें राजा नहीं पहचानता है । 'तो भन्ते ! जब तक मैं आऊँ तब तक यहीं रहूँ' कह उसने राजा को खबर दी । राजा बोला—हमारा कोई दूसरा कुल-विश्वासी तपस्वी नहीं है । जाओ उसे ले आओ । उसने स्वयं भी खिड़की से हाथ निकाल, प्रणाम कर कहा—भन्ते इधर आएँ । बोधिसत्व अमात्य के हाथ में भिक्षापात्र देकर महातल्ले पर चढ़े ।

राजा ने प्रणाम कर बोधिसत्व को अपने आसन पर बिठा अपने लिए तैयार किये गये यवागु-खाद्य-भोज्य परोस कर भोजन कर चुकने पर प्रश्न पूछा । शंका समाधान से और भी अधिक भद्दावान हो, प्रणाम कर पूछा—“भन्ते, आप कहाँ के निवासी हैं ? कहाँ से आये हैं ?”

“हम हिमालय के वासी हैं । महाराज ! हम हिमालय से आये हैं ।”

“किस कारण से ?”

“महाराज ! वर्षाकाल में स्थिर रूप से रहने के लिए जगह होनी चाहिए ।”

“तो भन्ते ! राजोद्यान में रहें । तुम्हें चार प्रत्ययों^१ का अभाव न रहेगा । और मुझे स्वर्ग की ओर ले जाने वाला पुण्य मिलेगा ।”

राजा ने बोधिसत्व से वचन ले जलपान के अनन्तर बोधिसत्व के ही साथ उद्यान जा, वहाँ पर्णशाला और चक्रमण-स्थान बनवा, बाकी भी रात और दिन के स्थान बनवाए । फिर प्रबजितों की सभी आवश्यकताएँ दे, ‘भन्ते ! सुख से रहें’ कह उद्यानपाल को देख-भाल के लिए कहा । बोधिसत्व तब से बारह वर्ष तक वहीं रहे ।

^१भिष्ट की चारों आवश्यकताएँ ।

किसी दिन राजा के इलाके में बगावत हुई। उसे शान्त करने के लिए जाने के इच्छुक राजा ने देवी को सम्बोधन कर कहा—“भद्र ! मुझे या तुम्हें नगर में पीछे रहना चाहिए ।”

“देव ! किस कारण कहते हैं ?”

“भद्र ! सदाचारी तपस्वी के लिए ।”

“देव ! मैं इसमें प्रमाद नहीं करूँगा। अपने आर्य्य की सेवा का भार मुझ पर रहा। तुम निश्चिन्त होकर जाओ।” राजा निकल कर गया। देवी उसी प्रकार से सावधानी से बोधिसत्व की सेवा करती रही। राजा के जाने के बाद से बोधिसत्व नियमित समय पर न जा अपनी मरजी के समय राज-घर जाकर भोजन करते।

एक दिन बोधिसत्व के बहुत देर करने के कारण देवी सब खाद्य-भोज्य तैयार कर, नहा कर, अलंकृत हो, छोटी शैय्या बिलुवा, बोधिसत्व के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई चिकने कपड़े को ढाला करके पहन लेट रही। बोधिसत्व भी समय देख भिक्षा-पात्र ले आकाश मार्ग से आ, बड़ी खिड़की के द्वार पर पहुँचे। उसका बलकल शब्द सुन कर सहसा उठने वाली देवी का पीला चिकना वस्त्र खिसक गया। बोधिसत्व ने विपक्षी-आलम्बन^१ इन्द्रियों को चंचल करके शुभ मान कर देखा।

उसका ध्यान-बल से शान्त हुआ भी विकार पिटारी के सांप की तरह फण उठा कर खड़ा हो गया। दूध वाले वृद्ध को बमूले से छील देने की तरह हुआ। विकार उत्पन्न होने के साथ ही ध्यान-बल नष्ट हो गया। इन्द्रियाँ मैली पड़ गईं। उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी उस कौवे की जिसने अपने से अपने पर उखाड़ लिए हों। वह पहले की तरह बैठ कर भोजन भी नहीं कर सका। बिटाने पर भी नहीं बैठा।

देवी ने सब खाद्य-भोज्य भिक्षा-पात्र में ही डाल दिया। जैसे पहले भोजन करके खिड़की से निकल आकाश मार्ग से जाता था, उस तरह से उस दिन न जा सका। भोजन लेकर बड़ी सीढ़ी से उतर उद्यान गया। देवी भी जान गई कि वह उस पर आसक्त हो गया है। तपस्वी उद्यान पहुँच, भोजन बिना

^१ स्त्री के लिये पुरुष तथा पुरुष के लिये स्त्री विपक्षी-आलम्बन है।

खाये ही (उसे) चारपाई के नीचे डाल देवी के हाथ का सौन्दर्य ऐसा है, पाँवों का सौन्दर्य ऐसा है, कमर के नीचे का हिस्सा ऐसा है, जाँघ ऐसी है आदि प्रलाप करता हुआ सप्ताह भर पड़ा रहा। भोजन सड़ गया। उसमें कीड़े पड़ गये।

राजा इलाके को शान्त कर लौट आया। सजे-सजाये नगर की प्रदक्षिणा कर बिना राजमहल गये बोधिसत्व को देखने की इच्छा से उद्यान पहुँचा। आश्रम में कूड़ा-करकट देख कर सोचा 'चला गया होगा'। पर्णशाला का दरवाजा खोल कर अन्दर प्रवेश करने पर उसे लेटे देख 'कोई रोग होगा' सोच, सड़ा हुआ भात फिकवा, पर्णशाला ग्राफ करवा पूछा—भन्ते ! क्या रोग है ?

“महाराज, मुझे बीध डाला है।”

राजा ने सोचा—मेरे शत्रुओं ने मुझे हानि पहुँचाने का अवसर न पा 'इसके मर्मस्थल को आघात पहुँचायें' सोच आश्रम इसे बीध डाला होगा। उसने शरीर को पलट कर बिधा-स्थान देखना चाहा। जब उसे बिधा-स्थान दिखाई न दिया तो पूछा—“भन्ते ! तीर कहाँ लगा है ?”

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—“महाराज ! मुझे किसी दूसरे ने नहीं बीधा है। मैंने अपने ही अपने हृदय में तीर मारा है।” इतना कह, उठकर आसन पर बैठ ये गाथायें कहीं—

सङ्कप्परागघोसेन वितक्कनिसित्तेन च,
नालङ्कटेन भहेन न उसुकारकतेन च ॥
न कय्यायतमुत्तेन नपि मोरूपसेविना,
सेतम्हि हृदये विद्धो सम्पङ्कपरिदाहिना ॥
आवेधञ्च न पस्सामि यतो हहिरमस्सवे,
याव अयोनिसो चित्तं सयं मे दुक्खमाभत्तं ॥

[कामभोग सम्बन्धी सङ्कल्प से रेंगे हुए, (उसी) सङ्कल्प (रूपी पत्थर) पर तेज किए हुए, असुन्दर, घृणित, जिसे किसी तीर बनाने वाले ने नहीं बनाया, जो कान के सिरे की तरह नहीं, जो मोर के पंख की तरह नहीं, (ऐसे) सारे शरीर को जलाने वाले (तीर) से मैं बिधा हूँ। कहीं बिधा-स्थान नहीं है जिसमें

से रुधिर बहे। मैंने अनुचित तौर पर चित्त को बढ़ने देकर स्वयं दुख (मोल) लिया है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओं से राजा को धर्मोपदेश दे, राजा को पर्णशाला से बाहर भेज, योगभ्यास कर, नष्ट हुए ध्यान को प्राप्त किया। फिर पर्णशाला से निकल आकाश में ठहर राजा को उपदेश देते हुए कहा—“महाराज ! मैं हिमालय ही जाऊँगा।” राजा बोला—भन्ते, नहीं जा सकते। उसके इस प्रकार याचना करते रहने पर भी ‘महाराज ! यहाँ रहते हुए मैं इस गड़बड़ी को प्राप्त हुआ। अब मैं यहाँ नहीं रह सकता’ कह आकाश में ऊपर उठ हिमालय चले गये। वहाँ आयु भर रह ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य्य) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों (के प्रकाशन) के अन्त में आसक्त-चित्त भिन्नु अर्हत हुआ। कुछ सोतापन्न हुए, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनगामी। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

२५२. तिलमुट्ठि जातक

“अज्जापि मे तं मनसि...” यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक क्रोधी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिन्नु क्रोधी स्वभाव का था। बहुत अस्थिर-चित्त। थोड़ी सी बात कहने से भी क्रोध आगया; चिढ़ गया; कोप द्वेष तथा गुस्सा प्रकट किया। भिन्नुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—अयुष्मानो, अमुक भिन्नु क्रोधी है, अस्थिर-चित्त है, चूल्हे में डाले निमक की तरह तटतटाता घूमता है, इस प्रकार के अक्रोधी (बुद्ध) शासन में प्रब्रजित हो गुस्से तक को नहीं रोक सकता है।

शास्ता ने सुना तो एक भिन्नु को मेनकर उस भिन्नु को बुलवा कर पूछा—
भिन्नु, क्या तू सचमुच क्रोधी है ? “भन्ते ! सचमुच ।” “भिन्नुओ, यह केवल
अभी क्रोधी नहीं है, यह पहले भी क्रोधी ही था” कह पूर्व-जन्म की कथा
कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसका
ब्रह्मदत्तकुमार नाम का पुत्र था । पुराने राजा अपने लड़कों को नगर में
प्रसिद्ध आचार्यों के रहते हुए भी शिल्प सीखने के लिए दूर परदेश मेनते थे
ताकि उनका मान मर्दन हो जाए, सरदी-गरमी सहने की सामर्थ्य आ जाए
तथा लोक-व्यवहार के शता हो जायें । उस राजा ने भी अपने सोलह वर्ष के
पुत्र को बुला उसे एक तल्ले का जूता, पत्तों का छाता और एक हजार
कार्पाण दे मेना—तात ! तत्तशिला नाकर विद्या सीख आ । उसने ‘अच्छा’ कह
मातापिता को प्रणाम कर विदा ली । चलते-चलते वह तत्तशिला पहुँचा ।
आचार्य का घर पूछकर, आचार्य के शिष्यों को पाठ बँचवाकर घर के
दरवाजे पर टहलते समय वह पहुँचा । जहाँ आचार्य दिखाई दिए उसी जगह
से जूते उतार, छाता बन्द कर आचार्य को प्रणाम करके खड़ा हुआ ।

आचार्य ने उसे यका हुआ जान उसका आतिथ्य कराया । राजकुमार
भोजन के बाद थोड़ा विश्राम करके आचार्य के पास जा प्रणाम करके खड़ा
हुआ । तात ! कहाँ से आया ? पूछने पर ‘वाराणसी से’ उत्तर दिया ।

“किसका पुत्र है ?”

“वाराणसी राजा का ।”

“किस लिए आया है ?”

“शिल्प सीखने के लिए”

“आचार्य-भाग (फीस) लाया है वा धर्म-शिष्य^१ बनना चाहता है ?”

उसने ‘आचार्य-भाग लाया हूँ’ कह आचार्य के चरणों में हजार की

^१ बिना फीस बुकाये आचार्य की सेवा करके पढ़ने वाले को धर्म
अंतेवासिक कहते थे ।

यैली रख प्रणाम किया। धर्म-शिष्य दिन में आचार्य का काम करके रात को शिल्प सीखते थे। आचार्य-भाग देने वाले घर में ज्येष्ठ पुत्र की तरह रह कर केवल शिल्प ही सीखते थे। उस आचार्य ने भी योग्य नत्त में राजकुमार को विद्या सिखाना आरम्भ किया।

शिल्प सीखता हुआ कुमार एक दिन आचार्य के साथ नहाने गया। एक बुढ़िया तिलों को साफ कर फैला कर रखवाली करती हुई बैठी थी। कुमार ने साफ तिल देख खाने की इच्छा से एक मुट्ठी तिल उठा कर खा लिये। बुढ़िया ने सोचा—यह लोभी है। वह कुछ न बोली। चुप रही। उसने अगले दिन भी वैसा ही किया। बुढ़िया ने तब भी उसे कुछ न कहा। कुमार ने तीसरे दिन भी वैसा ही किया। तब बुढ़िया हाथ उठाकर रोने लगी—प्रसिद्ध आचार्य अपने शिष्यों द्वारा मुझे छुट्टा रहा है। आचार्य ने रुक कर पूछा—मां, यह क्या है ?

“स्वामी ! तुम्हारे शिष्य ने मेरे द्वारा साफ किए गए तिलों की आज एक मुट्ठी खाई, कल भी एक मुट्ठी खाई और परसों भी एक। क्या इस प्रकार खाते हुए मेरे सब तिल नहीं नष्ट कर देगा ?”

“मां, मत रो। तुम्हें मूल्य दिलवाऊंगा।”

“स्वामी ! मुझे कीमत नहीं चाहिये। इस कुमार को ऐसी शिक्षा दें कि यह फिर ऐसा न करे।”

‘तो अम्मा ! देख’ कह आचार्य ने दो लड़कों से उस राजकुमार को पकड़वा कर बाँस की छड़ी ले तीन बार पीठ पर मारी—फिर ऐसा न करना। कुमार ने क्रोधित हो लाल आँखें कर आचार्य को सिर से पैर तक देखा। आचार्य जान गया कि उसने क्रोध भरी आँख से देखा है।

कुमार ने सोचा, विद्या समाप्त कर निमन्त्रण देकर मार डालूँगा। उसने आचार्य की करतूत मन में रख जाते समय आचार्य को प्रणाम कर स्नेही की तरह कहा—आचार्य, मैं बाराणसी पहुँच कर राज्य प्राप्त करने पर तुम्हें बुलवा भेजूँगा। तुम (अवश्य) आना। इस प्रकार प्रतिज्ञा करा चला गया। उसने बाराणसी जा माता पिता को प्रणाम कर शिल्प दिखाया। राजा ने ‘जीते जी मैंने पुत्र को देख लिया, अब जीते जी इसे राज्यभी सौंप दूँ’ सोच पुत्र को राज्य दे दिया।

उसने राज्यश्री का उपभोग करते हुए, आचार्य्य की करतल याद कर, क्रोधित हो, सोचा—उसे मरवाऊँगा और आचार्य्य को बुलाने के लिए दूत भेजा। तद्वर्ण अवस्था रहते उसे समझा न सकूँगा, सोच आचार्य्य नहीं गया। मध्यम अवस्था होने पर अब उसे समझा सकूँगा सोच, आचार्य्य ने जाकर राजद्वार पर खड़े हो कहलवाया—तच्छिला का आचार्य्य आया है। राजा ने संतुष्ट हो, ब्राह्मण को बुलाकर उसे अपने पास आया देख, क्रोधित हो, लाल आँखें निकाल, अमात्यों को सम्बोधित कर कहा—भो, जिस स्थान पर आचार्य्य ने मुझे चोट पहुँचाई थी वह आज भी दुखता है। आचार्य्य सिर पर मृत्यु लेकर मरने के लिये आया है। आज यह जीता नहीं रहेगा। इतना कह पहली दो गाथाएँ कहीं:—

अजापि मे तं मनसि यं मं त्वं तिष्ठमुष्टिया,
बाहाय मं गहेत्स्वान् ब्रिट्टिया अनुताळयि
ननु जीविते न रमसि येनासि ब्राह्मणागतो,
यं मं बाहा गहेत्स्वान् तिक्खत्तुं अनुताळयि ॥

[आज भी वह बात मेरे मन में है, जो तूने मुझे तिल की मुट्ठी (ले लेने) के लिए बाहों से पकड़ कर लाठी से पीटा था। निश्चय से ब्राह्मण ! तुझे जीना अच्छा नहीं लगता, जो तूने मुझे बाहों से पकड़ कर तीन बार पीटा था और अब (मेरे बुलाने से यहाँ) चला आया है।]

इस प्रकार उसे मृत्यु-भय दिखाते हुए कहा। उसे सुन आचार्य्य ने तीसरी गाथा कही:—

अरियो अनरियं कुम्मानं यो दण्डेन निसेवति,
सासनत्थं न तं वेरं इति नं पण्डिता विदु ॥

[जो आर्य्य अनार्य्य-कर्म करने वाले का अनुशासन करने के लिए उसे दण्ड से दण्डित करता है। पण्डित-जन उस (आर्य्य) के उस (कर्म) को वैर नहीं कहते।]

आर्य्य का मतलब है श्रेष्ठ। आर्य्य चार प्रकार का होता है—आचार-आर्य्य, दर्शन-आर्य्य, लिङ्ग-आर्य्य तथा पटिवेध-आर्य्य। मनुष्य हो अथवा पशु हो जिसका

आचरण श्रेष्ठ है वह आचार-आर्य है । कहा भी गया है :—

अरियं वत्तसि वक्कह ! यो वद्धमपचायसि,
चज्जामि ते सं भत्तारं गच्छथूभो यथासुखं ॥

[हे वक्कह ! यह जो तू वयोवृद्धों का आदर करता है, यह तेरा आर्य-बरताव है । मैं तेरे लिए तेरे भर्तार को छोड़ता हूँ । दोनों यथा सुख जाओ ।]

रूप से वा मन प्रसन्न करने वाले दर्शनीय विहार से युक्त दर्शन-आर्य है । कहा भी गया है :—

अरियावकासोसि पसन्ननेत्तो
मग्घे भवं पम्बजितो कुखग्हा;
कथन्नु वित्तानि पहाय भोगे
पम्बजि निक्खम्म घरा सपम्भा

[हे प्रसन्न नेत्र ! आप आर्य प्रतीत होते हैं । ऐसा लगता है कि आप (श्रेष्ठ) कुल से प्रव्रजित हुए हैं । हे प्रज्ञावान ! काम-भोग और धन छोड़ कर आप कैसे घर से निकल कर प्रव्रजित हुये हैं ?]

ओढ़ना पहनना चिह्न स्वरूप धारण कर श्रमण की तरह होकर घूमने वाला दुश्शील भी लिङ्ग-आर्य है । इसी के लिए कहा है :—

छुदनं कत्थानं सुम्भतानं
पक्खन्दी कुलदूसको पगाब्भो,
मायावी असम्भतो पजापो
पतिरूपेण चरं स ममावूसी ॥

[सु-व्रतों के वस्त्र पहनकर कुल-दूषक, प्रगल्भ निकला । असंयत, मायावी, बेकार सबको दूषित करता हुआ उल्टा आचरण करता है ।]

बुद्ध आदि परिवेध (= ज्ञान) आर्य हैं । कहा गया है :—बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध तथा बुद्ध-भावक आर्य कहलाते हैं । चारों प्रकार के आर्यों में यहाँ आचार-आर्यों से ही मतलब है ।

इस प्रकार समझाते हुए आचार्य ने कहा :—“इस लिये महाराज तुम्हें भी इस प्रकार समझ, इस तरह के व्यक्ति से बैर नहीं करना चाहिये । महाराज ! यदि मैंने तुम्हें इस तरह की शिक्षा न दी होती तो ज्यों ज्यों समय

गुजरता, तुम पूए, मट्टी आदि तथा फलाफल चुराते हुए चौर-कर्म के प्रति आसक्त हो, क्रम से सेन्ध लगाना, रास्ता मारना तथा ग्रामघात आदि करते । (फिर) राजापराधी चोर समके जाकर माल सहित राजा के सम्मुख ले जाए जाते । राजा कहता—जाओ इसे इसके अपराध के अनुसार दण्ड दो । तब तुम राज-दण्ड-भय को प्राप्त होते । तुम्हें इस प्रकार की सम्पत्ति कहाँ से मिलती ? क्या मेरे ही कारण तुम्हें इस प्रकार का ऐश्वर्य नहीं मिला ?”

उसे घेर कर खड़े अमात्य भी उसकी बात सुन, कहने लगे—देव ! तुम्हें यह जो ऐश्वर्य मिला है, तुम्हारे आचार्य से ही मिला है । उस समय राजा ने आचार्य के गुणों का ख्याल कर कहा—आचार्य ! सब राज्य ऐश्वर्य आपको देता हूँ । राज्य स्वीकार करें । आचार्य ने अस्वीकृत किया—मुझे राज्य की जरूरत नहीं ।

राजा ने तक्षशिला में, आचार्य के स्त्री बच्चों को मँगावा, बहुत ऐश्वर्य दे तथा उसे ही पुरोहित बना, पिता के स्थान पर स्थापित किया । फिर उसी के उपदेशानुसार आचरण कर, दानादि पुण्य कर्म कर, स्वर्ग-परायण हुआ ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य) सत्त्यों को प्रकाशित किया । सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ । बहुत श्रोतापन्न सकृदागामी तथा अनागामी हुए । उस समय राजा क्रोधी भिक्षु था । आचार्य तो मैं ही था ।

२५३. मणिकण्ठ जातक

“ममज्ञपानं....” यह शास्ता ने आळवि के पास अग्राळव चैत्य में विहार करते समय कुटिकार शिन्नापद के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

आळवकवासी भिक्षु कुटि बनाने के समय 'आदमी दें, आदमियों की सहायता दें' कहते हुए, माँगते हुए, बहुत याचना करते घूमते थे। मनुष्य माँगने से घबरा कर, याचना से घबरा कर, भिक्षुओं को देख, उद्विग्न भी होते, त्रस्त भी होते तथा भाग भी जाते।

आयुष्मान् महाकाश्यप ने आळवि में प्रविष्ट हो भिक्षाटन आरम्भ किया। आदमियों ने स्थविर को देख कर भी वैसा ही व्यवहार किया। उन्होंने भिक्षाटन से लौट, भिक्षुओं को आमन्त्रित कर पूछा—'आयुष्मानो ! पहले इस आळवि में भिक्षा सुलभ थी। अब क्यों दुर्लभ हो गई है ?' कारण जान, उन्होंने भगवान के आळवि में आकर अग्राळव-चैत्य में रहते समय भगवान् के पास जाकर यह बात कही। शास्ता ने इस सम्बन्ध में सभी भिक्षुओं को इकट्ठा करवा, आळवकवासी भिक्षुओं को पूछा—'भिक्षुओ ! क्या तुम सचमुच माँग माँग कर कुटी बनवाते हो ? "भन्ते ! सचमुच" कहने पर भगवान् ने उन भिक्षुओं की निन्दा की। "भिक्षुओ ! सात रत्नों से परिपूर्ण नाग-भवन में रहने वाले नागों को भी याचना अप्रियकर होती है। मनुष्यों की तो बात ही क्या ! उन्हें तो एक कार्पापण पैदा करना ऐसा ही होता है जैसा पत्थर से मांस उखाड़ना।" इतना कह भगवान ने पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महाधनवान् ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ। उसके इधर उधर दौड़ते लगने पर, एक दूसरा भी पुण्यवान् प्राणी उसकी माता की कोख में आया। वे दोनों भाई बड़े होकर माता-पिता की मृत्यु से वैराग्य-प्राप्त हो, श्रुति-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो, गङ्गा-तट पर पर्णशाला बना, रहने लगे। ज्येष्ठ भाई की पर्णशाला गङ्गा के ऊपर की तरफ थी, छोटे भाई की नीचे की तरफ।

एक दिन मणिकण्ठ नाम का नाग राजा (अपने) भवन से निकल गङ्गा के किनारे पर ब्रह्मचारी के भेष में घूमता हुआ छोटे भाई के आश्रम पर

पहुँच, प्रणाम करके एक ओर बैठा। वे दोनों परस्पर कुशल-क्षेम पूछ कर एक दूसरे के विश्वासी हो गये। अकेले न रह सकते थे। मणिकण्ठ नित्य कनिष्ठ तपस्वी के पास आता, बैठ कर बातचीत करता; और जाते समय तपस्वी के प्रति स्नेह होने के कारण अपना रूप छोड़ कर फण से तपस्वी को घेरते हुए लिपट कर उसके सिर पर बड़ा सा फण निकाल, थोड़ी देर विश्राम करता। फिर स्नेह त्याग, शरीर को लपेट कर तपस्वी को प्रणाम करता और अपने भवन को चला जाता। तपस्वी उसके भय से कृश हो गया। सूख गया। दुर्वर्ण हो गया। पाण्डुवर्ण हो गया। धमनिर्या गात्र से जा लगी।

वह एक दिन भाई के पास गया। उसने उसे पूछा—क्या कारण है तू कृश हो गया है? सूख गया है? दुर्वर्ण हो गया है? पाण्डुवर्ण हो गया है? धमनिर्या गात्र से जा लगी है? उसने उसे वह हाल कहा। भाई ने पूछा—तू उस नाग का आना पसन्द करता है वा नहीं करता है?

“नहीं चाहता हूँ।”

“वह नागराज जब तेरे पास आता है तो क्या गहना पहन कर आता है?”

“मणिरत्न।”

“तो तू उस नागराज के तेरे पास आकर बैठने से भी पहले ‘मुझे मणिरत्न दे’ माँगना। वह नाग तुझे फन से बिना लपेटे ही चला जाएगा। दूसरे दिन आश्रम-द्वार पर खड़े होकर उसके आते ही आते माँगना। तीसरे दिन गङ्गा के किनारे खड़े हो, उसके पानी से निकलते ही माँगना। इस प्रकार वह फिर तेरे पास न आएगा।”

तपस्वी ने सुनकर ‘अच्छा’ कहा और अपनी पर्णकुटी में चला गया। दूसरे दिन नागराज के आकर खड़े होते ही उसने याचना की—यह अपने पहनने की मणि मुझे दे। वह बिना बैठे ही भाग गया। दूसरे दिन उसने आश्रम-द्वार पर ही खड़े हो उसके आते ही कहा—कल भी मुझे मणिरत्न नहीं दिया। आज तो मिलना ही चाहिये। नाग बिना आश्रम में घुसे ही भाग गया। तीसरे दिन उसके पानी से निकलने ही पर कहा—आज मुझे माँगते माँगते तीसरा दिन हो गया है। आज मुझे यह मणिरत्न दे। नागराज ने पानी में खड़े ही खड़े तपस्वी का निषेध करते हुए दो गाथाएँ कहीं :—

ममन्नपानं विपुलं उल्लारं
 उप्यज्जतीमस्स मणिस्स हेतु,
 तं ते न दस्सं अतियाचकोसि
 न चापि ते अस्समं आगमिस्सं ॥
 सुसु यथा सक्खरधोतपाणि
 तासेसि मं सेलं याचमानो,
 तं ते न दस्सं अतियाचकोसि
 न चापि ते अस्समं आगमिस्सं ॥

[इस मणि के कारण मुझे बहुत अन्न-पान की प्राप्ति होती है। तू अति-याचक है। मैं यह तुझे न दूंगा। और मैं तेरे आश्रम में भी नहीं आऊँगा।

जैसे कोई तरुण पत्थर पर तेज की हुई तलवार लेकर किसी को डराये उसी तरह तू मुझे यह मणि माँग कर त्रास देता है। तू अति-याचक है। मैं यह तुझे न दूँगा। और मैं तेरे आश्रम में भी नहीं आऊँगा]

ऐसा कह कर वह नाग-राजा पानी में डुबकी मार अपने नाग-भवन पहुँच फिर वापिस नहीं आया।

वह तपस्वी उस दर्शनीय नागराज के न देखने से पहले से भी अधिक क्रुश, रुखा, दुर्बल तथा पाण्डुर रंग का हो गया और उसकी धमनी गात को जा लगी। ज्येष्ठ तपस्वी ने छोटे भाई का हाल-चाल जानने के लिए उसके पास आकर देखा कि वह पहले से भी अधिक पाण्डु-रोग का रोगी है। क्यों तू पहले से भी अधिक पाण्डु-रोगी हो गया ? उत्तर मिला—उस दर्शनीय नागराज को न देख सकने से। यह तपस्वी नागराज के बिना भी नहीं रह सकता सोच, तीसरी गाथा कही:—

न तं याचे यस्स पियं जिगिसे
 देस्सो होति अतियाचनाय,
 नागो मणिं याचितो ब्राह्मणेन
 अदस्सनंयेव तदुभयमाप्ता ॥

[जो (चीज़) मालूम हो कि किसी की प्रिय है, वह उससे न मांगे। अतियाचना करने वाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। ब्राह्मण के द्वारा मणि मांगी जाने पर नाग लुप्त ही हो गया।]

इतना कह और अब इसके बाद चिंता मत करना समझा, बड़ा भाई अपने आश्रम गया। आगे चलकर वे दोनों भाई अभिञ्जा तथा समापत्तियां प्राप्त कर ब्रह्म-लोक गामी हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओं, इस प्रकार सान रत्नों से पूर्ण नाग-भवन में रहने वाले नागों को भी याचना अप्रिय होती है, मनुष्यों की तो बात ही क्या ?' धर्म-देशना लाकर जातक का मेल बैठाय।

उस समय छोटा भाई आनन्द था, ज्येष्ठ भाई तो मैं ही था

२५४. कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक

“भुत्वा तिण्णपरिघासं.....”, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय सम्यक् सम्बुद्ध के श्रावस्ती में वर्षावास के बाद चारिका करके लौटने पर मनुष्यों ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अतिथि सत्कार करने की नीयत से दान दिया। उन्होंने विहार में एक धर्म-घोष^१ भिक्षु को नियुक्त किया। वह, जो आकर जितने भिक्षु मांगता उसे उतने ही चुन कर देता।

एक दरिद्र बृद्ध ने एक ही भिक्षु के लिए खाद्य-सामग्री तैयार कर उन उन मनुष्यों को भिक्षु चुन चुन कर दिये जाने पर दिन चढ़े धर्म-घोषक भिक्षु के पास जाकर कहा—मुझे एक भिक्षु दें। उसने उत्तर दिया—मैं ने सभी भिक्षु चुनकर दे दिये। सारिपुत्र स्थविर ही विहार में हैं। तू उन्हें दान दे।

^१ वह भिक्षु जो धर्मोपदेश की घोषणा किया करता था।

उसने प्रसन्न चित्त से 'अच्छा' कहा और जेतवन के द्वार-कोठे पर खड़ी हो, स्थविर के आने के समय उन्हें प्रणाम कर, हाथ से पात्र ले, घर जाकर बिठाया। एक बुढ़िया ने धर्मसेनापति को घर में बिठा रखा है, यह बात बहुत से श्रद्धावान् परिवारों ने सुनी। उन में से कोसल नरेश प्रसेनजित ने सुना तो उसने वस्त्र, एक थैली में हजार कार्षापण और भोजन भरे बर्तन भेज दिये और कहला भेजा कि हमारे आर्य्य को भोजन परोसते समय यह वस्त्र पहने और यह कार्षापण खर्च करे। जैसे राजा ने, उसी तरह अनाथ-पिण्डक ने, छोटे अनाथपिण्डक ने तथा महान् उपासिका विशाखा ने भी भेजे। दूसरे परिवारों ने भी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक-सौ, दो सौ कार्षापण करके भेजे। इस प्रकार एक ही दिन में उस बुढ़िया को एक लाख (कार्षापण) मिले। स्थविर उसका दिया यवागु ही पी, उसका बनाया खज्जक ही खा तथा उसके बनाये भात ही का भोजन कर दानानुमोदन के अनन्तर उसे स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर विहार को ही लौट गये।

धर्म-सभा में भिक्षुओं ने स्थविर की प्रशंसा करनी आरम्भ की—आयुष्मानो, धर्मसेनापति ने बुढ़िया को दरिद्रता से छुड़ा दिया। वह उसका सहारा हो गये। उन्होंने ने उसका दिया हुआ भोजन बिना मन मैला किये ही खाया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ? 'अमुक बात-चीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी सारि-पुत्र इस बुढ़िया के सहायक हुए हैं, न केवल अभी उसका दिया भोजन बिना मन मैला किये खाया है किन्तु पहले भी खाया ही है। इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उत्तरापथ में बनियों के कुल में पैदा हुये। उत्तरापथ जनपद के पाँच सौ घोड़ों के व्यापारी घोड़े लाकर वाराणसी में बेचते थे। एक दूसरा भी घोड़ों का व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर वाराणसी के रास्ते पर हो लिया। मार्ग में वाराणसी के आस-पास ही एक निगम था। पहले वहाँ एक महा

धनवान् सेठ रहता था। उसका बड़ा भारी मकान था, लेकिन उसका कुल क्रम से नाश को प्राप्त हो गया था। एक बूढ़ी स्त्री बच गई थी। वह उस मकान में रहती थी।

उस उच्च व्यापारी ने नगर में पहुँच 'किराया दूँगा' करके उस घर में निवास-स्थान ग्रहण कर घोड़ों को एक ओर रखा। उसी दिन उसकी एक श्रेष्ठ घोड़ी ने बच्चा जना। वह दो दिन रह राजा को देखने के लिए घोड़े ले चल दिया।

बूढ़ी ने घर का किराया माँगा। वह बोला—अच्छा माँ, देता हूँ। बुढ़िया ने कहा—इस बछेरे को भी किराये में से काटकर दे दे। व्यापारी देकर चला गया। बुढ़िया उस बछेरे को पुत्रवत् स्नेह करते हुए जला-भात, जूठन तथा घास खिलाकर पालने लगी।

आगे चलकर पाँच सौ घोड़ों को साथ ले आते हुए बोधिसत्व ने आकर उसी घर में डेरा डाला। कुण्डकखादक सिन्धव बछेरे के निवास स्थान की गन्ध सूँघ कर एक भो घोड़ा घर में प्रवेश नहीं कर सका। तब बोधिसत्व ने वृद्धा से पूछा—अम्म ! इस घर में कोई घोड़ा भी है ?

“तात ! इस घर में और तो कोई नहीं, एक बछेरा जिसे मैं पुत्र के समान पालती हूँ रहता है।”

“अम्म ! वह कहाँ है ?”

“तात ! वह चरने गया है।”

“अम्म ! वह कब आयागा ?”

“तात ! दिन रहते ही आयागा।”

बोधिसत्व उसके आने की प्रतीक्षा में घोड़ों को बाहर ही रख कर बैठे। सिन्धव बछेरा दिन रहते ही चर कर घर आया।

बोधिसत्व ने कुण्डक-कुण्डिक-सिन्धव बछेरे को देख सुलक्षणों से उसे अमूल्य जान बुढ़िया से खरीद लेने की बात सोची। बछेरा घर में प्रविष्ट हो अपनी जगह पर ही ठहरा। उसी क्षण वे घोड़े भी प्रविष्ट हो सके। बोधिसत्व ने दो तीन दिन ठहर घोड़ों को आराम दे, चलते समय वृद्धा से कहा—अम्म ! मूल्य लेकर इस बछेरे को मुझे दे दे।

“तात ! क्या कहते हो, कहीं पुत्र बेचने वाले भी होते हैं ?”

“अम्म ! तू इसे क्या खिला कर पालती है ?

“तात ! भात की कब्जी, भात का खुरचन और जूठी घास खिला, घान की भूसी का यवागु पिलाकर पालती हूँ ।”

“अम्म ! मैं इसे पाकर सरस भोजन कराऊँगा, रहने के स्थान पर कपड़े का चँदवा तनवा, नीचे वस्त्र बिछवा कर उस पर रखूँगा ।”

“तात ! ऐसा प्रबन्ध होने पर मेरा पुत्र सुख अनुभव करे, उसे ले कर जा ।”

तब बोधिसत्व ने बछेरे के चार पैर, पूँछ और मुँह प्रत्येक की कीमत एक एक सहस्र मान कर छ स्रहस्र की थैली रख बूढ़ी को नए वस्त्र पहना, सजा कर सिधव बछेरे के सामने खड़ा किया । उसने आँखें खोल माँ को देख आँसू गिराये । बुढ़िया ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—तात ! मैंने अपना पाल पोसने का खर्च पा लिया, तू जा । वह गया ।

बोधिसत्व ने दूसरे दिन बछेरे के लिए सरल भोजन तैयार कर सोचा—आज इसकी परीक्षा करूँगा कि यह अपना बल पहचानता है अथवा नहीं ? इसलिए नाद में काना—यवागु डाल कर दिलवाया । बछेरे ने सोचा—मैं इस भोजन को नहीं खाऊँगा । उसने उस यवागु को पाने की इच्छा नहीं की । बोधिसत्व ने उसकी परीक्षा लेने के लिए पहली गाय कही—

भुत्वा तिणपरिघासं, भुत्वा आचामकुण्डकं ।

एतं ते भोजनं आसि, कस्मादानि न भुञ्जसि ॥

[हे बछेरे ! तू जूठी घास खाने वाला है, चावल की कनी खाने वाला है । यह तेरा भोजन है । अब इसे क्यों नहीं खाता है ?]

इसे सुन सिन्धव बछेरे ने दूसरी दोगाथाएँ कहीं—

यत्थ पोसं न जानन्ति, जातिया विनयेन वा ।

पहू तत्थ महाब्रह्मे, अपि आचामकुण्डकं ॥

त्वञ्च खो मं पजानासि, यादिसायं ह्युत्तमो ।

जानन्तो जानमागम, न ते भञ्जामि कुण्डकं ॥

[हे महाब्रह्म ! जिस स्थान में लोग जाति या गुण नहीं जानते उस स्थान में चावल का पसावन ही बहुत है । किन्तु मैं कैसा उत्तम घोड़ा हूँ यह

तुम तो जानते हो । अपना बल जानता हुआ मैं तुम जैसे जानकार के साथ आया हूँ; इसलिए मैं यह भोजन नहीं करूँगा ।]

बोधिसत्व ने यह सुन कर कहा—अश्वराज ! मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए ही ऐसा किया है । क्रोध मत करें । इस प्रकार उसे आश्वासन दे, अच्छा भोजन करा, राजदरवार में ले जाकर पाँच सौ घोड़ों को एक तरफ़ खड़ा करा, दूसरी तरफ़ चित्रित कनात घिरवा, नीचे बल्ल विछवा, ऊपर कपड़े का चन्दवा तनवा सिन्धव बछेरे को उसमें रखा ।

राजा ने, आकर घोड़ों को देखते हुए कहा—इस घोड़े को अगल क्यों रखा है ?

“महाराज ! यह सिन्धव घोड़ा सब घोड़ों की चुझी चुका देगा ।”

“भो, क्या यह घोड़ा अच्छा है ?”

“हाँ महाराज !”

“तो इसकी चाल देखूँगा ।”

बोधिसत्व ने उस घोड़े को तैयार कर, उस पर चढ़, ‘देखें महाराज’ कह, मनुष्यों को हटा, राजांगण में चलाया । सारा राजांगण घोड़ों की एक पंक्ति से घिरा सा हो गया । फिर बोधिसत्व ने ‘महाराज ! इसका वेग देखें’ कह घोड़े को छोड़ा । उसे एक व्यक्ति ने भी नहीं देखा । फिर घोड़े के पेट पर लाल वस्त्र लपेट कर छोड़ा । लोगों ने केवल लाल वस्त्र ही देखा । तब उसे नगर के अन्दर एक उद्यान-भूमि में, एक पोखरी के पानी पर दौड़ाया । पानी पर दौड़ते हुए घोड़े के खुर का अगला भाग भी पानी से नहीं भीगा । दूसरी बार कमल के पत्तों पर दौड़ाया । किन्तु एक पत्ता भी पानी में नहीं डूबा । इस प्रकार उसकी चाल दिखा, उतर, ताली बजा हथेली पसारी । घोड़ा आगे बढ़, चारों पैर इकट्ठे कर, हथेली पर जा खड़ा हुआ ।

तब बोधिसत्व ने कहा—महाराज ! इस बछेरे की सब प्रकार की चाल दिखाने के लिए समुद्र पर्यन्त (भूमि) भी काफी नहीं । राजा ने सन्तुष्ट हो, बोधिसत्व को आधा राज्य दे दिया । सिन्धव बछेरे को भी अभिनय कर मंगल अश्व बनाया । वह बछेरा राजा का प्रिय और मनोरंज हुआ ।

उसका सत्कार भी बहुत हुआ । उसका रहने का स्थान भी राजा के निवासस्थान के समान अलंकृत सजासजाया हो गया । चार प्रकार की सुगन्धि

से भूमि का लेप कराया गया। सुगन्धित मालाएँ लटकाई गईं। ऊपर सुवर्ण तारों से खचित चँदवा तना हुआ था। चारों तरफ़ से चित्रित कनात से घेर दिया गया। नित्य सुगन्धित तेल का प्रदीप जलने लगा। उसके पेशाब-पाखाने के स्थान पर सुवर्ण कड़ाही रखी गई। नित्य राजसी भोजन खाता था। उसके आने के समय से सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा का अपना राज्य सा हो गया। राजा बोधिसत्व के उपदेश के अनुसार आचरण कर दान आदि पुण्य-कृत्य कर, स्वर्ग-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, (आर्य्य) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिटाया। सत्य प्रकाशन के समय बहुत से लोग सोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हंत हुए।

उस समय की बुढ़िया यही बुढ़िया थी। सिन्धव बछेरा सारिपुत्र था। राजा आनन्द था। घोंड़े का व्यापारी तो मैं ही था।

/

२५५. सक जातक

‘यावं सो मत्तमञ्जासि...’ यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत खाकर, अजीर्ण से मरे हुए, एक भिक्षु के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

उसके इस प्रकार मर जाने पर धर्म-परिषद् में भिक्षुओं ने उसकी निन्दा आरम्भ की—आयुष्मानो! असुक नाम का भिक्षु अपने पेट का अन्दाज न जान, बहुत खाकर न पचा सकने के कारण मर गया। शास्ता ने आकर पूछा—बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

“भन्ते ! यह बात चल रही है ।”

“भिक्षुओ ! अभी ही नहीं पहले भी यह बहुत भोजन के ही कारण मरा है”, कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमवन्त-प्रदेश में तोते की योनि में पैदा हो, समुद्र की तरफ़ वाले पर्वत पर रहने वाले अनेक सहस्र तोतों का राजा हुआ। उसका एक पुत्र था। उसके बलवान होने पर, बोधिसत्व की आँखें कमजोर हो गईं। तोतों की गति तेज होती है। इसलिए उनके वृद्ध हो जाने पर पहले आँख ही कमजोर होती है। बोधिसत्व का पुत्र माता-पिता को घोंसले में ही रख, चारा ला, पोसता था।

एक दिन चरने के स्थान में जा, पर्वत के सिरे पर स्थित हो, समुद्र देखते हुए उसने एक द्वीप देखा। उसमें सुवर्ण वर्ण के मीठे आमों का वन था। दूसरे दिन चुगने के समय उड़कर उसी आम्रवन में उतर, आम्र-रस पी, पका आम ले जाकर माता-पिता को दिया। बोधिसत्व ने फल खा रस को पहचान कर कहा - तात ! क्या यह अमुक द्वीप का पका आम नहीं है ?

“हाँ तात !”

“तात ! इस द्वीप पर जाने वाले तोते दीर्घायु नहीं होते। इसलिए पुनः उस द्वीप पर मत जाना।”

वह पिता का वचन न मान गया ही। एक दिन बहुत आम्ररस पी, माता पिता के लिए पका आम ले समुद्र के ऊपर से आता हुआ बहुत दौड़ने में थक कर निद्रा से अभिभूत हुआ। वह सोते सोते भी आया ही। चौंच से पकड़ा हुआ पका आम गिर पड़ा। वह क्रमानुसार आया हुआ रास्ता छोड़, नीचे उतरता हुआ पानी पर न ठहरा; उसमें गिर पड़ा। उसे एक मछली ने पकड़ कर खा लिया। बोधिसत्व ने उसके आने के समय उसे न आया जान, समझ लिया कि समुद्र में गिर कर मर गया होगा। उसके माता-पिता भी आहार न पा सूख कर मर गये। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक-सम्बुद्ध हो ये गाथाएँ कहीं :—

यावं सो मत्तमञ्जासी भोजनस्मिं विहंगमो ।

ताव अद्धानमापादि मातरञ्च अपोसयि ॥

यतो च खो बहुतरं भोजनं अञ्जुपाहरि ।

ततो तथेव संसीदि अमत्तञ्जु हि सो अहु ॥

तस्मा मत्तम्भुता साधु भोजनस्मिं अगिद्वता ।

अमत्तम्भूहि सीदन्ति, मत्तम्भू च न सीदरे ॥

[जब तक वह पक्षी भोजन की मात्रा जानता रहा, तब तक जीवन-मार्ग पर चलकर माता-पिता का पालन करता रहा । जब बहुत भोजन किया, तब वहीं डूब गया, वह मात्रा को न जानने वाला था ।

इसलिए भोजन में लोभ न करके मात्रा होना अच्छा है । क्योंकि अमात्रा डूब जाते हैं मात्रा नहीं डूबते ।]

अथवा :—“पटिसंखा योनिस्तो आहारं आहरति नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय यावदेव इमस्स कायस्स टितिया यापनाय विहिंसूपर-तिया ब्रह्मचरियानुगहाय । इति पुराणञ्च वेदनं पटिहङ्गामि नवञ्च वेदनं न उप्पादेस्सामि यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो च ।”

[सोच विचार कर आहार ग्रहण करता है, न क्रीड़ा के लिए, न मण्डन के लिए, न सजावट के लिए । जब तक शरीर की स्थिति है तब तक इसे चालू रखने के लिए, भूख के निवारण के लिए, श्रेष्ठ जीवन बिताने के लिए । (वह सोचता है) पुरानी (भूखरूपी) वेदना को दूर करता हूँ; (अत्यधिक भोजन से उत्पन्न होने वाली) नई वेदना को उत्पन्न न करूँगा । मेरी जीवन-यात्रा निर्दोष तथा सुखपूर्ण होगी ।]

अल्लं सुक्खञ्च भुञ्जन्तो, न बाळहं सुहितो सिया ।

अनूदरो, मिताहारो, सतो भिक्खू परिब्रजे ॥

चत्तारो पञ्च आलोपे, अभुत्वा उदकं पिबे ।

अल्लं फासुविहाराय पहितत्तस्स भिक्खुनो ॥

मनुजस्स सदा सतिमतो, मत्तं जानतो लब्धभोजने ।

तनु तस्स भवन्ति वेदना सयिकं जीरति आयु पालयं ॥

[रुखा-सूखा खाने वाला हो, बहुत खाने वाला न हो । पेट निकला हुआ न हो, परिमित आहार करने वाला हो, स्मृतिमान हो, वही भिक्षु प्रब्रजित होवे ।

चार पाँच कौर खाने की जगह रख कर पानी पी ले । आत्मसंयमी भिक्षु को सुख से जीने के लिए इतना काफी है ।

प्राप्त भोजन की मात्रा जानने वाले स्मृतिमान भिल्लु की वेदना क्षीय होती है, खाना शीघ्र पचता है तथा आयु बढ़ती है ।]

निम्न प्रकार से वर्णित मात्रशता भी अच्छी है :—

“कन्तारे पुसमंसंव अक्खस्सम्भजनं यथा ।

एवं आहरि आहारं, यापनत्थायमुच्चित्तो ॥

[कान्तार में पुत्र के मांस की तरह* आँख में अब्जन की तरह, केवल जीवन यापन के लिए अमूर्छित हो आहार किया ।]

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (आर्य्य) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिटाया । सत्य प्रकाशन के समय बहुत से लोग सांतापन्न, बहुत से सकृदागामी, बहुत से अनागामी और बहुत से अर्हत हुए ।

भोजन में अमात्रश भिल्लु उस जन्म में सुक-राज-पुत्र था । सुकराज तो मैं ही था ।

२५६. जरूदपान जातक

“जरूदपानं खण्णमाना” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती-वासी बनियों के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

उन्होंने श्रावस्ती से सामान ले, गाड़ियाँ भर व्यापार के लिए जाते समय तथागत को निमन्त्रित कर, महादान दे, त्रिशरण ग्रहण कर, पञ्चशील धारण कर, शास्ता को नमस्कार कर कहा :—भन्ते ! हम लोग व्यापार के

*कान्तार में भोजनाभाव में माता ने पुत्र माँस खा लिया । न खाती तो माता और पुत्र दोनों की जान जाती । माता ने अपने पुत्र का मांस क्या स्वाद लेकर खाया होगा ?

लिए बहुत दूर जा रहे हैं, सामान बेच यात्रा सिद्ध होने पर सकुशल लौट कर पुनः आप को नमस्कार करेंगे। वे चल पड़े।

उन्होंने कान्तार में पुराने जलाशय को देख सोचा—“इस जलाशय में पानी नहीं है, हम लोग प्यासे हैं, इसलिए इसको खनेंगे।” खनते हुए क्रम से उन्हें लोहा, जस्ता, सीसा, रतन, सोना, मुक्का और बिल्लौर आदि धातुएँ मिलीं। वे उन वस्तुओं से ही सन्तुष्ट हो, रत्नों से गाड़ियों को भर सकुशल श्रावस्ती लौटे। उन्होंने प्राप्त धन को संभाल, यात्रा सफल होने पर ‘दान देंगे’ सोच तथागत को निमंत्रित कर दान दे, प्रणाम कर एक ओर बैठ, शास्ता को बताया कि उन्होंने कैमे धन प्राप्त किया। शास्ता ने कहा—तुम लोगों ने तो हे उपासको! उस धन से सन्तुष्ट हो, मात्र होने से, धन और जीवन लाभ किया। पुराने लोग तो असन्तुष्ट हो, मात्रा न जानने से, पण्डितों के बचन के अनुसार कार्य न कर मृत्यु को प्राप्त हुए। फिर उनके प्रार्थना करने पर अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व वाराणसी में बनिए के कुल में जन्म ले, आयु प्राप्त होने पर काफिलों का मुखिया हुआ। उसने वाराणसी में सामान ले, गाड़ियाँ भर, बहुत से बनियों को साथ ले, उसी कान्तार में प्रविष्ट हो, उसी जलाशय को देखा। उन बनियों ने पानी पीने की इच्छा से उस जलाशय को खनते हुए बहुत सी लोह आदि धातुओं को प्राप्त किया। बहुत रत्न लाभ कर, उससे असन्तुष्ट हो, ‘इसमें और भी इससे सुन्दरतर होगा’ सोच, अत्यधिक प्रसन्न हो, खनते ही गये। तब बोधिसत्व ने उनसे कहा;—हे बनियो! लोभ विनाश का मूल है, हमने बहुत धन प्राप्त किया, इतने से सन्तुष्ट होओ, बहुत मत खनो। वे उसके मना करने पर भी खनते ही गये। वह जलाशय नाग का था। उसके नीचे रहने वाले नाग-राज ने अपने निवासस्थान के दूटने, उसमें ढेला और धूल के गिरने से क्रुद्ध हो, बोधिसत्व को छोड़, शेष सब को फुँकार से मारा। (फिर) नाग-भवन से निकल, गाड़ियों को जुतवा; सात रत्नों से भरवा, बोधिसत्व को आरामदार गाड़ी पर बैठा, नाग-छात्रों द्वारा गाड़ियों को खिंचवा,

बोधिसत्व को वाराणसी ले जा, घर में प्रविष्ट करा, धन सँभाल, स्वयं नागमवन गया । बोधिसत्व ने उस धन को त्याग, सारे जम्बूद्वीप को उन्नादित कर, दान दे, शील ग्रहण कर, उपोसथ-कर्म कर, मरने पर स्वर्ग-पद को प्राप्त किया । शास्ता ने यह श्रुति-कथा ला, सम्यक् समुद्ध होने पर ये गाथाएँ कही—

जलपानं खण्डमाना, वाणिजा उदकस्थिका ।

अग्निमांसु अयोलोहं, तिपुसीसञ्च वाणिजा ।

रतनं जातरूपञ्च, मुक्ता वेळुरिया बहु ॥

ते च तेन असन्तुष्टा, भीयोभीयो अस्त्राणिसुं ।

ते तत्पासिविसो, घोरो तेजसि तेजसा हनि ॥

तस्मा खये, नाति खये, अति खाणं हि पापकं ।

खातेन च धनं लब्धं, अति खातेन नासितं ॥

[जल प्राप्त करने की इच्छा वाले बनियाँ ने, जलाशय को खनते हुए उसमें से—ताम्बा, लोहा, जस्ता, सीसा, रतन, सोना, मुक्ता और बिल्लौर प्राप्त किया ।

उससे असन्तुष्ट हो उन्होंने बार बार खना । अतएव उन्हें घोर तेज वाले सर्प ने अपने तेज से मार डाला ।

इसलिए खने, किन्तु बहुत न खने, बहुत खनना बुरा है । खनने से धन मिला । बहुत खनने से नष्ट हुए ।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बिठाया । तब नाग-राजा सारिपुत्र था । काफिले का मुखिया तो मैं ही था ।

२५७. गामणीचण्ड जातक

‘नायं धरानं कुसलो...’ यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रश्न की प्रशंसा के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

भिन्नु धर्म-सभा में बुद्ध की प्रज्ञा की प्रशंसा करते हुए बैठे थे। आयु-प्मानो ! तथागत महाप्रज्ञावान हैं, विस्तृत-प्रज्ञा वाले हैं, प्रसन्न-प्रज्ञा वाले हैं, शीघ्र-प्रज्ञा वाले हैं, तीक्ष्ण-प्रज्ञा वाले हैं, उनकी प्रज्ञा बीधने वाली है, वे देव सहित लोक को प्रज्ञा से अतिक्रमण करते हैं। इसी समय शास्ता ने आकर पूछा—“भिन्नुओ ! क्या बात-चीत कर रहे हो ?”

“अमुक बात-चीत।”

“भिन्नुओ ! केवल अभी ही नहीं, तथागत पहले भी प्रज्ञावान ही थे”
कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में जनसन्ध राजा के राज्य करते समय, बोधि-सत्त्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म लिया। उसका मुख अच्छी तरह साफ किये गये सुनहरी काँच के समान था, वह अति सुन्दर था। इसलिए उसके नाम-ग्रहण के दिन, ‘आदासमुखकुमार’ नाम रखा गया। उसकी सात वर्ष की अवस्था में ही पिता तीनों वेद, लोक में सब कर्तव्याकर्तव्य सिखा मर गया। अमात्यों ने बड़े आदर के साथ राजा का शरीर-कृत्य कर, मृतक-दान दे, सातवें दिन राजाङ्गण में इकट्ठे हो सोचा—कुमार अत्यन्त छोटा है, उसका राज्याभिषेक नहीं किया जा सकता, उसकी परीक्षा लेकर उसे अभिषिक्त करेंगे।

एक दिन नगर को अलङ्कृत करा, न्यायालय को सजा, राजसिंहासन बिछवा, कुमार के पास जाकर कहा—

“देव ! न्यायालय चलना चाहिए।”

कुमार ने ‘अच्छा’ कहा। बहुत लोगों से घिरा कुमार जाकर सिंहासन पर बैठा। उसके बैठे रहने के समय अमात्यों ने दो पैर से चलने वाले एक बन्दर को वस्तुविद्याचार्य^१ का वेष पहना, न्यायालय में ले आकर कहा—

^१इजीनियर।

देव ! यह व्यक्ति पितामहाराज के समय का वस्तुविद्याचार्य्य है, विद्या में प्रवीण है। भूमि के अन्दर सात रतन तक का दोष देखने वाला है। राजकुल का महल कहाँ बनना चाहिए, उस स्थान को यही चुनता है। इसे अपनी नौकरी में लेकर इसके पद पर नियुक्त करना चाहिए।

कुमार ने उसे नीचे ऊपर देख, जान लिया कि यह मनुष्य नहीं है, बन्दर है। बन्दर किए कराये को चौपट करना जानते हैं, नहीं किये को कुछ नया बनाना या सोचना नहीं जानते। उसने अमात्यों को पहली गाथा कही—

‘नायं धरानं कुसलो, लोलो अयं वलीमुखो ।

कतं कतं खो दुस्सेय्य, एवं भम्ममिदं कुलं ॥

[यह गृहनिर्माण में कुशल नहीं है। यह बन्दर-जाति लोलुप है। यह जाति तो किए कराये को चौपट करना जानती है।]

अमात्यों ने ‘देव ऐसा होगा’ कहा। उसे हटा, एक दो दिन बाद पुनः उसे ही अलंकृत कर, न्यायालय में ला कहा—देव ! यह पितामहाराज के समय न्यायामात्य था, न्याय-सूत्र इसको मालूम है, इसे नौकरी में रख न्याय करवाना चाहिए।

कुमार ने उसे देख, विचारवान मनुष्य के इस प्रकार के बाल नहीं होते, यह विचार रहित बानर है, न्याय नहीं कर सकता, जान दूसरी गाथा कही—

न इदं चित्तवतो लोमं, नायं अस्सासिकोमिगो ।

सत्थं मं जनसन्धेन, नायं किञ्चि विजानति ॥

[यह बाल किसी विचारवान के नहीं, यह शासन करने योग्य नहीं, मेरे पिता ने बताया था कि यह कुछ नहीं जानता।]

अमात्य यह गाथा भी सुन, ‘देव ! ऐसा होगा’ कह उसे ले गये। पुनः एक दिन उसे ही सजा, न्यायालय में ला कहा—देव ! यह व्यक्ति पिता महाराज के समय, माता-पिता की सेवा करने वाला, कुल के अन्य ज्वेष्ठ लोगों का आदर करने वाला था। इसे अपने यहाँ रखना चाहिए।

कुमार ने उसे पुनः देख, बन्दर चंचल होते हैं, इस प्रकार के काम नहीं कर सकते, सोच तीसरी गाथा कही—

न मातरं वा पितरं, भ्रातरं भगिणिं सर्वं,
भरेव्य तादिसो पोसो, सिद्धं दसरथेन मे ॥

[मेरे पिता ने यह सिखाया है कि इस प्रकार का व्यक्ति माता-पिता, भाई, बहन का पोषण नहीं करता ।]

अमात्यों ने 'देव ! ऐसा होगा' कह बन्दर को हटा लिया । कुमार पण्डित है, राज्य कर सकेगा, सोच बोधिसत्व को अभिषिक्त किया । डिंडोरा पिटवाया कि आज्ञा से आदासमुख की आज्ञा चलेगी । तब से बोधिसत्व ने धर्मानुसार राज्य किया । उसका पाण्डित्य सारे जम्बूद्वीप में फैल गया । उसके पाण्डित्य को प्रकट करने के लिए ही यह चौदह कथाएँ कही गई हैं—

गोथो, पुत्तो, हयो चेव, नळकारो, गामभोजको,

गणिका, तरुणी, सप्पो, मिगो, तित्तिर, देवता,

नागो, तपस्सिनो, चेव अथो ब्राह्मणमाणव ॥

[बैल, पुत्र, घोड़ा, बँसफोड़वा, ग्राम का मुखिया^१, गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर, देवता, नाग, तपस्वी, और ब्राह्मण-विद्यार्थी ।]

ग. प्रसंग कथा

बोधिसत्व के राज-अभिषिक्त होने के समय जनसन्ध राजा के एक सेवक गामणीचण्ड ने ऐसा सोचा—यह राज्य समान-आयु वालों के साथ शोभा देता है । मैं वृद्ध हो चला हूँ । छोटे कुमार की सेवा नहीं कर सकूँगा । जनपद में कृषिकर्म करके जीऊँगा । वह नगर से दो योजन जा एक गाँव में रहने लगा, किन्तु खेती के लिए उसके पास बैल भी नहीं थे । वर्षा होने पर उसने एक मित्र से दो बैल माँगे । सारे दिन हल चला, बैलों को तृण खिला, उन्हें (उनके) स्वामी को सौंपने (उसके) घर गया । स्वामी उस समय घर में बैठ, अपनी भार्या के साथ भोजन कर रहा था । बैल अभ्यास-वश घर में घुस गये । उनके प्रवेश करने पर गृह-स्वामी ने अपनी थाली उठा ली । भार्या ने भी थाली दूर की । गामणीचण्ड मुझे कहीं भोजन करने को न कहें, सोच बैलों को बिना सौंपे ही चला गया ।

^१ग्रामभोजक ।

रात को चोरो ने बैलों के स्थान में घुस उन्हीं बैलों को चुरा लिया । प्रातः बैलों के स्वामी ने अड़ार में बैलों को नहीं पाया । यह जानते हुए भी कि चोरो ने चुराया है, बैल के स्वामी ने सोचा कि इन्हें गामणी के मत्थे मढ़ूँगा । उसके पास जाकर कहा—

“भो । मेरे बैल दो ।”

“क्या बैल घर में नहीं घुसे थे ?”

“तो क्या तुने मुझे सँपे थे ?”

“नहीं सँपे ।”

“तो यह तुम्हारा राजदूत है ।”

उन जनपदों में यह रिवाज था कि किसी के कंकर या ठीकरा ले, ‘यह तुम्हारा राजदूत है’ कहने पर अगर कोई नहीं जाता, तो राजा उसे दण्ड देता था । इसलिए वह ‘दूत’ सुनकर उसके साथ चला ।

वह उसके साथ राजदरबार जा रहा था । रास्ते में एक मित्र का घर मिला । ‘मैं अत्यन्त भूखा हूँ, जब तक ग्राम में जा भोजन कर लौटूँ, तब तक यहीं रहो’ कह गामणीचण्ड मित्र के घर गया । उसका मित्र घर नहीं था । मित्र-गृहिणी ने देख कहा—“स्वामी ! पका आहार नहीं है । सुदूर्तभर ठहरें । अभी पका कर देती हूँ ।” चावल के बखार पर बिना सीढ़ियों के चढ़ती हुई वह जमीन पर आ पड़ी । उसी क्षण उसका सात मास का गर्भ गिर पड़ा । तत्काल उसके स्वामी ने आकर देख, गामणीचण्ड को कहा—“तुमने मेरी भार्या को पटक कर गर्भ-पात किया है । यह तुम्हारा राजदूत है ।” वह उसे ले चला । तब दो व्यक्ति गामणी को बीच में कर चले ।

वे एक गाँव की सीमा पर पहुँचे । वहाँ एक घोड़े का चरवाहा घोड़े को रोक नहीं सक रहा था । घोड़ा इन्हीं लोगों के साथ भागा आ रहा था । घोड़े वाले ने गामणी को देख कहा—‘मामा गामणी ! इस घोड़े को किसी भी चीज से मार कर रोको । उसने एक पत्थर उठा कर मारा । पत्थर पैर में लगा । घोड़े का पैर रेंड के डण्डे के समान टूट गया । घोड़े वाले ने—‘तूने घोड़े के पैर को तोड़ा, यह तेरा राजदूत है—कह उसे पकड़ लिया । तीन आदमियों द्वारा पकड़ ले जाये जाते समय उसने सोचा—‘यह लोग मुझे राजा के सामने पेश करेंगे । मैं बैलों का मूल्य भी नहीं दे सकता, फिर गर्भ-पात-दण्ड

और घोड़े का मूल्य देने को कहाँ पाऊँगा । इसलिए मर जाना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है ।’ जाते हुए रास्ते में उसने समीप ही एक प्रपात-युक्त पर्वत देखा । उसकी छाया में दो पिता-पुत्र नलकार चटाई बुनते थे । गामणीचण्ड बोला—
 “भो ! शौच जाना चाहता हूँ । जरा यही रहें । आता हूँ ।” वह पर्वत पर चढ़ प्रपात की ओर गिरता हुआ पिता नलकार की पीठ पर गिरा । नलकार एक ही प्रहार से मर गया । गामणी उठकर खड़ा हो गया । नलकार “तू मेरे पिता की हत्या करने वाला चोर है, यह तुम्हारा राजदूत है” कह हाथ पकड़ भाड़ से निकला ।

“यह क्या है ?”

“यह मेरे पिता का घातक चोर है ।”

तब चार जने गामणी को बीच में कर चले ।

इसके बाद दूसरे ग्रामद्वार पर एक गाँव के मुखिया ने गामणी को देख पूछा—“मामा चण्ड ! कहाँ जा रहा है ?”

“राजा को देखने के लिए ।”

“अगर तू राजा को देखे तो मैं एक सन्देश देना चाहता हूँ । क्या ले जायगा ?”

“हाँ ले जाऊँगा ।”

“मैं स्वभाव से रूपवान, धनवान, यशस्वी और निरोगी हूँ । तो भी मैं अब पाण्डुरोग से पीड़ित हूँ । क्या कारण है ? राजा से पूछना । राजा पंडित है । वह तुम्हें इसका कारण बताएगा । उसका उत्तर फिर मुझे सुनाना ।” उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया ।

दूसरे गाँव के द्वार पर पहुँचा । वहाँ एक गणिका ने देखकर कहा—
 “मामा कहाँ जाता है ?”

“राजा को देखने के लिए ।”

“राजा पण्डित है, मेरा सन्देश ले जा । मैं पहले बहुत प्राप्त करती थी । अब तो चावल मात्र भी नहीं मिलता । कोई मेरे पास नहीं आता । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछ कर मुझसे कहना ।”

दूसरे गाँव की सीमा पर एक तरुणी ने देख उसी भाँति पूछ कर कहा—“राजा पण्डित है । मेरा सन्देश ले जा । मैं न तो स्वामी के घर रह

सकती हूँ न पिता के घर । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछ कर मुझसे कहना ।”

उसके आगे महामार्ग के समीप बाम्बी में रहने वाले एक सर्प ने देखकर पूछा—“चण्ड । कहाँ जाता है ?”

“राजा को देखने ।”

“राजा परिडित है । मेरा सन्देश ले जा । मैं चरने जाने के समय भूखा, म्लान-शरीर बाम्बी से निकलते समय, शरीर से बिल को भरता हुआ कष्ट से निकलता हूँ । और चर के लौटने पर अच्छी तरह खाया हुआ, स्थूल शरीर वाला हो, घुसते समय बिल के किनारों को बिना छूता हुआ जल्दी से प्रविष्ट हो जाता हूँ । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछकर मुझसे कहना ।”

आगे, एक मृग ने देखकर उसी प्रकार पूछ कर कहा—“राजा परिडित है, मेरा सन्देश ले जा । मैं अन्यत्र तृण नहीं खा सकता । एक ही वृक्ष की जड़ के पास खा सकता हूँ । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछकर मुझसे कहना ।”

उसके आगे एक तित्तिर ने देखकर कहा—“मैं एक ही बाम्बी के पास बैठ कर आवाज लगाने से अच्छी तरह आवाज लगा सकता हूँ । अन्य स्थानों पर बैठकर नहीं लगा सकता । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना ।”

उसके बाद एक वृक्ष-देवता ने देखकर पूछा—

“चण्ड कहाँ जाता है ?”

“राजा को देखने ।”

“राजा परिडित है । पहले मेरा बहुत सत्कार होता था अब तो मुट्ठीभर वृक्ष की कोंपलमात्र भी नहीं मिलती । क्या कारण है ? राजा से पूछकर मुझसे कहना ।”

उसके आगे एक नाग-राजा ने देखकर उसी भाँति पूछकर कहा—“राजा परिडित है । पहले इस तालाब का पानी साफ मणिवर्ण था । अब गँदला, मेंढक और काँई से भरा हुआ है । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना ।”

आगे नगर के पास आराम में रहने वाले तपस्वियों ने देख, उसी भाँति पूछ कर कहा—“राजा परिडित है । पहले इस आराम के फल-फल

मधुर होते थे । अब अजोरहित कसैले हो गये हैं । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना ।”

इससे आगे नगर-द्वार के समीप एक शाला के ब्राह्मण-विद्यार्थियों ने देखकर पूछा—

“भो चण्ड ! कहाँ जाता है ?”

“राजा के दर्शनार्थ ।”

“तो हमारा सन्देश लेकर जा । पहले जो कुछ पढ़ते थे वह हमें स्पष्ट होता था । अब छेद वाले षड़े के पानी के समान नहीं ठहरता है । समझ में नहीं आता है । अन्धकार सा हो जाता है । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना ।”

गामणीचण्ड इन चौदह प्रश्नों को लेकर राजा के पास गया । राजा न्यायस्थान पर बैठा था । बैल-स्वामी गामणीचण्ड को लेकर राजा के पास गया । राजा ने गामणीचण्ड को देखकर ही पहचान लिया कि यह मेरे पिता की सेवा करने वाला था, हमें गोद में लेकर घुमाता था । अब तक इतने समय कहाँ रहा सोचकर कहा—“हे चण्ड ! इतने समय तक कहाँ रहे ? बहुत समय से दिखाई नहीं दिये । किस मतलब से आये ?”

“हाँ देव ! हमारे देव (पितामहाराज) के स्वर्गगामी होने के समय से जनपद में जाकर कृषिकर्म करके जीवन निर्वाह करता हूँ । यह व्यक्ति बैल के मुकद्दमे के कारण ‘राजदूत’ दिखा कर तुम्हारे पास खींच लाया है ।”

“बिना खींच कर न लाये जाने से, न आने वाले को, खींच कर लाया जाना ही अच्छा है । अब तुम्हें देखा है । कहाँ है वह व्यक्ति ?”

“देव ! यह है ।”

“भो ! क्या तुने सचमुच हमारे चण्ड को दूत दिखाया है ?”

“सचमुच देव !”

“क्या कारण है ?”

“देव, यह मेरे दो बैल नहीं देता है ।”

“सत्य ही चण्ड ?”

“तो देव ! मेरी भी सुनें ।”

सारी कथा सुना दी । इसे सुन राजा ने बैल-स्वामी से पूछा—

“भो ! क्या तुमने अपने घर में घुसते हुए बैलों को देखा ?”

“नहीं देखा देव !”

“भो ! क्या लोगों को मुझे आदास-मुख राजा कहते नहीं सुना है ? सच सच बोलो !”

“देखे हैं देव !”

“भो चण्ड ! बैल न सौंपने से तुम्हारे गले । इस व्यक्ति ने, देख कर भी ‘नहीं देखा’ कह जान बूझ कर झूठ बोला है । इसलिए तुम (राज-) कर्मचारी होकर, इसकी और इसकी स्त्री की आँखें निकाल लो । चौबीस कार्षापण बैल की कीमत दो ।” राजा के ऐसा कहने पर बैल-स्वामी बाहर कर दिया गया ।

उसने सोचा—आँखें निकाल लिए जाने पर कार्षापण लेकर क्या करूँगा । गाम्भीर्य के पैरों पर गिर कर कहा—स्वामी चण्ड ! बैलों की कीमत के कार्षापण तुम्हारे ही पास रहें, इन्हें भी लें । दूसरे भी कार्षापण देकर भाग गया ।

तब दूसरा बोला—“देव इसने मेरी पत्नी को पटक कर गर्भ गिरा दिया है !”

“सत्य ही चण्ड !”

“महाराज ! सुनें” कह कर चण्ड ने सारी कथा कही ।

“क्या तुमने इसकी स्त्री को पटक कर गर्भ गिराया है ?”

“नहीं गिराया है देव !”

“भो, क्या तुम इसके गर्भ गिराने की बात सिद्ध कर सकते हो ?”

“नहीं कर सकता देव !”

“अब क्या चाहते हो ?”

“देव ! मुझे पुत्र मिलना चाहिए ।”

“भो चण्ड ! इसकी स्त्री को अपने घर में रख, पुत्र पैदा होने पर उसे लाकर दे ।” वह गाम्भीर्य के पैरों पर गिर, बोला—स्वामी ! मेरा घर न बिगाड़े । कार्षापण देकर चला गया ।

तीसरे ने कहा—“देव ! इसने मार कर मेरे घोड़े का पैर तोड़ दिया है !”

“सत्य ही चण्ड ?”

“महाराज ! तो सुनें ?” कह कर चण्ड ने सारी कथा विस्तार से कही ।

“घोड़े को मार कर रोक दो’ क्या तुमने सचमुच ऐसा कहा था ?”

“नहीं कहा देव !”

दूसरी बार पूछने पर उसने कहा—“हाँ कहा था देव !”

राजा ने चण्ड को सम्बोधित कर कहा—“हे चण्ड ! इसने कहकर ‘नहीं कहा है’ कह झूठ बोला है । इसकी जीभ निकाल लो; घोड़े की कीमत मेरे पास से लेकर एक सहस्र दो ।”

अश्व-नोपक दूसरे भी कार्षापण देकर भाग गया । तब बँसफोड़वा के पुत्र ने कहा—

“देव यह मेरे पिता की हत्या करने वाला अपराधी है ।”

“सच बात है चण्ड ?”

“देव ! सुनें ।”

“सुनता हूँ कह ।”

चण्ड ने उस बात को भी विस्तार पूर्वक कहा । राजा ने बँसफोड़वा को सम्बोधित कर कहा—

“अब क्या चाहते हो ?”

“देव मुझे पिता मिलना चाहिए ।”

“हे चण्ड ! इसको पिता मिलना चाहिए, मरे को लाया नहीं जा सकता । तुम इसकी माँ को ला, अपने घर में रख कर इसके पिता बनो ।”

बँसफोड़वा के पुत्र ने कहा—स्वामी मेरे मरे हुए पिता का घर न बिगाड़े । (वह भी) गामणीचण्ड को कार्षापण देकर भाग गया ।

मुकद्दमे में विजय पाकर, सन्तुष्ट-चित्त गामणीचण्ड ने राजा से कहा—“देव ! किन्हीं किन्हीं का दिया हुआ सन्देश है । आपसे कहता हूँ ।”

“चण्ड ! कह ।”

चण्ड ने ब्राह्मण विद्यार्थियों के सन्देश से आरम्भ करके, उल्टे क्रम से एक एक करके कहे । राजा ने क्रमशः समाधान किया ।

कैसे ?

पहला सन्देश सुन कर कहा—पहले उनके निवासस्थान पर समय जान कर बोलने वाला मुर्गा था। उसकी आवाज से उठ, मन्त्र ग्रहण कर स्वाध्याय करते हुए ही अरुणोदय हो जाता था। इसलिए उनका याद किया पाठ नष्ट नहीं होता था। अब उनके निवासस्थान पर असमय बोलने वाला मुर्गा है। वह कभी बहुत रात रहते बोलता है, कभी बहुत प्रभात होने पर। बहुत रात रहते बोलने से उठ, पाठ पढ़, निद्राभिभूत हो, बिना पाठ किए ही सो जाते हैं। बहुत प्रभात में बोलने से उठ, पाठ नहीं कर पाते। इसलिए उनके द्वारा ग्रहण किया गया याद नहीं होता।

दूसरा सुनकर कहा—वे पहले श्रमण-धर्म करते हुए कृषि-कर्म में लगे थे। अब श्रमण धर्म को छोड़ अर्कतव्यों में लगे हैं। आराम (विहार) में पैदा होंगे, बाह्य फल सेवकों को दे, बदले में भोजन प्राप्त कर, मिथ्याजीविका से जीवन यापन करते हैं। इससे उनके फल मधुर नहीं होते। यदि फिर पहले की तरह एक-चित्त हो, सब श्रमण-धर्म से युक्त होंगे तो उनके फल फिर मधुर होंगे। वे तपस्वी, राज-कुलों की चतुरता नहीं जानते। उनको श्रमण-धर्म करने को कहो।

तीसरा सुन कर कहा—वे नागराजा आपस में एक दूसरे से कलह करते हैं। इसलिए वह तालाब गँदला हो गया है। यदि वे पहले की भाँति एक होंगे, तो पानी फिर स्वच्छ हो जायगा।

चौथा सुन कर कहा—वह वृक्ष-देवता पहले जंगल में से मनुष्यों की रक्षा करता था। इसलिए नाना प्रकार की बलि पाता था। अब रक्षा नहीं करता। इसलिए बलि नहीं पाता। यदि पहले की तरह रक्षा करेगा तो फिर अभिलाष होगा। राजा भी होते हैं इसका उसे पता नहीं। इसलिए जंगल में से गुजरने वाले मनुष्यों की रक्षा करने को कहो।

पाँचवाँ सुनकर कहा—जिस बाँबी की जड़ में बैठ, वह तित्तिर अच्छी तरह बोलता है, उसके नीचे बड़ा खजाने का घड़ा है। उसे निकाल कर ले जा।

छठा सुनकर कहा—जिस वृक्ष-मूल के पास वह मृग तृण खा सकता है, उस वृक्ष के ऊपर बहुत भ्रमर-मधु है। मधु से सने हुए तृण से लोभित,

अन्य तृण नहीं खा सकता । उस शहद के छत्ते को लेकर, अच्छा मधु मुके भेज शेष अपने खा ।

सातवाँ सुनकर कहा—जिस बाँबी में वह सर्प रहता है उसके नीचे खजाने का बड़ा घड़ा है । वह उसकी रक्षा करता है । इसीलिए निकलते समय धन लोभ से शरीर को शिथिल कर, ऊपर उठता हुआ निकलता है । शिकार के बाद धन के स्नेह से, बिना किनारों को छूए, बेग से सहसा प्रवेश करता है । उस खजाने के घड़े को निकाल कर तू ले जा ।

आठवाँ सुन कहा—उस तरुणी के स्वामी और उसके माता-पिता के निवास-ग्राम के बीच एक ग्राम में उसका यार है । वह उसे याद कर, उसी के स्नेह वश स्वामी के घर रहने में असमर्थ हो, 'माता-पिता को देखूँगी' कह यार के घर जाती है । कुछ दिन रह माता-पिता के घर जाती है । वहाँ भी कुछ ही दिन रह, फिर यार के याद आने पर 'स्वामी के घर जाऊँगी' कह फिर यार के ही घर जाती है । उस स्त्री को राजाओं का होना जतला, कहना स्वामी के ही घर रह । अगर नहीं रहती है, तो राजा तुम्हें पकड़ मँगवाएगा और तू जीवित नहीं रहेगी । अप्रमाद करना चाहिए ।

नवाँ सुन कहा—वह वेश्या पहले एक से मजदूरी ले बिना उसका काम किए दूसरे से नहीं लेती थी । इसलिए उसे बहुत प्राप्त होता था । अब अपने धर्म को छोड़, एक से मजदूरी ले बिना उसका काम किए दूसरे से लेती है । पहले को अवसर न देकर दूसरे को देती है । इसलिए पैसा नहीं पाती है । उसके पास कोई नहीं जाता है । अगर अपने धर्म में स्थिर होगी तो पहले के सहश हो जायगी । उसे अपने धर्म में स्थित होने को कहो ।

दसवाँ सुन कहा—वह मुखिया पहले धर्मानुसार मुकद्दमों का फैसला करता था । इसलिए लोगों का प्रिय हो गया था । प्रसन्न-चित्त लोग उसके पास बहुत भेंट लाते थे । इसलिये वह सुन्दर था और धन, यश से सम्पन्न । अब रिश्वत लेने वाला हो, अधर्म से मुकद्दमों का फैसला करता है । इसलिए दुर्गन्त, दुःखी हो पाण्डु-योग से पीड़ित हो गया है । अगर पहले की भाँति धर्म से मुकद्दमों का निर्णय करेगा तो पुनः पहले के सहश हो जायगा । वह राजाओं के होने की बात नहीं जानता है, उसे धर्म से मुकद्दमों का फैसला करने को कहो ।

गामणीचण्ड ने राजा से इतने सन्देश निवेदन किए । राजा ने सर्वशुद्ध बुद्ध की तरह, अपनी प्रज्ञा से उन सब का उत्तर दिया । गामणीचण्ड को बहुत धन दे, उसके ग्राम को माफी देकर, उसे ही दे दिया । तब विदा किया ।

ब्रह्म-नगर से निकल, बोधिसत्व के दिए गये उत्तर को ब्राह्मण विद्यार्थियों, तपस्वियों, नागराजा, वृक्ष-देवता को कहा । तित्तिर के बैठने के स्थान से निधि ले, मृग के वृण खाने के स्थान वाले वृक्ष से भ्रमर-मधु ले, राजा को मधु भेजा । सर्प के रहने वाली बोंभ्यी को तुड़वा, निधि ली । तरुणी, वेश्या और मुखिया को राजा का सन्देश कह महान ऐश्वर्य के साथ अपने ग्राम गया । आयुभर जी, कर्मानुसार परलोक सिधारा । आदासमुख राजा भी दान आदि पुण्य कर्म कर मरने पर स्वर्ग गया ।

शास्ता ने—भिन्नुओ ! तथागत केवल अभी ही महाप्रज्ञावान नहीं, पहले भी महाप्रज्ञावान थे, कह धर्मदेशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया ।

सत्त्यों का प्रकाशन हो चुकने पर बहुत से लोग सोतापन्न, सकुदागामी और अर्हत हुए ।

उस समय गामणीचण्ड आनन्द था । आदासमुख राजा तो मैं ही था ।

२५८. मन्धाता जातक

“यावता चन्दिमसुरिया.....”—यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिन्नु के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

वह भावस्ती में पिण्डपात के लिए जाता हुआ एक अलंकृत, सजी-सजाई स्त्री को देख उद्विग्न-चित्त हुआ । उसे भिन्नुओं ने सभा में लाकर शास्ता को दिखा कर कहा—

“भन्ते ! यह भिन्न उद्विग्न-चित्त है ।”

“सच ही भिन्न तू उद्विग्न-चित्त है ?”

“भन्ते ! सच ही ।”

“भिन्न ! तू घर में रह कर कब तक काम-तृष्णा की पूर्ति कर सकेगा ? काम-तृष्णा समुद्र के समान न पूरी होने वाली है । पुराने लोगों ने दो हज़ार द्वीपों से घिरे हुए चार महाद्वीपों पर राज्य किया । मनुष्य शरीर से ही चातु-र्महाराजिक देव-लोक में शासन किया । त्र्योत्रिंश-देव-लोक में छत्तीस इन्द्रों के स्थान पर राज्य किया । तो भी अपनी काम-तृष्णा पूरी नहीं कर सके और मर गये । तू भला इस काम-तृष्णा को कब पूरा कर सकेगा ?” इतना कह, पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में प्रथम कल्पों में महासम्मत नाम का राजा था । उसके पुत्र का नाम रोज था । उसके पुत्र का नाम वररोज था । उसके पुत्र का नाम कल्याण था । उसके पुत्र का नाम वरकल्याण था । वरकल्याण के पुत्र का नाम उपोसथ था । उपोसथ के पुत्र का नाम मन्वाता था ।

उसने सात रत्न और चार ऋद्धियों से युक्त हो चक्रवर्ती राज्य किया । उसके बाएँ हाथ सिकोड़ दाहिने हाथ से ताली बजाने पर आकाश से दिव्य मेघ के समान जाँघ तक सात रत्नों की वर्षा होती थी । इस प्रकार का आश्चर्य्य-मनुष्य था । उसने चौरासी हजार वर्ष याल-क्रीड़ा की । चौरासी हजार वर्ष उपराज रहा । और चौरासी हजार वर्ष चक्रवर्ती राज्य किया । उसकी आयु असङ्ख्य थी ।

एक दिन काम-तृष्णा पूरी न हो सकने के कारण वह उद्विग्न-चित्त दिखाई दिया । श्रमात्यों ने पूछा—

“देव ! क्यों उद्विग्न है ?”

“मेरे पुण्य-बल को देखते यह राज्य क्या है ? इससे रमणीय स्थान कौन सा है ?”

“महाराज देव-लोक ।”

वह चक्ररत्न (रथ) चला, परिषद के साथ चातुर्महाराजिक देवलोक गया। वहाँ देव-गण से घिरे चारों महाराज दिव्य-माला-गन्ध हाथ में ले स्वागतार्थ आगे आये। उसे ले चातुर्महाराजिक देवलोक ले जा, देवलोक का राज्य दिया। उसे अपनी परिषद के साथ राज्य करते हुए बहुत समय गुजर गया। वह वहाँ भी तृष्णा की पूर्ति न हो सकने के कारण उद्विग्न-चित्त दिखाई दिया। तब चारों महाराजओं ने पूछा—

“महाराज ! क्यों उद्विग्न हैं ?”

“इस देव लोक से रमणीय कौनसा स्थान है ?”

“हम तो देव ! दूसरे (लोकों) के सेवकों के सदृश हैं। त्रयोत्रिंश देव लोक रमणीय है।”

मन्धाता चक्ररत्न (रथ) चला अपने परिषद सहित त्रयोत्रिंश की ओर चला। वहाँ देवगण सहित देवराज शक्र ने दिव्य-माला-गन्ध ले स्वागत किया और उसका हाथ पकड़ कर कहा—“महाराज इधर चलें।”

देवगण से घिरे राजा के जाते समय परिनायक-रत्न, चक्ररत्न ले, परिषद सहित (चातुर्महाराजिक देव) मनुष्य पथ से उतर अपने नगर में प्रविष्ट हुए। इन्द्र ने मन्धाता को त्रयोत्रिंश भवन ला, देवताओं को दो भागों में कर, अपना राज्य बच से बाँट कर दिया।

तब से लेकर दो राजा राज्य करने लगे। इस प्रकार समय गुजरते हुए इन्द्र तीस करोड़ साठहजार वर्ष आयु बिता मर गया। दूसरा इन्द्र पैदा हुआ। वह भी देवराज्य कर आयु समाप्त होने पर मर गया। इस प्रकार छत्तीस इन्द्र मरे। मन्धाता मनुष्य-शरीर से देव-राज्य करता ही रहा। इस तरह समय गुजरते हुए अधिक खुश रहने के कारण उसको काम-तृष्णा उत्पन्न हुई। उसने सोचा—“आधे राज्य से मेरा क्या होता-जाता है ? इन्द्र को मार कर एक छत्र राज्य करूँगा।” इन्द्र मारा नहीं जा सकता। तृष्णा विपत्ति की जड़ है। इसलिए उसकी आयु घट गई। बुढ़ापे ने शरीर पर आघात किया। मनुष्य शरीर देवलोक में नहीं छूटता। इसलिए वह देवलोक से खिसक उद्यान में उतरा। माली ने राजा के आने का सन्देश राजकुल में निवेदन किया। राज-कुल ने आ उद्यान में ही विस्तर लगवाया। राजा फिर न उठने की शय्या पर लेटा।

अमात्यो ने पूछा—“देव ! तुम्हारे बाद हम, लोगों को क्या सन्देश देंगे ?”

“मेरे बाद तुम लोगों को यह सन्देश देना—‘मन्धाता-महाराजा ने दो हजार द्वीपों से घिरे हुए, चार द्वीपों में चक्रवर्ती राज्य किया । बहुत समय तक चातुर्महाराजिकों में राज्य किया । छत्तीस इन्द्रों की आयु के बराबर देवलोक में राज्य किया । फिर भी तृष्णा को बिना पूरा किए मर गया’ ।”

वह इस प्रकार कह, मर कर कर्मानुसार परलोक सिधारा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथाएँ कहीं:—

यावता चन्द्रिमसुरिया, परिहरन्ति, विसाभन्तिविरोचना,
सब्बेव दासामन्धातु, ये पाणा पठविनिस्सिता ।

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति,

अप्पस्सादा, दुःखा, कामा, इति विज्जाय पणित्तो—

अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति,

तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥

[जहाँ तक चन्द्र-सूर्य का प्रकाश होता है, वहाँ तक के सभी पृथ्वी-वासी प्राणी मन्धाता के दास हैं । कार्षापणों की वर्षा होने पर भी काम-भोगों की तृप्ति नहीं होती । काम वासनाएँ अल्पस्वाद वाली (अधिकांश) दुःखद ही होती हैं । पण्डित आदमी यह जान कर भी दिव्य काम-भोगों में अनुरक्त नहीं होता । सम्यक्-सम्बुद्ध का शिष्य तृष्णा के क्षय (निर्वाण) में अनुरक्त होता है ।]

‘अश्वघोष रचित बुद्धचरित का एक श्लोक है :—

देवेन वृष्टेऽपि हिरण्यवर्षे, द्वीपां समुद्रांश्चतुरोऽपि जित्वा,

शक्रस्य चार्धसनमप्यवाप्य मांधातुरासीद्विषयेष्ववृत्तिः ॥११-१२॥

[देव के सोना वर्षाने पर भी, चारों समुद्रों के द्वीपों को जीत कर भी और शक्र का आधा राज्य प्राप्त करके भी, मन्धाता विषयों में अतृप्त ही रहा ।]

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, चार आर्यसत्त्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाय। सत्यप्रकाशन के समय उद्दिम-चिह्न भिन्नु सोतापन्न हुआ। अन्य लोगों में से भी बहुत से सोतापन्न हुए।

उस समय मन्धाता महाराजा मैं ही था।

२५६. तिरीटवच्छ जातक

“नयिमस्सा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, आयुष्मान् आनन्द द्वारा कोशल-राजा की रानियों से पाँच सौ और स्वयं राजा से पाँच सौ, इस प्रकार पाये गये एक हजार दुशालों की कथा के बारे में कही। वह वर्तमान-कथा दूसरे परिच्छेद की गुण-जातक^१ में विस्तार रूप से आ ही चुकी है:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व काशीराष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। नाम-ग्रहण के दिन तिरीटवच्छ कुमार नाम रखा गया। क्रमशः आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा। घर में रहते हुए माता-पिता की मृत्यु से वैराग्य प्राप्त हो, घर से निकल कर श्रुषिप्रबज्या ली। अरण्य में फल-मूल आदि खाकर रहने लगा।

उसके वहाँ रहते हुए वाराणसीराष्ट्र के प्रत्यन्तदेश में बलवा मचा। राजा वहाँ जा, युद्ध में पराजित हुआ। मरने के भय से हाथी के कन्धे पर चढ़, एक और भाग। अरण्य में विचरता हुआ वह पूर्वान्ध समय में तिरीटवच्छ के फल-मूल के लिए गये रहने पर, उसके आभ्रम में प्रविष्ट हुआ। तपस्वियों का आभ्रम जान हाथी से उतरा। हवा-धूप से क्रान्त, प्यासे, पानी खोजते हुए, कहीं कुछ भी न देख, उसने चंक्रमण-स्थान के सिरे पर

जलाशय देखा। पानी निकालने के लिए रस्सी-घड़ा न देख, प्यास रोकने में असमर्थ हो, हाथी के पेट में बँधे जोत को ले, हाथी को जलाशय के पास खड़ा कर, उसके पैर में जोत बाँध, जोत के सहारे जलाशय में उतरा। जोत के (पानी) तक न पहुँचने पर, बाहर निकल, चादर को जोत के सिरे पर बाँध फिर उतरा। तब भी नहीं हुआ। उसने अगले पैर से पानी का स्पर्श कर थोड़ी प्यास बुझा, अत्यन्त प्यास होने के कारण सोचा—मरना ही हो तो अच्छा, मरना ठीक है। जलाशय में कूद, इच्छा भर पानी पी, फिर निकलने में असमर्थ हो वहीं रहा। हाथी भी सुशिक्षित होने से कहीं न जाकर राजा की इन्तजार करता हुआ वहीं खड़ा रहा।

बोधिसत्व शाम के समय फल आदि लेकर आए। हाथी को देख सोचा, राजा आया होगा। हाथी कसाकसाया मालूम पड़ता है। क्या कारण है? वे हाथी के समीप गये। हाथी उनका आना जान एक ओर खड़ा हो गया।

बोधिसत्व ने जलाशय के निकट जा राजा को देख कर कहा—“महाराज मत डरें।” आश्वासन दे, सीढ़ी बाँध, राजा को निकाला। उसके शरीर को दबा, तेल मल, स्नान करा, फल आदि दे, हाथी का बन्धन खोला।

दो तीन दिन विश्राम कर बोधिसत्व से अपने यहाँ आने की प्रतिशप्ति ले राजा गया।

नगर से कुछ दूर तम्बू गाड़ कर स्थित राज-सेना ने राजा को आता हुआ देख, उसे घेर लिया।

बोधिसत्व भी महीने आधे महीने बाद वाराणसी जा, उद्यान में रह, दूसरे दिन भिक्षा के लिए घूमते हुए राज-द्वार पर पहुँचे। बड़ी खिड़की खोल, राजाङ्गण में देखते हुए, राजा ने बोधिसत्व को देखा। पहचान कर, प्रासाद से उतर, प्रणाम कर, महाप्रासाद पर ला ऊँचे किए हुए स्वेत-छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठाया। अपने लिए बने आहार का भोजन कराया। स्वयं भी खा, उद्यान में ला, वहाँ उसके लिए चंक्रमण आदि से घिरा हुआ निवास-स्थान तैयार कराया। प्रब्रजितों की सभी आवश्यक चीजें दे, उद्यान-पाल को सौंप, प्रणाम कर के गया।

तब से बोधिसत्व राजा-दरबार में भोजन करने लगे। बहुत आदर-सत्कार हुआ। उस (आदर) को न सह सकने वाले अमात्यों ने इस प्रकार

सोचा—“कोई थोड़ा इस प्रकार का सत्कार पाता हुआ क्या नहीं कर सकता ?” उपराज के पास जाकर कहा—“देव ! हमारा राजा एक तपस्वी से बहुत ममत्व रखता है । उसने उसमें क्या (गुण) देखे ? आप भी राजा के साथ मन्त्रणा करें ।” उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया, और श्रमात्यों के साथ राजा के पास जा प्रणाम कर पहली गाथा कही :—

नयिमस्स विज्जामयमत्थि किञ्चि,
न बान्धवो नो पन ते सहायो,
अथ केन वरणेन तिरीटवच्छो,
ते दयिक्को भुञ्जति अम्मापिण्डं ॥

[यह कुछ विद्या नहीं जानता । न आप का बन्धु^१ है और न मित्र है, तो किस कारण से यह तिरीटवच्छ त्रिदण्डी (तीन दण्ड धारण करने वाला) श्रेष्ठ-भोजन खाता है ?]

यह सुन राजा ने पुत्र को आमंत्रित कर कहा—

“तात ! मेरा सीमा के बाहर जा, युद्ध में पराजित हो, दो तीन दिन का न आना याद है ?”

“याद है ।”

“तो इसी के कारण मुझे जीवन मिला ।” इतना कह, सारी वार्ता कह सुनाई ।

फिर “तात ! मेरे जीवनदाता के मेरे पास आने पर, राज्य दे देने पर भी मैं उसका बदला नहीं चुका सकता” कह दो गाथाएँ कहीं :—

आपासु मे युद्धपराजितस्स,
एकस्स कत्वा विवतस्मिं घोरे ।
पसारयि किञ्चगतस्स पार्थि,
तेनूदतारिं दुखसम्परेतो ।
एतस्स किञ्चेन इधानुपत्तो,
वेसायिनो विसया जीवलोके ।

^१ भूत-बन्धु, शिष्य-बन्धु, गोत्र-बन्धु और श्राति-बन्धु ।

खामारहो, तात ! तिरीटबच्छो,

वेयस्स भोगं यजतञ्च यज्जं ॥

[युद्ध में पराजित होकर जब मैं घोर वन में अकेला विपत्ति में पड़ा था, उस समय इसने मुझ आपत्ति-ग्रस्त की ओर (कृपा का) हाथ बढ़ाया । इसी ने मुझ दुःखित को जलाशय से निकाला । इसी की कृपा से यहाँ पहुँचा हूँ । सभी जीव यमराज के पास जाने वाले हैं । हे तात ! तिरीटबच्छ को देना योग्य है । इसे भोग्य वस्तुएँ दो और (दान) यज्ञ करो ।]

इस प्रकार राजा के द्वारा आकाश में उठते हुए चन्द्रमा के समान बोधिसत्व के गुण प्रकाशित किए जाने पर उसका गुण सर्वत्र प्रकट हुआ । उसका लाभ तथा आदर और भी बढ़ा । तब से लेकर उपराज, अमात्य या और कोई राजा से कुछ न कह सका । राजा बोधिसत्व के उपदेश में स्थित हो, दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ । बोधिसत्व भी अभिशा और समापत्ति को प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ ।

शास्ता ने “पुराने परिदित भी उपकार वश कुछ करते थे” धर्म-देशना ला, जातक का मेल बिठाया ।

उस समय राजा आनन्द था । तपस्वी तो मैं ही था ।

२६०. दूत जातक

“यस्सत्था दूरमायन्ति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक अतिलोभी भिक्षु के बारे में कही । कथा नवे परिच्छेद के काक जातक में आएगी ।

शास्ता ने उस भिक्षु को आमंत्रित कर कहा— हे भिक्षु ! अभी ही नहीं पहले भी तू अतिलोभी था । लोभी होने के कारण ही तलवार से तेरा सिर कटा । यह कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसका पुत्र हो, आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, पिता के मरने पर राजा बना। वह भोजन के बारे में बहुत शुद्धाशुद्ध विचार करने वाला था। इसलिए उसका नाम भोजन-सुद्धिक-राजा पड़ा। वह ऐसा भोजन करता था कि उसकी एक थाली का मूल्य एक लाख होता। खाते समय घर के अन्दर बैठकर नहीं खाता था। अपने भोजन-विधान को देखने वाली जनता को पुण्य देने की इच्छा से वह राज-द्वार पर रतन मण्डप बनवा, भोजन के समय उसे अलंकृत करा, उठे हुए स्वर्णमय श्वेत छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठ, क्षत्रिय कन्याओं से घिर कर, एक लाख की सोने की थाली में सात प्रकार का भोजन करता था।

एक अतिलोभी मनुष्य ने उसके भोजन-विधान को देख, उस भोजन के खाने की इच्छा को न रोक सकने पर सोचा—यह उपाय है। वह (वज्रों को कस कर पहन, हाथ उठाकर—“भो ! मैं दूत हूँ, दूत हूँ,” चिल्लाता हुआ राजा के पास पहुँचा।

उस समय उस जनपद में “दूत हूँ” कहने वाले को कोई नहीं रोकता था। इसलिए जनता ने दो हिस्सों में विभक्त हो उसे रास्ता दे दिया। उसने जल्दी से आ, राजा की थाली से भात का एक कौर लेकर मुँह में डाल लिया। “इसका सिर काटूँगा” सोच तलवारधारी (श्रंग-रक्षक) ने तलवार उठायी। राजा ने मना किया—मत मारो। “मत डरो, भोजन करो” कह राजा हाथ धोकर बैठा। भोजन कर चुकने पर अपने पीने का पानी तथा पान देकर पूछा—हे पुरुष तू “दूत हूँ” कहता है, तू किसका दूत है ? “महाराज मैं तृष्णा का दूत हूँ, पेट का दूत हूँ। तृष्णा ने मुझे आज्ञा दे, दूत बना कर भेजा है—“तू जा”। यह कह उसने पहली दो गाथाएँ कहीं :—

यस्सत्था दूरमायन्ति अमिस्सं पि याचिंतुं,
तस्सुवरस्सहं दूतो, मा मे कुज्झि रथेसम ॥
यस्स दिवा च रत्तो च वसमायन्ति माणवा,
तस्सुवरस्सहं दूतो मा मे कुज्झि रथेसम ॥

[मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वशीभूत होकर (लोग) दूर, अपने शत्रु के यहाँ भी माँगने जाते हैं। हे राजन ! मुझ पर क्रोध न करें। मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वश में सभी लोग दिन-रात रहते हैं। हे राजन ! मुझ पर क्रोध न करें।]

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—सचमुच प्राणी पेट के दूत हैं, तृष्णा के वशीभूत हो विचरते हैं। तृष्णा ही प्राणियों को चलाती है। इस व्यक्ति ने ठीक कहा है, सोच सन्तुष्ट हो राजा ने तीसरी गाथा कही :—

ददामि ते ब्राह्मण रोहिणीं गवं सहस्सं सह पुंगवेन,

दूतोहि दूतस्स कथंनं दज्जं, मयंपि तस्सेवभवाम दूता ॥

[हे ब्राह्मण तुझे बैलों के साथ हजार लाल गौवें देता हूँ। दूत दूत को कैसे न दे ! हम भी उसी तृष्णा के दूत हैं।]

इस प्रकार कह, 'इस पुरुष द्वारा मुझे अपूर्व बात रूपी धन मिला' सोच उसे धन दिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के अन्त में अतिलोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। बहुत से (लोग) सोतापन्न आदि हुए।

उस समय का लोभी आदमी, इस समय का लोभी भिक्षु है। भोजन-सुद्धिक-राजा तो मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

२. कोसिय वर्ग

२६१. पदुम जातक

“यथा केसा च मसू च...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, आनन्द-बोधि (वृत्) की (पुष्प) माला से पूजा करने वाले भिक्षुओं के बारे में कही। कथा कालिङ्गबोधि^१ जातक में आयगी:—

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर द्वारा रोपे जाने के कारण वह (वृत्) आनन्द-बोधि कहलाया। स्थविर द्वारा जेतवन-दरवाजे पर बोधि (वृत्) लगाये जाने की बात सारे जम्बूदीप में फैल गई। एक बार जनपद के भिक्षुओं ने “आनन्द-बोधि की पुष्प मालाओं से पूजा करेंगे” सोच, जेतवन पहुँच शास्ता को प्रणाम किया। दूसरे दिन श्रावस्ती में प्रवेश कर कमल-गली में जा (पुष्प-) माला न पा, लौट कर आनन्द स्थविर से निवेदन किया। “आयुष्मान् ! हम (पुष्प-) माला से बोधि की पूजा करना चाहते हैं। कमल-गली में जाने पर हमें एक भी माला नहीं मिली।” स्थविर ने कहा—“आयुष्मानो ! मैं लाऊँगा ” कमल-गली में जा नील-कमलों के बहुत से मुट्ठ उठवा, आकर उन्हें दिये। उन्होंने उन (फूलों) को लेकर पूजा की। उस कथा को जान कर धर्म-सभा में भिक्षुओं ने स्थविर की गुण-चर्चा चलाई। “आयुष्मानो ! जनपद-वासी भिक्षु अल्प-पुण्य होने से कमल-गली में जाकर माला नहीं पा सके। स्थविर ने जाकर ला दो।” शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो !”

“अमुक बातचीत।”

^१कालिङ्गबोधि जातक (४७१)

“भिन्नुओ ! बात करने में कुशल, क्या-कुशल केवल अभी ही नहीं माला प्राप्त करते हैं । पहले भी प्राप्त की है ” कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने सेठ के घर जन्म लिया । नगर में, एक तालाब में पुष्प फूले थे । एक नकटा आदमी उस तालाब की रक्षा करता था ।

एक दिन वाराणसी में उत्सव की घोषणा किए जाने पर माला पहन, उत्सव में क्रीड़ा करने की इच्छा वाले तीन श्रेष्ठी-पुत्रों ने सोचा— नकटे के रूप की झूठी प्रशंसा करके माला मांगेंगे । उसके फूल तोड़ने के समय वे तालाब के निकट जा, एक ओर खड़े हो गये । उनमें से एक ने उसको सम्बोधित कर पहली गाथा कही—

यथा केसाचमस्सूच, छिन्नं छिन्नं विरूढति,

एवं रूढतु ते नासा, पदुमं देहि याचितो ॥

[जिस प्रकार केश और मूँछ बार बार कटने पर भी फिर उगती है । उसी भाँति तुम्हारी नासिका बढ़े । मांगे जाने पर मुझे कमल दे ।]

उसने उस पर क्रुद्ध हो, कमल नहीं दिये । दूसरे ने दूसरी गाथा कही—

यथा सार्वदिकं बीजं, खेत्ते बुत्तं विरूढति,

एयं रूढतु ते नासा, पदुमं देहि याचितो ॥

[जैसे शरत् काल का बीज खेत में बाने पर उगता है, उसी भाँति तुम्हारी नासिका बढ़े । मांगे जाने पर मुझे कमल दे ।]

उसने उससे भी क्रोधित हो कमल नहीं दिये । तब तीसरे ने तीसरी गाथा कही—

उभोपि पलपन्तेते, अपि पदुमानि दस्सति,

वज्जं वा ते न वा वज्जं, नत्थि नासाय रूढना,

देहि सम्म पदुमानि, अहं याचामि याचितो ॥

[कमल देगा, इस आशा से यह दोनों झूठ बोलते हैं । (तुम्हारी नासिका उग आए) ऐसा चाहे वे कहें या न कहें, नासिका का उगना तो असम्भव है । हे मित्र ! मैं माँगता हूँ, मांगे जाने पर कमल दे ।]

यह मुन कमल-सर का रत्नक बोला—“इन दोनों ने झूठ बोला । तुमने जैसा है वैसा ही कहा । तुमको कमल मिलना योग्य है ।” वह कमल का बड़ा मुटु ले, उसके घर दे, अपने कमल-तालाब गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बिठाया ।

उस समय कमल प्राप्त करने वाला श्रेष्ठी-पुत्र मैं ही था ।

२६२. मुदुपाणी जातक

“पाणी चे मुदुको चस्स...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्धिम-चित्त भिच्छु के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

उसके धर्म-सभा में लाए जाने पर शास्ता ने पूछा—“सचमुच भिच्छु व उद्धिम-चित्त है ?”

“सचमुच ।”

“भिच्छु ! स्त्रियाँ कामुकता की ओर जाने से नहीं रोकी जा सकतीं । पुराने पण्डित भी अपनी लड़की की रक्षा नहीं कर सके । पिता के हाथ पकड़े रहने पर (भी) लड़की, पिता को बिना खबर होने दिए, कामुकता के वशी-भूत हो, पुरुष के साथ भाग गई ।” यह कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख में पैदा हुआ । आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा । पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगा । वह लड़की और भाव्जे दोनों का घर में पालन पोषण करता था । एक दिन अमात्यो के

साथ बैठे हुए कहा—“मेरे मरने के बाद मेरा भाञ्जा राजा होगा। मेरी लड़की उसी की पटरानी होगी।”

आगे, उनके आयु प्राप्त होने पर, फिर अमात्यों के साथ बैठे रहने पर उसने कहा—“हम भाञ्जे के लिए दूसरी लड़की लाएँगे। अपनी लड़की भी दूसरे राज-कुल में देंगे। इस प्रकार हमारे बहुत रिश्तेदार हो जाएँगे।” अमात्यों ने स्वीकार किया।

राजा ने भाञ्जे को बाहर घर दिया। अन्तःपुर में प्रवेश बन्द कर दिया। वे एक दूसरे पर आसक्त थे। कुमार ने सोचा—“किस उपाय से राज-कुमारी को बाहर निकाला जाय ? उपाय है।” उसने दाईं को-रिश्त दी। दाईं ने पूछा—“आर्य्य-पुत्र क्या करना है ?”

“अम्म ! राजकुमारी को बाहर निकालने का मौका कैसे मिले ?”

“राजकुमारी से बात करके जानूँगी।”

“अम्म ! अच्छा।”

वह गई। “अम्म ! तेरे सिर में जूँ है, निकालूँगी” कह, उसे नीचे आसन पर बिठा, स्वयं ऊँचे बैठ, उसके सिर को अपनी जाँघों पर रख कर जूँ निकालते समय, राजकुमारी के सिर में नख धँसाया। राजकुमारी ने—“यह अपने नख से नहीं बीधती है, किन्तु पिता के भाञ्जे-कुमार के नख से बीधती है” जान कर पूछा—“अम्म ! तू राजकुमार के पास गई थी ?”

“अम्म ! हाँ ?”

“उसने क्या सन्देश कहा ?”

“अम्म ! तुम्हें निकाल ले जाने का उपाय पूछता है।” राजकुमारी ने—“अगर कुमार पण्डित होगा तो जान जायगा” कह पहली गाथा कही और कहा—“अम्म ! इसे ले जाकर कुमार को कहना।”

पाणी चे मुदुकोचस्स, नागोचस्ससुकारितो,

अन्धकारो च वस्सेय्य, अथ नून तदा सिया ॥

[उसके पास कोमल हाथ हो, सिखाया हुआ हाथी हो, अन्धकार हो, और देव वर्षे; तब निश्चय से (उसका उद्देश्य पूरा) होवे।]

वह उसे सीख कुमार के पास गई।

कुमार ने पूछा—“अम्म ! राजकुमारी ने क्या कहा ?”

“आर्य्य पुत्र ! और कुछ न कह यह गाथा मेजी है ।” उसने वह गाथा कही । कुमार ने उसका अर्थ जानकर उसे मेज दिया—“अम्म ! जा ।”

कुमार इस बात को भली प्रकार जान, एक रूपवान कोमल हाथ वाले छोटे सेवक को सजा कर, मंगल हाथी के फीलवान को घूँस दे, हाथी को सिखा, उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगा ।

कृष्णपक्ष की अमावस्या को आधी रात के बाद घनी वर्षा हुई । उसने सोचा, राजकुमारी द्वारा बताया गया दिन आज है । (स्वयं) हाथी पर चढ़, कोमल हाथ वाले छोटे सेवक को हाथी पर बैठा, जाकर रनिवास के खुले आँगन में हाथी को बड़ी दीवार से सटा, खिड़की के समीप भीगता हुआ ठहरा । राजा लड़की की रखवाली करता हुआ, दूसरी जगह सोने नहीं देता था । अपने पास छोटे विस्तर मर सुलाता था । “आज कुमार आयेगा” जान, बिना सोये लेटेलेटे राजकुमारी ने कहा—“तात ! नहाने की इच्छा है ।”

“अम्म आ !” कह उसका हाथ पकड़ खिड़की के समीप लाकर कहा—“अम्म ! नहा ।” वह उसे खिड़की के बाहर के छज्जे पर रख एक हाथ पकड़े खड़ा रहा । नहाते हुए उसने कुमार की ओर हाथ बढ़ाया । उसने उसके हाथ से गहने उतार कर सेवक के हाथ में पहना, उसे उठाकर राजकुमारी के पास छज्जे पर रखा । उसने उसका हाथ ले, पिता के हाथ में दिया । पिता ने उसका हाथ पकड़ कर लड़की का हाथ छोड़ दिया । वह दूसरे हाथ से भी आभरण उतार, उसके दूसरे हाथ में पहना, पिता के हाथ में रख कर कुमार के साथ चली गई । राजा “मेरी लड़की ही है” समझ उस लड़के को, नहाने के बाद शयन-गृह में सुला, द्वार बन्द कर, कुण्डी दे, बेंबड़ा लगा, अपने विस्तर पर जाकर लेटा । उसने प्रातः दरवाजा खोल, लड़के को देखकर पूछा—“यह क्या है ?” उसने उस (कुमारी) के कुमार के साथ जाने की बात कही ।

राजा ने दुःखी होकर सोचा—“हाथ पकड़ कर साथ रखने पर भी रत्नी की हिफाजत नहीं की जा सकती । स्त्रियाँ इस प्रकार की हिफाजत न की जा सकनेवाली होती हैं ।” उसने दूसरी दो गाथाएँ कहीं :—

अनन्ता मुमुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीससा,
स्रीपन्ति नं विदित्वान, आरका परिवञ्जये ॥

यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व संठानं खिपं, अनुदहन्ति न ॥

[इनकी इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती । मृदुभागी होती हैं (मैथुनादि से) नहीं पूर्ण होने वाली होती हैं । यह नरक में डुबोती हैं । यह सब जान कर पण्डित आदमी इन्हें दूर ही रखे ।

जिस (पुरुष) से भी वे सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन-लोभ से, उसे वे आग के समान शीघ्र ही जला देती हैं ।]

ऐसा कहा भी गया है:—

बलवन्तो दुर्बला होन्ति, धामवन्तो पि हायरे,
चक्षुमा अंधिता होन्ति, मातुगामवसंगता ।
गुणवन्तो निगुणा होन्ति, पञ्चावन्तो पि हायरे,
पमत्ता बन्धने सेन्ति, मातुगामवसंगता ।
अज्मेनं च तपं, सीलं, सत्त्वं, चागं, सतिं, मतिं,
अच्छिन्दन्ति पमत्तस्स, पत्थदूभीव तक्करा ।
यसं, किञ्चित्, धितीं, सूरं, बाहुसत्त्वं, पजाननं,
खेपयन्ति पमत्तस्स, कट्टपुञ्जं व पावको ॥

[स्त्रियों के वशीभूत होने वाले (लोग) बलवान भी दुर्बल हो जाते हैं, शक्तिमानों की शक्ति घट जाती है, आँख वाले अन्धे हो जाते हैं ।

गुणवान निगुण हो जाते हैं । प्रज्ञावानों की प्रज्ञा भी घट जाती है, प्रमादी लोग बन्धन में बँध जाते हैं ।

जिस प्रकार मार्ग लूटने वाला चोर लोगों को लूटता है । उसी प्रकार मनुष्य का अध्ययन, तप, शील, सत्य, त्याग, स्मृति, मति, सभी लुट जाता है ।

जिस प्रकार लकड़ी के ढेर को आग जला देती है । उसी भाँति प्रमत्त मनुष्य का यश, कीर्ति, धृति, शूरता, बहुश्रुतभाव, ज्ञान, सभी नष्ट हो जाता है ।]

१ भिक्षुओ ! स्त्रियाँ तीन चीजों से अतृप्त हो मर जाती हैं । कौन सी तीन ? मैथुन-धर्म, बच्चा पैदा करना और श्रृंगार करना । भिक्षुओ ! स्त्रियाँ इन तीन चीजों से अतृप्त हो मर जाती हैं ।” अंगुत्तर-निकाय, तिकनिपात ।

ऐसा कह महासत्त्व ने सोचा—भाञ्जे को तो मुझे ही पोसना है। बड़े सत्कार के साथ लड़की उसी को दे, उसे उपराज बनाया। वह भी मामा के मर जाने पर राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यों को प्रकाशितकर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के बाद उत्कण्ठित भिक्षु स्तोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा मैं ही था।

२६३. सुल्लपलोभन जातक

“अभिज्जमाने वारिस्मिं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के ही बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

उसके धर्म-सभा में लाए जाने पर शास्ता ने पूछा—

“सच्चमुच्च भिक्षु ! तू उद्विग्न-चित्त है ?”

“सच्चमुच्च ।”

“भिक्षु ! स्त्रियों ने पुराने सच्चरित्र प्राणियों का भी मन डुला दिया” कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा पुत्र-विहीन था। उसने अपनी स्त्रियों को पुत्र प्रार्थना के लिए कहा। वे पुत्र के लिए प्रार्थना करती थीं। इस प्रकार समय बीतते हुए बेधिसत्त्व ब्रह्मलोक से च्युत होकर पटरानी की कोख में पैदा हुआ। उसे पैदा होते ही नहला कर स्तन पिलाने के लिए दाई को दिया। वह दूध पिलाए जाने पर रोता था। तब उसे दूसरी को

दिया। स्त्रियों के हाथ में वह चुप ही नहीं होता था। तब उसे एक नौकर को सौंपा। उसके हाथ में लेते ही चुप हो गया। तब से उसे पुरुष ही लिए रहते। स्तन पिलाना होता तो दूह कर पिलाते। अथवा पदों की ओट से स्तन मुँह में डालते। उसके बड़े होते जाने पर भी लोग (उसे) स्त्रियाँ दिखाने में असमर्थ रहे। इसलिए राजा ने उसके बैठने आदि का स्थान तथा ध्यान-गृह अलग बनवाया।

उसने उसके सोलह वर्षीय होने पर सोचा—मेरे दूसरा पुत्र नहीं है, यह काम भोग में रस नहीं लेता, राज्य की भी इच्छा नहीं करता। मुझे पुत्र मुश्किल से मिला है। तब नाच, गीत और बजाने में पटु, पुरुषों की परिचर्या कर उनको वश में कर सकने वाली एक तरुणी नटी ने जाकर पूछा—“देव ! क्या चिन्ता कर रहे हैं ?” राजा ने उसको कारण बताया।

“अच्छा देव ! मैं उसे लुभा कर काम-रस का ज्ञान कराऊँगी।”

“अगर स्त्री की गन्ध से अपरिचित मेरे कुमार को लुभा सकेगी तो वह राजा होगा और तू उसकी पटरानी।”

“देव ! इसकी जिम्मेवारी मेरी, आप इसकी चिन्ता न करें।”

वह पहरेदारों के पास जाकर बोली—

“मैं प्रातःकाल आकर आर्य्यपुत्र के शयन-गृह से बाहर ध्यानागार में खड़ी होकर गाऊँगी। अगर (वह) क्रोधित हो तो मुझसे कहना। मैं चली जाऊँगी। अगर सुने, तो मेरी तारीफ करना।” उन्होंने अच्छा कह स्वीकार किया।

वह प्रातःकाल उस जगह खड़ी होकर, वीणा के स्वर से गीत का स्वर, गीत के स्वर से वीणा का स्वर मिलाकर मधुर स्वर में गाने लगी। कुमार सुनता हुआ लेटा रहा। दूसरे दिन कुमार ने नजदीक आकर गाने की आशा दी। अगले दिन ध्यानागार में रहकर गाने की आशा दी ? और अगले दिन अपने पास रहकर। इस प्रकार क्रमशः तृष्णा उत्पन्न कर, लोक-धर्म सेवन कर, काम-रस से परिचित हो “जो दूसरे को नहीं दूँगा” कहता हुआ, तलवार ले, गली में निकल कर पुरुषों के पीछे पीछे दौड़ने लगा।

राजा ने उसे पकड़वा, उसे उस कुमारी के साथ नगर से बाहर निकलवा दिया। दोनों अरय्य में प्रविष्ट हो, गंगा के नीचे जा, एक तरफ गंगा,

दूसरी तरफ समुद्र, दोनों के बीच में आश्रम बना कर रहने लगे। कुमारी पर्णशाला में बैठ कर कन्द-मूल आदि पकाती थी। बोधिसत्व अरण्य से फलमूल लाता।

एक दिन उसके फल-मूल के लिए गये रहने पर, एक समुद्र-द्वीप-वासी तपस्वी भिक्षा के लिए आकाश मार्ग से जाता हुआ, धूँ आ देख कर आश्रम पर उतरा। तब उसने “जब तक पके तब तक बैठ” कह, बैठा, स्त्री के हाव-भाव से उसे मोहित कर, ध्यान से च्युत कर, ब्रह्मचर्य का अन्तर्धान कर दिया। वह पंख कटे कौवे के समान, (उसे) छोड़ कर जाने में असमर्थ हो, उस दिन वहीं रहा। फिर बोधिसत्व को आता देख, समुद्र की ओर भागा। बोधिसत्व ने “मेरा शत्रु होगा” सोच तलवार उठा कर उसका पीछा किया। तपस्वी आकाश में उड़ने का प्रयत्न करता हुआ समुद्र में गिर पड़ा। बोधिसत्व ने सोचा, यह तपस्वी आकाश-मार्ग से आया होगा। ध्यान के नष्ट होने से समुद्र में गिरा। मुझे अब इसकी सहायता करनी चाहिए सोच, किनारे पर खड़े हो, ये गायाएँ कहीं :—

अभिज्जमाने वारिस्मिं, सयं आगम्म इद्धिया,
मिस्सीभावित्थिया गन्त्वा, संसीदसि महण्णवे ॥
अवट्टनी, महामाया, ब्रह्मचर्यविकोपना,
सीदन्ति नं विदित्थान, आरका परिवज्जये ॥
यं एता उपसेवन्ति, छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व संठानं, खिप्यं अनुदहन्ति नं ॥

[पानी को बिना भेदे, (आकाशमार्ग से) स्वयं ऋद्धि से आकर, स्त्री संसर्ग के कारण समुद्र में डूबता है।

‘ठगने वाली, महामाया,^१ ब्रह्मचर्य को प्रकुप्त करने वाली, (स्त्रियाँ) उसे डुबा देती हैं’ जान पण्डित आदमी स्त्रियों से दूर ही रहे।

‘माया चेता मरीची च सोको, रोगो, चूपह्वो,
खरा च बन्धना चेता, मञ्जुपासो गुहासयो।
तासु यो विस्ससे पोसो, सो नरेसु नराधमो ॥

[स्त्रियाँ, माया, मरीची, शोक, रोग, उपद्रव, कठोर, बन्धन, मृत्यु-पाश तथा गुहाशय होती हैं। जो पुरुष इनका विश्वास करे वह अधम नर है।]

जिस पुरुष से यह सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन लोभ से, उसे वे वैसे ही शीघ्र जला देती हैं जैसे आग अपने स्थान को ।]

इस प्रकार बोधिसत्व का वचन सुन, तपस्वी समुद्र में खड़े खड़े, नष्ट ध्यान को फिर प्राप्त कर, आकाश से अपने निवास स्थान को गया ।

बोधिसत्व ने सोचा—यह तपस्वी इस प्रकार भारी शरीर वाला है, सो सेमर की रुई के समान आकाश-मार्ग से उड़ गया । मुझे भी इसकी तरह ध्यान उत्पन्न कर आकाश में विचरना चाहिए । उसने आश्रम जा उस स्त्री को बस्ती की ओर ले जाकर कहा—“तू जा ।” फिर आरण्य में प्रविष्ट हो, सुन्दर स्थान में आश्रम बना, ऋषिप्रब्रज्या ले, ध्यान कर, अश्लिश तथा समापत्ति प्राप्त कर ब्रह्मलोक गया ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्य प्रकाशन के उपरान्त उद्दिग्धचित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

स्त्री की गन्ध से अपरिचित कुमार मैं ही था ।

२६४. महापणाद जातक

“महापणादो नाम सो राजा...” यह शास्ता ने गंगा-तीर पर बैठकर भद्दजि स्थविर के प्रताप के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता श्रावस्ती में वर्षा-वास कर “भद्दजिकुमार को (सँघ में) शामिल करूँगा” सोच, भिक्षु-संघ के साथ चरिका करते हुए, भद्दिय नगर पहुँचे । जातीय-वन में तीन मास कुमार का ज्ञान परिपक्व होने तक वास किया । भद्दजिकुमार महा धनवान् अस्सी करोड़ सम्पत्ति वाले सेठ का एकलौता पुत्र था । उसके पास तीनों ऋतुओं के लिए तीन प्रासाद थे ।

एक एक में चार- (चार) मास रहता था । एक में रह कर, नाटकादि से धिर कर बड़े ठाट-बाट के साथ दूसरे प्रासाद में जाता था । उस क्षण कुमार का ठाट देखने के लिए, सारे नगर-वासी उमड़ पड़ते थे । प्रासादों के बीच पहियों पर पहिए, तथा मञ्चों पर मञ्च बाँधते थे ।

शास्ता ने तीन मास रहकर ग्राम-वासियों से कहा—“हम जाएँगे ।” नगरवासियों ने कहा—“भन्ते ! कल जायँ ।” शास्ता को निमन्त्रित कर, दूसरे दिन बुद्ध-प्रमुख संघ के लिए महादान तैयार कर, नगर के बीच मण्डप बना, सजा, आसन बिछवा कर समय की सूचना दी । भिक्षु संघ के साथ शास्ता वहाँ जाकर बैठे । लोगों ने महादान दिया । शास्ता ने भोजन समाप्त कर, मधुर स्वर से (दान-) अनुमोदन आरम्भ किया । उसी समय, भद्र-कुमार (एक) प्रासाद से (दूसरे) प्रासाद को जा रहा था । उस दिन उसका ठाट-बाट देखने के लिए कोई नहीं गया । उसके अपने लोग ही उसे घेरे रहे ।

कुमार ने आदमियों से पूछा—“दूसरे दिन मेरे (एक) प्रासाद से (दूसरे) प्रासाद जाते समय सारा नगर उमड़ पड़ता था, पहियों पर पहिए, मञ्चों पर मञ्च बाँधते थे । आज अपने आदमियों के सिवाय और कोई आदमी नहीं है । क्या कारण है ?”

“स्वामी ! सम्यक् सम्बुद्ध इस नगर के पास तीन मास रह कर आज जायँगे । भोजन समाप्त कर वे जनता को धर्मोपदेश दे रहे हैं । सभी नगरवासी उनका धर्मोपदेश सुन रहे हैं ।”

“तो जाओ हम भी सुनेंगे” कह सब आभरणों से मुक्त हो, बहुत लोगों के साथ जाकर, सभा में पीछे खड़े हो, धर्मोपदेश सुनते हुए उसने सब क्लेशों (बन्धनों) को क्षय कर अर्हत्व प्राप्त किया ।

शास्ता ने भद्रियश्रेष्ठी को आमंत्रित कर कहा—“महासेठ ! तुम्हारा बना-ठना पुत्र अर्हत्व को प्राप्त हुआ । इसलिए आज उसकी प्रव्रज्या हो जानी चाहिए, नहीं तो वह निर्वाण को प्राप्त हो जायगा ।”

“भन्ते ! मेरे पुत्र को निर्वाण नहीं प्राप्त करना है । उसे प्रव्रजित करें । लेकिन प्रव्रजित कर उसे साथ लेकर कल हमारे घर पधारें ।”

भगवान ने निमन्त्रण स्वीकार कर, कुल-पुत्र को ले, बिहार जा, प्रव्रजित करा, उपसम्पदा दी । उसके माता-पिता ने एक सप्ताह तक बड़ा सत्कार किया ।

शास्ता एक सप्ताह रह, कुल-पुत्र को साथ ले, चारिका करते हुए कोटिग्राम पहुँचे। कोटिग्राम वासियों ने बुद्ध-प्रमुख संघ को महादान दिया। शास्ता ने भोजन समाप्त कर (दान) अनुमोदन आरम्भ किया। कुल-पुत्र अनुमोदन किए जाते समय, ग्राम से बाहर जा “शास्ता के आने के समय ही उठूँगा” निश्चय कर, गंगातट पर, एक वृक्ष की छाया में ध्यान लगाकर बैठा। बड़े बूढ़े स्थविरों के आने पर भी न उठ, शास्ता के आने पर ही उठा। सामान्य भिक्षुओं ने क्रोध कर कहा—“यह प्रव्रजित होकर भी पहले की भाँति बूढ़े स्थविरों को आते देख, नहीं उठता।”

कोटिग्राम वासियों ने नावें एक साथ बाँधी। शास्ता ने बँधी नावों पर बैठ कर पूछा—

“भद्रजि कहाँ है ?”

“भन्ते ! यहाँ ही।”

“भद्रजि ! आ हमारे साथ इस एक नाव पर ही बैठ।”

स्थविर उल्लुल कर उस नाव में बैठा।

उसके गंगा के बीच पहुँचने पर शास्ता बोले—

“भद्रजि ! जब तुम महापण्याद राजा थे तो तुम्हारा निवास स्थान कहाँ था ?”

“भन्ते ! इस स्थान में निमग्न है।”

सामान्य (पृथक् जन^१) भिक्षुओं ने कहा—यह (अपना) अर्हत होना प्रगट करता है।

“तो भद्रजि ! साथी ब्रह्मचारियों की शंका दूर कर।”

उसी क्षण स्थविर, शास्ता को प्रणाम कर, ऋद्धिबल से जा, प्रसाद के शिखर को अंगुली से पकड़ कर, पचीस योजन प्रासाद को ले, आकाश में उड़ा। उड़ते हुए प्रासाद के नीचे रहने वालों को प्रासाद टूटता मालूम पड़ा। उसने एक योजन, दो योजन, तीन योजन, बीस योजन तक पानी से प्रासाद को उठाया।

^१ पृथक्जन—जो छोटापत्ति आदि मार्ग, फल प्राप्त नहीं है।

उसके पूर्वजन्म के सम्बन्धी प्रासाद के लोभ से, मच्छ, कच्छप, नाग, मेंढक होकर उसी प्रासाद में पैदा हुए थे। प्रासाद के उठने पर वे कूद कूद कर पानी में गिर पड़े। शास्ता ने उनको गिरते देखकर कहा—

“भद्रजि ! तुम्हारे सम्बन्धी क्लेश पा रहे हैं।”

स्थविर ने शास्ता का वचन सुन, प्रासाद छोड़ दिया। प्रासाद यथा-स्थान प्रतिष्ठित हो गया।

शास्ता गंगा पार गये। उनका आसन गंगा के किनारे ही बिछाया गया। बिछे, श्रेष्ठ बुद्ध-आसन पर वह तरुण सूर्य के समान रश्मि छोड़ते हुए बैठे। तब भिक्षुओं ने पूछा—

“भन्ते ! भद्रजि स्थविर इस मकान में कब रहते थे ?”

“महापण्याद राजा के समय” कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र, मिथिला में सुरुचि नाम का राजा था। उसका पुत्र भी सुरुचि ही था। उसका पुत्र महापण्याद हुआ। उसने यह प्रासाद प्राप्त किया। उसके प्राप्त करने में पूर्व जन्म का कार्य सहायक हुआ—“दो पिता-पुत्रों ने बाँस और उदुंबर की लकड़ी से प्रत्येक-बुद्ध के लिए निवास स्थान बनाया।” इस जातक की सारी अतीत-कथा पकिण्णक निपात के सुरुचि जातक^१ में आएगी। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने पर ये गाथाएँ कहीं :—

पण्यादो नाम सो राजा, यस्स यूपो सुवण्णयो,

तिरीयं सोळस पब्बेधो, उच्चमाहु सहस्सधा ।

सहस्सकण्ह सतभेदो, धजालु हरिताभयो,

अनण्णु^२ तत्थ गन्धवा छ सहस्सानि सत्तधा ।

एवमेतं तदा आसि, यथा भाससि भद्रजि !

सक्को अहं तदा आसिं, वेय्यावच्चकरो तवं ॥

^१ सुरुचि जातक (४८३)

[वह पणाद नाम का राजा था । उसका प्रासाद स्वर्णमय था । उसका विस्तार सोलह कन्डे का था । हजार कन्डे जितना ऊँचा था ।

वह हजार कन्डे का ऊँचा प्रासाद, सात तल वाला था । (ऊपर) हरी ध्वजा लगी थी । वहाँ सात तलों में छः हजार गन्धर्व नाचते थे ।

जैसा भद्जि ! तू अब कह रहा है, उसी प्रकार का यह था । मैं तब तुम्हारी सेवा करने वाला इन्द्र था ।]

उसी क्षण सामान्य भिक्षु शंका-रहित हो गये । शास्ता ने इस प्रकार घर्मोपदेश दे जातक का मेल बिठाया ।

तब महापणाद भद्जि था । और इन्द्र तो मैं ही था ।

२६५. खुरप्प जातक

“दिस्वा खुरप्पे...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कहीं: —

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—“भिक्षु ! क्या सचमुच तू हिम्मत हार गया है ?”

“भन्ते ! सचमुच ।”

“भिक्षु ! निर्वाण की ओर ले जाने वाले शासन में प्रव्रजित होकर तूने कैसे हिम्मत छोड़ी ? पुराने लोगों ने निर्वाण से असम्बन्धित बातों के लिए भी प्रयत्न किया ।” यह कह पूर्व जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधि-सत्व जंगल-रक्षक-कुल में पैदा हुआ । आयु प्राप्त कर जंगल रक्षकों का सर्व

प्रमुख हुआ । उसके पाँच सौ आदमी थे । वह जंगल के किनारे एक गाँव में रहता और मजदूरी लेकर मनुष्यों को जंगल पार कराता था ।

एक दिन वाराणसी का एक सौदागर-पुत्र पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर उसके गाँव पहुँचा । उसको बुलवाकर कहा—“सौम्य ! एक हजार लेकर मुझे जंगल पार करा दो ।” उसने “अच्छा” कह उसके हाथ के एक हजार ले लिए । मजदूरी लेते ही उसने उसके लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया । वह उसे लेकर जंगल में प्रविष्ट हुआ । जंगल में पाँच सौ चोरों ने हमला किया । चोरों को देखते ही बाकी मनुष्य छाती के बल गिर पड़े । जंगल रत्नों के मुखिया ने निनाद करते हुए, गर्जना करते हुए, प्रहार करके पाँच सौ चोरों को भगा कर सौदागर-पुत्र को सकुशल कान्तार पार करा दिया । सौदागर-पुत्र ने कान्तार के पार कारवान को रोक, रत्नों के मुखिया को नाना रस वाले श्रेष्ठ-भोजन करा, स्वयं जलपान कर, सुख पूर्वक बैठ, उसके साथ बात करते हुए उससे पूछा—“सौम्य ! ऐसे भयानक चोरों के अस्त्र शस्त्र लेकर आक्रमण करने पर भी तुम्हारे चित्त में कैसे जरा भी त्रास नहीं पैदा हुआ ?” यह पूछते हुए पहली गाथा कही :—

विस्वा खुरप्ये, धनुवेगनुन्ने, खग्गे गहीते तिखिये तेलधोते,
तस्मिं भयस्मिं, मरणे वियूल्हे, कस्मानु ते नाहु छम्भितत्तं ॥

[धनुष से वेग से छूटे तीर को देखकर, तेल में तेज किये तीक्ष्ण खड्गों को लिए देखकर, भय और मरण उपस्थित होने पर, तुम्हें कैसे शरीर-कम्पन नहीं हुआ ?]

इसे सुन रत्नों के मुखिया ने शेष दो गाथाएँ कहीं:—

विस्वा खुरप्ये, धनुवेग नुन्ने, खग्गे गहीते तिखिये तेलधोते,
तस्मिंभयस्मिं मरणे वियूल्हे, वेदं अलत्थं विपुलं उळारं ॥
सो वेदजातो अज्झमहिं अमिस्से, पुब्बेव मे जीवितमासि चत्तं,
नहि जीविते अलत्थं कुब्बमानो, सूरु कयिरा सूरकिच्चं कदाचि ॥

[धनुष से वेग से छूटे तीर देखकर, तेल में साफ किए गये खड्ग लिए देखकर, भय तथा मरण उपस्थित होने पर (मेरा) मन प्रफुल्लित हो उठा ।]

[उस प्रसन्नता में शत्रुओं को जीत लिया। मैंने तो पहले ही जीवन परित्याग कर दिया था। जीने में आसक्ति रखने वाला शूर कभी बहादुरी का काम नहीं करता।]

इस प्रकार वह बाणों की वर्षा होते हुए, जीने की तृष्णा छोड़ देने से अपने द्वारा किया गया बहादुरी का काम प्रकट कर, सौदागर-पुत्र को भेज, अपने गाँव जा, दान आदि पुण्य कर परलोक सिंघारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय, हारा हुआ (भिन्न) अहंत्व को प्राप्त हुआ।

उस समय रत्नों का मुखिया मैं ही था।

२६६. वातगसिन्धव जातक

“येनासि किसिया पण्डु...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, श्रावस्ती के एक गृहस्थ के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक सुन्दर स्त्री एक सुन्दर गृहस्थ को देख कर उस पर आसक्त हो गई। सारे शरीर को जलाती हुई सी उसके शरीर में कामाग्नि पैदा हो गई। उसको न तो शरीर का सुख मिलता, न मन की शान्ति। उसे भात भी नहीं रुचता था। केवल चारपाई की पाटी पकड़कर लेटी रहती। तब उसकी सेविका और सहायिका ने पूछा—“तू चञ्चल-चित्त क्यों है? चारपाई की पाटी पकड़ कर क्यों लेटी रहती है? तुझे क्या कष्ट है?” उसने एक दो बार पूछने पर उत्तर नहीं दिया। बार बार पूछे जाने पर वह बात कही। तब उन्होंने उसे आश्वासन देकर कहा—तू चिन्ता मत कर। हम उसे ले आएँगी। उन्होंने जाकर गृहस्थ से मन्त्रणा की। उसने इन्कार किया। (लेकिन) बार बार कहे

जाने पर स्वीकार कर लिया। उन्होंने “अमुक दिन, अमुक समय आओ” कह, वचन ले उसको कहा। शयन-गृह को सजा, अपने को अलंकृत कर वह शैय्या पर बैठी। वह आकर शैय्या के एक सिरे पर बैठा। तब वह सोचने लगी—अगर मैं गम्भीर्य न रख अभी ही इसे मौका दूँगी तो मेरी शान घटेगी। आने के दिन ही मौका देना अनुचित है। आज उसे शर्मिन्दा कर दूसरे दिन मौका दूँगी। हाथ पकड़ना आदि करते हुए खेलना आरम्भ किया। फिर हाथों में पकड़ कर कहा—निकल जाओ, तुमसे मेरा कोई मतलब नहीं।

वह हताश तथा लज्जित हो उठकर अपने घर गया।

दूसरी छियाँ ने उसके वैसा करने की बात जान, गृहस्थ के चले जाने पर, उसके पास जाकर कहा—तू इसमें आसक्त-चित्त हो, आहार छोड़ कर लेटी थी। हम बार बार याचना कर उसे ले आईं। तूने उसे क्यों मौका नहीं दिया? उसने वह बात बतायी। दूसरी (छियाँ) “तो मालूम होगा” कह चली गई। गृहस्थ ने लौटकर फिर नहीं देखा। वह उसे न पा निराहार रह, मर गई।

गृहस्थ उसके मरने की खबर पा, बहुत माला-गन्ध विलेपन ले, जेतवन जा, शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

“उपासक। दिखाई क्यों नहीं देता?”

गृहस्थ ने आप बीती सुनाकर कहा—“भन्ते! इतने समय तक लजा के कारण बुद्ध की सेवा में नहीं आया।”

“उपासक! इस समय तो उसने कामुकता वश तुम्हें बुला कर, आने पर मौका न दे लज्जित किया। पहले पण्डितों(?) में भी आसक्त हो, बुला कर, आने पर मौका न दे, कष्ट देकर लौटा दिया।” उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में, ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व सिन्धव कुल में पैदा हो, वातगासिन्धव नाम से उस (राजा) का मंगल-अश्व हुआ। वह घुड़-चरवाहों द्वारा लाया जाकर गंगा में नहाता था। उसे देखकर

कुन्दली नाम की गधी उस पर आसक्त होगई। यह कामुकता के कारण काँपती हुई तृण नहीं खाती थी। पानी भी नहीं पीती थी। सूखकर कृषा, हड्डी-चाम मात्र रह गई।

उसके पुत्र—गर्दभ बच्चे— ने उसको वैसी सूखती हुई देख कर पूछा—

“अम्म ! तू न तृण खाती है, न पानी पीती है, सूखकर जहाँ तहाँ काँपती पड़ी रहती है ! तुझे क्या कष्ट है ?”

उसने पहले नहीं कहा। बार बार पूछे जाने पर वह बात कही। तब उसके पुत्र ने आशवासन देकर कहा—माँ चिन्ता मत कर, मैं उसे ले आऊँगा। जब घोड़ा नहाने गया, उस समय उसके पास जाकर कहा—तात ! मेरी माता तुम पर आसक्त है। आहार छोड़, सूख सूख कर मर जायगी। उसे जीवन दान दे।

“अच्छा तात ! दूँगा। घुड़चरवाहे मुझे नहलाकर थोड़ी देर गंगा-किनारे विचरने के लिए छोड़ते हैं। तुम (अपनी) माँ को लेकर उस स्थान में आना।”

वह जाकर माँ को ला, उस स्थान में छोड़, एक ओर छिप कर खड़ा रहा।

घुड़-चरवाहे ने वातग-सिन्धव को उस स्थान पर छोड़ दिया। वह उस गधी को देखकर उसके पास गया।

जब घोड़ा उस गधी के पास पहुँच उसके शरीर को सूँघने लगा, तब उसने सोचा—अगर मैं गाम्भीर्य न रखकर आते ही मौका दूँगी तो मेरा यश और शान घटेगी। ऐसे रहना चाहिए जैसे हमें कोई इच्छा ही नहीं है। यह सोच सिन्धव के नीचे जबड़े में दुलची मार भाग गई। दाँत की जड़ टूट जाने जैसी (वेदना) हुई। वातगसिन्धव ने सोचा—मुझको इससे क्या प्रयोजन ! शर्मिन्दा होकर वहाँ से भाग गया। वह दुखी हो, वहीं गिरकर सोचती हुई लेट रही।

उसके पुत्र ने जाकर पूछते हुए पहली गाथा कही—

येनासि किसिया पण्डु, येन भसं न हव्वसि,

अयं सो आगतो तात, कस्मादानि पत्तायसि ॥

[जिसके कारण शरीर कृष होकर पाण्डु-वर्ण होगया । जिसके कारण भात नहीं रुचता, वह यह तात आया है । अब क्यों भागती है ?]

पुत्र का वचन सुन, गदही ने दूसरी गाथा कही—

सचे पनादिकेनेव, सन्धवो नाम जायति,
यसो हायति इत्थीनं, तस्मा तात ! पलायहं

[अगर आरम्भ में ही सम्बन्ध हो जाय तो स्त्रियों की शान नष्ट हो जाती है । हे तात ! इसलिए मैं भागी ।]

इस प्रकार उसने पुत्र को स्त्रियों का स्वभाव कहा । तीसरी गाथा शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर कही—

यसस्तीनं कुले जातं, आगतं या न इच्छति,
सोचति चिर रत्ताय, वातगामिव कुन्दलि ।

[यशस्वियों के कुल में पैदा हुआओं के आने पर जो उनकी इच्छा नहीं करती अर्थात् उपेक्षा करती है । वह चिबर काल तक चिन्तित रहती है । जैसे कुन्दलि वातगा के लिए ।]

शास्ता ने इस अतीत-कथा को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्य प्रकाशन के समय गृहस्थ सोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय गधी वह स्त्री थी । वातगामिन्धव तो मैं ही था ।

२६७. कक्कट जातक

“सिङ्गीमिगो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक स्त्री के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

भावस्ती में एक गृहस्थ अपनी भार्या को लेकर कर्ज उगाहने के लिए जनपद जा, कर्ज उगाह कर वापिस आ रहा था । लौटते समय मार्ग में

चोरों ने पकड़ लिया । उसकी भार्या सुन्दरी मनोरमा थी । चोरों के सरदार ने उस पर आसक्त होने के कारण गृहस्थ को मारना आरम्भ किया । वह स्त्री शीलवती, सदाचारिणी, पति को देवता मानने वाली थी । उसने चोर के पैरों पर गिर कर कहा—स्वामी ! अगर मुझे प्रेम करने के कारण मेरे स्वामी को मारेंगे तो मैं भी विष खाकर या साँस रोककर मर जाऊँगी । तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी । मेरे स्वामी को बे-मतलब न मारें । यह कह उसे छुड़ा लिया ।

वे दोनों सकुशल श्रावस्ती में जेतवन-विहार के पीछे से गुजर रहे थे । उन्होंने सोचा—विहार में प्रविष्ट हो शास्ता को नमस्कार करके जायें । वे गन्ध-कुटी-परिवेण जा, वन्दना कर, एक ओर बैठे ।

शास्ता ने पूछा—

“कहाँ गये थे ?”

“कर्ज उगाहने ।”

“मार्ग में अच्छी तरह आए ?”

“भन्ते ! मार्ग में हमें चोरों ने पकड़ लिया । जब वे मुझे मार रहे थे तो इसने चोरों के मुखिया से याचना करके छुड़ाया । इसके कारण मुझे जीवन-दान मिला ।”

“उपासक ! इस समय तो इसने तुम्हें जीवन-दान दिया । पहले पण्डितों को भी दिया ।” उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय हिमालय प्रदेश में एक बड़ा तालाब था । उसमें सुवर्ण वर्ण का एक महान केकड़ा था । उसके उसमें रहने के कारण वह (तालाब) कुळीर-दह कहलाता था । केकड़ा विशाल था, बड़े भारी चक्के के समान । हाथी पकड़, मार कर खा जाता था । हाथी उसके भय के कारण वहाँ उतर कर चारा नहीं ग्रहण कर सकते थे । तब बोधिसत्व ने कुळीर-दह के पास रहने वाले दल के मुखिया हाथी के सहवास से हथिनी की कोख में जन्म ग्रहण किया । उसकी माता ने गर्भ की

रक्षा करूँगी, सोच दूसरे पर्वत-प्रदेश में जाकर, गर्भ की रक्षा कर पुत्र को जन्म दिया ।

वह क्रमानुसार बढ़ कर महाशरीर वाला, शक्तिशाली, सुन्दर, अञ्जन पर्वत के समान हुआ । एक हथिनी के साथ उसने सहवास किया । केकड़े को पकड़ूँगा, सोच अपनी भाय्या तथा माता को ले, उस हाथी-समूह में पहुँच, पिता को देख कर कहा—तात ! मैं केकड़े को पकड़ूँगा । पिता ने कहा—तात ! नहीं (पकड़) सकेगा । उसे रोका । उसके फिर फिर आग्रह करने पर बोला—(अच्छा) तू ही जानेगा ।

उसने कुळीर-दह के पास जाकर वहाँ रहने वाले सभी हाथियों को इकट्ठा किया । (फिर) सब के साथ तालाब के समीप जाकर बोला—क्या वह केकड़ा तालाब में उतरते समय पकड़ता है, अथवा (बाहर) निकलते समय ?

“निकलते समय ।”

“तो तुम लोग कुळीर-दह में उतर कर, अच्छा भर चर कर, पहले निकलो । मैं पीछे चलूँगा ।”

हाथियों ने वैसा किया । केकड़े ने पीछे निकलते हुए बोधिसत्व को दोनों अड़ों^१ से इस प्रकार दड़ता से पकड़ा, जैसे लोहार महासन्डासी से लोह की छड़ को पकड़ता है । हथिनी बोधिसत्व को न छोड़कर समीप ही खड़ी रही । बोधिसत्व केकड़े को खींच कर (भी) नहीं हिला सका । (लेकिन) केकड़े ने उसे खींचकर अपने सामने कर लिया । मरने के भय से भय-भीत हो बोधिसत्व ने बँधे हुए (कैदी) की आवाज की । सब हाथी मरने के भय से कुञ्चनाद करके मल-मूत्र छोड़ते हुए भागे । उसकी हथिनी भी ठहरने में असमर्थ हो भागने लगी । तब उसने अपने बँधे होने की बात कह, उसे न भागने के लिए पहली गाथा कहीः—

सिङ्गीमिगो आयतचक्खुनेत्तो,
अट्टित्तत्तो, वारिसयो, अन्नोमो,

^१ अळ = अङ्ग । अगले हिस्से के दो अंगुल । अङ्ग शब्द भोजपुरी में अङ्ग भी बोला जाता है ।

तेनाभिभूतो कपथं रुदामि

माहेव मं पाणसमं जहेय्य ॥

[यह स्वर्यं वर्णं का जानवर है । विशाल आँखें हैं । हड्डी ही त्वचा है । जल में सोने वाला है । लोम-रहित है । ऐसे जानवर द्वारा पकड़ा जाकर दयनीय-अवस्था में रो रहा हूँ । (हे प्रिये) मुझ प्राण के समान (प्यारे) को मत छोड़ो ।]

तब रुक कर हथिनी ने उसे आश्वासन दे दूसरी गाथा कही :—

अय्य न तं जहिस्सामि कुञ्जर सट्ठिहायन,

पठय्या चातुरन्ताय, सुप्पियो होसि मे तुवं ॥

[आर्य्य ! साठ वर्ष के तुझ को (मैं) नहीं छोड़ूँगी । चार कोनोंवाली पृथ्वी में तुम ही मेरे प्रिय हो ।]

इस प्रकार उसे सहारा देकर बोली—आर्य्य ! इस केकड़े के साथ थोड़ी बात-चीत करके छुड़वाऊँगी । यह कह कर केकड़े से याचना करते हुए उसने तीसरी गाथा कही:—

ये कुळीरा समुहस्मि, गंगाय नम्मदाय च,

तेसं त्वं वारिजो सेट्ठो, मुञ्च रोदन्तिवा पतिं ॥

[समुद्र में, गंगा में, या नर्मदा में जितने केकड़े हैं उनमें तू श्रेष्ठ है । मुझ रोती हुई के पति को छोड़ दे ।]

केकड़े ने उसके स्त्री-शब्द में रस अनुभव कर, कम्पित मन वाला हो, हाथी के पैर से अड़ों को निकाल लिया । उसने यह नहीं समझा कि छोड़ देने पर वह हाथी ऐसा करेगा ।

हाथी पैर उठा उसकी पीठ पर चढ़ गया । तभी हड्डियाँ टूट गईं । हाथी ने संतोष-नाद किया । सब हाथियों ने इकट्ठे हो केकड़े को जमीन पर खींच ला, मर्दन कर, चूर्ण-विचूर्ण कर दिया । उसके दो अड़ शरीर से टूट कर एक ओर गिर पड़े । वह कुळीर-दह गंगा से सम्बंधित था । गंगा में पानी आने पर गङ्गा के पानी से भर जाता था । जब पानी मन्द पड़ता तो दह का पानी गङ्गा में चला जाता । वे दोनों अड़ आकर गङ्गा में बह गये । एक समुद्र में पहुँचा । एक को पानी में खेलते हुए दस-भाई राजाओं ने प्राप्त कर आणक नाम का मृदंग बनवाया । जो समुद्र में पहुँचा था उसे असुरों ने

लेकर आलम्बर नाम की मेरी बनवाई। दूसरे समय इन्द्र के साथ संग्राम करते हुए वे उस (मेरी) को छोड़ कर भाग गये। वह इन्द्र ने अपने लिए मँगवाई। आलम्बर मेघ के समान बजती है, इसी कारण उसे (ऐसा) कहते हैं।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय दोनों पति-पत्नी सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए।

तब हथिनी यह उपासिका थी। हाथी तो मैं ही था।

२६८. आरामदूसक जातक

“यो वे सन्वसमेतानं...” यह शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद में एक उद्यानपाल-पुत्र के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

वर्षा-वास के बाद जेतवन से निकल शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद में चारिका की। एक उपासक ने बुद्ध-प्रमुख संघ को निमन्त्रित कर उद्यान में बिठा, यवागु, खाजे से तृप्त करा कर कहा—आर्य्य ! उद्यान में घूमना हो तो इस उद्यान-पाल के साथ टहलें। ‘आर्यों को फल आदि देना’ कह माली को मेजा।

घूमते हुए भिक्षुओं ने एक वृक्ष-विहीन जगह को देख कर पूछा—यह स्थान वृक्ष-विहीन है, क्या कारण है ? माली ने उनसे कहा—माली के लड़के ने रोपे हुए पौदों को पानी से सींचते हुए ‘जड़ की लम्बाई के हिसाब से सींचूंगा’ सोच उखाड़ कर जड़ के हिसाब से पानी सींचा। इसलिए वह स्थान वृक्ष-विहीन हो गया है। भिक्षुओं ने शास्ता के पास जाकर वह बात

कही। शास्ता ने 'अभी ही नहीं पहले भी वह कुमार बाग नष्ट करने वाला (आरामदूसक) ही था' यह कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में विस्सेन के राज्य करते समय, उत्सव की घोषणा होने पर 'उत्सव में शामिल होऊँगा' सोच माली ने उद्यान में रहने वाले बन्दरों से कहा—यह बाग आप लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। मैं एक सप्ताह उत्सव मनाऊँगा। आप सात दिन तक रोपे हुए पौदों में पानी दें। उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। वह उन्हें मशकें देकर चला गया।

बन्दरों ने पानी सींचते हुए पौदों को सींचा। उनके मुखिया ने कहा—जरा सबर करो। पानी का हमेशा मिलना कठिन है। उसकी रक्षा करनी चाहिए। पौधों को उखाड़ कर, जड़ की लम्बाई जान, बड़ी जड़ में अधिक पानी, छोटी जड़ में थोड़ा पानी सींचना चाहिए। उन्होंने 'अच्छा' कहा। कुछ पौदों को उखाड़ते जाते थे, और कुछ उन्हें फिर गाड़ कर पानी देते जाते।

उस समय बोधिसत्व वाराणसी में किसी कुल का पुत्र था। वह किसी काम से उद्यान गया, तो उन बन्दरों को वैसा करते देख, पूछा—

“तुमसे ऐसा कौन कराता है?”

“मुखिया बन्दर।”

“मुखिया की ऐसी बुद्धि है तो तुम्हारी कैसी होगी?” इस बात को स्पष्ट करते हुए पहली गाथा कही:—

यो वे सम्बसमेतानं, अहुवा सेट्टसम्मतो,

तस्सायं एदिसी पब्बा, किमेव इतरा पजा ॥

[जो इन सब में श्रेष्ठ है, उसकी बुद्धि ऐसी है तो शेष की कैसी होगी?]

उसकी बात सुन कर बानरों ने दूसरी गाथा कही:—

एवमेव तुवं ब्रह्मे, अनब्बाय विनिन्दसि,

कथं मूखं अदिस्वान, क्वखं जब्बा पतिदित्तं ॥

[हे पुरुष ! तुम बिना जाने निन्दा कर रहे हो ! भला जड़ को बिना देखे कैसे जानें कि पौदा जम गया है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

नाहं तुम्हे विनिन्दामि, ये चञ्जे वानरा वने,
विस्ससेनोव गारब्धो यस्सत्था रुक्खरोपका ॥

[मैं आप लोगों की निन्दा नहीं कर रहा हूँ, और न उन दूसरे वानरों की निन्दा करता हूँ जो वन में हैं । विस्ससेन ही निन्दनीय है, जिसके लिए आप वृक्ष लगा रहे हैं]

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बिठाया । वानरों का मुखिया आरामदूसक कुमार था । पण्डित पुरुष तो मैं ही था ।

२६६. सुजाता जातक

“न हि वरणेन सम्पन्ना...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथपिण्डिक की पतोहू, धनञ्जय सेठ की लड़की, विशाखा की छोटी बहन, सुजाता के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

वह बड़ी शान के साथ अनाथपिण्डिक के घर को परिपूर्ण करती हुई प्रविष्ट हुई। ‘बड़े कुल की लड़की हूँ’ इस ख्याल के कारण वह मानिनी, क्रोधिनी, चण्ड और कठोर थी। सास, ससुर और स्वामी के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं पालती थी। घर के लोगों को डराती-पीटती रहती थी।

एक दिन शास्ता पाँचसौ भिक्षुओं के साथ अनाथपिण्डिक के घर जाकर बैठे ! महाश्रेष्ठी धर्म-(कथा) सुनता हुआ भगवान के पास बैठा था । उसी समय सुजाता दास-कमकरो के साथ भगड़ रही थी । शास्ता ने धर्म-कथा रोक कर पूछा—यह कैसा शब्द है ?

“भन्ते ! यह कुल-पतोड़ है, गौरव-रहित । सास, ससुर और स्वामी के प्रति इसका कोई कर्तव्य नहीं । न दान, न शील, अभद्रावान्, अप्रसन्न रहती है, दिन-रात कलह करती रहती है ।”

“तो बुलाओ ।”

वह आकर, बन्दना कर एक ओर खड़ी हुई । तब शास्ता ने उससे पूछा:—

“सुजाता ! पुरुष की सात प्रकार की भाय्या होती हैं, उन (सातों) में तू कौन सी है ?”

“भन्ते ! मैं संक्षेप में कही गई बात का अर्थ नहीं समझी, मुझे विस्तार पूर्वक कहें ।”

“तो कान लगा कर सुनो” कह कर शास्ता ने ये गाथाएँ कहीं:—

पदुद्विषा, अहितानुकम्पिनी,
अग्नेसुरता, अतिमज्जते पतिं ।
धनेन कीतस्स वधाय उत्सुका,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
वधका च भरिया ति च सा पवुच्चति ॥

[क्रोधी, अहित करने वाली, अनुकम्पारहित, दूसरे को चाहने वाली, और अपने पति की अवहेलना करने वाली, जो धन से खरीदे गये हैं (अर्थात् दास-दासी) उनको मारने के लिए उत्सुक; पुरुष की जो इस प्रकार की भाय्या है उसे “वधक” भाय्या कहते हैं ।]

अं इत्थिपा बिन्दति सामिको धनं
सिप्यं वयिज्जं च कसिं अधिदुहं
अप्यं पि तस्मा अपहादुमिच्छति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
चोरी च भरिया ति च सा पवुच्चति ॥

[स्त्री के लिए स्वामी जिस धन को कमाता है, चाहे शिल्प से, चाहे वाणिज्य से, या कृषी से; अगर वह उसमें से थोड़ा भी चुराने की इच्छा करती है तो वह “चोर” भाय्या कहलाती है ।]

अकम्भकामा, अलसा, महग्वसा
 कलसा च चयरी च दुरुतवादिनी
 उपद्रुयिकानं अभिभुय्य वत्तति,
 या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
 अग्या च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[काम न करने वाली, आलसी, ज्यादा खाने वाली, कठोर, चण्ड
 स्वभाव वाली, खराब बोलने वाली, सेवकों को दबा कर रखने वाली, जो इस
 प्रकार की स्त्री है उसे “आयर्या” भार्या कहते हैं ।]

या सम्बदा होति हितानुकम्पिनी
 माता व पुत्तं अनुरक्खते पतिं
 ततो धनं सम्मतमस्स रक्खति,
 या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
 माता व भरिया ति च सा पवुच्चति ॥

[सर्वदा हित और अनुकम्पा करने वाली, जैसे माता पुत्र की रक्षा
 करती है, वैसे ही जो पति की रक्षा करती है, उसके कमाए धन की रक्षा
 करती है, वह भार्या “माता” भार्या कहलाती है ।]

यथापि जेट्ठा भगिनी कनिट्ठा
 सगारवा होति सकम्हि सामिके
 हिरीमना भत्तुवसानुवत्तिनी,
 या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
 भगिणी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[जैसे छोटी बहन बड़ी बहन के प्रति गौरव सहित रहती है, उसी भाँति
 जो पति के प्रति गौरवशीला है, लज्जाशीला है, पति के वश में रहने वाली
 है, वह “भगिणी” भार्या कहलाती है ।]

या चिध विस्वान पतिं पमोदित्ता
 सखी सखारं व चिरस्स आगतं
 कोल्लेय्यका सीलवती पतिम्बता,
 या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
 सखी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[जो पति को देख कर इस प्रकार प्रसन्न होती है जैसे चिरकाल के बाद आए सखा को देख कर सखी । जो कुलीन, शीलवती तथा पतिव्रता है, वह “सखी” भार्या कहलाती है ।]

अकुट्टसन्ता, वधवणवज्जिता
अदुह्वचिता, पतिनोतिक्खति
अक्कोधना, भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
दासी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[क्रोध करने पर जो शान्त रहती है, मार और दण्ड से दब्य रहनेवाली होती है, अच्छे चित्त वाली होती है, पति की सहने वाली होती है, क्रोध नहीं करती, पति के वश में रहती है । इस प्रकार की जो भार्या है वह “दासी” भार्या कहलाती है ।]

सुजाता ! पुरुष की यह सात प्रकार की भार्या होती हैं । इनमें से “वधका” “चोर” और “आर्या” यह तीनों नरक में पैदा होती हैं । अन्य चार निम्नानरति-देवलोक में ।

या चिध भरिया वधका ति पुच्चति
चोरोति अरियाति च सा पवुच्चति,
दुस्सीलरूपा करुसा अनादरा
कायस्स भेदा निरयं वजन्ति ता ॥

[जो ये “वधक” “चोर” और “आर्या” दुःशील, कठोर, अनादर-युक्त भार्या हैं, वे मरने पर नरक जाती हैं ।]

या चिध माता भगिणी सखी च
दासी ति भरियाति च सा पवुच्चति,
सील्ले ठितत्ता, चिररत्तसंयुता
कायस्स भेदा सुगतिं वजन्ति ता ॥

[जो ये “माता” “भगिनी” “सखी” और “दासी” शील में स्थित, चिरकाल तक संयत रहने वाली भार्या हैं, वे मरने पर सुगति को प्राप्त होती हैं ।]

इस प्रकार शास्ता द्वारा इन सात प्रकार की भार्याओं का वर्णन किए जाते समय ही सुजाता स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गई । तब शास्ता ने पूछा—“इन सातों भार्याओं में से तू किस प्रकार की है ?”

“दासी समान” कह शास्ता की वन्दना कर उसने माफी माँगी ।

शास्ता ने यह-बधू सुजाता को एक ही उपदेश में शान्त किया । भोजन समाप्त कर, जेतवन जा, भिक्षु संघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जा चुकने पर वे गन्ध-कुटी में प्रविष्ट हुए । धर्म-सभा में भिक्षुओं ने शास्ता की गुण कथा की चर्चा चलाई—आवुसो ! शास्ता ने एक ही उपदेश में यह-बधू सुजाता को शान्त कर स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कराया ।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

“अमुक बात-चीत ।”

“भिक्षुओ ! अभी ही नहीं, पहले भी सुजाता को मैंने एक ही उपदेश में शान्त किया” कह पूर्व जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया । आयु प्राप्त होने पर तक्ष-शिला में शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करने लगा । उसकी माता क्रोधिनी, चण्ड, कठोर, कोसने वाली, परिहास करने वाली थी । उसने माँ को उपदेश देने की सोची । “बिना उदाहरण के समझाना उचित नहीं है” सोच वह उपदेश देने के लिए उदाहरण खोजता रहा ।

एक दिन उद्यान गया । माता भी पुत्र के साथ गई । मार्ग में एक मोरनी बोली । बोधिसत्व के अनुयाइयों ने उस शब्द को सुन कर कान ढक कर कहा—हे चण्डवादिनी ! कठोरवादिनी ! मत बोल । नाटक मण्डली से धिरे बोधिसत्व के माता के साथ उद्यान में विचरते समय पुष्पित शाल-वृक्ष में छिपी कोयल मधुर स्वर में बोली । जनता उसके स्वर से सन्तुष्ट हो, हाथ जोड़कर बोली—हे स्निग्ध बोलने वाली ! हे कोमल बोलनेवाली ! हे मृदुभाषिणी ! बोल, बोल । वह कान लगा कर देखती रही ।

बोधिसत्व ने उन दो बातों को देखकर सोचा—“अब माँ को समझा सकूँगा ।” उसने कहा—माँ ! मार्ग में मोरनी का शब्द सुन कर जनता ने “मत बोल, मत बोल” कह करान डक लिये । “कठोर वाणी किसी को प्रिय नहीं होती” कह ये गाथाएँ कहीं:—

नहि वण्येन सम्पन्ना, मञ्जुका, पियदस्सना,
खरवाचा पियाहोन्ति, अस्मिन्लोके परमिह च ॥

ननु पस्ससिमं काळिं, दुब्बण्णं, तिलकाहत्तं,
कोक्किलं सण्हभाणेन, बहुञ्च पाणिनं पियं ॥

तस्मा सखिल वाचस्स, मन्तभाणि अनुद्धतो,

अत्थं धम्मं च दीपेति, मधुरंतस्स भासितं ॥

[सुन्दर वर्ण वाला, कोमल और देखने में प्रिय लगने पर भी खर-वाणी बोलने वाला न इस लोक में प्रिय होता है न दूसरे में ।

क्या इस काली, दुर्वर्ण और तिल के दागों वाली कोयल को नहीं देखती है, जो स्निग्ध वाणी बोलने से बहुत प्राणियों को प्रिय है ?

इसलिए मधुरभाषी, कोमलभाषी, अनुद्धत भाषण करने वाला अर्थ और धर्म का प्रकाश करता है । उसका भाषण मधुर होता है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओं से माता को धर्मोपदेश दे उसे समझाया । तब से वह आचार-सम्पन्ना हुई ।

एक ही उपदेश से माता को शान्त कर बोधिसत्व परलोक सिधारे ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बिठाया । तब वाराणसी की राजमाता सुजाता थी । राजा तो मैं ही था ।

२७०. उल्लूक जातक

“सन्नेहि किर जातीहि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, कौवा-उल्लू के झगड़े के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

उस समय कौवे दिन में उल्लुओं को खाते थे। उल्लू सूर्यास्त के बाद इधर उधर सोने वाले कौवों के सिरों में ठोर मार मार कर जान निकाल देते थे। जेतवन के पास के विहार में रहने वाले एक भिज्जु को झाड़ू लगाते समय वृक्ष से गिरे हुए सात-आठ नाळि (के माप के) बहुत से कौवों के सिर बुहारने पड़ते थे। उसने वह बात भिज्जुओं से कही। भिज्जुओं ने धर्म-सभा में चर्चा चलाई—“आवुसो ! अमुक भिज्जु को वासस्थान पर रोज रोज इतने कौवों के सिर बुहारने पड़ते हैं।” शास्ता ने आकर पूछा—“भिज्जुओ ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?”

“अमुक बात-चीत” कह कर भिज्जुओं ने पूछा—“भन्ते ! कौवों और उल्लुओं का यह परस्पर का वैर किस समय से आरम्भ हुआ ?”

“प्रथम कल्प से” कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में प्रथम कल्प के लोगों ने इकट्ठे हो, एक सुन्दर, शोभा-शाली, आशासम्पन्न, सब प्रकार से परिपूर्ण पुरुष को लेकर राजा बनाया। चतुष्पदों ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। महासमुद्र में मछलियों ने आनन्द नाम की मछली को राजा बनाया। तब पक्षियों ने हिमालय प्रदेश में एक चट्टान पर इकट्ठे होकर विचार किया—मनुष्यों में राजा दिखाई देता है। वैसे ही चतुष्पदों और मछलियों में भी। हमारे बीच राजा नहीं है। अराजकता की अवस्था में रहना उचित नहीं जँचता। हमें भी राजा प्राप्त करना चाहिए। (किसी) एक को राजा के स्थान पर रखना है, ऐसा (आप लोग) जानें। उन्होंने उपयुक्त पक्षी की तजवीज करते हुए एक उल्लू को चुन कर कहा—“यह हमको अच्छा लगता है।”

एक पक्षी ने सब की सम्मति जानने के लिए तीन बार घोषणा की। उसकी दो बार की घोषणा को सुन, तीसरी बार सुनाने पर एक कौवे ने उठ कर कहा—जरा ठहरो, राज्याभिषेक के समय इसका ऐसा मुख है, क्रुद्ध होने पर कैसा होता होगा ? जब यह हमें क्रुद्ध होकर देखेगा तो हम तत्त तबे पर

रखे तिल के समान जहाँ तहाँ चिटक जायँगे । इसे राजा बनाना मुझे (तो) अच्छा नहीं लगता ।

ऊपर कही गई बात प्रगट करने के लिए पहली गाथा कही:—

सम्बेहि किर आतीहि, कोसियो इस्सरो कतो,

सचे आतीहनुआतो, भयोय्याहं एकवाचिकं ॥

[सब सम्बन्धियों द्वारा उल्लू को ईश्वर (राजा) बनाया गया । अगर भाई बन्द मुझे आज्ञा दें तो मुझे भी एक बात कहनी है ।]

उसे अनुज्ञा देते हुए पक्षियों ने दूसरी गाथा कही:—

भण सग्ग ! अनुआतो, अथं धम्मं च केवलं,

सन्ति ही बहरा पक्खी, पण्णवन्तो, ज़ुतिन्धरा ॥

[हे सौम्य ! तुझे आज्ञा है, केवल मतलब की बात कह, क्योंकि छोटे पक्षियों में भी प्रज्ञावान और शानी होते ही हैं ।]

उसने ऐसी अनुज्ञा पा तीसरी गाथा कही:—

न मे रुच्चति भद्दं वो उलूकस्साभिसेचनं,

अकुद्धस्स सुखं पस्स, कथं कुद्धो करिस्सति ॥

[हे भद्रो ! उल्लू का अभिषेक मुझे अच्छा नहीं लगता । अभी क्रुद्ध नहीं है तब इसका मुख देखिये, क्रुद्ध होने पर क्या करेगा ?]

वह ऐसा कह, “मुझे अच्छा नहीं लगता, मुझे अच्छा नहीं लगता” कहता हुआ आकाश में उड़ा । उल्लू ने भी उठकर उसका पीछा किया । तब से उन्होंने परस्पर वैर बाँधा । पक्षियों ने सुवर्ण हंस को राजा बना कर प्रस्थान किया ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेला बिठाया । राज्य पर अभिषिक्त हंस-पोतक मैं ही था ।

तीसरा परिच्छेद

३. अरण्य वर्ग

२७१. उदपानदूसक जातक

“आरब्धकस्स इसिनो...” यह शास्ता ने ऋषिपतन^१ में विहार करते समय जलाशय को दूषित करने वाले एक शृगाल के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

एक शृगाल भिन्दु संघ के (पानी) पीने के जलाशय को पेशाब-पाखाने से दूषित करके भाग गया। एक दिन उसके जलाशय के समीप आने पर श्रामणेरो ने उसे ढेलों से मार कर कष्ट पहुँचाया। तब से उसने उस स्थान को फिर लौटकर नहीं देखा। भिन्दुओं ने उस बात को जानकर धर्म-सभा में चर्चा चलाई—“आबुसो ! जलाशय को दूषित करने वाले शृगाल ने श्रामणेरो द्वारा कष्ट पाने के बाद से फिर लौट कर भी नहीं देखा।” शास्ता ने आकर पूछा—भिन्दुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

“अमुक बात-चीत।”

“भिन्दुओ ! अभी ही नहीं पहले भी यह जलाशय को दूषित करने वाला ही था” कह कर पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्वसमय में वाराणसी में यही ऋषिपतन, यही जलाशय था। उस समय बोधिसत्व कुलीन घर में पैदा हो, ऋषी-प्रब्रज्या ले, ऋषी-गण के साथ ऋषिपतन में वास कर रहे थे। तब यही शृगाल इसी जलाशय को दूषित करके भागा जाता था। तब उसे एक दिन तपस्वी घेर कर खड़े हो गये,

^१ ऋषिपतन—वर्तमान सारनाथ, बनारस से ७ मील दूर।

और किसी उपाय से पकड़ कर बोधिसत्व के पास ले गये । बोधिसत्व ने शृगाल के साथ बात करते हुए पहली गाथा कही:—

आरब्धकस्स इसिनो, चिरत्तपस्सिनो,

किञ्चा कसं उदपानं, कथं सम्म अवासयी ॥

[चिरकाल तक तप करने वाले, अरण्यवासी श्रुषियों द्वारा बड़ी मुश्किल से तैयार किया गया यह जलाशय हे सौम्य ! तू ने क्यों दूषित किया ?]

यह सुन शृगाल ने दूसरी गाथा कही:—

एस धम्मो सिगालानं, यम्पीत्वा ओहदामसे, ~

पितु पितामहं धम्मो, न नं उज्झातुमरहसि ॥

[यह शृगालों का धर्म है कि जिसे पीयें उसे दूषित करें । यह हमारे पिता-पितामह का धर्म है । यह क्रोध करने योग्य नहीं ।]

तब बोधिसत्व ने उसे तीसरी गाथा कही:—

येसं वो एविसो धम्मो, अधम्मो पन कीविसो,

मा वो धम्मं अधम्मं वा अइसाम कुदाचनं ॥

[जिनका तुम्हारा धर्म ऐसा है, उनका अधर्म कैसे होगा ? हम न कहीं तुम्हारा धर्म देखते हैं न अधर्म ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे उपदेश देकर कहा—फिर मत आना । तब से उसने फिर लौट कर भी नहीं देखा ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, जातक का मेल बिठाया । उस समय जलाशय को दूषित करने वाला यही शृगाल था । गण्य का शास्ता तो मैं ही था ।

२७२. व्यग्न जातक

“येन किञ्चेन संसगा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक भिन्नु के बारे में कही । कोकालिक-कथा तेरहवें परिच्छेद के तत्कारिय जातक^१ में आएगी ।

क. वर्तमान कथा

कोकालिक ने “सारिपुत्र, मौदगल्यायन को लेकर आऊँगा” सोच, कोकालिक राष्ट्र से जेतवन आकर शास्ता को नमस्कार कर, स्थविरों के पास जाकर कहा—आबुसो कोकालिक राष्ट्र वासी लोग आपको याद कर रहे हैं; आओ चलें ।

“आयुष्मान, तुम जाओ हम नहीं आएँगे ।”

स्थविरों के अस्वीकार करने पर वह स्वयं लौट गया । भिन्नुओं ने धर्म-सभा में चर्चा चलाई—आयुष्मानी ! कोकालिक सारिपुत्र और मौदगल्यायन के साथ भी नहीं रह सकता, (उनके) विना भी नहीं रह सकता । संयोग भी नहीं सहता, वियोग भी नहीं सहता । शास्ता ने आकर पूछा—“भिन्नुओ ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?”

“अमुक बात-चीत ।”

“भिन्नुओ ! अभी ही नहीं, पहले भी कोकालिक सारिपुत्र और मौदगल्यायन के साथ भी नहीं रह सकता था, (उनके) विना भी नहीं रह सकता था” कह पूर्व-जन्म की कथा कहो:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व एक अरण्य में वृक्ष-देवता होकर पैदा हुये । उसके विमान (वासस्थान) से थोड़ी ही दूर दूसरी बड़ी वनस्पति पर दूसरा वृक्ष-देवता रहता था । उस वन-

^१ तत्कारिय जातक (४८१)

खण्ड में सिंह और व्याघ्र रहते थे । उनके भय से वहाँ न कोई खेत करता था और न वृक्ष ही काटता था । ठहर कर उधर देख भी नहीं सकता था । वे सिंह और व्याघ्र भाँति-भाँति का शिकार मार कर खाते थे । अवशिष्ट वहीं छोड़कर चले जाते थे । इसलिए उस वन-खण्ड में मुर्दा की बदबू उठने लगी ।

तब दूसरे अन्ये, मूर्ख, कारण-अकारण को न जानने वाले वृक्ष-देवता ने एक दिन बोधिसत्व से कहा—मित्र ! इन सिंह-व्याघ्रों के कारण हमारा वनखण्ड मुर्दा की दुर्गन्ध से भर गया है, मैं इनको भगाऊँगा । बोधिसत्व ने कहा—मित्र ! इन दोनों के कारण हमारे घर सुरक्षित हैं । इनके भाग जाने से हमारे घर नष्ट हो जाएँगे । सिंह-व्याघ्रों का पद-चिन्ह न देखकर मनुष्य सारे वन को काटकर एक मैदान करके खेत बनाएँगे । तुम्हें ऐसा अच्छा न लगे । यह कह पहली दो गाथाएँ कहीं:—

येन मित्तेन संसग्गा, योगक्खेमो विहिंसति,
पुब्बेवज्जाभवन्तस्स, रक्ख्हे अक्खीव पण्डितो ॥
येन मित्तेन संग्गा, योगक्खेमो पवद्धति,
करेय्यत्तसमं बुत्तिं, सब्बकिच्चेसु पण्डितो ॥

[जिस मित्र के संसर्ग से कल्याण का नाश होता है, उसके द्वारा अभिभूत अपने यश आदि की आँख के समान रक्षा करे ।

जिस मित्र के संसर्ग से कल्याण की वृद्धि होती है, सब काय्यों में पण्डित आदमी उसके साथ अपने जैसा बर्ताव करे ।]

इस प्रकार बोधिसत्व द्वारा यथार्थ बात कही जाने पर भी उस मूर्ख देवता ने उसे न समझा, एक दिन भैरव-रूप दिखाकर उन सिंह-व्याघ्रों को भगा दिया । मनुष्यों ने उनके पद-चिन्ह को न देख, सिंह-व्याघ्र दूसरे वन चले गये, जानकर वन-खण्ड का एक भाग काट डाला । देवता ने बोधिसत्व के पास जाकर कहा—मित्र ! मैंने तुम्हारे वचन का (पालन) न कर उन्हें भगा दिया । अब उनके चले जाने की बात जानकर मनुष्य वन-खण्ड को काटते हैं । क्या करना चाहिए ?

“अब वे अमुक नाम के वन-खण्ड में रहते हैं; जाकर उन्हें ले आओ ।”

वहीं जाकर उनके सामने खड़े हो, हाथ जोड़ उसने तीसरी गाथा कही:—

एय व्यग्घा , निवत्तग्घा , पच्चमेथ महावनं ,

मा वनं छिन्दि निव्यग्घं , व्यग्घा मा हेसु निव्वना ॥

[आओ व्यग्घो ! लौट चलो, फिर महावन चलो, जिसमें व्याघ्र रहित वन को लोग न काटे, और व्याघ्र भी बिना वन के न रहें ।]

देवता के इस प्रकार याचना करने पर भी उन्होंने कहा—तुम जाओ हम नहीं आएँगे । उन्होंने अस्वीकार कर दिया । देवता अकेला वन-खण्ड लौटा । लोग भी कुछ ही दिनों में सारे वन को काट कर, खेत बनाकर कृषि-कर्म करने लगे ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया ।

उस समय का मूर्ख देवता कोकालिक था । सिंह सारिपुत्र था । व्याघ्र मौदगल्यायन । पण्डित देवता तो मैं ही था ।

२७३. कच्छप जातक

“को नु उद्धितभत्तोव...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोसल-राजा के दो महामंत्रियों की कलह-शान्ति के बारे में कही । वर्तमान-कथा दूसरे परिच्छेद में आही गई है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी-राष्ट्र में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, काम-भोग छोड़, ऋषिप्रब्रज्या ली । फिर हिमालय प्रदेश में गंगा के किनारे आश्रम बना, वहाँ अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-क्रीड़ा करते हुए रहने लगे । इस जातक में बोधिसत्व परम-मध्यस्थ थे ।

उपेक्षा पारमिता को पूर्ण किया था। जब वे अपनी पर्णशाला में बैठे रहते थे, उस समय एक प्रगल्भ दुःशील बन्दर आकर (उनके) कान के छिद्र में अपनी जननेन्द्रिय डालता था। बोधिसत्व (उसे) न रोक उपेक्षावान् हो बैठे ही रहते थे।

एक दिन एक कछुवा पानी से निकल, गङ्गा के किनारे मुँह फैलाकर धूप सेवन करता हुआ सो रहा था। उसे देख, उस चञ्चल बानर ने उसके मुख में जननेन्द्रिय डाली। तब उस कछुवे ने जागकर पेट में डाली जाती हुई की तरह जननेन्द्रिय को ढस लिया। तीव्र वेदना हुई। वेदना को रोकने में असमर्थ हो उसने सोचा—कौन मुझे इस दुःख से मुक्त करेगा ? किसके पास जाऊँ ? तपस्वी के अतिरिक्त दूसरा मुझे इस दुःख से मुक्त नहीं कर सकता। उसी के पास मुझे जाना चाहिए। तब कछुवे को दोनों हाथों से उठाकर बोधिसत्व के पास गया। बोधिसत्व ने उस दुःशील बानर का मखौल उड़ाते हुए पहली गाथा कही—

को नु उद्दिभत्तोव, पूरहत्थोव ब्राह्मणो,
कहन्नु भिक्खं अचरि कं सद्धं उपसङ्गमि ॥

[अधिक भोजन से भरे हुए हाथ वाला तू कौन ब्राह्मण है ? तूने कहाँ भिक्षा माँगी ? किस श्रद्धावान् के पास गया था ?]

यह सुन दुःशील बानर ने दूसरी गाथा कही:—

अहं कपिस्मि दुम्भेधो, अनामासानि आमसिं,
त्वं मं मोचय भद्दन्ते, मुत्तो गच्छेय्य पब्बतं ॥

[मैं दुर्बुद्धि बानर हूँ। स्पर्श न करने योग्य को मैंने स्पर्श किया। तुम मुझे छोड़ा दो। तुम्हारा भला हो। छूटते ही मैं पर्वत पर चला जाऊँगा।]

बोधिसत्व ने उसके प्रति कष्टा कर, कछुवे के साथ वार्तालाप करते हुए तीसरी गाथा कही—

“कच्छपा कस्सपा होमि, कोण्डम्मा होमि मक्कटा,
मुञ्च कस्सय कोण्डम्भं, कतं मेथुनकं तया ॥

[कछुवे काश्यप होते हैं और बानर कौण्डिन्य। हे काश्यप ! कौण्डिन्य ने तुम्हारे साथ (गोत्र का सादृश्य होने से) मैथुन किया। (अब) उसे छोड़ दो।]

बोब]

कछुवे ने बोधिसत्व का बचन सुन, उचित बात पर प्रसन्न हो, बानर की जननेन्द्रिय छोड़ दी। बानर मुक्त होते ही बोधिसत्व की बन्दना कर, भाग गया। फिर उस स्थान को लौट कर भी नहीं देखा। कछुवा भी बोधिसत्व की बन्दना कर यथास्थान गया। बोधिसत्व भी ध्यानी बना रह कर ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

उस समय कछुवा, बानर दां महामात्य थे। तपस्वी तो मैं ही था।

२७४. लोल जातक

“कायं बलाका सिखिनी...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक लोभी भिक्षु के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में लाए जाने पर उसे शास्ता ने कहा—भिक्षु! तू अभी ही लोभी नहीं है, पहले भी था। और लोभ के ही कारण मरा। उस कारण पुराने पण्डितों को भी अपने वासस्थान से बाहर होना पड़ा। यह कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वाराणसीसेठ के रसोइये ने पुण्य के लिए छुईका टांगा। उस समय बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा होकर वहाँ रहते थे। रसोई-घर के ऊपर से जाते हुए एक लोभी कौवे ने मछली-मांस के नाना प्रकार के पकवान देख, सद्गुण हो सोचा—

किसकी सहायता से मौका मिले ? इस प्रकार विचार करते हुए उसने बोधिसत्व को देख “इसकी मदद से हो सकता है” निश्चय कर, उसके चुगने के लिए जंगल जाते समय उसका पीड़ा किया ।

तब उससे बोधिसत्व ने कहा—हे कौवे ! मैं दूसरी जगह चुगने वाला हूँ, तुम दूसरी जगह चुगने वाले हो, तो मेरे पीछे पीछे क्यों आ रहे हो ?

“भन्ते ! तुम्हारी क्रिया मुझे अच्छी लगती है, मैं भी तुम्हारा साथी चुगने वाला होकर तुम्हारी सेवा करना चाहता हूँ ।”

बोधिसत्व ने स्वीकार किया । उसके साथ साथ चुगते हुए, अकेले चुगते हुए की तरह (वहाँ) से खिसक, उसने गोबर के ढेर को छितरा, कीड़े-मकोड़ों को खा, पेट भर, बोधिसत्व के पास जाकर कहा—तुम अभी तक चुग ही रहे हो ? क्या भोजन का प्रमाण नहीं जानना चाहिए ? आओ अतिसन्ध्या होने के पहले ही चलें ।

बोधिसत्व उसके साथ निवास स्थान गये । रसोइये ने “हमारा कबूतर साथी लेकर आया है” सोच कौवे के लिए भी एक छींका टांगा । कौवा चार पाँच दिन उसी ढंग से रहा । एक दिन सेठ के लिए बहुत सा मछली माँस लाया गया था । कौवा यह देख, लोभ से अभिभूत हो, प्रातः से ही करा-हते हुए लेटा ।

सबेरे बोधिसत्व ने कहा—“सौम्य ! आ चुगने चलें ।”

“तुम जाओ, मुझे अजीर्ण की शंका है ।”

“सौम्य ! कौवों को अजीर्ण नहीं होता । तुम्हारे द्वारा ग्रहण किये जाने पर दीपक की बत्ती तुम्हारे पेट में थोड़ी ही देर टहरती है । शेष मुँह में ढालते ही पच जाता है । मेरा वचन मानो, इस माँस-मछली को देखकर ऐसा मत करो ।”

“स्वामी ! आप ऐसा क्या कहते हैं ? मुझे अजीर्ण ही हुआ है ।”

“तो अप्रमादी होकर रहो” कह कर बोधिसत्व चले गये ।

रसोइया मछली-माँस के नाना पकवान बना कर, शरीर से पसीना पोंछता हुआ रसोई घर के दरवाजे पर खड़ा हुआ । कौवा “यही माँस खाने का समय है” सोच जाकर रस की कटोरी के सिरे पर बैठा । रसोइये ने “किंकि” शब्द सुन, लौट कर कौवे को देखा । अन्दर जाकर उसे पकड़, सारे शरीर

को नोच, सिर में चूख छोड़कर, अदरक-जीरा आदि पीस, मठा मिलाकर “तू हमारे सेठ के मछली-मांस को जूठा करता है” कह, सारे शरीर में मल कर, कौवे को छींकें में डाल दिया । तीव्र वेदना हुई । बोधिसत्व ने चुगने की भूमि से आ, उसे कराहते हुए देखकर, मसखरी करते हुए पहली गाथा कही—

कायं बलाका सिखिनी, चोरी खड्घी पितामहा,
ओरं बलाके आगच्छ, चण्डो मे वायसो सखा ॥

[जिसका पितामह बादल^१ है, चोर, शिखावाला, यह बगुला कौन है ? हे बगुले इधर आ, (क्योंकि) मेरा मित्र कौवा चण्ड है ।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही—

नाहं बलाका सिखिनी, अहं लोलोस्मि वायसो,
अकत्वा वचनं तुम्हं, पस्स लूनोस्मि आगतो ॥

[मैं बगुला नहीं हूँ, मैं लोभी कौवा हूँ । देखो, तुम्हारे वचन को न मानने के कारण नोच डाला गया हूँ ।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

पुनपापज्जसि सम्म, सीखं ही तव ताविसं,
नहि मानुसका भोगा, सुभुजा होन्ति पक्खिना ॥

[हे सौम्य ! तू फिर उसी दण्ड को प्राप्त होगा । तुम्हारा स्वभाव ही वैसा है । मनुष्यों के भोग पक्षियों के लिए नहीं होते ।]

ऐसा कह बोधिसत्व “अब मैं यहाँ नहीं रह सकता” सोच, उड़ कर दूसरी जगह चले गये । कौवा भी कराहता हुआ वहीं मर गया ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्य-प्रकाशन के समय लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय का लोभी कौवा लोभी भिक्षु था । कबूतर तो मैं ही था ।

^१ बादल की कबूक से बगुली गर्भ धारण करती है ।

२७५. रुचिर जातक

“कायं बलाका रुचिरा” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ पहली (कथाओं) के ही समान हैं, और गाथा भी।

कायं बलाका रुचिरा, काकानीळस्मि अण्डति;

चण्डो काको सखा मग्गं तस्स घेतं कुलावकं ॥

कौवे के घोंसले में यह कौन सुन्दर बगुला पड़ा है ? मेरा मित्र कौवा चण्ड है। यह उसका घोंसला है।]

ननु मं सम्म ! जानासि, दिज सामाकभोजन,

अकत्वा वचनं तुय्हं, पस्स लूनोस्मि आगतो ॥

[हे द्विज ! हे तृण-बीज भक्षी ! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो ? तुम्हारे वचन को न मानने से ही आकर देखो मैं नोच डाला गया हूँ।]

पुनपापज्जसि सम्म ! सोळं ही तव तादिसं,

नहि मानुसका भोगा, सुमुञ्जा होन्ति पक्खिना ॥

[हे सौम्य ! तू फिर उसी दरुड को प्राप्त होगा। तुम्हारा स्वभाव ही वैसा है। मनुष्यों के भोग पक्षियों के लिए नहीं होते।]

यहाँ भी बोधिसत्व “अब मैं यहाँ नहीं रह सकता” सोच उड़कर दूसरी जगह चले गये।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ।

लोभी भिक्षु कौवा था। कबूतर तो मैं ही था।

२७६. कुरुधम्म जातक

“तव सद्धं च सीलं च . . .” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय एक हंस की हत्या करने वाले भिन्नु के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती वासी दो मित्र, भिन्नु हो, उपसम्पदा प्राप्त कर, प्रायः एक साथ रहते थे। एक दिन अचिरवती (नदी) पर जा, स्नान कर, वे किनारे के बालू पर धूप लेते हुए कुशल-त्वेम पूछ रहे थे। उसी समय दो हंस आकाश मार्ग से जा रहे थे। उनमें से छोटे भिन्नु ने कंकड़ उठाकर कहा—इस हंस-वच्चे की आँख में मारता हूँ।

“नहीं सकेगा।”

“इस तरफ की बात रहने दो, दूसरी तरफ की आँख में मारूँगा।”

“यह तो नहीं हो सकेगा।”

“तो सब करो” कह तिकोना कंकड़ ले, उसने हंस के पीछे फेंका। हंस ने कंकड़ का शब्द सुन, मुड़कर देखा। तब दूसरा गोल कंकड़ ले, दूसरी तरफ की आँख में मारकर इधर वाली आँख से निकाल दिया। हंस चिल्लाता हुआ पलट कर उनके पैर में ही आ गिरा। वहाँ आस-पास खड़े भिन्नुओं ने देख, आकर कहा—आयुष्मान् ! बुद्ध के शासन में प्रव्रजित होकर यह जो तुमने प्राणी की हिंसा की, सो अनुचित किया। उसे लेकर तथागत को दिखाया। शास्ता ने पूछा—सच्चमुच ! भिन्नु तुमने जीव-हत्या की ?

“सच्चमुच भन्ते !”

“भिन्नु ! ऐसे कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर तुमने कैसे ऐसा किया ? पुराने पण्डितों ने बुद्ध के पैदा होने के पहले स्त्री सहित घर में रहते समय अल्प-मात्र अनुचित कर्मों के करने में भी हिचकिचाहट की। (और) तूने इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित होकर जरा भी हिचकिटाहट नहीं की। क्या भिन्नुओं को शरीर, वचन और मन से संयत नहीं होना चाहिए ?” ऐसा कह, पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कुरु राष्ट्र में इन्द्र-प्रस्थ नगर में धनञ्जय के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया । क्रमशः बड़े हो तक्षशिला में जाकर शिल्प सीखे । पिता ने उपराज बनाया । आगे चलकर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर, दसराज-धर्मों के अनुकूल चलते हुये कुरु-धर्मानुसार आचरण किया । कुरुधर्म कहते हैं पाँच शीलों को । बोधिसत्व ने उनका पवित्रता से पालन किया । जिस प्रकार बोधिसत्व ने उसी प्रकार उसकी माता, पटरानी, छोटे भाई उपराजा, ब्राह्मण पुरोहित, रज्जुग्रहण करने वाला अमात्य, सारथी, सेठ, द्रोणमापक महामात्य, द्वारपाल तथा नगर की शोभा वैश्या ने भी पालन किया । इस प्रकार उन्होंने—

राजा माता महेशी च उपराजा पुरोहितो,
रज्जुको सारथी सेठी दाथो दावरिको तथा;
गणिका तंकादस जना कुरुधर्मे पतिष्ठिता ॥

[राजा, माता, पटरानी, उपराजा, पुरोहित, रज्जुग्रहण करने वाला, सारथी, सेठ, द्रोणमापक, द्वारपाल और वैश्या—ये ग्यारह जन कुरुधर्म में प्रीतिष्ठत रहे ।]

इन सब ने पवित्रता से पाँच शीलों का पालन किया । राजा ने नगर के चारों द्वारों पर, नगर के बीच में और निवास (-गृह) के द्वार पर छः दान-शालायें बनवा प्रति दिन छः लाख धन का त्याग करते हुये सारे जम्बुद्वीप को उन्नादित कर दान दिया । उसकी दानशीलता सारे जम्बुद्वीप में प्रसिद्ध हो गयी ।

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कालिङ्ग राजा राज्य करता था । उसके राष्ट्र में वर्षा न हुई । वर्षा के न होने से सारे राष्ट्र में अकाल पड़ गया । भोजन का कष्ट और बीमारी फैल गई । दुर्वृष्टि-भय, अकाल-भय और रोग-भय यह तीनों भय फैल गये । मनुष्य अकिंचन हो बच्चों को हाथों पर ले जहाँ तहाँ घूमते थे । सारे राष्ट्र के निवासियों ने इकट्ठे हो दन्तपुर पहुँच राजद्वार पर शोर मचाया ।

राजा ने खिड़की के पास खड़े हो शोर सुनकर पूछा:—यह क्यों चिल्लाते हैं ?

“महाराज, सारे राष्ट्र में तीन भय उत्पन्न हो गये हैं—वर्षा नहीं होती, खेत नष्ट हो गये हैं, अकाल पड़ गया है, मनुष्य खराब भोजन मिलने से रोगी हो गये हैं और सब कुछ छोड़ केवल पुत्रों को हाथों पर उठाये घूमते हैं । महाराज ! वर्षा बरसायें ।”

“पुराने राजा वर्षा न होने पर क्या करते थे ?”

“पुराने राजा महाराज ! वर्षा न होने पर दान दे, उपोसथ (व्रत) रख, शील ले, शयनागार में प्रविष्ट हो, एक सप्ताह तक दूब के बिल्लौने पर लेटे रहते थे । तब वर्षा होती थी ।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह वैसा किया । ऐसा करने पर भी वर्षा नहीं हुई ।

राजा ने अमात्यों से पूछा—“मैं ने अपना कर्तव्य किया । वर्षा नहीं हुई । क्या करूँ ?”

“महाराज इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय नामक कुरु-नरेश का अब्जन वसभ नाम का मङ्गल-हाथी है । उसे लायें । उसके लाने से वर्षा होगी ।”

“वह राजा सेना तथा बाहन से युक्त है, दुर्जय है । उसका हाथी कैसे लायेंगे ?”

“महाराज, उसके साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है । राजा दानी है, दान-शील है । मांगने पर अलंकृत शीस भी काट कर दे सकता है । सुन्दर आँखें भी निकाल कर दे सकता है । सारा राज्य भी त्याग सकता है । हाथी का तो कहना ही क्या ! मांगने पर अवश्य ही दे देगा ।”

“उससे कौन मांग सकते हैं ?”

“महाराज, ब्राह्मण ।”

राजा ने ब्राह्मण-ग्राम से आठ ब्राह्मणों को बुला, सत्कार-सम्मान करके हाथी मांगने के लिए भेजा ।

उन्होंने खर्चा लिया और राही का मेस बना चल दिये । सभी जगह एक ही रात ठहरते हुये, जल्दी जल्दी जा, कुछ दिन नगर-द्वार पर दान-शालाओं में भोजन कर, थकावट उतार पूछा—

“राजा दान-शाला में कब आता है ?”

आदमियों ने उत्तर दिया—पक्ष में तीन दिन—चतुर्दशी को, पूर्णिमा को तथा अष्टमी को आता है। कल पूर्णिमा है। इसलिये कल भी आयेगा। ब्राह्मण अगले दिन प्रातः काल ही जाकर पूर्व-द्वार पर खड़े हो गये।

बोधिसत्व भी प्रातः काल ही स्नान कर, (चन्दन आदि का) लेपकर, सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, सजे हुये श्रेष्ठ हाथी के कन्धे पर चढ़, बहुत से अनुयाइयों के साथ पूर्व-द्वार की दान शाला में पहुँचा। वहाँ उतर, सात आठ जनों को अपने हाथ से भोजन दे, ‘इसी तरह से दो’ कह, हाथी पर चढ़, दक्षिण द्वार को चला गया। ब्राह्मणों को पूर्व-द्वार पर सिपाहियों की अधिकता के कारण मौका न मिला। वे दक्षिण-द्वार पहुँच, राजा को आते देख, द्वार से थोड़ी ही दूर एक ऊँचे स्थान पर खड़े हुये। जब राजा पास आया तो उन्होंने ने हाथ उठाकर राजा की जयजयकार बुलाई। राजा ने वज्र-अंकुश से हाथी को रोक उन के पास पहुँच पूछा—ब्राह्मणो, क्या चाहते हो? ब्राह्मणों ने बोधिसत्व का, गुणानुवाद करते हुये पहली गाथा कही:—

तव सद्गच्छ शीलञ्च विदित्वान जनाधिप,
वर्ण्यं अञ्जनवर्णेन कलिङ्गरिमं निमिम्हसे ॥

[हे जनाधिप। तेरी श्रद्धा और शील को जानकर हम कलिङ्ग-देश में अञ्जन वर्ण नाग का सोने से विनिमय करें।]

भावार्थ है—हे जनाधिप! हम तेरा शील और श्रद्धा जान यह सोच कर यहाँ आये हैं कि इस प्रकार का श्रद्धावान् तथा शीलवान् राजा मांगने पर अञ्जनवर्ण हाथी को दे देगा। फिर हम उस तेरे हाथी को अपने हाथी की तरह कलिङ्ग राजा के पास ले जायेंगे और उसका बहुत धन धान्य से विनिमय करेंगे तथा उस धन-धान्य को पेट में ढालेंगे। इस प्रकार सोच कर हे देव! हम यहाँ आये हैं। अब जो करना है सो हे देव! आप जानें।

दूसरा अर्थ:—आपका श्रद्धा-शील वर्ण है, गुण है—मांगने पर पशु का तो क्या कहना, राजा जीवन भी दे दे—सुन कर कलिङ्ग-राज के पास यह अञ्जन वर्ण नाग ले जाकर धन से विनिमय करेंगे, सोच यहाँ आये हैं।

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा—हे ब्राह्मणो, यदि इस नाग का विनिमय कर धन का भोग किया तो वह सुभोग है। मत सोच करो। मैं जैसा

अलंकृत नाग है वैसा ही दूँगा । इस प्रकार आरवासित कर शेष दो गाथायें कहीं :—

अन्नमन्त्रा च भन्त्रा च योध उद्दिस्स गच्छति,
सम्बे ते अप्पटिक्खिप्पा पुम्माच्चरियवचो इयं ॥

[अन्न-भृत्य तथा भृत्य कोई भी हो जो भी (माँगने के) उद्देश से जाते हैं, वे सभी इनकार न करने योग्य हैं । यह (हमारे) पूर्व आचार्यों का वचन है ।]

वदामि वो ब्राह्मणा नागमेतं
राजारहं राजभोमां यसस्सिनं,
अलङ्कृतं हेमजालाभिजुषं
ससारथिं गच्छथ येन कामं ॥

[हे ब्राह्मणों, मैं तुम्हें यह राजाओं के योग्य, राज-परिभोग्य, यशस्वी, अलंकृत तथा स्वर्ण जाली से ढका हुआ हाथी देता हूँ । इसका सारथी भी इसके साथ है । जहाँ चाहो (ले) जाओ ।]

इस प्रकार हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे बोधिसत्व ने वाणी से दान दे दिया । फिर नीचे उतर कर 'यदि कहीं हाथी अनलंकृत रह गया हो तो उस स्थान को भी अलंकृत करके दूँगा' सोच तीन बार हाथी की प्रदक्षिणा करके देखा । अनलंकृत स्थान नहीं दिखाई दिया । तब उसने हाथी की सूँड को ब्राह्मणों के हाथ में दे, स्वर्ण की झारी से सुगन्धित जल गिरा, हाथी दे दिया । ब्राह्मणों ने अनुयाइयों सहित हाथी को स्वीकार कर, हाथी की पीठ पर बैठ, दन्तपुर-नगर पहुँच, हाथी राजा को दिया । हाथी के आने पर भी वर्षा नहीं हुई । राजा ने पूछा—अब क्या कारण है ?

“कुरु-राज धनञ्जय कुरु-धर्म पालता है । इसलिये उसके राष्ट्र में पन्द्रहवें दिन, दसवें दिन वर्षा होती है । यह राजा के ही गुणों का प्रताप है । इस पशु में गुण होने पर भी आखिर कितने गुण हो सकते हैं ?”

“तो अनुयाइयों सहित इस सजे सजाये हाथी को वापिस ले जाकर राजा को दो; वह जिस कुरुधर्म का पालन करता है, वह सोने की तख्ती पर लिखवा कर लाओ” कह ब्राह्मणों और अमात्यों को मेजा । उन्होंने जाकर राजा को हाथी सौंप कर निवेदन किया—देव ! इस हाथी के जाने पर भी

हमारे देश में वर्षा नहीं हुई। आप कुरुधर्म का पालन करते हैं। हमारा राजा भी कुरुधर्म का पालन करना चाहता है। उसने हमें भेजा है कि इस सोने की तख्ती पर कुरुधर्म लिखवा कर ले आओ। हमें कुरुधर्म दें।

“तात ! मैंने सचमुच कुरुधर्म का पालन किया है। लेकिन अब मेरे मन में उसके बारे में अनुताप है। इस समय कुरुधर्म मेरे चित्त को प्रसन्नता नहीं देता है। इस लिये तुम्हें नहीं दे सकता हूँ।”

राजा का शील उसके चित्त को प्रसन्नता क्यों नहीं देता था ? उस समय प्रति तीसरे वर्ष कार्तिकमास में कार्तिकोत्सव नाम का उत्सव होता था। उस उत्सव को मनाते हुये राजागण सब अलङ्कारों से सज, देवताओं का भेस बना, चित्र-राज नामक यज्ञ के पास खड़े हो, चारों ओर फूलों से सजे हुये चित्रित-वाण फेंकते थे। इस राजा ने भी वह उत्सव मनाते समय एक तालाब के किनारे के चित्रराज के पास खड़े होकर चारों ओर चित्रित वाण फेंके। शेष तीन ओर फेंके वाण दिखाई दिये। तालाब के तल पर फेंका वाण न दिखाई दिया। राजा के मन में अनुताप हुआ कि कहीं मेरा फेंका वाण मछली के शरीर में तो नहीं चला गया ? प्राणी की हिंसा होने से शील-भेद हो गया। इसलिये शील (मन को) प्रसन्न नहीं करना था।

उसने कहा—तात ! मुझे कुरुधर्म के बारे में अनुताप है। लेकिन मेरी माता ने उसे अच्छी तरह पालन किया है। उससे ग्रहण करो।

“महाराज ! मैं जीवहिंसा करूँगा, यह आपकी चेतना नहीं थी। बिना चित्त के जीवहिंसा नहीं होती। आपने जिस कुरुधर्म का पालन किया है, वह हमें दें।”

“तो लिखो” कह सोने की तख्ती पर लिखवाया—जीवहिंसा नहीं करनी चाहिये। चोरी नहीं करनी चाहिये। कामभोग सम्बन्धी मिथ्या-चार नहीं करना चाहिये। भूठ नहीं बोलना चाहिये। मद्यपान नहीं करना चाहिये।

लिखा कर भी कहा कि ऐसा होने पर भी मेरा चित्त संतुष्ट नहीं है, मेरी माता के पास से ग्रहण करो। दूतों ने राजा को प्रणाम कर उनकी माता के पास जाकर कहा—देवी ! आप कुरुधर्म की रक्षा करती हैं। उसका उपदेश हमें दें।

“तात ! मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करती हूँ; लेकिन अब मेरे मन में उसके बारे में अनुताप है। मुझे वह धर्म प्रसन्न नहीं करता, इस लिए तुम्हें नहीं दे सकती।”

उसके दां पुत्र थे, ज्येष्ठ पुत्र राजा था, कनिष्ठ उपराजा। एक राजा ने बांधिसत्व के पास लाख के मूल्य का चन्दनसार और हजार के मूल्य की सोने की माला भेजी। उसने ‘माता की पूजा करूँगा’ सोच वह सब माता को दे दी। माँ ने सोचा, न मैं चन्दन का लेप करती हूँ, न माला पहनती हूँ; मैं ये अपनी पताँहू को दूँगी। फिर उसे खयाल हुआ कि उसकी ज्येष्ठ-पताँहू ऐश्वर्यवान् है, पटरानी है, इसलिए उसे सोने की माला देगी और कनिष्ठ पताँहू दरिद्र है, इसलिये उसे चन्दनसार देगी। उसने राजा की रानी को सोने की माला दे उपराज की भार्या को चन्दनसार दिया। लेकिन दे चुकने पर उसे खयाल आया—मैं तो कुरुधर्म का पालन करनेवाली हूँ। इन दोनों में कौन दरिद्र है, कौन अदरिद्र, इससे मुझे क्या ? मुझे तो जो बड़ी हाँ उसी का अधिक आदर करना याँग्य है। कहीं उसके न करने के कारण मेरा शील भंग तो नहीं हो गया ? उसके मन में इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हुआ। इसलिये ऐसा कहा।

दूतों ने उत्तर दिया—अपनी वस्तु यथारुचि दी जाती है। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो, तो तुमसे दूसरा क्या पाप-कर्म हो सकता है ? शील इस तरह भंग नहीं हाँता। हमें कुरु-धर्म दे। उस से भी कुरुधर्म ले सोने की तख्ती पर लिखा।

“तात ! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। मेरी पतोहू कुरु-धर्म का पालन अच्छी तरह करती है। उससे कुरुधर्म ग्रहण करें।”

उन्होंने पटरानी के पास जा, पूर्वोक्त दंग से कुरुधर्म की याचना की। उसने भी पूर्वोक्त ही की तरह कहा—अब मेरा शील मुझे प्रसन्न नहीं करता। इसलिये नहीं दे सकती।

उसने एक दिन भरोखे में बैठे-बैठे राजा के नगर की प्रदक्षिणा करते समय हाथी की पीठ पर उसके पीछे बैठे हुए उपराज को देख लोभायमान हो सोचा—यदि मैं इसके साथ सहवास करूँ तो भाई के मरने पर राज्य पर प्रतिष्ठित हो यह मेरी खातिर करेगा। तब उसे ध्यान आया—

मैंने कुरुधर्म का पालन करने वाली होकर स्वामी के रहते, दूसरे पुरुष की ओर बुरी दृष्टि से देखा। मेरा शील भंग हो गया होगा। उसके मन में यह सन्देह पैदा हुआ। इसीलिये उसने ऐसा कहा।

दूतों ने उत्तर दिया—आर्य्ये ! चित्त में ख्याल आने मात्र से दुराचार नहीं होता। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो तो तुमसे उल्लंघन कैसे हो सकता है ? इतने से शील भंग नहीं होता। हमें कुरुधर्म दें।

उससे भी कुरुधर्म ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

“तात ! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। उपराज अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।”

उन्होंने उपराज के पास जा पूर्वोक्त प्रकार ही कुरुधर्म की याचना की।

वह सन्ध्या समय राजा की सेवा में जाता हुआ, रथ पर ही बैठा, राजाङ्गन में पहुँच, यदि राजा के पास खाकर वहीं सोरहना चाहता तो रस्सी और चाबुक को धुरी के अंदर रख देता था। उस इशारे से आदमी लौट कर अगले दिन प्रातःकाल ही उसके बाहर निकलने की प्रतिज्ञा करते हुए खड़े रहते। यदि उसी समय लौटने की इच्छा होती तो रस्सी और चाबुक को रथ में ही छोड़ कर राजा से भेंट करने जाता। आदमी उससे यह समझ कर कि अभी लौटेगा राजद्वार पर ही खड़े रहते। वह एक दिन ऐसा करके राजमहल में गया। उसके जाते ही वर्षा होने लगी। राजा ने ‘वर्षा हो रही है’ कह उसे लौटने नहीं दिया। वह वहीं खाकर सो गया। लोग ‘अब निकलेगा’ सोच प्रतीक्षा करते हुए सारी रात भीगते खड़े रहे। उपराज ने दूसरे दिन निकल जब लोगों को भीगे खड़े देखा तो वह सोचने लगा—मैं तो कुरुधर्म का पालन करता हूँ और मैंने इतने लोगों को कष्ट दिया। मेरा शील भंग हो गया होगा। इसी सन्देह के कारण उसने दूतों को कहा—मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करता हूँ। लेकिन इस समय मेरे मन में सन्देह पैदा हो गया है। इसलिये मैं कुरुधर्म (का उपदेश) नहीं दे सकता।

“देव ! इन लोगों को कष्ट हो, यह तुम्हारी मंसा नहीं रही है। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। इतनी सी बात में भी जब आप सन्देह करते हैं, तो आपसे उल्लंघन कैसे हो सकता है ?”

दूतों ने उस से भी शील ग्रहण कर उन्हें सोने की पट्टी पर लिख लिया ।
“ऐसा होने पर भी मेरा चित प्रसन्न नहीं है । पुरोहित अच्छी तरह पालन करता है । उससे ग्रहण करें ।”

उन्होंने पुरोहित से जाकर याचना की । वह भी एक दिन राजा की सेवा में जा रहा था । उसने रास्ते में देखा कि एक राजा ने उसके राजा के पास मध्याह्न सूर्य की तरह लाल वर्ण का रथ भेजा है । “यह रथ किस का है ?” पूछने पर उत्तर मिला, “राजा के लिये लाया गया है ।” पुरोहित के मन में विचार पैदा हुआ—मैं बूढ़ा हूँ । यदि राजा यह रथ मुझे दे दे तो मैं इस पर चढ़ कर सुखपूर्वक घूमूँ । यह सोच, वह राजा की सेवा में पहुँचा । उसके राजा की जय बुला कर खड़े होने के समय वह रथ राजा के सामने लाया गया । राजा ने देख कर कहा—यह रथ बहुत सुन्दर है । इसे आचार्य्य को दे दो । पुरोहित ने लेना स्वीकार नहीं किया । बार बार कहने पर भी अस्वीकार ही किया । ऐसा क्यों हुआ ? वह सोचने लगा—मैं कुरुधर्म का पालन करने वाला हूँ । मैंने दूसरे की वस्तु के प्रति लोभ पैदा किया । मेरा शील भंग हो गया होगा । उसने यह बात सुना कर कहा—तात ! कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है । मेरा मन उससे प्रसन्न नहीं है । इसलिये मैं नहीं दे सकता हूँ ।

“आचार्य्य ! केवल (मन में) लोभ उत्पन्न होने मात्र से शील भंग नहीं होता । आप इतनी सी बात में भी सन्देह करते हैं । आपसे क्या उल्लंघन हो सकेगा ?”

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये ।
“ऐसा होने पर भी मेरा चित प्रसन्न नहीं है । रस्ती पकड़ने वाला अमात्य अच्छी तरह पालन करता है । उससे ग्रहण करें ।”

उसके पास भी पहुँच याचना की । वह भी एक दिन जनपद में खेत की गिनती कर रहा था । डण्डे में बैँधी हुई रस्ती का एक सिरा खेत के मालिक के पास था, एक उसके पास । जिस सिरों को उसने पकड़ रखा था उस सिरों की रस्ती से बैँधा हुआ डंडा एक केकड़े के बिल पर आ पहुँचा । वह सोचने लगा—यदि डंडे को बिल में उतारूँगा, तो बिल के अन्दर का केकड़ा मर जायगा । यदि डंडे को आगे को सरका दूँगा तो राजा का हक

मारा जायगा । यदि पीछे की ओर करूँगा तो गृहस्थ का हक मारा जायगा । क्या किया जाय ? तब उसे सूझा—यदि बिल में केकड़ा होगा तो प्रकट होगा । डंडे को बिल में ही उतारूँगा । उसने डंडा बिल में उतार दिया । केकड़े ने ‘किरी’ आवाज की । तब उसे चिन्ता हुई—डंडा केकड़े की पीठ में घुस गया होगा और केकड़ा मर गया होगा । मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ । मेरा शील भंग हो गया होगा । उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है । इसलिये तुम्हें नहीं दे सकता हूँ ।

“आपकी यह मंसा नहीं थी कि केकड़ा मरे । बिना इरादे का कर्म नहीं होता । इतनी बात में भी आप सन्देह करते हैं । आपसे कैसे उल्लंघन हो सकता है ?”

दूतों ने उसमें भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये ।

“ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है । सारथी अच्छी तरह रक्षा करता है । उससे भी ग्रहण करें ।”

उन्होंने उसके पास भी पहुँच याचना की । वह एक दिन राजा को रथ से उद्यान ले गया । राजा वहाँ दिन भर क्रीड़ा कर शाम को निकल कर रथ पर चढ़ा । नगर में पहुँचने से पहले ही सूर्यास्त के समय बादल घिर आये । सारथी ने राजा के भीगने के डर से घोड़ों को चाबुक दिखाया । सिन्धव घोड़े तेज़ी से दौड़े । तब से घोड़े उद्यान जाते और लौटते समय भी उस स्थान पर पहुँच, तेज़ी से दौड़ने लगते । क्यों ? उनको खयाल हो गया कि इस स्थान पर खतरा होगा, इसीलिये सारथी ने हमें इस स्थान पर चाबुक दिखाया था । सारथी को भी चिन्ता हुई—राजा के भीगने वा न भीगने से मुझ पर दोष नहीं आता । लेकिन मैंने सुशिक्षित सिन्धव घोड़ों को चाबुक दिखाने की गलती की । इसलिये अब यह आते-जाते भागने का कष्ट उठाते हैं । मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ । वह मेरा भंग हो गया होगा । उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है । इसलिये नहीं दे सकता ।

“आप की यह मंसा नहीं थी कि सिन्धव घोड़े कष्ट पायें । बिना इरादे के कर्म नहीं होता । इतनी बात में भी आप मन मैला करते हैं । आपसे कैसे उल्लंघन हो सकेगा ।”

दूतों ने उस से शील ग्रहण कर उन्हें सोने की पट्टी पर लिख लिया ।

“ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है । सेठ अच्छी तरह रक्षा करता है । उस से ग्रहण करें ।”

उन्होंने सेठ के पास भी पहुँच कर याचना की । वह भी एक दिन जब धानकी बल्ली निकल आई थी, अपने धान के खेत में पहुँचा । देखकर उसने सोचा कि धान को बँधवाऊँगा और धान की एक मुट्ठी पकड़वा कर खम्भे से बँधवा दी । तब उसे ध्यान आया—इस खेत में से मुझे राजा का हिस्सा देना है । बिना राजा का हिस्सा दिये गये खेत में से ही, मैंने धान की मुट्ठी लिवाई । मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ । वह भंग हो गया होगा । उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है । इसलिये नहीं दे सकता हूँ ।

“आपकी चोरी की नीयत नहीं थी । बिना उसके चोरी का दोष नहीं घोषित किया जा सकता । इतनी सी बात में भी सन्देह करने वाले आप किसी की क्या चीज ले सकेंगे ?”

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा ।

“ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है । दोणमापक महामात्य अच्छी तरह पालता है । उस से ग्रहण करें ।”

उन्होंने उसके पास भी पहुँच कर याचना की । वह एक दिन कोठी के द्वार पर बैठा राजा के हिस्से के धान की मिनती करा रहा था । बिना मापे गये धान के ढेर में से धान लेकर उसने चिह्न रख दिया । उस समय वर्षा आ गई । महामात्य ने चिह्न को गिन कर ‘मापे गये धान इतने हुए’ कह, चिह्न के धान बटोर, मापे गये धान में डाल दिये । फिर जल्दी से कोठी के द्वार पर पहुँच, खड़ा हो सोचने लगा—क्या मैं ने चिह्न के धान, मापे गये खेत में फेंके वा बिना मापे गये ढेर में ? यदि मापे गये ढेर में तो मैंने अकारण ही राजा के हिस्से को बढ़ा दिया और किसानों के हिस्से की हानि की । मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ । वह भंग हो गया होगा । उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है । इस लिये नहीं दे सकता हूँ ।

“आपकी चोरी की नीयत नहीं थी। बिना उसके चोरी का दोष घोषित नहीं किया जा सकता। इतनी सी बात में भी सन्देह करने वाले आप किसी की क्या चीज ले सकेंगे।”

दूतों ने उस से भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखे।

“ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। द्वार-पाल अच्छी तरह पालन करता है। उस से ग्रहण करें।”

उन्होंने उसके पास भी पहुँच कर याचना की। उसने भी एक दिन नगर-द्वार बन्द करने के समय तीन बार घोषणा की थी। एक दरिद्र मनुष्य अपनी छोटी बहिन के साथ लकड़ी-पत्ते लेने के लिये जंगल गया था। लौटते समय उसकी आवाज सुनकर बहन को ले शीघ्रता से अन्दर आया। द्वार-पाल बोला—तू नहीं जानता कि नगर में राजा है? तू नहीं जानता कि समय रहते ही इस नगर का द्वार बन्द हो जाता है? अपनी स्त्री को ले जंगल में रति-क्रीड़ा करता घूमता है। उसने उत्तर दिया—स्वामी! यह मेरी भाग्यार्थी नहीं है। यह मेरी बहिन है। तब द्वार-पाल चिन्तित हुआ—मैंने बहिन को भाग्यार्थी बना दिया। यह मुझसे अनुचित हुआ। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह मेरा भंग हो गया होगा। यह बात सुनाकर उसने कहा—इस बात से मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नहीं दे सकता हूँ।

“आपने जैसा समझा, वैसा कहा। इससे शील भंग नहीं होता। इतनी बात के लिये भी आप अनुताप करते हैं तो आप कुरुधर्म का पालन करते हुए जान-बूझ कर झूठ क्या बोलेंगे?”

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

“ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। कुरुधर्म का वेश्या अच्छी तरह पालन करती है। उससे ग्रहण करें।”

उससे भी याचना की। वेश्या ने भी पूर्वोक्त प्रकार से ही मना किया। क्यों? देवेन्द्र शक्र उसके सदाचार की परीक्षा लेने के लिये तरुण का भेष धारण कर आया, और यह कह कर कि मैं आज्ञा एक सहस्र देकर देव-लोक को ही चला गया। वह तीन वर्ष तक नहीं लौटा। उसने अपने शील के भंग होने के डर से तीन वर्ष तक किसी दूसरे आदमी से पान तक भी नहीं

ग्रहण किया। क्रमशः जब वह अति-दरिद्र हो गई, तब सोचने लगी—मुझे सहस्र देकर गया आदमी तीन वर्ष तक नहीं आया। मैं दरिद्र हो गई हूँ। जीवन-यापन नहीं कर सकती हूँ। अब मुझे न्यायाधीश अमात्य के पास जाकर खर्चा लेना चाहिये। उसने न्यायालय में जाकर निवेदन किया—स्वामी ! जो आदमी मुझे खर्चा देकर गया, वह तीन वर्ष से नहीं लौटा। यह भी नहीं जानती कि वह जीता है या मर गया ? मैं अब जीवन-यापन नहीं कर सकती हूँ। क्या करूँ ?

तीन वर्ष तक भी नहीं आया, तो क्या करोगी ? अब से खर्च लिया कर।

उसके पैसला मुन कर न्यायालय से निकलते ही एक आदमी एक सहस्र की थैली लाया। उसे लेने के लिये हाथ पसारने ही के समय इन्द्र प्रकट हुआ। उसने देखते ही हाथ खींच लिया और बोली—मुझे तीन साल पहले हजार देने वाला आदमी आ गया। मुझे तेरे कार्यापणों की जरूरत नहीं है।

शक्र अपना ही रूप धारण कर मध्यान्ह सूर्य की तरह चमकता हुआ आकाश में खड़ा हुआ। सारा नगर इकट्ठा हो गया। तब शक्रने जनता को संबोधन कर कहा—मैंने इसकी परीक्षा लेने के लिये तीन वर्ष हुए इसे हजार दिये थे। शील की रक्षा करनी हो तो इस की तरह रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार उपदेश दे, उसके घर को सातों रत्नों से भर, शक्र 'अब से अप्रमादी होकर रहना' कह देवलोक को चला गया। इस कारण उसने मना किया कि मैंने लिये खर्चे को बिना भुगताये दूसरे से प्राप्त होने वाले खर्चों के लिये हाथ पसारा। इससे मेरा शील मुझे प्रसन्न नहीं करता। इसी से तुम्हें नहीं दे सकती।

“हाथ पसारने मात्र से शील भंग नहीं होता। आपका शील परम परिशुद्ध शील है।”

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखे।

इस प्रकार इन ग्यारह जनों द्वारा पालन किया गया शील सोने की पट्टी पर लिख, दन्तपुर पहुँच, कलिङ्ग नरेश को सोने की पट्टी दे, सब हाल सुनाया। राजा ने उस कुवर्धन में स्थित हो पाँच शीलों को पूर्ण किया। उस समय सारे कलिङ्ग राष्ट्र में वर्षा हुई। तीनों भय शान्त हो गये। राष्ट्र का कल्याण हो गया। पैदावार खूब हुई।

बोधिसत्व जीवन पर्यन्त दान आदि पुण्य करके अनुयायियों सहित स्वर्ग-नामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न हुये, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए तथा कोई अर्हत हुए । जातक के मेल के बारे में—

गणिका उत्पलवण्णा च पुण्णो दोवारिको तदा,
रज्जुगाहो च कच्चानो दोणभाता च कोलितो ॥
सारिपुत्तो तदासेट्ठि अनुरुद्धो च सारथी,
ब्राह्मणो कस्सपो थेरो उपराजा नन्द-पण्डितो ॥
महेसी राहुलमाता मायादेवी जनेसिया,
कुरुराजा बोधिसत्तो एवं धारेय जातकं ॥

[उस समय की वैश्या उत्पलवर्णा थी, द्वारपाल पुण्य था । रज्जु पकड़ने वाला कच्चान था, दोण मापने वाला कोलित था । सेठ सारिपुत्र था । सारथी अनुरुद्ध था । ब्राह्मण कस्सप स्थविर थे । उपराजा नन्द-पण्डित थे । पटरानी राहुल-माता थी । और जननी मायादेवी थी । कुरुराजा स्वयं बोधिसत्व थे । इस प्रकार जातक को समझें ।]

२७७. रोमक जातक

“वस्सानि पञ्जास...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय बध करने के प्रयत्न के बारे में कही । वर्तमान कथा प्रकट ही है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर पैदा हुये । वह बहुत से कबूतरों के साथ जंगल में पर्वत-गुफा में

रहते थे। एक सदाचारी तपस्वी भी उन कबूतरों के निवासस्थान के आसपास ही एक प्रत्यन्त-ग्राम के समीप आश्रम बना पर्वत-गुफा में रहता था। बोधिसत्व बीच बीच में उसके पास आकर सुनने योग्य सुनते थे। तपस्वी वहाँ चिरकाल तक रहकर चला गया।

एक कुटिल जटाधारी आकर वहाँ रहने लगा। बोधिसत्व भी कबूतरों के साथ उसके पास प्रणाम कर, कुशलक्षेम पूछ, आश्रम के आसपास घूम, पर्वत-कन्दरा के समीप चुगकर, शाम को अपने निवासस्थान जाते। कुटिल जटाधारी वहाँ पचास वर्ष से अधिक रहा। एक दिन प्रत्यन्त-ग्रामवासियों ने कबूतर का मांस पकाकर दिया। उसने रस-लोभ से पूछा—यह किसका मांस है ? “कबूतर का मांस।” उसने सोचा मेरे आश्रम पर बहुत से कबूतर आते हैं। उन्हें मारकर मांस खाना चाहिये। उसने चावल, धी, दही जीरा और मिर्च आदि मंगवा कर एक ओर रखा। फिर एक मोगरी को कपड़े से ढक, कबूतरों की प्रतीक्षा करता हुआ पर्णकुटी के द्वार पर बैठा।

बोधिसत्व ने कबूतरों के साथ आ, उस कुटिल जटाधारी की दुष्ट करनी देख सोचा—यह दुष्ट तपस्वी कुछ दूसरे ढंग से बैठा है। कहीं इसने हमारी जाति के किसी का मांस तो नहीं खाया है ? मैं इसकी परीक्षा करूँगा। उसने जिधर से वायु चल रही थी उसके अनुसार खड़े हो उस (तपस्वी) की शरीर-गंध सूँघ कर जाना कि यह हमें मारकर मांस खाना चाहता है। इसके समीप नहीं जाना चाहिए। वह कबूतरों को ले वापिस लौटकर चुगने लगा। तपस्वी ने उसे न आता देख सोचा—उन्से मधुर बात चीत कर, विश्वस्त हो आने पर, मारकर खाना चाहिए। उसने पहली दो गाययें कहीं:—

वस्तानि पञ्चास समाधिकानि
वसिष्ठ सेलस्स गुहाय रोमक,
असङ्गमाना अभिनिम्बुत्ता
हत्थत्तमायन्ति ममण्डजा पुरे ॥
तेदानि वक्कङ्गा किमत्थमुत्सुका
वजन्ति अम्भं गिरिकन्दरं विजा,
न नून मज्जन्ति ममं यथापुरे
चिरप्पबुत्था अयथा न ते इमे ॥

[हे रोमक ! हम पचास वर्ष से भी अधिक पर्वत-गुफा में रहे। पहले ये पत्नी निश्शङ्क होकर शान्त-भाव से मेरे हाथ में आ जाते थे। हे वक्कल ! क्या कारण कि वही पत्नी अब शङ्कित होकर दूसरी गिरि-कन्दरा को जाते हैं। वह मुझे जैसे पहले मानते थे, वैसे नहीं मानते हैं। क्या यह चिरकाल तक प्रवासी रहे हैं ? वा ये वे पत्नी ही नहीं हैं ?]

यह सुन बोधिसत्व ने लौट कर खड़े ही खड़े तीसरी गाथा कही:—

जानाम तं न मयमस्म मूलहा

सोयेव त्वं ते मयमस्म नाञ्जे,

चित्तञ्च ते अस्मि जने पदुट्ठं

आजीवक तेन तं उत्तसाम ॥

[हम मूढ़ नहीं हैं। हम तुम्हें पहचानते हैं। तू वही है। और हम भी दूसरे नहीं हैं। लेकिन तेरा चित्त हमारे प्रति खराब हो गया है। हे आजीवक ! इसी कारण से हम तुझ से डरते हैं।]

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि इन्होंने मुझे जान लिया है तो मोगरी फेंक कर मारी। मोगरी चूक गई। तब वह बोला—जा। तू बच गया। बोधिसत्व ने कहा—मुझ से तू चूक गया, लेकिन चारों नरकों से तू नहीं चूकेगा। यदि अब यहां रहेगा तो ग्राम-वासियों को यह कहकर कि यह चोर है तुम्हें पकड़वा दूंगा। शीघ्र भाग जा ? उसे डराकर भगा दिया। जटाधारी वहां नहीं रह सका।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी देवदत्त था। पहला सदाचारी तपस्वी सारि-पुत्र था। कबूतरों में ज्येष्ठ तो मैं ही था।

२७८. महिस जातक

“कमत्थमभिसन्धाय.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शरारती बन्दर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में किसी कुल में एक पालतू, शरारती बन्दर था । वह हथ-साल जाकर एक शीलवान् हाथी की पीठ पर मल-मूत्र कर देता और इधर उधर घूमता । हाथी अपने शील के कारण, शान्त होने के कारण कुछ न करता ।

एक दिन उस हाथी के स्थान पर दूसरा दुष्ट हाथी-बच्चा खड़ा था । बन्दर इसे भी वह ही समझ उसकी पीठ पर चढ़ गया । उसने उसे सूखे से पकड़, जमीन पर रख पैर से दबा चूर्ण-विचूर्ण कर दिया । यह समाचार भिक्षु-संघ में प्रकट हो गया । एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो ! शरारती बन्दर दुष्ट हाथी को शीलवान् हाथी समझ उसकी पीठ पर चढ़ गया । उसने उसे मार डाला । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?

“अमुक बात चीत ।”

“भिक्षुओ, इस शरारती बन्दर का केवल अभी यह स्वभाव नहीं था, पुराने समय से लेकर यही स्वभाव रहा है ।”

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय-प्रदेश में भैंसे की योनि में पैदा हुआ । बड़े होने पर शक्ति शाली तथा महान् शरीर वाला हो, वह पर्वत, पन्थार, गिरि, दुर्ग तथा घने जंगलों में घूमता था । उसे एक सुखद वृक्ष की छाया मिली । चारा चुग कर दिन में वह उस वृक्ष की छाया में जा खड़ा हुआ ।

एक शरारती बन्दर ने वृक्ष से उतर, उसकी पीठ पर चढ़ मल-मूत्र कर दिया । फिर सींग पकड़ लटकते हुये तथा पूँछ पकड़ भूलते हुए खेलने लगा । बोधिसत्व ने शान्ति, मैत्री, और दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण उसके अनाचार पर ध्यान नहीं दिया । बन्दर बार बार उसी तरह करता था । तब एक दिन उस वृक्ष पर रहने वाले देवता ने वृक्ष के तने पर खड़े हो, 'महिषराज ! इस दुष्ट बन्दर का अनाचार क्यों सहन करते हो ? इसे रोको' कहते हुये यह पहली दो गाथायें कहीं:—

कमथममिसन्धाय जहुचिस्स दूमिनी,

सम्बकामदुहस्सेव इमं दुक्खं तित्तिक्खसि ॥

सिक्के न निहनाहेतं पदसा च अभिट्ठह,

भीयो बाला पकुम्भेयुं नो चस्स पटिसेधको ॥

[किस कारण इस चंचल द्रोही को, सब कामनायें पूरी करने वाले की तरह, इस दुःख को, सहन करते हो ? इसको सींग से मारो और पैर से दबा दो । यदि इसका दमन न किया गया तो और भी मूर्ख कष्ट देंगे ।]

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा—वृक्षदेवता ! यदि मैं इससे जाति, गोत्र और बल में अधिक होकर भी इसके दोष को सहन नहीं करूँगा तो मेरा मनोरथ कैसे सिद्ध होगा ? लेकिन यह दूसरे को भी मुझ जैसा ही समझ इसी प्रकार अनाचार करेगा । तब यह जिन प्रचण्ड मैसों से बर्ताव करेगा, वे ही इसे मार देंगे । दूसरों द्वारा इसका वह मरण मुझे दुःख से तथा प्राणि-हिंसा से बचा लेगा । यह कह तीसरी गाथा कही:—

ममेवायं सम्भज्जमानो अज्जग्गेवं करिस्सति,

ते तं तथ्य बधिस्सन्ति सा मे मुत्ति भविस्सति ॥

[यह दूसरे को भी मुझ जैसा समझ उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेगा । वे इसे मार देंगे । वह मेरी मुक्ति होगी ।]

कुछ दिन बाद बोधिसत्व अन्यत्र गया । दूसरा प्रचण्ड मैसा वहाँ आकर खड़ा हो गया । दुष्ट बानर ने उसे भी वही समझ उसकी पीठ पर चढ़ बैसा ही अनाचार किया ।

उसने उसे हिलाकर भूमि पर गिराया और सींग से छाती चीर पैरों से कुचल कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया । उस समय का दुष्ट भैंसा यह अब का दुष्ट हाथी था । दुष्ट बानर यह दुष्ट बानर ही । शीलवान् महिषराज तो मैं ही था ।

२७६. सतपत्त जातक

“यथा माणवको पन्थे...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पण्डुक तथा लोहितक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

छः वर्गीयों में से दो जने—मेत्तिय और भुम्मजक—राजगृह के पास रहते थे । अस्सजि तथा पुनब्बसुक कीटागिरि के पास रहते थे । और यह दो जने—पण्डुक तथा लोहितक—आवस्ती के पास जेतवन में रहते थे । वे जिस बात का न्याय से निर्णय हो गया रहता उसे फिर फिर उठाते थे । जो उनके परिचित मित्र होते उनको सहारा देते हुये कहते—आयुष्मानो ! तुम न इनसे जाति में, न गोत्र में, न शील में, किसी बात में कम नहीं हो । यदि तुम अपना आग्रह छोड़ दोगे तो ये तुम्हें अच्छी तरह दबा लेंगे । इस प्रकार वे उन्हें अपना आग्रह न छोड़ने देते । इससे भगड़े, कलह-विग्रह तथा विवाद चालु रहते ।

भिच्छुओं ने यह बात भगवान् से कही । भगवान् ने इस सम्बन्ध में, इस बारे में, भिच्छुओं को एकत्र करा, पण्डुक तथा लोहितक को बुलवा पूछा—भिच्छुओ, क्या तुम सच्चमुच स्वयं भी मुकद्दमे को बढ़ाते हो और दूसरों को भी अपना आग्रह छोड़ने नहीं देते हो ?

“भन्ते ! सच्चमुच”

“तो भिच्छुओ, यदि ऐसा है तो तुम्हारी क्रिया सतपत्त माणवक की क्रिया की तरह है ।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक काशी-ग्राम में किसी कुल में पैदा हुये। बड़े होने पर कृषि-वाणिज्य आदि कोई जीविका न कर, उसने पाँच सौ चोरों का सरदार बन, बटमारी तथा सेंध लगाना आदि करते हुए जीविका चलाई।

उस समय वाराणसी के किसी गृहस्थ ने मुफत्सिल के किसी आदमी को एक सहस्र कार्षापण दिये थे। वह उन्हें बिना उगाहे ही मर गया। उसकी भार्या भी बीमार होकर मृत्यु-शैय्या पर लेटी। उसने पुत्र को बुलाकर कहा—तात ! तेरे पिता ने एक आदमी को हजार दिये थे। वह उन्हें बिना उगाहे ही मर गया ! यदि मैं भी मर जाऊँगी तो वह तुझे नहीं देगा। जा मेरे जीते जी ही उससे वसूल कर। उसने 'अच्छा' कह, वहाँ पहुँच कार्षापण प्राप्त किये।

उसकी माता मर कर पुत्रस्नेह के कारण उसके आने के मार्ग में गीदड़ी होकर प्रकट हुई। उस समय वह चोरों का सरदार मुसाफिरों को लूटता हुआ अपने साथियों सहित उसी रास्ते पर था।

पुत्र के जंगल की ओर मुँह करने पर उस गीदड़ी ने बार बार रास्ता रोक कर मना किया—तात ! जंगल में मत जा। वहाँ चोर हैं। वह तुझे मार कर कार्षापण छील लेंगे। उसने वह बात न जानने के कारण 'यह मनहूस गीदड़ी मेरा रास्ता रोकती है' सोच ढेले और डण्डे से माँ को भगा जंगल में प्रवेश किया। (उसी समय) एक कठफोड़ पत्नी चोरों के सामने चिल्लाता हुआ फड़फड़ाया—इस आदमी के पास हजार कार्षापण हैं। इसे मारकर वह कार्षापण ले लो। माणवक ने उसकी बात न समझ 'यह मङ्गल-पत्नी है, अब मेरा कल्याण होगा' सोच हाथ जोड़ कर कहा—बोलें स्वामी ! बोलें।

बोधिसत्व सबकी बोली समझते थे ! उन दोनों की क्रिया देखकर सोचने लगे—यह गीदड़ी इसकी माँ होगी। इसीलिये वह इस डर से इसे रोकती है कि मारकर कार्षापण छीन लेंगे। यह कठफोड़ा तो शत्रु होगा। इसीलिये वह कहता है कि इसे मारकर कार्षापण छीन लो। यह इस बात को न समझता हुआ हितचिन्तक माता को डराकर धमकाता है, और अनर्थ चाहने

वाले कठफोड़े को हितचिंतक समझ उसके सामने हाथ जोड़ता है। ओह ! यह मूर्ख है। [बोधिसत्व भी, जो कि महापुरुष होते हैं, जो दूसरों की चीज ले लेते हैं, उसका कारण उनका अयोग्य-जन्मग्रहण है। ऐसा भी कहते हैं कि यह नक्षत्रों के दोष से होता है।]

तरुण चोरों के बीच में आ पहुँचा। बोधिसत्व ने उसे पकड़वाकर पूछा—कहाँ रहने वाला है ?

“वाराणसी रहने वाला हूँ।”

“कहाँ गया था ?”

“एक गामड़े में से हजार लेना था, वहाँ गया था।”

“क्या तुम्हें मिला ?”

“हाँ, मिला।”

“तुम्हें किसने मेजा ?”

“स्वामी ! मेरा पिता मर गया है। और मैं भी रोगिणी है। उसने यह समझ कर कि मेरे मरने पर यह नहीं पायेगा मुझे मेजा।”

“अब अपनी माँ का हाल जानता है ?”

“स्वामी ! नहीं जानता हूँ।”

तेरे (घर से) निकलने पर तेरी माता मर कर पुत्र-स्नेह के कारण शृगाली होकर पैदा हुई। वह तेरे मरने के डर से रास्ता रोक कर तुम्हें मना करती थी। तूने उसे डरा कर भगा दिया। कठफोड़ा पच्ची तो तेरा शत्रु है। उसने हमें कहा कि इसे मारकर कार्षापण छीन लो। तू अपनी मूर्खता के कारण हितचिन्तक माता को ‘मेरी अहितचिन्तक है’ मानता है और अनर्थ चाहने वाले कठफोड़े को ‘मेरा हित चाहने वाला है’ समझता है। उसका तुम पर कुछ उपकार नहीं है। तेरी माँ बहुत गुणवाली है। ‘कार्षापण लेकर जा’ कह बिदा किया। शास्ता ने यह देशना ला ये गाथायें कहीं—

यथा माणवको पन्थे सिगालि वनगोचरि,
अत्थकामं पवेदेन्ति अनत्थकामाति मज्जति
अनत्थकामं सतपत्तं अत्थकामोति मज्जति ।
एवमेव इधेकको पुग्गलो होति तादिसो,
इतिहि वचनं बुत्तो पत्तिगण्हाति वामतो ॥

ये च खो नं पसंसन्ति भया उक्कंसयन्ति च,
तं हिसो मज्जते मित्तं सत्तपत्तं व माणवो ॥

[जिस तरह बन में घूमने वाली गीदड़ी को जो हित की बात कहती थी, माणवक अहित चाहने वाली समझता था और अनर्थ चाहने वाले कठफोड़े को भला चाहने वाला समझता था; इसी प्रकार इस संसार में कोई कोई आदमी ऐसा ही होता है जो हितकर बात को उलटा ही समझता है। जो उसकी प्रशंसा करते हैं और जो भय से खुशामद करते हैं उन्हें वह वैसे ही मित्र समझता है जैसे माणवक ने कठफोड़े को (मित्र समझा)।]

इसीलिये कहा है:—

अञ्जदत्थुहरो मित्तो यो च मित्तो वच्चीपरो,
अनुप्पियञ्च यो आह अपायेसु च यो सखा ।
एते अमित्ते चत्तारो इति विञ्जाय पण्डितो,
आरका परिवज्जेय्य मग्गं परिभयं यथा ॥^१

[जो अञ्जदत्थुहरो मित्र है (स्वयं केवल खाली हाथ आकर मित्र के घर से कुछ न कुछ ले ही जाता है), जो बात का ही धनी है, जो अनुकूल, प्रिय ही प्रिय बोलता है, जो नरक का साथी है—यह चार “मित्र” अमित्र ही हैं। पण्डित-जन इन्हें जानकर भय युक्त मार्ग की तरह दूर से ही छोड़ दे।]

शास्ता ने इस धर्मदेशना का विस्तार कर जातक का मेल बिठाया। उस समय चोरों का सरदार मैं ही था।

२८०. पुटदूसक जातक

“अद्वा हि नून मिगराजा.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक दूने बिगाड़ने वाले के बारे में कही ।

३. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक अमात्य ने बुद्ध की प्रमुखता में भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर उद्यान में बिठाकर दान दिया । भोजन की समाप्ति पर उसने कहा—जो उद्यान में घूमना चाहें घूमें । भिक्षु उद्यान में घूमने लगे । उसी समय बाग का माली एक खूब पत्तों वाले वृक्ष पर चढ़, बड़े बड़े पत्तों से दूने बना, वृक्ष से नीचे गिराता था—यह दूना फूलों के लिये होगा, और यह फलों के लिये होगा । उसका पुत्र—एक बच्चा—जो जो दूने यह गिराता उन्हें नष्ट करता जाता था । भिक्षुओं ने वह बात शास्ता से निवेदन की । ‘न केवल अभी, पहले भी भिक्षुओं, यह दूने नष्ट करने वाला ही था’ कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी में किसी कुल में पैदा हुये । बड़े होने पर घर में रहते समय एक दिन किसी काम से बाग में गये । वहाँ बहुत से बन्दर रहते थे । माली उक्त प्रकार से ही दूने गिराता था । बानरों का सरदार जो जो दूने वह गिराता था उन सब को नष्ट करता जाता था । बोधिसत्व ने उसे आमन्त्रित कर ‘मालूम होता है तू माली द्वारा गिराये गये दूने नष्ट कर उनसे अच्छे बनाने चाहता है’ कह यह गाथा कही:—

अद्वा हि नून मिगराजा पुटकम्मस्स कोविदो,

तथा हि पुटे दूसेति अर्च्चं नून करिस्सति ॥

[निश्चय से मृगराज दूने बनाने में परिष्ठत है । वह दूनों को ऐसे नष्ट कर रहा है, जैसे (इनसे अच्छे) दूसरे दूने बनायेगा ।]

यह सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कही:—

न मे पिता वा माता वा पुटकम्मस्स कोविदो,

कतं कतं खो दूसेम एवं धम्ममिदं कुलं ॥

[न मेरा पिता, न मेरी माता दूने बनाने में पण्डित है । जो जो बने उसे नष्ट करें, यही हमारे कुल का धर्म है ।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

येसं वो एविसो धम्मो अधम्मो पन कीदिसो,

मा वो धम्मं अधम्मं वा अइसाम कुदाचनं ॥

[जिनका तुम्हारा धर्म ऐसा है, उनका अधर्म कैसा होगा ? हम न कहीं तुम्हारा धर्म देखते हैं, न अधर्म ।]

ऐसा कह बानर की निन्दा कर चले गये । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय बानर दूने नष्ट करने वाला बच्चा था । पण्डित आदमी तो मैं ही था ।

तीसरा परिच्छेद

४. अब्भन्तर वर्ग

२८१. अब्भन्तर जातक

“अब्भन्तरं नाम दुमो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र के बिम्बा देवी स्थविरी को आम्र-रस देने के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के श्रेष्ठ धर्म-चक्र प्रवर्तित करने पर वैशाली की कूटागारशाला में विहार करते समय पाञ्च सौ शाक्य-देवियों को साथ ले, महाप्रजापती गौतमी ने प्रब्रज्या की याचना कर, प्रब्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की। आगे चलकर वह पाँच सौ भिक्षुणियाँ नन्दकोवाद (सूत्र) सुनकर अर्हत्व को प्राप्त हुईं। शास्ता के श्रास्वती के पास विहार करते समय राहुल-माता देवी ने भी सोचा—मेरे स्वामी प्रब्रजित होकर सर्वज्ञ हो गये। पुत्र भी प्रब्रजित होकर उन्हीं के पास रहता है। मैं घर में रहकर क्या करूँगी ? मैं भी प्रब्रजित हो आवस्ती पहुँच सम्यक् सम्बुद्ध और पुत्र को निरन्तर देखती हुई रहूँगी। वह भिक्षुणियों के उपाश्रय में गई और प्रब्रजित हो आचार्य्य उपाध्यायों के साथ आवस्ती जा, शास्ता और प्रिय-पुत्र को देखती हुई एक भिक्षुणी-उपाश्रय में रहने लगी। राहुल आमणोर जाकर माता को देखता था।

एक दिन स्थविरी का उदर-वायु कुपित हो गया। पुत्र के देखने आने पर, उसे देखने के लिये बाहर न निकल सकी। दूसरों ने रोगी होने की बात कही। उसने माता से जाकर पूछा—क्या मिलना चाहिये ? “तात ! घर में रहते समय शक्कर मिश्रित आम्र-रस पीने से मेरा उदर-वायु शान्त हो जाता था। लेकिन अब भिक्षा माँग कर जीवन यापन करते हैं, कहाँ मिलेगा ?” आमणोर ‘मिलेगा तो लाऊँगा’ कह चला गया।

उस आयुष्मान के उपाध्याय थे धर्मसेनापति (सारिपुत्र), आचार्य्य महामौद्गल्यायन, लघु-पिता आनन्द स्थविर और पिता सम्यक्सम्बुद्ध— इस प्रकार वह सम्पत्तिशाली था। ऐसा होने पर भी वह किसी दूसरे के पास न जा, उपाध्याय के पास पहुँच, प्रणाम कर चिन्तित की तरह खड़ा हुआ।

स्थविर ने पूछा—राहुल ! चिन्तित सा क्यों है ?

“भन्ते ! मेरी माँ स्थविरी का उदर-वायु कुपित हो गया है।”

“क्या मिलना चाहिये ?”

“शक्कर मिले आम्ररस से अच्छा होता है।”

“अच्छा, चिन्ता न कर मिलेगा।”

वे अगले दिन-ससे ले आश्वती में प्रविष्ट हो, आम्रणोर को आसनशाला में बिठा राजद्वार पर पहुँचे। कोशल नरेश ने स्थविर को बिठाया। उसी क्षण उद्यानपाल डाल पर पके मधुर आमों का एक दूना लाया। राजा ने आमों का झिल्ला उतार शक्कर डाल, अपने हाथ से ही मल स्थविर को पात्र भर कर दिया। स्थविर ने राज-निवास से निकल आसनशाला पहुँच ‘ले जाकर माता को दे’ कह आम्रणोर को दिया। उसने ले जाकर दिया। स्थविरी के खाते ही उदर-वायु शान्त हो गया। राजा ने भी आदमी मेजा—स्थविर ने यहाँ बैठकर आम्र-रस नहीं पिया। जा देख किसे दिया ? उसने स्थविर के साथ ही जा, आकर वह समाचार राजा से कहा। राजा ने सोचा—यदि शास्ता घर में रहते चक्रवर्ती-राजा होते। राहुल आम्रणोर ज्येष्ठ-पुत्र, स्थविरी स्त्री-रत्न। सारे चक्रवालों का राज्य इन्हीं का होता। हम इनकी सेवा में रहते। अब जब यह प्रव्रजित होकर हमारे आश्रय से रह रहे हैं, तो हमारे लिये यह उचित नहीं है कि हम इनकी ओर से लापरवाह हों। उस दिन से वह लगानार स्थविरी को आम्र-रस दिलाता रहा। स्थविर के बिम्बादेवी स्थविरी को आम्ररस देने की बात भिक्षुसंघ में प्रसिद्ध हो गई। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो ! सारिपुत्र स्थविर ने बिम्बादेवी स्थविरी को आम्ररस से संतर्पित किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे-क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत।’ ‘भिक्षुओ, सारिपुत्र ने केवल अभी राहुल-माता को आम्ररस से संतर्पित नहीं किया, पहले भी किया है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी ग्राम के ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख गृहस्थी स्थापित की। माता पिता के मरने पर श्रुतिप्रब्रज्या ले हिमालय प्रदेश में अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। फिर श्रुतियों की मण्डली के सरदार हो, बहुत समय व्यतीत होने पर, नमक-खटाई खाने के लिये पर्वत से उतर, चारिका करते हुये वाराणसी पहुँच, उद्यान में रहने लगे।

श्रुति-समूह के सदाचार के प्रताप से इन्द्र-भवन काँपने लगा। शक्र ने ध्यान देकर कारण का पता लगाया, और सोचने लगा—इन तपस्वियों को यहाँ से उखाड़ने का प्रयत्न करूँगा। जब इन्हें रहने को स्थान न मिलेगा, कष्ट सहते हुये घूमेंगे, तो इनका चित्त एकाम्र न होगा। इससे मेरा दुख दूर होगा। 'क्या उपाय किया जाय' सोचते हुये उसे यह उपाय सूझा—आधी रात के बाद राजा की पटरानी के शयनागार में प्रवेश कर आकाश में खड़ा होकर कहूँगा : अन्दर के पके आम को खाने से भद्रे ! तुझे पुत्रलाभ होगा, और वह चक्रवर्ती राजा होगा। राजा देवी की बात सुन कर पके आम के लिये उद्यान भेजेगा। मैं आमों को अन्तर्धान कर दूँगा। राजा को कहेंगे—बाग में आम नहीं है। राजा के यह पूछने पर कि कौन खा जाते हैं उसे बताया जायगा कि तपस्वी खा जाते हैं। इसे सुन राजा तपस्वियों का पिटवा कर निकलवा देगा। इस प्रकार ये कष्ट पायेंगे। उसने आधी रात के बाद शयनागार में प्रविष्ट हो, आकाश में खड़े हो, अपना देवेन्द्र होना प्रकट कर उसके साथ बात चीत करते हुये पहली दो गायार्थें कहीं—

अम्भन्तरं नाम दुमो यस्स दिब्बमिदं फलं,

भुत्वा दोहठिनी नारी चक्रवर्त्तिं विजायति ॥

त्वञ्च भद्रे महेसीसि साचासि पतिनो पिया

आहरिस्सति ते राजा इदं अम्भन्तरं फलं ॥

[अन्दर वह वृद्ध है, जिसका यह दिव्य फल है। दोहद वाली नारी इसे खाकर चक्रवर्ती पुत्र पैदा करेगी। हे भद्रे ! तू महिषी है और पति की प्यारी है। राजा तेरे लिये यह अम्भन्तर फल मंगा देगा।]

इस प्रकार शक्र देवी को ये दो गायार्थें कह 'तू अप्रमादी हो, देर न करना, कलं राजा को कहना' अनुशासन कर अपने निवास-स्थान को गया । दूसरे दिन देवी रोगिणी का ढंग बना सेविकाओं को इशारा कर लेट रही । ऊपर उठे श्वेत-छत्र के नीचे सिंहासन पर बैठ नाटक देखते हुये राजा ने देवी को न देख सेविकाओं से पूछा—देवी कहाँ है ?

“देव ! रोगिणी होगई है ।”

उसने देवी के पास जा, वहाँ पास बैठ, पीठ मलते हुये पूछा—

“भद्रे ! क्या कष्ट है ?”

“महाराज ! और तो कोई कष्ट नहीं है, हां दोहद उत्पन्न हुआ है ।”

“भद्रे ! क्या चाहती है ?”

“देव ! अन्दर का फल ।”

“ग्रह अन्दर का आम कहाँ होता है ?”

“देव ! मैं अन्दर के आम को नहीं जानती हूँ । लेकिन वह मिलेगा तो जीऊँगी, न मिलेगा नहीं जीऊँगी ।”

‘तो चिन्ता मतकर, मंगवायेंगे’ कह राजा ने देवी को आश्वासन दिया । फिर उठ, जाकर राजसिंहासन पर बैठ अमात्यों को बुलवाकर पूछा—देवी को अन्दर के आम का दोहद पैदा हो गया है । क्या किया जाय ?

“देव दो आमों के बीच में स्थित आम अन्दर का आम है । उद्यान में भेजकर दो आमों के बीच में खड़े आम के फल मंगवा कर देवी को दिलायेंगे ।”

‘अच्छा’ इस तरह का आम लाओ कह राजा ने उद्यान भेजा ।

शक्र ने अपने प्रताप से उद्यान के आमों को खाये जैसे करके अन्तर्धान कर दिया । आम के लिये गये आदमियों ने सारे उद्यान में घूम एक आम भी न पा, जाकर राजा से कहा—उद्यान में आम नहीं है ।

“आमों को कौन खाते हैं ?”

“देव ! तपस्वी खाते हैं ।”

“तपस्वियों को उद्यान से पीट कर निकाल दो ।”

मनुष्य ने ‘अच्छा’ कह निकाल दिया । शक्र का उद्देश पूरा हो गया । देवी आम्रफल का आम्रह करके पड़ी रही ।

राजा को जब और कुछ नहीं सूझा तो अमात्यों तथा ब्राह्मणों को एकत्र कर पूछा—अन्दर के आम के बारे में जानते हो ?

“देव ! परम्परा से यही सुना है कि अन्दर का आम देवताओं का भोग्य-आम होता है । वह हिमालय में कञ्चन-गुफा में होता है ।”

“उस आम को कौन ला सकेगा ?”

“वहाँ कोई आदमी नहीं जा सकता । एक तोते के बच्चे को वहाँ भेजना चाहिये ।”

उस समय राजकुल में एक बड़े शरीर वाला तोते का बच्चा था—कुमारों की गाड़ी के पहिये की नाभी जितना । वह शक्तिशाली था, प्रज्ञावान् था और था उपायकुशल । राजा ने उसे मंगवाकर कहा—तात ! मैं तुम्हारा बहुत उपकार करता हूँ । सोने के पिंजरे में रहते हो । सोने की थलिया में मधु और लाजा खाते हो । शक्कर का पानी पीते हो । तुम्हें भी हमारा एक काम पूरा करना चाहिये ।

“देव ! कहें ।”

“तात ! देवी को अन्दर के आम का दोहद पैदा हो गया है । वह आम हिमालय में कञ्चन-गुफा में है । वह देवताओं का भोग्य है । वहाँ कोई आदमी नहीं जा सकता । तुम्हें वहाँ से फल लाना चाहिये ।”

“देव ! अच्छा लाऊँगा ।”

राजा ने सोने की थाली में मधु-खील खिला, शक्कर का शर्बत पिला, सौ तरह के पके हुये तेल से उसे पङ्क्तों के बीच में चुपड़, दोनों हाथों में ले, खिड़की में खड़े हो आकाश में छोड़ दिया । वह भी राजा के प्रति नम्रता दिखा, आकाश में उड़ते हुये मनुष्य-पथ से ओझल हो हिमालय में पहुँचा । वहाँ हिमालय की प्रथम-पंक्ति के अन्दर रहने वाले तोतों के पास जा पूछा—अन्दर का आम किस जगह है ? मुझे वह स्थान बतायें ।

“हम नहीं जानते । दूसरी पंक्ति के अन्दर के जानते होंगे ।” उनसे सुन वह वहाँ से उड़ दूसरी पंक्ति के अन्दर पहुँचा । वहाँ से तीसरी, चौथी, पाँचवीं तथा छठी । वहाँ भी तोतों ने यही कहा—हम नहीं जानते, सातवीं पंक्ति के अन्दर के तोते जानते होंगे । उसने वहाँ भी पहुँचकर पूछा—अन्दर का आम कहाँ है ? बताया—अमुक स्थान पर कञ्चन-पर्वत के अन्दर ।

“मैं उसके फल के लिये आया हूँ। मुझे वहाँ ले चलकर उसका फल दिलाओ।”

“वह वैश्रवण (कुवेर) महाराज का भोग्य है। वहाँ नहीं जाया जा सकता। सारा वृक्ष, जड़ से लगाकर लोहे की सात जालियों से घिरा है। हजार-करोड़ कुम्भएड राक्षस रक्षा करते हैं। उनको दिखाई दे जाने पर जान नहीं बच सकती। कल्पारम्भ की आग और अवीचि महानरक की तरह का स्थान है। वहाँ जाने की इच्छा न कर।”

“यदि तुम नहीं जाते, तो मुझे स्थान बता दो।”

“तो अमुक अमुक रास्ते से जा।”

वह उनके कथनानुसार ठीक रास्ते से वहाँ पहुँच, दिन भर छिपा रहा। आधी-रात के बाद राक्षसों के सोने के समय अन्दर के आम के पास जा एक मूल के बीच से शनैः शनैः चढ़ने लगा। लोह-जाली ने ‘किली’ आवाज की। राक्षस जागकर तोते के बच्चे को देख पकड़ कर विचार करने लगे—यह आमचोर है। इसे क्या दण्ड दें? एक बोला—इसे मुँह में डालकर निगल जाऊँगा! दूसरा बोला—हाथ रो मलकर पोंछ कर बिखेर दूँगा। तीसरा बोला—दो टुकड़े करके अङ्गारों पर पका कर खा जाऊँगा।

उसने उनका दण्ड-विधान सुनकर भी बिना भयभीत हुये पूछा—हे राक्षसो! तुम किसके आदमी हो?

“वैश्रवण महाराज के।”

“तुम भी एक राजा के आदमी हो। मैं भी एक राजा का ही आदमी हूँ। वाराणसी राजा ने मुझे अन्दर के फल के लिये भेजा है। मैं वहीं अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करके आया हूँ। जो अपने माता, पिता तथा स्वामी के लिये जीवन बलिदान करता है, वह देवलोक में ही पैदा होता है। इसलिये मैं भी इस तिर्यक् योनि से मुक्त होकर देवलोक में पैदा होऊँगा।”

यह कह तीसरी गाथा कही:—

भक्तुरत्ये परक्कन्तो यं ङानमधिगच्छति,
सूरो अत्तपरिच्चागी खभमानो भवामहं ॥

[स्वामी के लिये प्रयत्न करने वाला, शूर तथा आत्मत्यागी जिस स्थान को प्राप्त होता है, मैं भी उसी स्थान को प्राप्त होऊँगा ।]

इस प्रकार इस गाथा से उसने उन्हें उपदेश दिया । उन्होंने उसका उपदेश सुन सोचा—यह धार्मिक है । इसे मार नहीं सकते । इसे छोड़ दें । वे तोते के बच्चे को छोड़कर बोले—तोते ! हमारे हाथ से नू मुक्त है । सकुशल जा ।

“मेरा आना व्यर्थ मत करो । मुझे एक फल दे दो ।”

“तोते ! तुम्हें एक फल देने का हमारा अधिकार नहीं है । इस वृक्ष के आमों पर अड़क लगे हैं । एक का भी फर्क पड़ने पर हमारा जीवन नहीं रहेगा । कुबेर के क्रुद्ध होकर एक बार देखने से ही गरम तवे पर डाले तिलों की तरह हजार कुम्भाण्ड धुन कर बिखर जायेंगे । इसलिये तुम्हें नहीं दे सकते । हाँ मिलने का स्थान बता सकते हैं ।”

“कोई भी दे । मुझे तो फल ही चाहिये । मिलने का स्थान ही बतायें ।”

“इस कञ्चन-पर्वत के अन्दर जोतिरस नाम का तपस्वी अग्नि में हवन करता हुआ कञ्चन-पत्ति नाम की पर्णशाला में रहता है । उसकी वैश्रवण से धनिष्ठा है । वैश्रवण उसके पास नियम से चार फल भेजता है । उसके पास जा ।”

वह ‘अच्छा’ कह तपस्वी के पास पहुँच, प्रणाम कर एक ओर बैठा । तपस्वी ने पूछा—कहाँ से आये ?

“वाराणसी राजा के पास से ।”

“किस लिये आये ?”

“स्वामी ! हमारे राजा की रानी को पके अन्दर के आम खाने का दोहद उत्पन्न हुआ । उसके लिये आया हूँ । राजाओं ने मुझे स्वर्ण पका आम न दे आप के पास भेजा है ।”

“तो बैठ, मिलेगा ।”

वैश्रवण ने उसके पास चार फल भेजे । तपस्वी ने उनमें से दो खाये । एक तोते को खाने के लिये दिया । उसके खा चुकने पर एक फल छींके में रख, तोते की गरदन में डाल ‘अब जा’ कह तोते को विदा किया । उसने वह

लाकर देवी को दिया । उसने उसे खा दोहद को शान्त किया । लेकिन उसके कारण उसे पुत्र नहीं हुआ ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय देवी राहुल-माता थी । तोता आनन्द था । पका आम देने वाला तपस्वी सारिपुत्र । उद्यान में रहने वाला तपस्वी मैं ही था ।

२८२. सेय्य जातक

“सेय्यसो सेय्यसो होति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल-नरेश के एक अमात्य के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह अमात्य राजा का बहुत उपकारी था, सब काम कर देने वाला । राजा ने उसे अपना बहुत उपकारी जान महान सम्पत्ति दी । दूसरे ईर्षालुओं को यह सहन न हुआ । उन्होंने चुगली खा राजा का मन उसकी ओर से खट्टा कर दिया । राजा ने उनके कहने पर विश्वास कर, अपराध की जाँच न कर, उस निर्दोष सदाचारी को जंजीर से बँधवा कैदखाने में डलवा दिया । वह वहाँ अकेला रहता हुआ सदाचार के कारण चित्त की एकाग्रता को प्राप्त हो, संस्कारों पर विचार कर स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । आगे चलकर राजा ने उसे निर्दोष समझ जंजीर तुड़वा, पहले जितनी सम्पत्ति दी थी उससे भी अधिक दी । वह शास्ता को प्रणाम करने की इच्छा से बहुत सुगन्धि, माला आदि ले विहार गया । वहाँ तयागत की पूजा कर, प्रणाम कर, एक ओर बैठा । शास्ता ने उसका कुशल समाचार पूछते हुए कहा—“सुना तुम्हारा अनर्थ हुआ है !”

“हाँ मन्ते, अनर्थ हुआ, लेकिन मैंने उस अनर्थ से भी अर्थ निकाल लिया । कारागार में बैठकर स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया ।”

“उपासक, केवल तू ने ही अनर्थ में से अर्थ नहीं निकाला, किन्तु पुराने पंडितों ने भी अनर्थ में से अर्थ निकाला ही है” कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख में पैदा हुए । बड़े होने पर तत्तशिला जा शिल्प सीखा । पिता के मरने पर राजा बन दस राज-धर्मों का उल्लंघन न करते हुए वह दान देता, शील की रक्षा करता, और उपोसथ (व्रत) रखता । उसके एक अमात्य ने अन्तःपुर को दूषित कर दिया । नौकर चाकरों ने जान, राजा को सूचित किया कि अमुक अमात्य ने अन्तःपुर को दूषित किया है ।

राजा ने जाँच करवा जैसा हुआ था वैसा जान उसे निकाल बाहर किया—अब से तू मेरी सेवा में मत रह । वह जाकर एक सामंत राजा की सेवा में रहने लगा । शेष सारी कथा उक्त महासीलव जातक^१ में आई कथा की तरह ही है ।

इस कथा में भी उस राजा ने तीनवार—परीक्षा कर उस अमात्य की बात मान वाराणसी राज्य लेने की इच्छा की । बड़ी भारी सेनाले वह राज्य सीमा पर आ पहुँचा । वाराणसी राजा के ५०० महा योद्धाओं ने यह समाचार सुन, राजा से निवेदन किया—देव ! अमुक राजा वाराणसी राज्य लेने की इच्छा से जनपद चीरता हुआ चला आता है । हम जाकर उसे वहीं पकड़ें ।

“मुझे पराई हिंसा से प्राप्त राज्य की आवश्यकता नहीं । कुछ मत करो ।”

चोर-राजा ने आकर नगर को घेर लिया । मंत्रियों ने फिर राजा से निवेदन किया—देव ! हम उसे पकड़ लें ! राजा ने उत्तर दिया—कुछ करने की आज्ञा नहीं है । नगर-द्वार खोल दो । वह स्वयं अमात्यों सहित ऊँचे तल्ले पर सिंहासन पर जा बैठा । चोर-राजा ने चारों दरवाजों से अपने आदमी

घुसा, नगर में प्रविष्ट हो, प्रासाद पर चढ़, अमात्यों सहित राजा को पकड़वा, जंजीरों से बंधवा, कारागारा में डलवा दिया ।

राजा ने बंधनागार या कारागार में बैठे बैठे ही चोर राजा के प्रति मैत्री भावना करते हुए मैत्री ध्यान प्राप्त किया । उसकी मैत्री के प्रताप से चोर राजा के शरीर में जलन पैदा हुई । सारा शरीर दो मशालों से झुलस दिए की तरह होगया । उसने महान पीड़ा अनुभव करते हुए पूछा—(इस दुख का) क्या कारण है ?

“तुमने सदाचारी राजा को कारागार में डलवाया है, उसी से यह दुख पैदा हुआ होगा ।”

उसने जा कर बोधिसत्व से क्षमा माँग ली और उसका राज्य लौटा दिया—तुम्हारा राज्य तुम्हारे ही पास रहे । अब से तुम्हारे शत्रुओं की जिम्मेदारी मुझ पर है । उस दुष्ट अमात्य को राज-दण्ड दे, वह अपने नगर को ही लौट गया । बोधिसत्व ने अलंकृत ऊँचे तल पर श्वेत-छत्र के नीचे राज्य सिंहासन पर बैठ, हृद् गिर्द बैठे अमात्यों से बात चीत करते हुए पहली दो गाथाएँ कहीं:—

सेय्यंसो सेय्यसो होति यो सेय्यमुपसेवति,
एकेन संधिं कत्वान सतं वज्जे अमोचयि ।
तस्मा सम्भेन लोकेन संधिं कत्वान एको,
पेच्च सग्गं निगच्छेय्य इदं सुणाय कासयो ॥

[जो श्रेष्ठ कार्यकर्ता है, उस श्रेष्ठ कार्य करने वाले का कल्याण होता है । एक से मेल करके सौ बद्ध होने वालों को मुक्त कराया । इस लिये सप्त काशीवासी यह सुनें और अकेला आदमी सारे लोक से मैत्री भावना^१ कर मर कर स्वर्ग प्राप्त करे ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने जनता को मैत्री भावना के लाभ बता बारह योजन के वाराणसी नगर का श्वेत-छत्र छोड़, हिमालय में प्रविष्ट हो ऋषि प्रवज्या ग्रहण की ।

^१ मैत्री भावना से विचार-समाधि कामावचर-लोक में जन्म देती है और अर्पणा से ब्रह्मलोक में ।

शास्ता ने सम्यक् सम्बुद्ध होने पर तीसरी गाथा कही—

इदं वत्वा महाराजा कंसो वाराणसिगहो,

धनुं तूष्णिञ्च निष्किल्प सञ्जमं अञ्जुपागमि ॥

[यह कह वाराणसी पर अधिकार करने वाला राजा कंस, धनुष और तूष्णीर छोड़कर संयम के मार्ग पर आरुढ़ हो गया।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय चोर-राजा आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

२८३. बड्ढकीसूकर जातक

“वरं वरं त्वं . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धनुग्गाह तिस्स स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

प्रसेनजित राजा के पिता महाकोशल ने बिम्बिसार राजा को अपनी लड़की कोशल-देवी व्याहने के समय उसके स्नान-चूर्ण के मूल्य के तौर पर उसे काशी गाँव दिया जिससे लाख की आदमनी होती थी। अजातशत्रु के पिता की हत्या करने पर कोशल देवी भी शोकाभिभूत हो मर गई। तब प्रसेनजित राजा ने सोचा—अजात शत्रु ने पिता को मार डाला—स्वामी के मरण-शोक से मेरी बहन भी मर गई। मैं इस पितृ-घातक चोर को काशी गाँव नहीं दूँगा। उसने अजातशत्रु को वह गाँव नहीं दिया। उस गाँव के कारण उन दोनों का समय समय पर युद्ध होता। अजातशत्रु तरुण था, सामर्थ्यवान था, प्रसेनजित था बूढ़ा। वह बार बार पराजित होता, महा-कोशल के भी आदमी बहुत करके पराजित हो गए। राजा ने अमात्यों से पूछा—हम बार बार हार जाते हैं, क्या करना चाहिये ?

“देव ! आर्य (= भिक्षु) मंत्रणा में बड़े पदु होते हैं । जेतवन विहार में भिक्षुओं की बात-चीत सुननी चाहिये ।”

राजा ने चर-पुरुषों को आशा दी—समय समय पर उनकी बात-चीत सुनो । वे तब से वैसा करने लगे ।

उस समय दो वृद्ध स्थविर विहार की सीमा पर पर्ण-शाला में रहते थे । उत्तर स्थविर और धनुग्गहतिस्स स्थविर । उनमें से धनुग्गहतिस्स स्थविर रात्रि के पहले और मध्यम पहर में सो, आखिरी पहर में उठ, जलावन को तोड़, आग बाल, बैठे ही बैठे बोले—भन्ते उत्तर स्थविर !

“क्या है भन्ते तिस्सस्थविर ?”

“क्या आप सो रहे हैं ?”

“न सोते हों, तो क्या करेंगे ?”

“उठ कर बैठें ।”

वह उठ बैठे । उन्होंने उत्तर स्थविर से कहा—

“यह तुम्हारा लोभी महापेटू कोशल (नरेश) चाटी भर भात को ही गन्दा करता है । युद्ध संचालन कुछ नहीं समझता । हार-गया, हार-गया ही कहलवाता है ।”

“तो उसे क्या करना चाहिये ?”

उस समय चर-पुरुष खड़े उनकी बात चीत सुन रहे थे । धनुग्गह-तिस्स स्थविर ने युद्ध के बारे में अपना विचार कहा—

“भन्ते ! युद्ध में तीन तरह के व्यूह होते हैं—पद्म-व्यूह, चक्र-व्यूह और शकट-व्यूह । अजातशत्रु को पकड़ने के इच्छुक को चाहिये कि वह अमुक पर्वत की कोख में दो पर्वतों की ओट में मनुष्यों को छिपा, आगे दुर्बल सेना दिखाए । फिर शत्रु को पर्वत में पा, पर्वतों के बीच में प्रविष्ट हुआ जान, प्रवेश-मार्ग को बन्द कर दे । इस प्रकार आगे और पीछे दोनों ओर पर्वत की ओट से कूद कर शोर मचाते हुए उसे घेर लें, जैसे जाल में फँसी मछली अथवा मुट्ठी में आया मेंढक का बच्चा । इस प्रकार उसे पकड़ा जा सकता है ।”

चर-पुरुषों ने यह बात राजा से कही । यह सुन राजा ने संग्राम-दुन्दुभी बजवायी और जाकर शकट-व्यूह बना अजातशत्रु को जीता पकड़-बाया । फिर अपनी लड़की वजिर कुमारी भाँजे को ब्याह, उसके स्नान-भूत्य

के तौर पर काशी गाँव दे बिदा किया। वह समाचार भिक्षु-संघ में फैल गया। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बैठे बैठे चर्चा चलाई—आयुष्मानो ! कोशल राजा ने धनुग्गहतिस्स की मंत्रणा के अनुसार अज्ञात शत्रु को जीत लिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

“अमुक बात-चीत।”

“भिक्षुओ, न केवल अभी, धनुग्गहतिस्स युद्ध-मंत्रणा में पटु है, किन्तु वह पहले भी पटु रहा है।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी के पास एक बड़इयों का गाँव था। उनमें से एक बड़ई लकड़ी के लिये जंगल गया। वहाँ उसने गट्टे में पड़े एक सुअर-बच्चे को देख घर, लाकर पोसा। वह बड़ा होकर महान शरीर वाला, टेढ़ी डाढ़ों वाला, किन्तु सदाचारी हुआ। बड़ई द्वारा पोसे जाने के कारण उसका नाम बड़ई-सूअर ही पड़ गया। वह बड़ई के वृक्ष छीलने के समय यथनी से वृक्ष को उलटता पलटता, मुँह से उठा कर वासी (छुरी-कुल्हाड़ी) फरसा, रखानी, तथा मोगरी ला देता। काले डोरे का सिरा पकड़ लेता।

वह बड़ई, कोई इसे खा न जाय, इस भय से ले जाकर जंगल में छोड़ आया। उसने भी जंगल में चोमकर, सुखकर स्थान खोजते हुए एक पर्वत की ओट में एक महान गिरि-कन्दरा देखी, जहाँ खूब कन्द मूल थे और सुख से रहा जा सकता था। सैंकड़ों सूअर उसे देख उसके पास पहुँचे। उसने उन्हें कहा—“मैं तुम्हें ही ढूँढ़ता था। तुम यहाँ मिल गए। यह स्थान रमणीय है। मैं अब यही कहूँगा।”

“सचमुच यह स्थान रमणीय है, लेकिन यहाँ खतरा है।”

“मैंने भी तुम्हें देखकर यही जाना। चरने के लिये ऐसी अच्छी जगह रहते हुए भी शरीर में मांस रक्त नहीं है। यहाँ क्या खतरा है ?”

“एक व्याघ्र प्रातःकाल ही आकर जिसे देखता है, उसे उठा ले जाता है।”

“क्या यह लगातार ले जाता है या कभी कभी ?”

“लगातार ।”

“व्याघ्र कितने हैं ?”

“एक ही ।”

“तुम इतने हो एक से पार नहीं पा सकते ?”

“हाँ नहीं सकते ।”

“मैं उसे पकड़ूँगा, तुम केवल मेरा कहना करना । वह व्याघ्र कहाँ रहता है ?”

“इस पर्वत में ।”

उसने रात को ही सूअरों को चरा, युद्ध संचालन का विचार करते हुए ‘व्यूह तीन तरह के होते हैं—पद्म-व्यूह, चक्र-व्यूह तथा शकट-व्यूह’ कह. पद्म-व्यूह का निश्चय किया । वह उस भूमि-भाग से परिचित था । इसलिये यहाँ युद्ध की योजना करनी चाहिये, सोच उसने पादुरों और उनकी माताओं को बीच में रखा । उनके गिर्द बाँझ सूअरियों को, उनके गिर्द बच्चे-सूअरों को, उनके गिर्द लड़के-सूअरों को, उनके गिर्द लम्बी दाढ़ वाले सूअरों को और उनके गिर्द युद्ध करने में समर्थ, बलवान सूअरों के दस दस, बीस बीस के झुण्ड जहाँ तहाँ स्थापित किए । अपने खड़े होने के स्थान के आगे एक गोल गढ़ा खुदवाया । पीछे से एक छाज की तरह, क्रमानुसार नीचे होता हुआ ढलवान भूमि के सदृश । उसके साथ सत्तर या द्वादस सूअरों को जहाँ तहाँ ‘मतङ्गरे’ कह नियुक्त करते हुए अरुणोदय हो गया ।

व्याघ्र ने उठकर देखा कि समय हो गया । उसने जाकर उनके सामने के पर्वत-तल पर खड़े हो आँखें खोल सूअरों को देखा । बड़ई-सूअर ने सूअरों का इशारा किया कि वे भी उस ही ओर घूर कर देखें । उन्होंने वैसे देखा । व्याघ्र ने मुँह खोल कर सांस लिया । सूअरों ने भी वैसे किया । व्याघ्र ने पेशाब किया । सूअरों ने भी किया । इस प्रकार जो जो उसने किया, वही उन्होंने भी किया । वह सोचने लगा—पहले सूअर मेरे देखने पर भागने का प्रयत्न करते हुए भाग भी नहीं सकते थे, आज बिना भागे मेरे प्रति-शत्रु बन जो मैं करता हूँ, वह करते हैं । एक ऊँचे से स्थल पर खड़ा हुआ उनका नेता भी है । आज मैं गया तो जीतने की सम्भावना नहीं है ।

वह रुक कर अपने निवास स्थान को लौट गया । उसके मारे मांस को खाने वाला एक कुटिल, जटिल तपस्वी था । उसने उसे खाली आता देख उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही :—

वरं वरं त्वं निह्नं पुरे चरि
अस्मिं प्रदेशे अभिभूय्य सूकरे,
सोदानि एको व्यपगम्य मायसि
बलन्नु ते व्यग्न नचज्ज विज्जति ॥

[पहले तू इस प्रदेश के सूअरों को अभिभूत कर उनमें से अच्छे अच्छे मार कर खाता था । अब एक ओर अकेला होकर ध्यान कर रहा है । हे व्याघ्र ! आज तुझ में बल नहीं है ।]

यह सुन व्याघ्र ने दूसरी गाथा कही :—

इमे सुवं यान्ति विसोविसं पुरे
भयद्विता लेणगवेसिनो पुथू ,
ते दानि सगंम्म रसन्ति एकतो
यत्थद्विता दुप्पसहज्ज मे मया ॥

[पहले ये डर के मारे अपनी अपनी गुफाओं को खोजते हुए जिस तिस दिशा में भाग जाते थे । अब एक जगह इकट्ठे होकर आवाज लगाते हैं । आज मेरे लिये इनका मर्दन करना दुष्कर है ।]

इस प्रकार उसे उत्साहित करते हुए कुटिल तपस्वी ने कहा—जा तेरे चिंगघाड़ कर छलांग मारने पर सभी डर कर तितिर-बितिर हो भाग जायेंगे । उसके उत्साह दिलाने पर व्याघ्र बहादुर बन फिर जाकर पर्वत शिखर पर खड़ा हुआ । बड़ई-सूअर दोनों गढ़ों के बीच में खड़ा था । सूअर बोले—

“स्वामी महाचोर फिर आ गया है ।”

“डरो मत । अब उसे पकड़ूँगा ।”

व्याघ्रने गरज कर बड़ई-सूअर पर आक्रमण किया । सूअर उसके अपने ऊपर आने के समय जल्दी से पलट कर सीधे खने गढ़ में जा पड़ा । व्याघ्र बेग को न रोक सकने के कारण ऊपर ऊपर जाकर छाज की तरह के टेढ़े खने गढ़ में अत्यन्त बीहड़ जगह गिर कर ढेर सा हो गया । सूअर गढ़ से निकला । उसने बिजली की तेजी से जा व्याघ्र की जाँघों में अपनी काँपों

से प्रहार कर नाभि तक चीर डाला । फिर पांच प्रकार का मधुर मांस काँपों से लपेट व्याघ्र के मस्तक को छेद “लो अपने शत्रु को” कह उठाकर गढ़े से बाहर किया । पहले जो आये उन्हें मांस मिला । पीछे आने वाले उनका मुँह सूँघते फिरते थे कि व्याघ्र-मांस कैसा होता है ? सूअरों को अभी सन्तोष नहीं था । बड़ई-सूअर ने उनका आकार प्रकार देख पूछा—क्या अभी सन्तुष्ट नहीं हो ?

“स्वामी, इस एक व्याघ्र के मारे जाने से क्या लाभ ? दूसरे दस व्याघ्र ला सकने वाला कुटिल तपस्वी जीता ही है ।”

“यह कौन है ?”

“एक दुराचारी तपस्वी ।”

“उसकी क्या सामर्थ्य है जब व्याघ्र भी मैंने मार डाला ।”

वह उसे पकड़ने के लिये सूअर समूह के साथ चला ।

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि व्याघ्र को देर हो रही है तो सोचने लगा कि कहीं सूअरों ने व्याघ्र को पकड़ तो नहीं लिया है । वह जिधर से सूअर आ रहे थे, उधर ही जा रहा था । सूअरों को आता देख अपना सामान लेकर भागा । सूअरों ने पीछा किया । वह सामान छोड़कर जल्दी से गूलर के पेड़ पर चढ़ गया । सूअर बोले—स्वामी ! हम मारे गये । तपस्वी भागकर वृक्ष पर चढ़ गया ।

“यह कौनसा वृक्ष है ?”

“यह गूलर वृक्ष है”

उसने सूअरियों को आज्ञा दी कि वे पानी लायें, सूअर-बच्चों को आज्ञा दी कि वे खोदें, और बड़े दाँतों वाले सूअरों को कहा कि वे जड़ें काटें । फिर स्वयं गूलर की सीधी मोटी जड़को फसें से काटते हुये की तरह, एक प्रहार से ही गूलर को गिरा दिया । घेर कर खड़े सूअरों ने कुटिल तपस्वी को जमीन पर गिरा, टुकड़े टुकड़े कर, हड्डियाँ मात्र छोड़ खा डाला । फिर बड़ई-सूअर को गूलर की जड़ में ही बिठा, कुटिल तपस्वी के शङ्ख में ही पानी मंगवा, अभिषिक्त कर राजा बनाया । एक तरुण सूअरी का अभिषेक कर उसे उसकी पटरानी बनाया ।

उस दिन से आज तक राजाओं को गूलर के श्रेष्ठ पीढ़े पर बिठा कर तीन शङ्खों से उनका अभिषेक किया जाता है। उस वन-खण्ड में रहने वाले देवता ने यह आश्चर्य्य देख एक खोह में सूअरों के सामने खड़े हो तीसरी गाथा कही :—

नमस्तु सङ्गानं समागतानं
विस्वा सयं सत्प्रवदामि अब्रुतं,
व्यग्नं मिता यत्थ जिनिं सु दाठिनो
साममिया दाठबले सु मुच्चरे ॥

[आये हुए (सूअरों के) संध को मेरा नमस्कार है। मैं इस अद्भुत मैत्री-भाव को स्वयं देखकर नमस्कार करता हूँ। जहाँ दाँतों वाले मृगों (सूअरों) ने व्याघ्र को जीत लिया। सूअरों में एकता होने से ही वे मुक्त हुए।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धनुग्गह तिस्स बड़ई-सूअर था। वृद्ध-देवता मैं ही था।

२८४. सिरि जातक

“यं उस्सुका संघरन्ति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक श्री-चोर ब्राह्मण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की वर्तमान-कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक^१ में आई ही है। इस कथा में भी वह अनाथ-पिण्डिक के घर में चौथी ज्योढ़ी में रहने

^१ खदिरङ्गार जातक (१.४.४०)।

वाली मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। उसने दरहकर्म-स्वरूप चौवन करोड़ सोना लाकर कोठों में भर, अनाथ-पिण्डिक के साथ मैत्री स्थापित की। वह उस देवी को शास्ता के पास ले गया। शास्ता ने उसे धर्मोपदेश दिया। वह धर्मोपदेश सुन सोतापन्न हुई। तब से सेठ का धन पूर्ववत् हो गया।

एक श्रावस्ती-वासी श्रीलक्ष्मण ब्राह्मण ने सोचा कि अनाथ-पिण्डिक दरिद्र होकर फिर ईश्वर हो गया। मैं उसे देखने जाने वाले की तरह जा उसके घर से श्री चुरा लाऊँ। वह उसके घर पहुँचा। अनाथ-पिण्डिक द्वारा सत्कृत हो, कुशल-क्षेम की बात होने पर जब उससे पूछा गया कि किस लिये आये हो, तो वह ढूँढ़ने लगा कि श्री कहाँ प्रतिष्ठित है? सेठ का एक धुले शङ्ख जैसा सूर्यश्वेत मुर्गा सोने के पिंजरे में बन्द था। उसकी कलगी में श्री प्रतिष्ठित थी। ब्राह्मण ने यह देखा कि श्री मुर्गे की कलगी में प्रतिष्ठित है। बोला—महासेठ! मैं पाँच सौ विद्यार्थियों को मन्त्र पढ़ाता हूँ। एक मुर्गे के कारण जो समय असमय बोलता है, वे और मैं कष्ट पाते हैं। यह मुर्गा समय से बोलने वाला है। मैं इसके लिये आया हूँ। मुझे यह मुर्गा दे दे।

“ब्राह्मण मुर्गा ले ले। मैं तुम्हें मुर्गा देता हूँ।”

‘देता हूँ’ कहते ही उसकी कलगी से निकल कर श्री तकिये में रखी मणि में जा प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ने यह जान कि श्री मणि में प्रतिष्ठित हो गई, उसे भी माँगा। ‘मणि भी देता हूँ’ कहते ही श्री मणि से निकल तकिये पर रखी छड़ी में जा प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ने यह जान कि श्री वहाँ प्रतिष्ठित है, उसे भी माँगा। ‘मंगवाकर (ले)जा’ कहते ही श्री सेठ की पटरानी पुण्य-लक्ष्मण-देवी के सिर में प्रतिष्ठित हो गई। श्री-चोर ब्राह्मण ने जब देखा कि श्री वहाँ प्रतिष्ठित हो गई, तब यह सोच कर कि ‘यह वस्तु तो दी नहीं जा सकती है, इसलिये माँगी नहीं जा सकती’ कहा—महा सेठ! मैं तुम्हारे घर श्री चुराने के लिये आया था। श्री तुम्हारे मुर्गे की कलगी में प्रतिष्ठित थी। जब वह मुझे दे दिया गया, तो मणि में प्रतिष्ठित हुई। जब मणि दे दी गई, तो छड़ी में प्रतिष्ठित हुई। जब छड़ी दे दी गई, तो पुण्य-लक्ष्मण देवी के सिर में प्रतिष्ठित हुई। यह दी जा सकने वाली चीज़ नहीं, इसका नाम भी नहीं लिया। मैं तुम्हारी श्री नहीं चुरा सकता। तुम्हारी श्री तुम्हारी ही रहे।

वह आसन से उठ कर चला गया।

अनाथ-पिण्डिक ने यह बात शास्ता को सुनाने की इच्छा से विहार जा, शास्ता की पूजा तथा वन्दना कर, एक और बैठ सारी बात तथागत से निवेदन की। शास्ता ने यह बात सुन 'गृहपति ! दूसरों की श्री दूसरी जगह नहीं जाती। हाँ पूर्व समय में अल्प-पुण्यों की श्री पुण्यवानों के चरणों में जा पहुँची' कह उसके पूछने पर पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख गृहस्थी की। माता पिता के मरने पर वैराग्य हुआ तो घर छोड़ हिमालय प्रदेश में जा, ऋषि-प्रब्रज्या ग्रहण कर समापत्तियाँ प्राप्त कीं। फिर बहुत समय बीतने पर नमक-खटाई खाने के लिए जन-पद लौट वाराणसी-नरेश के उद्यान में रहने लगे। अगले दिन भिक्षाटन करते हुए हाथी-आचार्य के घर भिक्षा के लिये पहुँचे। वह उसकी चर्या तथा व्यवहार से प्रसन्न हुआ और भिक्षा दे, उद्यान में बसा, नित्य सेवा करने लगा।

उस समय एक लकड़हारा जंगल से लकड़ियाँ ला समय से नगर में प्रविष्ट न हो सका। शाम को एक देव-कुल में लकड़ियों की ढेरी का तकिया बना लेट रहा। देवकुल में रहने वाले बहुत से मुर्गे उससे थोड़ी ही दूर पर एक वृक्ष पर सो रहे थे। उनमें से ऊपर सोये मुर्गे ने प्रातःकाल बीठ गिराते समय नीचे सोये हुए मुर्गे के शरीर पर गिरा दी। “मेरे शरीर पर किसने बीठ गिराई” पूछने पर उत्तर दिया—

“मैंने गिराई।”

“क्यों गिराई?”

“असावधानी से।”

किन्तु, फिर भी उसने बीठ गिराई। तब दोनों में झगड़ा हो गया—
“तुझमें कौन सा बल है ? और ‘तुझ में कौनसा बल है ?’

नीचे सोए मुर्गे ने कहा—मुझे मार कर अङ्गार पर पका कर मेरा मांस खाने वाला प्रातः काल ही एक हजार कार्षापण पाता है। ऊपर सोया हुआ मुर्गा बोला—तू इतने से ही मत गर्ज। स्थूल मांस को खाने वाला

राजा होता है। बाहरी मांस खाने वाला सेनापति होता है और यदि स्त्री हो तो पटरानी होती है। और मेरे अस्थि-मांस को खाने वाला यदि गृहस्थ हो तो खजानची बनता है, यदि प्रव्रजित हो राज-कुल विश्वस्त होता है।

लकड़हारे ने उनकी बात सुन सोचा—राज्य मिलने पर हजार की क्या आवश्यकता ? उसने धीरे से चढ़, ऊपर सोये मुर्गे को पकड़, मार कर अपने पल्ले में बांधा। फिर 'राजा बनूंगा' सोच, जा, खुले-द्वार से नगर में प्रवृष्ट हो, मुर्गे की चमड़ी उतार, पेट साफ कर अपनी भाय्या को दिया—इस मुर्गे के मांस को अच्छी तरह पका। उसने मुर्गे का मांस और भात तैयार कर सामने ला कर रखा—

“स्वामी ! खायें।”

“भद्रे ! यह मांस बड़े प्रभाव वाला है। इसे खाकर मैं राजा बनूंगा और तू पटरानी बनेगी। इस भात और मांस को लेकर गङ्गा किनारे जा नहाकर खायेंगे।”

वे भात का बरतन किनारे पर रख नहाने के लिए उतरे। उस समय हवा से लुब्ध हुआ पानी आकर भात का बरतन बहा ले गया। नदी की धार में बहते उस बरतन को हाथियों को नहलाने वाले एक बड़े हाथी-आचार्य्य ने देखा। उसने उठवाकर, उधड़वाकर पूछा—इसमें क्या है ?

“स्वामी ! भात है और मुर्गे का मांस है।”

उसने उसे बंद करवा, उस पर मोहर लगवा अपनी भाय्या के पास भेज दिया—जब तक हम न आयें तब तक इस भात को न बाँटे। वह लकड़हारा भी मुँह में बालू और पानी भर जाने से, पेट फूल जाने के कारण भाग गया।

उस हाथी-आचार्य्य का एक कुल-विश्वस्त तपस्वी था दिव्य-चक्षु धारी। वह सोचने लगा कि मेरा सेवक हाथी के स्थान को नहीं छोड़ रहा है। उसे सम्पत्ति कब मिलेगी ? उसने दिव्य-चक्षु से इसका विचार करते हुए उस आदमी को देखा और बात समझ कर पहले ही जाकर हाथी-आचार्य्य के घर बैठ रहा। हाथी-आचार्य्य ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ कर कहा—तपस्वी को मांस और भात परोसो। तपस्वी ने भात ले, मांस दिये जाने पर, न ले कर कहा—इस मांस को मैं बाँटूंगा। ‘भन्ते ! बाँटे।’ कहने पर स्थूल

मांस आदि हिस्से करके स्थूल-मांस आचार्य्य को दिलवाया । बाहर का मांस उसकी भार्या को और अस्थि-मांस स्वयं खाया । जाते समय वह कह गया—आज से तीसरे दिन तू राजा होगा । अप्रमादी होकर रह । तीसरे दिन एक सामन्त राजा ने आकर बाराणसी का घेर लिया । बाराणसी नरेश ने हाथी-आचार्य्य को राजकीय भेष-भूषा पहना, हाथी पर चढ़ा आज्ञा दी—तू युद्ध कर । स्वयं छिपे भेष में सेना-संचालन करते समय एक तेज तीर से बीधा जाकर उसी समय मर गया ।

उसे मरा जान हाथी-आचार्य्य ने बहुत ते कार्षापण मंगवा मुनादी कराई—जिन्हें धन की चाह हो वह आगे बढ़ कर लड़ें । सेना ने मुहूर्त भर में ही विरोधी राजा को मार डाला । अमात्यों ने राजा की शरीर-क्रिया कर सोचा—किसे राजा बनायें ? उन्होंने निर्णय किया—राजा ने अपने जीवन-काल में अपना भेष हाथी-आचार्य्य को दिया और फिर इसी ने युद्ध करके राज जीता । इसे ही राजा बनायें । उसे ही राज्याभिषिक्त किया । उसकी भार्या को पटरानी बनाया । बोधिसत्व राजकुल-विश्वस्त हुए । शास्ता ने यह धर्मापदेश ला अभिसम्बुद्ध होने पर ये दो गाथाएँ कहींः—

यं उत्सुका सङ्हरन्ति अलङ्घिका बहू धनं,
सिप्पवन्तो असिप्पा च लङ्घिवा तानि भुञ्जति ।
सम्बथ कतपुञ्जस्स अतिच्चम्मेव पाणिनो,
उप्पज्जन्ति बहू भोगा अप्पनायतनेसुपि ॥

[अभागे लोग जिस धन के संग्रह के लिये बहुत उत्सुक होते हैं, उमे शिल्पी हों चाहे अशिल्पी हों, भाग्यवान् ही उपभोग में लाते हैं । सर्वत्र दूसरे प्राणियों को छोड़कर पुण्य-वान् प्राणी को ही भोग प्राप्त होते हैं, जहां से भोग नहीं प्राप्त होते वहां से भी ।]

शास्ता ने ये गाथाएँ कह 'हे गृहपति ! इन प्राणियों के लिए पुण्य के समान दूसरा आयतन नहीं है । पुण्यवान् के लिए जो खानें नहीं हैं, उनमें से भी रत्न पैदा होते हैं' कहा । फिर ये धर्मदेशना की—

एस देवमनुस्सानं सम्बकामददो निधी,
यं यदेवाभिपत्येन्ति सम्बमेतेनसम्भति ॥१॥

सुवर्णशता सुस्तरता सुसण्डान सुरूपता,
 आधिपच्चपरिवारा सम्बमेतेन लब्धमिति ॥२॥
 पदेसरज्जं हस्सरियं चक्कवत्तिमुखमि थं,
 देवरज्जमि दिम्बेसु सम्बमेतेन लब्धमिति ॥३॥
 मानुस्सिका च सम्पत्ति देवलोके च या रति,
 या च निम्बाणसम्पत्ति सम्बमेतेन लब्धमिति ॥४॥
 मित्तसम्पदमागम्म योनिसो वे पयुज्जतो,
 विजा विमुत्तिवसीभावो सम्बमेतेन लब्धमिति ॥५॥
 पटिसम्मिदा विमोक्खो च या च सावकपारमी,
 पच्चेकबोधि बुद्धभूमि सम्बमेतेन लब्धमिति ॥६॥
 एवं महिद्धिया एसा यदिदं पुञ्ञसम्पदा,
 तस्मा धीरा परं सन्ति पण्डिता कतपुञ्ञतं ।^१

[यह (पुण्य) सब देवताओं तथा मनुष्यों की सभी कामनायें पूरी करने वाला खजाना है। इससे जिस जिस की इच्छा करते हैं, वह सभी मिलता है ॥१॥ सुवर्ण, सुस्वर, सुन्दर आकार, सुन्दर रूप, आधिपत्य और परिवार इससे सभी कुछ मिलता है ॥२॥ प्रदेश-वाज्य, ऐश्वर्य, चक्रवर्ती सुख और दिव्य-लोकों में देवराज्य भी—इससे सभी कुछ मिलता है ॥३॥ मानुषिक सम्पत्ति, दिव्य-लोक का आनन्द और निर्वाण सम्पत्ति—इससे सभी कुछ मिलता है ॥४॥ मित्र-सम्पत्ति को प्राप्त कर उसका ठीक उपयोग करने वाले को विद्या, विमुक्ति, वशीभाव इससे सभी कुछ मिलता है ॥५॥ पटिसम्मिदा-ज्ञान, विमोक्ष और जो श्रावक-पारमिता है, प्रत्येक-बोधि और बुद्ध भूमि भी—इससे सभी कुछ मिलता है ॥६॥ यह जो पुण्य-सम्पत्ति है, यह ऐसी ही महान् प्रभाव वाली है। इसीलिए धीर पण्डित जन पुण्य-कर्तृत्व की प्रशंसा करते हैं ॥७॥]

अब जिन जिन रत्नों में अनाथ-पिण्डक की श्री प्रतिष्ठित हुई। उन सब को कहने के लिये यह 'कुक्कट' गाथा कही :—

सुख पाठ, निधिकण सुत्त ।

कुक्कुटमणयो दण्डो थियो च पुष्पलवणयो,
उप्यजग्मि अपापस्स कतपुष्पस्स जन्तुनो ॥

[पाप-रहित, पुण्यवान् प्राणी को मुर्गा, मणि, छड़ी तथा खी 'रत्न' पैदा होते हैं ।]

गाथा कह कर जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द स्थविर था । कुल-विश्वासी तपस्वी तो सम्यक् सम्बुद्ध थे ।

२८५. मणिसूकर जातक

“दरिया सत्त्वस्सानि...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय सुन्दरी की हत्या के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

‘उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था’ क्या खन्धक में आई ही है । यहाँ संक्षिप्त कथा दी गई है । भगवान् तथा भिक्षुसंघ का जब पाँचों नदियों में आई बाढ़ की तरह लाभ-सत्कार होने लगा, तो दूसरे तैर्थिकों ने, जिनका लाभ सत्कार जाता रहा—सूर्योदय के समय जुगुनु की तरह निष्प्रभ हो, इकट्ठे हो सलाह की—जब से श्रमण गौतम हुआ है, तब से हमारा लाभ सत्कार जाता रहा । कोई यह भी नहीं जानता कि हम भी हैं । किसके साथ शामिल होकर हम श्रमणगौतम को निन्दित बना उसका लाभ-सत्कार नष्ट करें ? उन्हें सूझा कि सुन्दरी के साथ मिलकर ऐसा कर सकेंगे ।

एक दिन जब सुन्दरी तैर्थिकों के आराम में प्रवेश कर, प्रणाम कर खड़ी हुई तो उससे कोई नहीं बोला । उसके बार बार बोलने पर भी जब कोई नहीं बोला तो उसने पूछा—क्या आयों को किसी ने कष्ट दिया ?

“बहन ! क्या नहीं देखती है कि भ्रमण गौतम हमें कष्ट दे, हमारे लाभ-सत्कार को नष्ट कर घूमता है ?”

“मैं उस विषय में क्या कर सकती हूँ ?”

“बहन तू रूपवान है, अति सुन्दर है। भ्रमण गौतम को अप्रियश दे, जनता को अपनी बात का विश्वास करा, उसका लाभ-सत्कार नष्ट कर।”

उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया और चली गई। उस दिन से शाम को जब जनता शास्ता का धर्मोपदेश सुनकर नगर को लौटती, तो वह माला-गन्ध, विलेपन, कपूर, कटुकफ़ल आदि सुगन्धियाँ ले जेतवन की ओर जाती।

“कहाँ जाती है ?”

“भ्रमण गौतम के पास। मैं उसके साथ एक गन्धकुटी में रहती हूँ” कह किसी एक तैर्थिकों के आराम (विहार) में रात बिता प्रातःकाल ही जेतवन के रास्ते से उतर सड़क की ओर जाती। “क्यों सुन्दरी कहाँ गई थी ?” पूछने पर उत्तर देती—

“भ्रमण गौतम के साथ एक साथ गन्धकुटी में रह कर उससे रात-क्रीड़ा करके आई हूँ।”

इसके कुछ दिन बाद तैर्थिकों ने धूतों का कार्षापण देकर कहा—
“जाओ सुन्दरी को मार कर, भ्रमण गौतम की कुटी के समीप कूड़े की ढेरी में छिपा जाओ।” उन्होंने वैसा ही किया। तब तैर्थिकों ने हल्ला मचाया—
सुन्दरी नहीं दिखाई देती। राजा को खबर दी। पूछा कहीं सन्देह है ? कहा—
इन दिनों जेतवन जाती थी। वहाँ क्या हुआ, नहीं जानते ?

राजा ने आज्ञा दी—तो जाओ उसे खोजो। तैर्थिक अपने सेवक ले, जेतवन पहुँचे और खोजते हुये कूड़े के ढेर में देख उसे चारपाई पर लिटा नगर में ला राजा से कहा—भ्रमण गौतम के शिष्यों ने (अपने) शास्ता के पापकर्म को छिपाने के लिये सुन्दरी को मारकर मालाओं के कूड़े के ढेर में छिपा दिया।

“तो जाओ, नगर में घूमो।”

वे ‘भ्रमणों की करतूत देखो’ आदि कहते हुए नगर की गलियों में घूम-फिर राज-द्वार पर पहुँचे। राजा ने सुन्दरी के शरीर को कच्चे श्मशान में एक-
मचान बनवाकर उस पर रखवा दिया। आर्य-श्रावकों को छोड़ शेष

श्रावस्ती-वासी नगर में, नगर के बाहर, उपवन में, आरण्य में—सभी जगह भिक्षुओं की निन्दा करते घूमते थे—शाक्य-पुत्र श्रमणों की करतूत देखो । भिक्षुओं ने तथागत से यह बात कही ।

शास्ता ने कहा—उन मनुष्यों का इस प्रकार प्रतिवाद करो :—

अभूतवादी निरयं उपेति

यो वापि क्त्वा न करोमीति चाह,

उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति

निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥

[असत्य-वादी नरक में जाता है, जो करके 'नहीं किया' कहता है, वह भी नरक में जाता है । दोनों ही प्रकार के नीच-कर्म करने वाले मरकर बराबर हो जाते हैं ।]

राजा ने आदिमियों को नियुक्त किया कि पता लगायें कि किन दूसरों ने सुन्दरी को मारा है ? वह धूर्त उन कार्पाणों की शराव पी, एक दूसरे के साथ झगड़ा करते थे । उन में से एक बोला—तू ने सुन्दरी को एक ही प्रहार से मार दिया, उसकी लाश को मालाओं के कूड़े के ढेर में छिपा दिया । अब उसी से मिले कार्पाणों की शराव पीता है, अच्छा अच्छा । राजपुरुष उन धूर्तों को पकड़ कर राजा के पास ले गये । राजा ने पूछा—तुम ने मारा ?

“हाँ देव !”

“किसने मरवाया ?”

“दूसरे तैर्थिकों ने देव !”

राजा ने तैर्थिकों को बुलवाकर आज्ञा दी—जाओ, तुम सुन्दरी को उठाकर उसके साथ नगर में यह कहते हुए घूमो कि श्रमण गौतम को बदनाम करने के लिये हमने इस सुन्दरी को मरवाया । इस में न गौतम का दोष है, न गौतम-श्रावकों का दोष है । उन्होंने वैसा किया । मूर्ख जनता तब श्रद्धावान् हुई । तैर्थिकों ने भी मनुष्य-वध का दण्ड भोगा । तब से बुद्धों का सत्कार बढ़ गया ।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! तैर्थिक बुद्धों को कलङ्कित करना चाहते थे, स्वयं कलङ्कित हो गये । बुद्धों का

तो लाभ-सत्कार बढ़ गया। शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?

“अमुक बात चीत”

“भिन्नुओ, बुद्धों को कोई कालिख नहीं लगा सकता। बुद्धों को कालिख लगा सकना वैसा ही है जैसे मणि को कालिख लगा सकना। ‘पूर्व समय में मणि को कालिख लगाने का प्रयत्न करने वाले कालिख नहीं लगा सके’ कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बड़े होने पर काम-भोगों में दोष देख, निकलकर, हिमालय प्रदेश की तीन पर्वत मालायें पार कर, तपस्वी बन, पर्ण-शाला में रहने लगे। उसके थोड़ी ही दूर पर मणि-गुफा थी। वहाँ तीस सूअर रहते थे। गुफा के पास एक सिंह घूमता था। मार्ग में उसकी प्रति-छाया पड़ती थी। सिंह की छाया देख, डरके मारे सूअरों का खून और मांस सूख गया। उन्होंने सोचा—इस मणि के चमकदार होने से ही यह प्रति-छाया दिखाई देती है। इस मणि को मैला, भदा बना दें। वे समीप के एक तालाब में गये और वहाँ कीचड़ में लेट आकर मणि से बदन रगड़ने लगे। सूअरों के बालों की रगड़ खाने से मणि और भी चमकने लगी। सूअरों को जब मणि को मैला करने का कोई उपाय नहीं सूझा, तो उन्होंने सोचा कि मणि को मैला करने का उपाय तपस्वी से, पूछें। बोधिसत्व के पास आ, प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो उन्होंने पहली दो गाथायें कहीं:—

वरिया सत्त्वस्सानि तिसमत्ता वसामसे,

हृष्येम मणिनो आभं इति नो मन्तितं अहु ।

याव याव निबंसाम भीयो बोदायते मणि,

इदञ्चदानि पुञ्चाम किं किञ्चं इच्च मञ्जसि ॥

[हम तीस जने सात वर्ष से मणि-गुफा में रहते हैं। हमने निश्चय किया है कि मणि की आभा नष्ट कर दें। ज्यों ज्यों रगड़ते हैं, त्यों त्यों मणि अधिक अधिक चमकती जाती है। अब हम यह पूछते हैं कि क्या करना चाहिए ?]

उन्हें उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

अयं मणि वेळुरियो अकाचो विमलो सुभो,

नास्स सक्का सिरि हन्तुं अपक्कमथ सूकर ॥

[यह मणि बिल्लौर है, चिकनी है, विमल है, शुभ है। तुम इसकी चमक को नष्ट नहीं कर सकते। हे सूअरो ! (यहाँ से) चले जाओ।]

उन्होंने बोधिसत्व की बात सुन वैसा किया। बोधिसत्व ध्यान कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी मैं ही था।

२८६. सालुक जातक

“मा सालुकस्स पिहयि..” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक प्रौढ़ कुमारी के प्रति आसक्ति के बारे में कही।

कथा चुल्लनारदकस्सप^१ जातक में आएगी।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—“भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्तेजित है !”

“भन्ते ! हाँ।”

“तुझे किसने उत्तेजित किया है !”

“भन्ते ! प्रौढ़ कुमारी ने।”

^१ चुल्लनारद जातक (४०७); देखो मुनिक जातक (१.३.३०)

‘भिन्नु ! यह तेरी अनर्थ-कारिणी है । पूर्व-जन्म में भी तू इसके विवाह के लिये आई परिपद का जल-पान बना’ कह भिन्नुओं के प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महालोहित नाम का ब्रैल हुआ । उसके छोटे भाई का नाम था चुल्ललोहित । दोनों गामड़े के एक परिवार में काम करते थे । उस परिवार में एक आर्यु-प्राप्त कुमारी थी । उसकी दूसरे परिवार में शादी पक्की कर दी गई ।

उस कुल में सालुक नाम का एक सूअर यवागु-भात खिला खिला कर पोसा जाता था कि विवाह के समय जल-पान का काम देगा । वह चारपाई के नीचे सोता था । एक दिन चुल्ललोहित ने भाई को कहा:—

“भाई ! हम इस कुल में काम करते हैं । हमारे ही सहारे यह कुल जीता है । लेकिन यह मनुष्य हमें केवल तृण-पुआल भर देते हैं । इस सूअर को यवागु-भात खिला खिला कर पालते हैं । चारपाई के नीचे सुलाते हैं । यह इनका क्या (काम) करेगा ?”

महालोहित ने कहा—तात ! तू इसके यवागु-भात की इच्छा मत कर । इस कुमारी के विवाह के दिन, इसका जल-पान बनाने के लिये इसे पोस रहे हैं कि इसका मांस मोटा जाय । थोड़े ही दिन बाद देखना—चारपाई के नीचे से निकाल, मारकर, टुकड़े टुकड़े करके आगन्तुकों का भोजन बनायेंगे । यह कह उसने पहली दो गाथाएँ कहीं:—

मा सालुकस्स पिहयि आतुरज्जानि भुज्जति,
अप्पोसुक्को भुसं खाद एतं दीघायुलक्खणं ॥
इद्वानि सो इधागन्त्वा अतिथि युत्तसेवको,
अथ वक्खसि सालूकं सयन्तं मुसलुत्तरं ॥

[सालुक (सूअर के भोजन) की इर्षा (= इच्छा) मतकर । वह मरणान्त भोजन खाता है । (तू) उत्सुका-रहित होकर भूसे को खा । यह दीर्घायु का लक्षण है ।

[अब वह (= विवाह करने वाला) यहाँ आकर अतिथि होगा । तब तू मूसल की तरह होंठ वाले सूअर को सोता (मरा हुआ) देखेगा ।]

उसके कुछ दिन बाद बारात के आने पर सालुक को मारकर जल-पान किया गया । दोनों बैलों ने उसका यह हाल देख सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है ।

शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर इस अर्थ को प्रकट करने वाली तीसरी गाथा कही:—

विकृतं सूकरं दिस्वा सयन्तं मुसलुत्तरं,
जरग्वा विचिन्तेसुं वरग्हाकं भुसामिव ॥

[मूसल जैसे होंठ वाले सूअर को काटा जाकर मरा हुआ देख, बैलों ने सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है ।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठायी । सत्य के अन्त में वह भिन्नु सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय की प्रौढ़ कुमारी इस समय की प्रौढ़ कुमारी । सालुक उत्तेजित भिन्नु था । चुल्ललोहित आनन्द और महालोहित तो मैं ही था ।

२८७. लाभगरह जातक

“नानुमत्तो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के शिष्य के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के शिष्य ने पास आकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ पूछा— भन्ते ! मुझे वाम का मार्ग बतायें । क्या करने से चीवर आदि की प्राप्ति होती है ? स्थविर ने उत्तर दिया—आयुष्मान् ! चार बातों से युक्त होने से लाभ-सत्कार की प्राप्ति होती है । लाज-शर्म छोड़, श्रमणत्वका ख्याल न

कर, थोड़ा पागल की तरह होना चाहिए, नट की तरह होना चाहिए, असंयत-भाषी तथा सयंमरहित होना चाहिए । वह उस मार्ग की निन्दा करता हुआ आसन से उठकर चला गया । स्थविर ने शास्ता के पास पहुँच यह समाचार कहा । “सारिपुत्र ! इस भिक्षु ने केवल अभी लाभ की निन्दा नहीं की, पहले भी की है” कह, स्थविर के याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर सोलह वर्ष की आयु में तीनों वेदों तथा अठारह शिल्पों की शिक्षा समाप्त कर चारों दिशाओं में प्रसिद्ध अचार्य्य हुए । वह पाँच सौ ब्रह्मचारियों को शिल्प सिखाते थे । एक सदाचारी ब्रह्मचारी ने एक दिन अचार्य्य के पास जाकर पूछा—प्राणियों को (वस्तुओं की) प्राप्ति कैसे होती है ?

“तात ! प्राणियों को चार बातें होने से (वस्तुओं की) प्राप्ति होती है” कह पहली गाथा कही:—

नानुमत्तो नापिसुणो नानदो नाकुतूहलो,
मूळहेसु लभते लाभं एसा ते अनुसासनी ॥

[जो उन्मत्त(की तरह) नहीं है, जो चुगली नहीं खाता है, जो नाट्य करनेवालों की तरह नहीं है तथा जो असंयत नहीं है, वह मूल आदमियों से लाभ नहीं प्राप्त करता—यही तेरे लिए शिक्षा है ।]

शिष्य ने आचार्य का कहना सुन ‘प्राप्ति’ की निन्दा करते हुए ये दो गाथाएँ कहीं:—

धिरत्थु तं यसलाभं धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या वुत्ति विनिपातेन अधम्मचरियाय वा ॥
अपि चे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,
एसाव जीविका सेय्या या चाधम्मेन एसना ॥

[हे ब्राह्मण, उस यश-लाभ तथा धन-लाभ को धिक्कार है, जो जीविका आत्म-पतन से तथा अधर्म-चर्या से प्राप्त होती है । अधर्म से जीविका

खोजने की अपेक्षा यही अच्छा है कि भिक्षा-पात्र लेकर अनागारिक बन प्रव्रजित हो भिक्षा माँगे ।]

इस प्रकार वह ब्रह्मचारी प्रव्रज्या का गुणानुवाद कर, (घर से) निकल, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, धर्म से भिक्षाटन करता हुआ, समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय ब्रह्मचारी लाभ-निन्दक भिक्षु था । आचार्य्य तो मैं ही था ।

२८८. मच्छुदान जातक

“अग्घन्ति मच्छा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुटिल व्यापारी के बारे में कही । (वर्तमान) कथा पहले आ ही चुकी है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने एक कुटुम्बी के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर कुटुम्ब की स्थापना की । उसका एक छोटा भाई भी था । आगे चलकर उनका पिता मर गया । एक दिन वे दोनों पिता का कर्जा उगाहने गये । एक गाँव में पहुँच, वहाँ से एक हजार कार्षापण पा लौटते समय नदी-तीर्थ पर नाव की प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने एक पोटली का भात खाया । बोधिसत्व ने बचा हुआ भात गङ्गा में मछलियों को दे, नदी-देवता को (पुण्य का) हिस्सा दिया । देवता ने पुण्यानुमोदन किया । उसी से उसके पक्ष में वृद्धि हुई । उस वृद्धि के कारण का ध्यान करके उसने उसे जाना । बोधिसत्व ने भी बालू पर अपना उत्तरीय फैलाया और लेट कर सो रहा ।

इसका छोटा भाई कुछ चोर-प्रकृति का था । उसने वे कार्षापण बोधिसत्व को न दे, स्वयं ही लेने की इच्छा से, उन कार्षापणों की पोटली

जैसी ही एक और पोटली बना, उसे कंकरों से भर, दोनों पोटलियों को एक साथ रखा। जब वे नाव पर चढ़कर गङ्गा के बीच में गये तो छोटे भाई ने नौका में उलझ कर अपनी समझ में कंकरों की पोटली पानी में फेंकते हुए (वास्तव में) कार्पापणों की पोटली पानी में फेंक दी और भाई से कहा— कार्पापणों की पोटली पानी में गिर पड़ी, अब क्या करें ?

“जब पानी में गिर पड़ी तो अब क्या कर सकते हैं, चिन्ता मत करो।”

नदी-देवता ने सोचा—मैंने इसके दिये पुण्य के हिस्से का अनुमोदन कर यश-वृद्धि प्राप्त की। इसकी चीज की रक्षा करूँगा। उसने अपने प्रताप से वह पोटली एक बड़ी मछली को निगलवा दी, और स्वयं हिफाजत करने लगा।

उस चोर ने भी घर पहुँच ‘मैंने भाई को ठगा है’ सोचते हुए पोटली को खोला। उसमें कंकर देख उसका हृदय सूखने लगा। वह चारपाई की दौन में छिपकर पड़ रहा। उस समय मछुओं ने मछली पकड़ने के लिये जाल फेंके। देवता के प्रताप से वह मछली जाल में आ फँसी। मछुए उसे बेचने नगर में आए। बड़ी मछली देख मनुष्य मूल्य पूछते थे। मछुवे कहते— एक हजार कार्पापण और सात मासक देकर ले लें। मनुष्य हँसी उड़ाते— हजार की कीमत की मछली भी हमने देख ली !

मछुए मछली लेकर बोधिसत्व के घर के दरवाजे पर पहुँचे और बोले—
“यह मछली ले लो।”

“इसकी कीमत क्या है ?”

“सात मासक देकर ले लो।”

“दूसरों को कितने में दोगे ?”

“औरों को एक हजार कार्पापण तथा सात मासक में देंगे। आप (केवल) सात मासक देकर ले लें।”

उसने उन्हें सात मासक दे, मछली भार्या के पास भेजी। भार्या ने मछली का पेट फाड़ते समय हजार की पोटली देखी तो बोधिसत्व को कहा। बोधिसत्व ने उसे देख, अपने चिह्न से पहचान लिया कि पोटली उसकी है। “हसीलिये,” उसने सोचा, “यह मछुवे दूसरों को हजार कार्पापण और सात मासक लेकर मछली देते, लेकिन हमारे पास पहुँच कर, हजार कार्पापण हमारे ही होने के कारण, वह हमें सात ही मासक लेकर दे गये।” इस भेद

को भी जो न समझे उसे श्रद्धावान् नहीं बनाया जा सकता । यह सोच पहली गाथा कही :—

अग्नन्ति मच्छा अधिकं सहस्सं,
न सो अस्थि यो इमं सद्देव्य ।
मग्धच्च अस्सु इध सत्तमासा,
अहम्पि तं मच्छुहानं कियेय्यं ॥

[एक हजार कार्पाण अधिक (सात मासक) मछली का मूल्य है, इस पर विश्वास करने वाला कौन है ? लेकिन मेरे लिये उसका मूल्य सात मासक कहा गया । मैंने भी उस मछली (समूह) को खरीद लिया ।]

यह कह कर सोचने लगा—ये कार्पाण मुझे क्यों मिले ? उस समय नदी-देवता ने आकाश में दिखाई देते हुए खड़े हो कहा :—

“मैं गङ्गा-देवता हूँ । तूने बचा हुआ भात मछलियों को दे मुझे (पुण्य में) हिस्सा दिया । उसी से मैंने तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा की ।” यह गाथा भी कही :—

मच्छानं भोजनं दत्त्वा मम दक्षिणमादिसि,
तं दक्षिणं सरन्तिया कतं अपचितिं तया ॥

[मछलियों को भोजन दे मुझे दक्षिणा (पुण्य में हिस्सा) दी । उसी दक्षिणा को, उसी तेरे द्वारा किये उपकार को याद करते हुए, मैंने तेरी सम्पत्ति की रक्षा की ।]

यह कह उस देवता ने, उसके छोटे भाई ने जो कुटिल कर्म किया था सब बताया और कहा :—“यह अब हृदय सुखा रहा है और पड़ा है । दुष्ट-चित्त की उन्नति नहीं होती । मैंने तुम्हारी चीज़ नष्ट न हो इसलिये तुम्हारा धन लाकर दिया । यह अपने चौर छोटे भाई को न दे केवल तुम ही रखना ।”

इतना कह तीसरी गाथा कही :—

पदुद्धचित्तस्स न फाति होति
न चापि नं देवता पूजयन्ति,
यो भातरं पेत्तिकं सापतेय्यं
अवज्जयि दुक्कतकम्मकारि ॥

[जो दुष्कर्म करने वाला अपने भाई की पैतृक-सम्पत्ति को उगता है, उस दुष्ट-चित्त की न उन्नति होती है, न ही देवता उसकी पूजा करते हैं ।]

देवता ने मित्रद्रोही चोर को कार्षापण न दिलाने के लिए ऐसा कहा । लेकिन बोधिसत्व ऐसा नहीं कर सकते । उन्होंने उमे भी पाँच सौ कार्षापण भेज दिये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाय़ा । सत्त्यों के अन्त में व्यापारी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय का कुटिल व्यापारी अब कुटिल व्यापारी । ज्येष्ठ भाई तो मैं ही था ।

२८६. नानच्छन्द जातक

“नानच्छन्दा महाराज...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आयुष्मान आनन्द की आठ वरों की प्राप्ति के बारे में कही । (वर्तमान-) कथा ग्यारहवें परिच्छेद की जुएह-जातक^१ में आएगी ।

ख. वर्तमान कथा -

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हो, बड़े होने पर तत्तुशिला में शिल्प सीख पिता के मरने पर राज्यालूढ़ हुए । उसके यहाँ पिता के समय का एक पुरोहित था, जिसे पदच्युत कर दिया गया था । वह दरिद्र अवस्था में एक पुराने घर में रहता था । एक दिन बोधिसत्व अपरिचित भेष में रात को नगर में घूमते थे । चोरी करके लौटते हुए चोरों ने एक सुरा की दुकान पर सुरा पी और

घड़े में भरकर घर ले चले । उन्होंने उसे देख लिया और पूछा—कौन है ? फिर पीटा और चादर छीन ली तथा घड़ा उठवा कष्ट देते हुए चले ।

उस ब्राह्मण ने भी उस समय बाहर निकल, गली में खड़े हो नत्त्र देखकर जाना कि राजा शत्रुओं के हाथ में पड़ गया । उसने ब्राह्मणी को बुलाया । वह शीघ्रता से उसके पास आई—आर्य ! क्या है ? वह बोला—भगवति ! हमारा राजा शत्रुओं के हाथ में जा पड़ा है ।

“आर्य्य ! तुम्हें राजा के समाचार से क्या ? (उसके) ब्राह्मण जानेंगे ।”

राजा ने ब्राह्मण की बात सुन, थोड़ा आगे बढ़, चोरों से प्रार्थना की—स्वामी ! मैं दुखिया हूँ । मेरी चादर लेकर मुझे छोड़ दें ।

बार बार कहने पर उन्होंने ने दया करके छोड़ दिया । वह उनका निवास-स्थान समझ रुका । ब्राह्मण ने कहा—भगवति ! हमारा राजा शत्रु के हाथ से मुक्त हो गया ।

राजा ने यह बात भी सुनी और प्रासाद पर चढ़ गया । रात बीत कर प्रभात होने पर उसने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा—आचार्यों ! क्या रात को नत्त्र देखे ?

“देव ! हाँ ।”

“नत्त्र शुभ है वा अशुभ ?”

“देव ! शुभ है ।”

“कोई ग्रह है ?”

“कोई ग्रह नहीं है ।”

‘अमुक घर से ब्राह्मण को बुला लाओ’ आज्ञा दे राजा ने पूर्व पुरोहित को बुलाकर पूछा—

“आचार्य्य ! क्या आप ने नत्त्र देखा ?”

“देव ! हाँ देखा ।”

“कोई ग्रह है ?”

“हाँ महाराज ! आज रात आप शत्रु के हाथ में पड़कर थोड़ी ही देर में मुक्त हो गये ।”

‘नत्त्र जानने वाले को ऐसा होना चाहिए’ कह राजा ने ब्राह्मणों को निकाल दिया और (पूर्व पुरोहित से) कहा—

“ब्राह्मण । मैं प्रसन्न हूँ । वर माँग ।”

“महाराज ! स्त्री-पुत्र से सलाह करके माँगूँगा ।”

“जा सलाह करके आ ।”

उसने जाकर ब्राह्मणी, पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधु तथा दासी को बुलाकर पूछा—राजा मुझे वर देना चाहता है । क्या वर माँगूँ ?

ब्राह्मणी बोली—मेरे लिये सौ गौवें लायें ।

छूत माणवक नाम के पुत्र ने कहा—मेरे लिये कुमुद वर्ण के घोड़ों वाला श्रेष्ठ रथ लायें ।

पुत्र-वधु बोली—मुझे मणि-कुण्डल से आरम्भ करके सारे अलङ्कार चाहिए ।

पूर्णा दासी बोली—मुझे उखली, मूसल और भूप चाहिए ।

ब्राह्मण की इच्छा थी कि एक श्रेष्ठ गाँव ले । वह राजा के पास पहुँचा । राजा ने पूछा—ब्राह्मण, क्या स्त्री-पुत्र से सलाह कर ली ?

“हाँ महाराज सलाह की, लेकिन सब की एक राय नहीं ।” उसने पहली गाथा कही—

नानच्छन्दा महाराज एकागारे वसामसे,

अदं गामवरं इच्छे ब्राह्मणी च गवं सतं ॥

छूतो च आजङ्गरथं कम्पा च मणिकुण्डलं,

या चेसा पुणिका जग्मी उदुक्खलं अभिकङ्कति ॥

[महाराज । हम भिन्न-भिन्न इच्छाओं वाले हैं, (यद्यपि) एक घर में रहते हैं । मेरी इच्छा तो है श्रेष्ठ गाँव मिले, ब्राह्मणी की इच्छा है सौ गौवें । छूत श्रेष्ठ-रथ चाहता है और पुत्र-वधु (कन्या) मणि-कुण्डल । और यह जो निकम्मी पुणिका दासी है, यह चाहती है उखल ।]

राजा ने आज्ञा दी कि सभी जो जो चाहते हैं वह सब दे दिया जाय । उसने यह गाथा कही—

ब्राह्मणस्स गामवरं ब्राह्मणिया गवं सतं

पुत्तस्स आजङ्गरथं कम्पाय मणि कुण्डलं,

यच्चेतं पुणिकं जग्मिं पटियादेथ उदुक्खलं ॥

[ब्राह्मण को श्रेष्ठ गाँव, ब्राह्मणी को सौ गौवें, पुत्र को श्रेष्ठ-रथ, कन्या को मणि-कुण्डल और यह जो पुण्यिका ऊखल (माँगती है) वह उसे दे दो ।]

इस प्रकार जो जो ब्राह्मण ने इच्छा की वह सब तथा और भी सम्पत्ति दे 'अब से हमारे कामों को करने में उत्सुक रहें' कह राजा ने ब्राह्मण को अपने पास रख लिया ।

शास्ता ने यह धर्म-देखना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय ब्राह्मण आनन्द था । राजा तो मैं ही था ।

२६०. सीलवीमंस जातक

“सीलं किरैव कल्याणं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शील की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे में कही । वर्तमान कथा और अतीतकथा दोनों ही प्रथम परिच्छेद की सीलवीमंस जातक^१ में विस्तार से आही गई हैं ।

ख. अतीत कथा

इस कथा में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसके पुरोहित ने अपने शील की परीक्षा करने के लिए सुनार के तख्ते से दो दिन एक एक कार्पाण उठाया । तीसरे दिन उसे चोर बना राजा के पास ले गये । उसने रास्ते में सपरे को सर्प खिलाते देखा । राजा ने पूछा—ओ ! ऐसा किस लिये किया ? ब्राह्मण ने 'अपने शील की परीक्षा लेने के लिए' कह ये गाथायें कहीं :—

सीलं किरैव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,
पस्स घोरविसो नागो सोलवाति न हञ्जति ॥

^१ सीलवीमंस जातक (१. ६. ६)

सोहं शीलं समादिस्सं लोके अनुमतं सिवं,
 अरियवृत्तिसमाचारो येन बुद्धतिं सीलवा ॥
 जातीनञ्च पियो होति मित्तसु च विरोचति,
 कायस्स भेदा सुगतिं उपपज्जति सीलवा ॥

[शील ही कल्याणकर है; लोक में शील से बढ़कर कुछ नहीं। देखो! यह घोर विपैला सर्प (भी) शीलावान् (है) करके मारा नहीं जाता। मैंने उस शील के पालन करने का निश्चय किया है, जिसे लोक में कल्याणकर कहा गया है, और जिस शील से युक्त आदमी बुद्धि के मार्ग पर चलने वाला कहा जाता है। वह रिश्तेदारों का प्रिय होता है और मित्रों में प्रकाशित होता है। मरने पर शीलवान् आदमी सुगति को प्राप्त होता है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने तीन गाथाओं से सदाचार का माहात्म्य कह, राजा को उपदेश दे निवेदन किया—

“महाराज! मेरे घर में पिता से प्राप्त, माता से प्राप्त, अपना अर्जित तथा आपका दिया बहुत धन है। उसकी सीमा नहीं है। मैंने केवल शील की परीक्षा करने के लिये सुनार के तख्त से कार्पाण उठाये। अब मुझे यह स्पष्ट हो गया कि लोक में जाति, गोत्र, कुल सब निरुद्ध हैं, शील ही श्रेष्ठ है। मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दें।” राजा से आज्ञा ले, उसके बार बार प्रार्थना करने पर भी (घर से) निकल, हिमालय में प्रविष्ट हो, (वह) ऋषि-प्रव्रज्या ले, समापत्ति प्राप्त कर ब्रह्मलोकगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शील की परीक्षा करने वाला पुरोहित ब्राह्मण मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

५. कुम्भ वर्ग

२६१. भद्रघट जातक

“सन्वकामददं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथ-पिण्डिक (सेठ) के भानजे के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह माता पिता से प्राप्त चालीस करोड़ हिरण्य (सुरा-) पान में नष्ट कर सेठ के पास गया। उसने उसे हजार देकर कहा—व्यापार करो। उन्हें भी गँवा वह फिर गया। फिर उसे पाँच सौ दिलाये। उन्हें भी गँवा फिर आने पर दो मंटे वस्त्र दिलाये। उन्हें भी गँवा कर आया, तो गर्दन पकड़ कर निकलवा दिया। वह अनाथ होकर दूसरे की दीवार (के नीचे आ जाने) के कारण मर गया। उसे निकाल कर बाहर फेंकवाया। अनाथपिण्डिक ने विहार जाकर भानजे का सब समाचार तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने कहा—तू इसे कैसे संतुष्ट करता? पूर्वजन्म में इसे मैं सब कामनायें पूरी करने वाला घड़ा देकर भी संतुष्ट नहीं कर सका। तब प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सेठ-कुल में पैदा हो, पिता के मरने पर सेठपद के लाभी हुए। उसके घर चालीस करोड़ धन तो केवल जमीन में गड़ा था। पुत्र उसका एक ही था। बोधिसत्व दानादि पुण्य करके मरने पर शक्र-देवराज होकर पैदा हुए।

उसके पुत्र ने गली धेरकर मण्डप बनवाया और लोगों को साथ ले सुरा पीने बैठा। वह छलांग मारना, दौड़ना, गाना, नाचना आदि करनेवालों

को हजार हजार देता था। उसे स्त्री की लत, सुरा की लत, मांस की लत लग गई। वह 'गाना कहाँ है ?' 'नाचना कहाँ है ?' 'बजाना कहाँ है ?' ढूँढ़ता हुआ तमाशे का अत्यधिक अभिलाषी हो भटकता था। उसने थोड़े ही समय में अपना चालीस करोड़ धन और काम में आने लायक सामान नष्ट कर दिया और दरिद्र हो चीथड़े पहन घूमने लगा।

शक्र ने ध्यान लगाकर उसके दरिद्र होने की बात जानी। पुत्र-प्रेम के वशीभूत हो उसने आकर उसे सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला घड़ा दिया और कहा—इस घड़े को संभाल कर रखना जिसमें टूटने न पाये। यह तेरे पास रहने से धन की सीमा नहीं रहेगी। अप्रमादी होकर रहना। यह उपदेश दे (इन्द्र) देवलोक को ही लौट गया। वह तब से सुरापान करता हुआ घूमने लगा। बदमस्त होकर वह उस घड़े को आकाश में फेंकता और फिर वापिस रोकता था। एक बार वह चूक गया। घड़ा जमीन पर गिरा और टूट गया। उसके बाद फिर दरिद्र हो, चीथड़े लपेट, हाथ में खप्पर ले, भीख माँगता हुआ घूमने लगा। इस प्रकार वह दूसरे की दीवार [के नीचे आ जाने] के कारण मर गया। शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कह ये गाथायें कही :—

सर्वकामददं कुम्भं कुटं लब्धान धुत्तको,
याव सो अनुपालेति ताव सो सुखमेधति ॥
यदा मत्तो च दिक्तो च प्रमादा कुम्भमग्निभवा,
ततो नमो च पोथो च पञ्चा बालो विह्वलति ।
एवमेव यो धनं लब्ध्वा अमत्ता परिभुजति,
पञ्चा तपति दुस्मेधो कुटं भिन्नोऽधुत्तको॥

[धूर्त्त सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले घड़े को पाकर जब तक उसकी रक्षा करता है तब तक सुख भोगता है। लेकिन जब बेहोशी से, अभिमान से तथा प्रमाद से घड़े को फोड़ डालता है, तो पीछे वह मूर्ख नम्र हो तथा चीथड़े लपेटे मारा जाता है। उसी तरह जो कोई धन प्राप्त कर बेहिसाब खर्च करता है, वह मूर्ख उस धूर्त्त की तरह जिसका घड़ा फूट गया पीछे कष्ट पाता है।]

ये गाथायें कह जातक का मेल बैठाया, उस समय घड़ा फोड़ने वाला धूर्त्त सेठ का भाब्जा था। शक्र तो मैं ही था।

२६२. सुपत्त जातक

“वाराणस्सं महाराज...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बिम्बा देवी को सारिपुत्र द्वारा लाकर दिये गये रोहित मछली के सूप तथा नवीनघृत-मिश्रित शाली भात के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त अम्भन्तर जातक^१ की कथा के सदृश ही है । उस समय भी स्थविरी को उदर-पीड़ा हुई । राहुल भद्र ने स्थविर को कहा । स्थविर उसे आसनशाला में बिठा कोशल-नरेश के निवास-स्थान पर गये । वहाँ से उन्होंने रोहित मछली का सूप और नवीन घृत-मिश्रित शाली भात लाकर उसे दिया । उसने माता स्थविरी को दिया । उसके खाते ही उसकी उदर-पीड़ा शान्त हो गई । राजा ने आदिमियों को भेज पताल गवाया और उस समय से वह स्थविरी को उस तरह का भात दिलवाता रहा । एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई—आयुष्मानो ! धर्म-सेनापति ने स्थविरी को वैसा भोजन कराया । शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत ।”

“भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र ने राहुल-माता की इच्छा पूरी की, पहले भी की है ।” इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कौवे की योनी में पैदा हुये । बड़े होने पर अस्सी हजार कौओं में

^१अम्भन्तर जातक (३.४.१)

प्रधान हो सुपत्त नामक काक राजा हुए। पटरानी का नाम था सुफस्ता। सेनापति का नाम सुमुख था। वह अस्सी हजार कौआओं के साथ वाराणसी के समीप रहने लगा। एक दिन सुफस्ता को ले वह वाराणसी राजा के रसोईघर के ऊपर से चुगने जा रहा था। रसोइये ने राजा के लिये नाना प्रकार का मत्स-मांसयुक्त भोजन तैयार किया था। वह बर्तनों को नङ्गा कर उनका भात निकाल रहा था। सुफस्ता को मत्स-मांस की गन्ध आई, और राज-भोजन खाने की इच्छा हुई। वह उस दिन कुछ नहीं बोली। दूसरे दिन 'भद्रे ! आ चुगने चलें' कहने पर बोली—आप जायें। मुझे एक दोहद पैदा हुआ है।

“कैसा दोहद ?”

“वाराणसी-नरेश का भोजन खाने की इच्छा है।”

“पर मैं उसे नहीं ला सकता।”

“तो देव, मैं जान दे दूँगी।”

बोधिसत्व बैठ कर सोचने लगा। सुमुख ने आकर पूछा महाराज, असन्तुष्ट क्यों है ? राजा ने वह बात कही। सेनापति बोला—महाराज, चिन्ता न करें। वह उन दोनों को आश्वासन दे 'आज आप यहीं रहें, हम भात लायेंगे' कह चला गया।

उसने कौआओं को इकट्ठा कर वह बात कही। फिर 'आओ भात लायें' कह कौआओं के साथ वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। उसने रसोईघर के समीप ही कौआओं की टोलियाँ बना, उन्हें जहाँ-तहाँ सुरक्षा के लिये खड़ा किया। स्वयं आठ कौआओं के साथ राजा का भोजन ले जाने के समय की प्रतीक्षा करता हुआ रसोईघर की छत पर बैठा। उसने उन कौआओं से कहा :—मैं राजा का भात ले जाने के समय बर्तनों को गिरा दूँगा। बर्तनों के गिरते ही मेरी जान नहीं बचेगी। तुममें से चार जने भात से मुँह भर कर और चार जने मत्स-मांस से मुँह भर कर, ले जाकर, प्रजापति सहित काकराज को खिलाना। 'सेनापति कहाँ है ?' पूछने पर कहना—पीछे आता है।

रसोइया भोजन तैयार कर, बहँगी पर रख राजकुल ले चला। उसके राजाङ्गण में पहुँचने पर, काक-सेनापति ने कौआओं को इशारा किया और स्वयं उछल कर भात ले जाने वाले के कन्धे पर बैठ, पञ्जे के नाखूनों से प्रहार कर,

वर्द्धी की नोक जैसी चोट से उसकी नाक पर चोट कर, उड़कर दोनों परो से उसका मुँह टक दिया । राजा ने महान तल्ले पर घूमते हुये उस कौवे की वह करतूत देख भात लाने वाले को कहा—अरे भात लाने वाले ! वर्तनों को छोड़, कौवे को ही ढकड़ । उसने वर्तन छोड़ कौवे को ही जोर से पकड़ लिया । राजा बोला—यहाँ आ । उस समय कौवे आये और जितना स्वयं खा सकते थे खाकर जैसे कहा गया था वैसे लेकर गये । तब बाकियों ने आकर शेष भोजन किया । उन आठ जनों ने भी जाकर रानी सहित काक-राज को खिलाया । सुफस्सा का दोहद शान्त हो गया । भात लाने वाला कौवे को राजा के पास ले गया ।

राजा ने उससे पूछा—अरे काक, तूने मेरा भय नहीं किया । भात लाने वाले की नाक तोड़ दी । भात के वर्तन फोड़ डाले । अपनी जान गँवाई । ऐसा काम क्यों किया ?

“महाराज, हमारा राजा वाराणसी के समीप रहता है । मैं उसका सेनापति हूँ । उसकी सुफस्सा नामक भार्य्या को तुम्हारा भोजन खाने का दोहद उत्पन्न हुआ । मैं वहीं अपने जीवन का बलिदान कर यहाँ आया । अब मैंने उसके पास भोजन भेज दिया । मेरा मनोरथ पूरा हो गया । इस कारण से मैंने ऐसा किया ।”

उसने ये गथायें कहीं :—

वाराणसं महाराज काकराज निवासिको,
असीतिया सहस्सेहि सुपत्तो परिवारितो ॥
तस्सा दोहजिनी भरिया सुफस्सा मच्छुमिच्छति,
रञ्जो महानसे पक्कं पच्चग्घं राजभोजनं ॥
तेसाहं पहितो दूतो रञ्जो चग्घि हधारातो
भत्तु अपचित्तिं कुम्भि नासायमकरं वणं ॥

[महाराज, अस्सी हजार कौआँ के साथ सुपत्त नामक काकराज वाराणसी के पास रहता है । उसकी सुफस्सा नाम की भार्य्या को दोहद उत्पन्न हुआ और उसने राजा की रसोई में पके कीमती राज-भोजन—मछली—की हच्छा की । उस राजा का भेजा हुआ दूत मैं यहाँ आया । मैंने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया और (इसी कारण से) नाक पर चोट की ।]

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—हम मनुष्यों को भी बहुत सा धन देकर अपने सुहृद नहीं बना सकते। ग्रामादि देकर भी हमें ऐसे आदमी नहीं मिलते जो हमारे लिये जीवन बलिदान कर सकें। यह कौआ होकर भी अपने राजा के लिये जान देता है—बड़ा सत्-पुरुष है, मधुर-भाषी है तथा धार्मिक है। उसके इन गुणों पर प्रसन्न हो राजा ने श्वेत-छत्र से उसकी पूजा की। उसने उस छत्र से अपने राजा की पूजा कर सुपत्त का ही गुणानुवाद किया। राजा ने उसे बुलवा, धर्मोपदेश सुन, उन दोनों के लिये अपने ही सदृश भोजन का प्रबन्ध किया। शेष कौआओं के लिये वह प्रतिदिन एक अम्मण चावल पकवाता था। स्वयं बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, सभी प्राणियों को अभय बना, पञ्च-शीलों की रक्षा करता था।

सुपत्त कौवे का उपदेश सात सौ वर्ष तक चला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाय। उस समय राजा आनन्द था। सेनापति सारिपुत्र। सुफस्ता राहुल-माता। सुपत्त तो मैं ही था।

२६३. कायविच्छिन्द जातक

“पुट्टस मे...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक पुरुष के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

आवस्ती में एक आदमी पाण्डु रोग से पीड़ित था। वैद्यों ने जवाब दे दिया था। उसके स्त्री-बच्चे भी सोचते थे—इसकी सेवा कौन कर सकता है? उसे ख्याल आया—यदि मैं इस रोग से बच जाऊँ तो प्रब्रजित हो जाऊँगा। वह कुछ ही दिन में कोई अनुकूल पथ्य मिलने से निरोग हो गया।

उसने जेतवन पहुँच प्रब्रज्या की याचना की। शास्ता से प्रब्रज्या और उप-सम्पदा प्राप्त कर वह शीघ्र ही अर्हत् हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक पाण्डु रोगी 'इस रोग से मुक्त होने पर प्रब्रजित होऊँगा' सोच प्रब्रजित हुआ और उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत !”

“भिक्षुओ ! न केवल इसी ने किन्तु पूर्व समय में पण्डितों ने भी यही कह, रोग से उठ, प्रब्रजित हो अपनी उन्नति की।”

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर कुटुम्ब का पालन करते हुए पाण्डु रोगी हुए। वैद्य भी चिकित्सा न कर सके। स्त्री-बच्चे भी निराश हो गये। वह 'इस रोग से मुक्त होने पर प्रब्रजित होऊँगा' सोच कोई पथ पा निरोग हो गया। तब उसने हिमालय में प्रवेश कर ऋषि-प्रब्रज्या ली। उसने समापत्तियाँ और अभिज्ज्ञा उत्पन्न कर, ध्यान-सुख से विहार करते हुए 'अब तक इस तरह का सुख नहीं मिला' यह प्रीति-वाक्य कहते हुए, ये गाथाएँ कहीं :—

पुट्टस्स मे अज्जत्तरेन न्याधिना
रोगेन बाळ्हं दुखितस्स रूपतो,
परिसुस्सति खिप्पमिदं कळेवरं
पुप्फं यथा पंसुनि आतपे कतं ॥
अजज्जं जज्जसङ्गातं असुचिं सुचिसम्मत्तं,
नानाकुणपपरिपूरं जज्जरूपं अपस्सतो ॥
धिरत्थु तं आतुरं पूतिकायं
जेगुच्छियं असुचिं न्याधिधम्मं,
यत्थप्पमत्ता अभिसुच्छिता पज्जा
हापेन्ति मग्गां सुगातुपपत्तिया ॥

[रोग से अति दुःखित-पीड़ित मेरा यह शरीर धूप में पड़े फूल की तरह सूख जायेगा। असुन्दर है किन्तु सुन्दर लगता है, अपवित्र है किन्तु पवित्र लगता है। नाना प्रकार की गन्दगी से भरा होने पर भी न देख सकने वाले को मनोरम लगता है। इस नित्य रोगी, गन्दे, जिगुप्सित, अपवित्र, तथा व्याधि-स्वभाव शरीर को धिक्कार है, जिसके प्रति आसक्त होकर बदहवास जन सुगति प्राप्ति के मार्ग को छोड़ देते हैं।]

इस प्रकार बोधिसत्व नाना प्रकार से (शरीर की) अपवित्रता तथा नित्य रोगीपन का विचार कर शरीर के प्रति अनासक्त हो जीवन पर्यन्त चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्म-लोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। बहुत से जन सोतापत्ति फल आदि में प्रतिष्ठित हुए। उस समय तपस्वी मैं ही था।

२६४. जम्बुखादक जातक

“कोर्यविन्दुस्सरो वग्गु...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त और कोकालिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय देवदत्त का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया था। कोकालिक भिल्लु गृहस्थों के पास जा देवदत्त के गुणों का बखान करता—देवदत्त स्थविर महासम्मत् परम्परा में ओकाक-राज-वंश में पैदा हुआ है। विशुद्ध क्षत्रिय वंश में पला है, त्रिपिटकधारी है, ध्यान-लाभी है, मधुरभाषी है, धर्म-कथिक है, स्थविर को दें, स्थविर का कहना करें। देवदत्त भी कोकालिक के गुण बखानता—कोकालिक उदीच्य ब्राह्मण कुल से निकल प्रव्रजित हुआ है।

बहुश्रुत है, धर्म-कथिक है, दें, करें ।” इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के गुण बखानते हुये गृहस्थों के घर में खाते-पीते विचरते ।

एक दिन धर्म सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त और कौकालिक एक दूसरे की भूठी प्रशंसा करते खाते पीते घूमते हैं ।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत ।”

“भिक्षुओ, न केवल अभी ये भूठी प्रशंसा कर के खाते पीते हैं, पहले भी ऐसा ही किया है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक जम्बु-खण्ड में वृक्ष देवता होकर पैदा हुए । वहाँ एक कौआ जम्बु शाखा पर बैठा हुआ पके जामुन खाता था । एक गीदड़ ने आकर ऊपर कौवे को देख सोचा—मैं इसकी भूठी प्रशंसा कर जामुन खाऊँ । उसने उसकी प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

कोयं बिन्दुस्सरो वग्गु पवदन्तानमुत्तमो,

अचुतो जम्बुसाखाय मोरब्बापोव कूजति ॥

[पूर्ण स्वर वाला, सुन्दर शब्द वाला, सर्व श्रेष्ठ वाणी वाला ये कौन है जो जम्बू की शाखा पर बैठ कर मोर-बच्चे की भाँति कूजता है ?]

कौवे ने भी उसकी प्रशंसा करते हुये दूसरी गाथा कही:—

कुलपुत्तोव जानाति कुलपुत्ते पसंसितुं,

व्यग्घब्बापसरीवग्गो भुज्जं सम्म वदामि ते ॥

[कुल पुत्र ही कुल-पुत्र की प्रशंसा करना जानता है । हे व्याघ्र-बच्चे के सदृश वर्ण वाले मित्र मैं तुम्हें (जामुन) देता हूँ, खा ।]

यह कह जम्बू-शाखा हिला उसने फल गिराये । उस जम्बू वृक्ष पर पैदा हुये देवता ने उन दोनों को परस्पर भूठी प्रशंसा कर जामुन खाते देख तीसरी गाथा कही:—

चिरस्संवत्त पस्सामि मुसावाही सन्नागते,

वन्तावं कुण्णपादञ्च अज्जमग्गं पसन्सके ॥

[मैं इन आये हुये मिथ्या-भाषियों को देर से देख रहा हूँ—एक बमन खाने वाला है, दूसरा मुर्दार । दोनों एक दूसरे की भूठी प्रशंसा कर रहे हैं ।]

यह गाथा कह, देवता ने उन्हें भयानक रूप दिखा वहाँ से भगा दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी । उस समय शृगाल देवदत्त था । कौआ कोकालिक । वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

२६५. अन्त जातक

“उसभस्सेव ते खन्धो...” यह भी शास्ता ने वहीं विहार करते समय उन्हीं दो जनों के बारे में कही । वर्तमान कथा पूर्व कथा सदृश ही है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव के पास एरण्ड वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुये । उस समय एक गाँव में मरे बूढ़े बैल को निकाल कर ग्राम-द्वार पर एरण्ड वन में फेंक दिया था । एक शृगाल आ कर उसका मांस खाने लगा । एरण्ड पर छिपे किसी कौवे ने उसे देख सोचा—मैं इसकी भूठी प्रशंसा कर मांस खाऊँ । उसने पहली गाथा कही :—

उसभस्सेव ते खन्धो सीहस्सेव विजम्भितं,
मिराराज नमोस्त्यथु अपि किञ्चि लभामसे ॥

[तेरे स्कन्ध वृषभ की तरह हैं और तेरा विजम्भण सिंह जैसा है । हे मृगराज ! तुझे नमस्कार है । हमें कुछ मिले ।]

इसे सुन शृगाल ने दूसरी गाथा कही:—

कुलपुत्रोवजानासि कुलपुत्रे पसंसितुं,
मयूरगीवसङ्कास इतो पीरयाहि बाबस ॥

[कुल-पुत्र ही कुल-पुत्र की प्रशंसा करना जानता है । हे मयूर की गर्दन सहश कौवे ! यहाँ चला आ ।]

उनकी करतूत देख कर उस वृक्ष-देवता ने तीसरी गाथा कही:—

मिगानं कोत्थुको अन्तो पक्खीनं पन वायस्स,
एरण्णो अन्तां रुक्खांन तयो अन्ता समागता ॥

[जानवरों में सब से अधिक निकृष्ट शृगाल है, पक्षियों में कौआ और वृक्षों में एरण्ड । यहाँ तीनों निकृष्ट इकट्ठे हो गये हैं ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया । उस समय शृगाल देवदत्त था । कौआ कोकालिक । वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

२६६. समुद्र जातक

“कोनायं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उपनन्द स्थविर के बारे में कही ।^१

क. वर्तमान कथा

वह बड़ा पेड़ था, महान वृष्णा से युक्त, गाड़ी भर सामान से भी सन्तुष्ट न हो सकने वाला । वर्षावास के समय दो तीन विहारों में वर्षा-वास करना आरम्भ कर, एक में जूता रखता, एक में हाथ की लकड़ी, एक में पानी का घड़ा, और एक में स्वयं रहता । जनपद में चारिका के लिये निकलता तो ऐसे भिक्षुओं को, जिनके पास अच्छे परिष्कार होते आर्यवंश-कथा^१ सुना कर

^१ जैसे जैसे चीवर, जैसे जैसे पिण्ड-पात (= भोजन) जैसे जैसे शयन-आसन से सन्तुष्ट होने का उपदेश [अं २।३२—३६]

उनसे पाशुंकूल चीवर^१ लिवा उनके चीवर स्वयं ले लेता । मिट्टी के बर्तन दिला कर अच्छे अच्छे पात्र और थाल ले गाड़ी भर जेतवन लौटता ।

एक दिन धर्म सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! शाक्य पुत्र उपनन्द पेटू है, महेच्छुक है । दूसरों को धर्माचरण का उपदेश दे स्वयं श्रमण-परिष्कारों से गाड़ी भर लाता है ।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत ।”

“भिक्षुओ, उपनन्द ने दूसरों को आर्यवंश कथा का उपदेश दे अनुचित किया । पहले स्वयं अल्पेच्छु होना चाहिए, तब दूसरे को आर्यवंश-कथा का उपदेश देना चाहिये :—

अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निवेसये ।

अथञ्जमनुसासेय्य न किञ्जलिस्सेय्य पण्डितो^२ ॥

[जो उचित है उसे यदि पहले अपने करके पीछे दूसरे को उपदेश करे, तो पण्डित (जन) को क्लेश न हो ।]

इस धम्मपद की गाथा का उपदेश दे, उपनन्द की निन्दा कर ‘भिक्षुओ, न केवल अभी उपनन्द महेच्छुक है, यह पहले महासमुद्र के भी जल की रक्षा करना आवश्यक समझता था’ कह पूर्व जन्म की कथा कहो :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुआ । एक जल-कौवा समुद्र पर उड़ता हुआ मछलियों और पक्षियों को रोकता था—समुद्र का जल अधिक न पीओ, सँभाल कर पीओ । यह देख समुद्र-देवता बोला :—

कोनायं लोणतोयस्मिं समन्ता परिधावति,

मच्छे मकरे च वारेति ऊमिसु च विसम्भति ॥

^१ जहाँ तहाँ फेंके हुए चीथड़ों से बना चीवर ।

^२ धम्मपद १२।२

[ये कौन है जो मछलियों मगर-मच्छों को मना करता हुआ नमकीन जल पर चारों ओर दौड़ता है और लहरों में कष्ट पाता है ?]

इसे सुन समुद्री कौवे ने दूसरी गाथा कही:—

अनन्तपायी सकुणो अतिक्षोति दिसासुतो,

समुद्रपातुमिच्छामि सागरं सरितं पतिं ॥

[मैं अनन्त-पायी पत्नी हूँ, अतृप्त हूँ, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है । मैं नदी-पति सागर को पी जाने की इच्छा करता हूँ ।]

इसे सुन समुद्र देवता ने तीसरी गाथा कही:—

स्वायं हायति चेव पूरते च महोदधि,

नास्स नायति पीतन्तो अपेक्ष्यो किर सागरो ॥

[यह महोदधि घटता है और सम्पूर्ण होता है । यह पीने से समाप्त नहीं होता है । सागर अपेक्ष है ।]

यह कह भयानक रूप दिखा समुद्र-कौवे को भगा दिया । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय समुद्र-काक उपनन्द था । देवता तो मैं ही था ।

२६७. कामविलाप जातक

“उच्चे सकुण डेमान...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूरे भार्ग्या की आराक्ति के बारे में कही । वर्तमान कथा पुष्परत्न-जातक में आयेगी । अतात-कथा इन्द्रिय जातक^१ में आयेगी । उस पुरुष को जीते जी सूली का त्रास दिया । उसने वहाँ बैठे-बैठे उस तीव्र वेदना की भी ओर ध्यान न दे, आकाश में उड़े जाते एक कौवे को देख, प्यारी भर्ग्या के पास सन्देश भेजने के लिये कौवे को सम्बोधन करते हुये ये गाथायें कहीं:—

उज्ज्वे सकृण्य डेमान पत्तयान विहङ्गम,
 वज्रासि खोत्वं वामूहं चिरं खो सा करिस्सति ॥
 इदं खो सा न जानाति अस्मि सत्तिञ्च ओव्हित्तं,
 सा चण्डी काहति क्रोधं तं मे तपति नो इध ॥
 एस उप्पलसन्नाहो निक्खमुस्सीसके कत्तं,
 कासिकञ्च मुदुं वत्थं तप्पतु धनकामिका ॥

[हे ऊँचे उड़ने वाले आकाशगामी पंख-वाहन पक्षी, तू उस कोमल जंघवाली को मेरा समाचार कहना। नहीं तो वह चिरकाल तक चिन्ता करती रहेगी। वह यह नहीं जानती है कि मैं यहाँ सूली का त्रास पा रहा हूँ। इस-लिये वह चण्डी क्रोध करेगी। मुझे उसी का दुख है, इस सूली का नहीं। मेरे सिराहने कमल सदृश पोशाक है, और स्वर्ण की अङ्गुठी है, और है काशी का कोमल वस्त्र। वह धनेच्छुका इन्हें पा कर सन्तुष्ट हो।]

इस प्रकार रोता पीटता वह मर कर नरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के अन्त में उद्विग्नचित्त भिक्षु सोतापत्ती-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की भार्या ही इस समय की भार्या है। जिस देव-पुत्र ने वह घटना देखी वह मैं ही था।

२६८. उदुम्बर जातक

‘उदुम्बराचिमे पक्का...’ यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक प्रत्यन्त के गामड़े में विहार बनवा कर रहता था—रमणीक विहार, चट्टान पर बना हुआ, भाड़ने लुहारने को बहुत नहीं, पानी का

आराम, भिक्षा के लिये गाँव बहुत दूर नहीं, और प्रेम पूर्वक भिक्षा देने वाले मनुष्य। एक भिक्षु चारिका करता हुआ उस विहार में पहुँचा। निवासी-भिक्षु आगन्तुक-भिक्षु के प्रति जो कर्त्तव्य था उसे कर, अगले दिन उसे ले, गाँव में भिक्षा माँगने गया। लोगों ने उसे भिक्षा दे दूसरे दिन के लिये निमंत्रित किया। आगन्तुक-भिक्षु ने कुछ दिन भोजन पा सोचा—एक उपाय से इस भिक्षु को धोका दे, निकाल बाहर कर, यह विहार ले लूँ। उसने स्थविर की सेवा में आने पर उसे पूछा—आयुष्मान, बुद्ध की सेवा में नहीं गया ?

“भन्ते, इस विहार की कोई देखभाल करने वाला नहीं है। मैं अभी तक नहीं गया हूँ।”

“जब तक तू बुद्ध का दर्शन करके लौटे, तब तक मैं देखभाल करूँगा।”

“भन्ते, अच्छा।”

निवासी-भिक्षु मनुष्यों को ‘जब तक मैं आऊँ तब तक स्थविर की सेवा ठीक तरह से करते रहना’ कह चल दिया। उस दिन से आगन्तुक-भिक्षु ने निवासी-भिक्षु में यह यह दोष हैं, कह मनुष्यों का दिल खट्टा कर दिया। निवासी-भिक्षु भी शास्ता को प्रणाम करके लौटा। आगन्तुक ने उसका निवास-स्थान उसे नहीं दिया। वह एक जगह रह कर गाँव में भिक्षा माँगने निकला। मनुष्यों ने शिष्टाचार भी नहीं किया। उसको अफसोस हुआ। उसने जेतवन जा भिक्षुओं को समाचार सुनाया। भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु अमुक भिक्षु को विहार से निकाल कर स्वयं वहाँ रहता है। शास्ता ने पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत”

“न केवल अभी, किन्तु पहले भी हे भिक्षुओ ! उसने इसे निवास-स्थान से निकाला ही है” कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर पैदा हुये। उस समय वर्षा काल में सात सप्ताह तक वर्षा हुई। एक लाल मुँह वाला छोटा बन्दर एक पत्थर

की दरार में जहाँ पानी नहीं पड़ता था रहता था । एक दिन वह दरार के द्वार पर, न भीगने वाली जगह पर, सुख से बैठा था । वहीं एक काले मुँह वाला बड़ा बन्दर आया । वह भीगा था और शीत से कण्ट पा रहा था । उसने उसे उस तरह बैठे देख सँचा—इसे कौशल से यहाँ से हटा, मैं यहाँ रहूँगा । उसने पेट का सहारा ले ऐसा दिखाया जैसे पेट खूब भरा हो, और उसके सामने खड़े हो पहला गाथा कही:—

उदुम्बराचिमे पक्का निग्रोधा च कपित्थना,

एहि निक्खम भुजस्सु किं जिघच्छाय सीयसि ॥

[यह गूलर पके हैं, निग्रोध और कैथ भी । आ बाहर निकल उन्हें खा । भूख से क्यों मरता है ?]

उसने उसकी बात पर विश्वास कर, फलाफल खाने की इच्छा से बाहर निकल, जहाँ-तहाँ घूम कुछ भी न पाया । लौटकर देखा तो उसे दरार में बैठा पाया । उसने उसे टगने के लिए उसके सामने खड़े हो दूसरी गाथा कही:—

एवं सो सुहितो होति यो बद्धमपचायति,

यथाहमज्ज सुहितो दुमपक्कानि मासितो ॥

[जो बड़ों का आदर करता है उसका पेट भरता है; जैसे आज मैं पके फल खाकर संतुष्ट हूँ ।]

इसे सुन बड़े बन्दर ने तीसरी गाथा कही :—

यं वनेजो वनेजस्स वंचेय्य कपिनो कपि,

दहरो पि तं सद्धेय्य, न हि जिण्यो जराकपि ॥

[जो वन में पैदा हुआ वानर वन में पैदा हुये वानर को ठगे, कोई बच्चा भी उसका विश्वास नहीं कर सकता, मेरे जैसा जरा-जीर्ण कपि तो कर ही नहीं सकता ।]

“इस प्रदेश में सभी फलाफल वर्षा से भीग कर गिर गये हैं । अब तेरे लिये यहाँ जगह नहीं है जा ।” वह वहाँ से चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय छोटा बन्दर निवासी-भिन्नु था । काला बड़ा बन्दर आगन्तुक-भिन्नु । वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

२६६. कोमायपुत्त जातक

“पुरे तुवं...” यह शास्ता ने पूर्वाराम में विहार करते समय क्रीड़ा-प्रिय भिक्षुओं के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता ऊपर प्रासाद में रहते थे उस समय भिक्षु नीचे प्रासाद में बैठे हुये देखा-सुना वतियाते, भगड़ा करते और हँसी-मजाक उड़ाते थे । शास्ता ने महामोग्गल्लान को सम्बोधित कर कहा—आ भिक्षु, कम्पन उत्पन्न कर । स्थविर ने आकाश में उछल, पैर के अंगूठे से उछल, प्रासाद के खम्भे पर प्रहार कर, जहाँ तक जल था वहाँ तक कँपा दिया । वे भिक्षु मृत्यु-भय में निकल कर बाहर खड़े हुये । उनकी वह क्रीड़ा-प्रियता भिक्षुओं में प्रकट हो गई । एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! कुछ भिक्षु इस प्रकार के कल्याणकारी बुद्धशासन में प्रब्रजित होकर भी खिलवाड़ करते रहते हैं; अनित्य, दुःख तथा अनात्म की भावना की विपश्यना नहीं बढ़ाते हैं । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत ।”

“भिक्षुओ न केवल अभी, ये क्रीड़ा-प्रिय हैं, पहले भी ये क्रीड़ा-प्रिय ही रहे हैं ।”

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व सकय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हुये । उनका नाम हुआ कोमायपुत्त । आगे

चल कर वह ग्रहत्याग, ऋषि-प्रब्रज्या ले, हिमालय में रहने लगा । दूसरे क्रीड़ा-प्रिय तपस्वी भी हिमालय में आश्रम बना रहते थे । कमिः कर्म^१ का नाम तक न था । वे जङ्गल से फलाफल ला खाते हुये नाना प्रकार की क्रीड़ा में समय बिताते थे । उनके पास एक बन्दर भी था । वह भी क्रीड़ा-प्रिय । नाना प्रकार की शकलें बना तपस्वियों को तमाशा दिखाता । तपस्वी चिरकाल तक वहाँ रह नमक-खटाई खाने के लिये बस्ती में गये । उनके चले जाने पर बोधिसत्व वहाँ आकर रहने लगे । बन्दर ने उनकी तरह बोधिसत्व को भी तमाशा दिखाया । बोधिसत्व ने चुटकी बजा उसे उपदेश दिया—सुशिक्षित प्रब्रजितों के पास रहने वाले को सदाचारी होना चाहिये; काय, वाक, मन से सुसंयत होना चाहिये तथा ध्यानी होना चाहिये । वह भी उस समय से शीलवान् तथा आचारवान् हो गया । बोधिसत्व अन्यत्र चले गये ।

नमक-खटाई सेवनानन्तर वह तपस्वी भी वहाँ लौटे । बन्दर ने पहले की तरह उन्हें तमाशा नहीं दिखाया । तपस्वी न पूछा—आयुष्मान्, पहले तू हमारे सामने तमाशा करता था । क्या कारण है कि अब नहीं करता ? उन्होंने पहली गाथा कही:—

पुरे सुवं सीलमतं सकासे
ओक्कन्दिकं कीळसि अस्समग्नि,
करोहरे मक्कटियानि मक्कट
न तं मयं सीलवतं रमाम ॥

[अरे बन्दर, तू पहले सदाचारियों के पास आश्रम में रहता हुआ कूदना फाँदना आदि खेल करता था । अपनी वह बन्दर-लीला कर । हम शीलवान् उसमें रमण नहीं करते ।]

यह सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कही:—

सुता हि मय्हं परमा विसुद्धि
कोमायपुत्तस्स बहुस्सुतस्स,
मा दानि मं मग्गी सुवं यथा पुरे
कानानुयुत्ता विहराम आबुसो ॥

[मैंने बहु-श्रुत कोमायपुत्त से परम विशुद्धि सुनी । अब तू मुझे पहले जैसा मत समझ । आयुष्मान मैं अब ध्यानी हो कर विहार करता हूँ ।]

यह सुन तपस्वियों ने तीसरी गाथा कही:—

सचेपि सेलस्मिं वपेद्युं बीजं
देवो च वस्से नेव हितं रुहेद्य,
सुता हि ते सा परमा विसुद्धि
आरा तुवं मक्कट मानभूमिया ॥

[अगर चट्टान पर बीज बोया जाय तो वर्षा होने पर भी वह नहीं उगेगा । इसी प्रकार (यद्यपि) तू ने वह परम-विशुद्धि सुनी है तो भी तू (पशु योनि में उत्पन्न होने के कारण) ध्यान-भूमि से दूर है ।]

शास्ता ने यह धर्मेदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय क्रीड़ा-प्रिय तपस्वी ये तपस्वी थे । कोमायपुत्त तो मैं ही था ।

३००. वक जातक

“परपाणरोषा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पुराण-मैत्री के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान-) कथा विस्तार से विनाय (-पिटक) में आई ही है । यहाँ तो यह संक्षिप्त है । दो वर्ष की आयु^१ के आयुष्मान उपसेन एक वर्ष की आयु वाले सब्रह्मचारी के साथ शास्ता के पास गये । शास्ता ने आलोचना की । वह प्रणाम करके चले आये और विपर्ययना-भावना का अभ्यास कर अर्हत्व प्राप्त किया । फिर अल्पेच्छता आदि गुणों से युक्त हो, तेरह धुतंग धारण किये और अपने

^१ उपसम्पन्न भिक्षु की आयु उपसम्पदा से गिनी जाती है ।

अनुयाइयों को भी तेरह धुतंगधारी बनाया । भगवान के तीन महीने तक ध्यानावस्थित रहने पर अनुयाइयों सहित शास्ता की सेवा में पहुँचे । पहली बार अनुयाइयों के कारण निन्दित हुआ था । इस बार अधार्मिक वार्ता के अनुसार न चलने से प्रशंसा हुई । शास्ता ने कृपा की—अब से धुतंग-धारी भिक्षु मुझ से यथासुविधा भेंट कर सकते हैं । उसने बाहर आ भिक्षुओं को यह बात कही । तब मे भिक्षुओं ने धुतंग-धारी हो, शास्ता के दर्शनार्थ जा, शास्ता के ध्यानावास्था से उठने पर, पांशुकूल चीवरों को जहाँ-तहाँ छोड़ अपने अपने साफ चीवर पहने । बहुत से भिक्षुओं के साथ शास्ता ने शयनासन को देखते हुये, घूमने के समय जहाँ तहाँ पांशुकूल चीवर को देख कर पूछा । वह बात सुन शास्ता ने कहा—भिक्षुओ ! इन भिक्षुओं का व्रत चिरायु नहीं होगा । यह बगुले के उपोसथ व्रत के समान हुआ है ।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय शक्रदेव राजा हुये । एक भेड़िया गंगा के किनारे पत्थर पर रहता था । गंगा में हिम-जल ने आकर उस पत्थर को घेर लिया । भेड़िया चढ़ कर पत्थर के ऊपर जा लेता । न उसे शिकार मिला न शिकार का रास्ता । पानी बढ़ता ही जाता । वह सोचने लगा—न मेरे लिये शिकार है न मेरे लिये शिकार का रास्ता निकम्मे पड़े रहने से तो उपोसथ व्रत करना ही अच्छा है । उसने मन से ही उपोसथ व्रत तथा शील ग्रहण किया और लेट रहा । उस समय शक्र ने ध्यान दे उसके दुर्बल व्रत की बात जान सोचा—इस भेड़िये को तंग करूँगा । उसने मेमने का रूप बना अपने को भेड़िये से थोड़ी दूर खड़ा हुआ दिखाया । भेड़िये ने उसे देख सोचा—व्रत दूसरे दिन रखूँगा । वह उसे पकड़ने के लिये उछला । मेमने ने भी इधर-उधर उछल अपने को पकड़ने न दिया । भेड़िया जब उसे नहीं पकड़ सका तो लौट आ कर फिर वैसे ही लेट रहा—अभी मेरा उपोसथ व्रत नहीं टूटता । शक्र ने इन्द्र रूप से ही आकाश में प्रकट हो कहा—तेरे जैसे दुर्बल निश्चय वाले को उपोसथ व्रत से क्या ? तू बिना यह जाने कि मैं

शक्र हूँ मेमने का मांस खाना चाहता था । इस प्रकार भेड़िये को तंग कर और उसकी निन्दा कर इन्द्र देवलोक को चला गया ।

ये तीनों अभिसम्बुद्ध गायार्ये हैं—

परपाणरोधा जीवन्तो मंसलोहित भोजनो,

वको वतं समादाय उपपज्जि उपोसथं ॥

तस्स सक्को वतम्जाय अजरूपेनुपागमि,

वीततपो अजरूपत्तो भम्भिज्जोहितपो तपं ॥

एवमेवं ह्वेकच्चे समादानस्मिं दुब्बला

खहुं करोन्ति अत्तानं वकोव अजकारणा ॥

[दूसरे प्राणियों की हत्या करके जीवित रहने वाले, रक्त मांस का भोजन करने वाले भेड़िये ने भी उपोसथ व्रत धारण किया । शक्र उसके दुर्बल व्रत की बात जान मेमने के रूप में आया । उस रक्त-पायी ने विगत-तप हो (उसे खाने की इच्छा से) अपना व्रत ताड़ दिया । इसी तरह इसमें कुछ दुर्बल निश्चय वाले प्राणी अपने को ओछा बना लेते हैं, वैसे ही जैसे भेड़िये ने मेमने के कारण (अपने को ओछा बनाया ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय शक्र मैं ही था ।

चौथा परिच्छेद

१. विवर वर्ग

३०१. चुल्लकालिङ्ग जातक

“विवरय इमासं द्वारं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चार परिव्राजिकाओं की प्रब्रज्या के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

वैशाली में सात हजार सात सौ सात लिच्छवी-राजा रहते थे। वे सभी शास्त्रार्थ-कुशल थे।

एक पाँच सौ वादों (-मतों) में पंडित निर्ग्रन्थ वैशाली पहुँचा। उन्होंने उसका आदर-सत्कार किया। एक दूसरी उमी तरह की निर्ग्रन्थी भी आ पहुँची। राजाओं ने दोनों का शास्त्रार्थ कराया। दोनों बराबर रहे। तब लिच्छवियों ने सोचा—इन दोनों से उत्पन्न पुत्र मेघावी होगा। उन्होंने दोनों का विवाह करा, उन्हें एक जगह बसाया। दोनों के सहवास से क्रमशः चार लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुआ। लड़कियों का सच्चा, लोला, अश्ववादका और पटाचारा नाम रखा गया तथा लड़के का सच्चक। उन पाँचों ने बड़े होने पर माता से पाँच सौ वाद और पिता से पाँच सौ वाद, इस प्रकार एक हजार वाद सीख लिये। माता-पिता ने लड़कियों को यह नसीहत दी—यदि कोई गृहस्थ तुम्हें शास्त्रार्थ में हरा दे तो उसकी चरण-दासियाँ बन जाना और यदि कोई प्रब्रजित हरा दे तो उसके पास प्रब्रजित हो जाना। समय बीतने पर माता-पिता चल बसे।

उनके मरने पर सच्चक निर्ग्रन्थ वहीं वैशाली में लिच्छवियों को शिल्प (-विद्या) सिखाता हुआ रहने लगा। बहनों ने जम्बु-शाखा ले, शास्त्रार्थ के लिये नगर नगर घूमना आरम्भ किया। श्रावस्ती पहुँच उन्होंने नगर-द्वार पर शाखा गाड़ दी और बालकों को यह कह कर कि जो हमसे शास्त्रार्थ

कर सके वह गृहस्थ हो या प्रव्रजित इस बालू की ढेरी को पाँव से बिखेर, इस जम्बु-शाखा को पाँव से ही कुचल दे, भिक्षार्थ नगर में गईं ।

आयुष्मान् सारिपुत्र बिना बुहारी जगह को बुहार, खाली घड़ों में पानी भर, रोगियों की सेवा कर दिन चढ़ने पर भिक्षार्थ निकले । उन्होंने वह शाखा देख, पूछकर, उसे लड़कों से ही गिरवाकर कुचलवा दिया और लड़कों को कहा कि जिन्होंने यह शाखा गाड़ी हो वह खाना पीना समाप्त कर जेतवन की छ्योढ़ी में मुझे मिलें । भिक्षा से लौट कर भोजनान्तर वह विहार की छ्योढ़ी में ही रहे । उन परिव्राजिकाओं ने भी भिक्षा से लौट उस शाखा को मर्दित देख कर पूछा :—

“इसे किसने कुचला ?”

“सारिपुत्र स्थविर ने । यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहो, तो विहार की छ्योढ़ी पर जाओ ।”

वे बच्चों से यह सुन फिर नगर में गईं और जनता को इकट्ठा कर विहार की छ्योढ़ी पर पहुँची । वहाँ उन्होंने स्थविर से एक हजार प्रश्न पूछे । स्थविर ने उत्तर देकर पूछा :—“और भी कुछ जानती हो ?”

“स्वामी ! नहीं जानती हूँ ।”

“मैं कुछ पूछूँ ?”

“स्वामी पूछें । जानती होंगी तो कहेंगी ।”

स्थविर ने पूछा—“एक बात क्या है ?”

वह नहीं जानती थीं । स्थविर ने बताया । वे बोलीं—

“स्वामी ! हमारी पराजय हुई । आपकी जय हुई ।”

“अब क्या करोगी ?”

“हमारे माता पिता ने हमें कहा था कि यदि गृहस्थ से पराजित होना तो उसकी गृहिणी हो जाना और यदि प्रव्रजित से पराजित होना तो उसके पास प्रव्रजित हो जाना । आप हमें प्रव्रजित करें ।”

स्थविर ने ‘अच्छा’ कह उन्हें उत्पलवर्णा स्थविरी के पास प्रव्रजित कराया । सभी शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुईं ।

भिक्कुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, सारिपुत्र स्थविर ने चारों परिव्राजिकाओं का सहायक हो सभी को अर्हत्व प्राप्त करा दिया ।

शास्ता ने आकर पूछा—“भिन्नुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत ।”

“भिन्नुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह इनका सहायक हुआ है । अब तो प्रब्रज्याभिषेक दिलवाया है, किन्तु पहले पटरानी के पद पर स्थापित किया है ।”

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कालिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कालिङ्गराज के राज्य करने के समय अस्सक राज्य के पोंतलि नगर में अस्सक नाम का राजा राज्य करता था । कालिङ्गराज के पास सैन्यबल था और स्वयं भी वह हाथी के बल का था । उसे कोई अपने से लड़ सकने वाला नहीं दिखाई देता था । उसने युद्धेच्छुक हो अमात्यों से कहा—मेरी युद्ध करने की इच्छा है । प्रतिपत्नी नहीं दिखाई देता । क्या करूँ ?

“महाराज, एक उपाय है । आपकी चारों लड़कियाँ सुन्दर रूपवाली हैं । उन्हें अलङ्कृत कर, पदवाले रथ में बिठा, सेना के साथ ग्राम-निगम तथा राजधानियों में चक्कर लगावायें । जो राजा उन्हें अपने घर में रखना चाहेगा, उससे युद्ध करेंगे ।”

राजा ने वैसा कराया । जहाँ जहाँ वह जातीं राजा लोग भय से उन्हें नगर में न आने देते । भेंट भेजकर उन्हें बाहर ही रखते । इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप में घूम कर अस्सक राष्ट्र के पोंतलि नगर पहुँचीं । अस्सक (राजा) ने भी (नगर-) द्वार बन्द करवा भेंट भेजी । उसका नन्दिसेन नामक अमात्य परिडत था, बुद्धिमान था और था उपाय-कुशल । उसने सोचा—इन राज-कन्याओं को सारे जम्बुद्वीप में घूम आने पर भी प्रतिपत्नी नहीं मिला । ऐसा होने पर तो सारा जम्बुद्वीप तुच्छ होता है । मैं कालिङ्ग-राज के साथ युद्ध करूँगा । उसने नगरद्वार पर पहुँच, द्वार-पालों को सम्बोधित कर उनके लिये नगर-द्वार खुलवा देने को पहली गाथा कही :—

विवरथ इमासं द्वारं नगरं पविसितुं मया,

अस्सराजस्स सीहेन सुसिट्ठेन सुरस्सितं नन्दिसेनेन ॥

[अरुणराज (अस्सक-नरेश) के (मन्त्री) मुझ पुरुष-सिंह सुशिक्षित नन्दिसेन द्वारा सुरक्षित द्वार खोल दो, जिसमें ये नगर में प्रवेश कर सकें।]

यह कह उसने द्वार खुलवा दिया और उन लड़कियों को अस्सकराजा को दिखाकर कहा—आप डरें नहीं। यह सुन्दर रूपवाली राजकन्याएँ हैं। इन्हें अपनी रानियाँ बना लें। उसने उन्हें अभिषिक्त करा उनके साथ आए आदमियों को विदा किया—जाओ, अपने राजा से कहाँ कि अस्सक-राजा ने राजकन्याओं को रानी बना लिया। उन्होंने जाकर कहा। कलिङ्ग नरेश उसी समय बड़ी भारी सेना ले निकल पड़ा—अस्सकराजा मेरी सामर्थ्य से अभी परिचित नहीं।

नन्दिसेन ने जब उसका आगमन सुना तो सन्देश भिजवाया—अपनी ही सीमा में रहे। हमारी सीमा में न रहे। दोनों राजाओं की सीमाओं के बीच ही युद्ध होगा। उसने लेख सुना तो अपनी राज्य-सीमा पर रुका। अस्सक (नरेश) भी अपनी राज्य-सीमा पर ही रुका।

उस समय बोधिसत्व भृषि-प्रब्रज्या ग्रहण कर उन दोनों राज्यों के बीच पर्णकुटी में रहते थे। कलिङ्ग-नरेश ने सोचा—भ्रमण कुछ जानने वाले होते हैं। कौन कह सकता है कि क्या हो? किसकी जीत हो, किसकी हार हो? तपस्वी को पूछूंगा।

उसने भेस बदल, बोधिसत्व के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशलक्षेम पूछते हुए कहा—भन्ते, कलिङ्ग-नरेश तथा अस्सकराज युद्ध करने की इच्छा से अपनी-अपनी सीमा में तैयार खड़े हैं। इनमें किसकी जय होगी और किसकी पराजय?

“महापुण्यवान्! मैं नहीं जानता कि किसकी जीत होगी और किसकी हार? हाँ, देवराज शक्र यहाँ आता है। उसे पूछ कर कहूँगा। कल आना।”

शक्र बोधिसत्व की सेवा में आ विराजमान हुआ। बोधिसत्व ने उसे वह बात पूछी। “भन्ते, कलिङ्ग विजयी होगा। अस्सक पराजित होगा। यह इसके पूर्व-लक्षण दिखाई देंगे।”

कलिङ्ग ने अगले दिन आकर पूछा। बोधिसत्व ने कह दिया। वह बिना यह पूछे कि क्या पूर्व-लक्षण प्रकट होगा, खुशी से फूला हुआ चला

गया । वह बात फैल गई । इसे सुन अस्सक-राज ने नन्दिसेन को बुलवाकर पूछा—कलिङ्ग विजयी होगा । हम हारेंगे । अब क्या करना चाहिये ?

“महाराज; इसे कौन जानता है कि किसकी जीत होगी, किसकी हार ? आप चिन्ता न करें” कह राजा को आश्वासन दे, बोधिसत्वय के पास पहुँचा । उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—भन्ते ! किसकी विजय होगी ? कौन पराजित होगा ?

“कलिङ्ग जीतेगा, अस्सक हारेगा”

“भन्ते विजयी का क्या पूर्व-लक्षण होगा और पराजित होने वाले का क्या ?”

“महापुरुषवान् ! विजयी का रत्नक देवता सर्वश्वेत वृषभ होगा, दूसरे का एक दम काला । दोनों के रत्नक-देवता जीत-हार का निर्णय करेंगे ।”

नन्दिसेन ने यह सुन जाकर राजा के एक हजार महायोद्धा मित्रों को एकत्र कर पास के पर्वत पर ले जाकर पूछा—

“भो ! अपने राजा के लिये जीवन परित्याग कर सकोगे ?”

“हाँ, कर सकेंगे ।”

“तो, इस प्रपात पर से गिरो ।”

वह गिरने लगे । उन्हें रोक कर कहा—बस ! गिरो मत अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करने को दिल से डट कर लड़ो । उन्होंने स्वीकार किया ।

संग्राम उपस्थित होने पर ‘मेरी विजय होगी ही’ सोच कलिङ्ग ढीला पड़ गया । उसकी सेना भी ‘हमारी विजय होगी ही’ सोच ढीली पड़ गई । (सैनिक) कवच उतार पृथक पृथक हो यथारुचि चल दिये । जोर लगाने के समय जोर नहीं लगाया । दोनों राजा घोड़े पर चढ़ युद्ध करने के लिये एक दूसरे के पास आये । दोनों के रत्नक-देवता भी पहले ही पहुँचे—कलिङ्ग का रत्नक-देवता सर्व-श्वेत वृषभ और दूसरे का एक दम काला । वे परस्पर युद्ध करने के लिये तैयार हुए । लेकिन वे बैल केवल दोनों राजाओं को ही दिखाई देते थे और किसी को नहीं । नन्दिसेन ने अस्सक (-राज) से पूछा—

“महाराज ! आपको देवता दिखाई देता है ?”

“हाँ दिखाई देता है ।”

“कैसा आकार है ?”

“कलिङ्ग का रत्नक-देवता सर्व-श्वेत वृषभ के रूप में दिखाई दे रहा है, हमारा रत्नक-देवता एक दम काला थका हुआ सा ।”

“महाराज, आप भयभीत न हों । हम जीतेंगे । कालिङ्ग की हार होगी । आप घोड़े की पीठ से उतर, यह शक्ति (-आयुध) ले, सुशिक्षित सैन्धव (घोड़े) को पेट के पास बायें हाथ से दबा, इन एक सहस्र आदमियों के साथ तेजी से जा, कालिङ्ग के रत्नक-देवता को शक्ति प्रहार से गिरा दें । तब हम हजार जने हजार शक्तियों से प्रहार करेंगे । इस प्रकार कालिङ्ग का रत्नक-देवता नष्ट हो जायगा । तब कालिङ्ग की हार होगी और हम जीत जायेंगे ।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह नन्दिसेन के सुभाव के अनुसार जाकर शक्ति से प्रहार किया । अमात्यों ने भी हजार शक्तियों से प्रहार किया । रत्नक-देवता का वहीं प्राणान्त हो गया । उसी समय कालिङ्ग हार कर भाग गया । उसे भागता देख हजार अमात्यों ने हल्ला किया—कालिङ्ग भाग रहा है । कालिङ्ग ने मरने के भय से भागते हुए उस तपस्वी को गाली देते हुए दूसरी गाथा कही:—

जय कलिङ्गानं असहस्राहिनं
पराजयो अनयो अस्सकानं,
इच्छेव ते भासितं ब्रह्मचारि
न उज्जुभूता वितथं भणन्ति ॥

[असह्य को भी सह सकने वाले कालिङ्गों की विजय होगी और अस्सक-वासियों की पराजय निश्चित है—यही हे ब्रह्मचारी ! तू ने कहा था । जो ऋजु हैं, वह तो झूठ नहीं बोलते !]

इस प्रकार वह तपस्वी को गाली देता हुआ भाग कर अपने नगर पहुँचा । (मार्ग में) रुक कर कहीं (पीछे) देख तक नहीं सका । उसके कुछ दिन बाद शक्र तपस्वी की सेवा में आया । तपस्वी ने उसके साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही:—

देव मुसावादमुपातिवत्ता
सत्त्वं धनं परमं तेसु सक्क,
तं ते मुसा भासितं देवराज
किं वा पटिच्च मघवा महिन्द ॥

[हे शक्र ! देवता तो मृषावादी नहीं होते । उनका परम धन सत्य (ही) है । हे देवराज ! हे मधवा ! हे महिन्द ! तू ने जो झूठ बोला वह किस कारण से बोला ?]

यह सुन शक्र ने चौथी गाथा कही :—

नतु ते सुतं ब्राह्मण भञ्जमाने
 देवा न इस्सन्ति पुरिसपरक्कमस्स,
 दमो समाधि मनसो अदेज्जो
 अव्यग्गता निक्खमणञ्चकाले
 द्दळ्हञ्च विरियं पुरिसपरक्कमो च,
 तेनेव आसि विजयो अस्सकानं ॥

[क्या तूने कभी ब्राह्मणों को यह कहते नहीं सुना कि देवता परा-
 क्रमी पुरुष से ईर्ष्या नहीं करते । संयम, समाधि, मन की एकाग्रता, अव्यग्रता,
 समय पर निष्क्रमण और दृढ़-वीर्य तथा पुरुष-पराक्रम—इन्हीं गुणों के होने
 से अस्सकों की विजय हुई है ।]

कलिङ्ग-राजा के भाग जाने पर अस्सक राजा लूट का माल उठवा
 अपने नगर को लौटा । नन्दिसेन ने कलिङ्ग के पास सन्देश भेजा—इन चारों
 राजकन्याओं का दहेज भेजो । यदि नहीं भेजोगे तो जो करना उचित है
 करूँगा । उसने वह संदेश सुन, डर के मारे उन कन्याओं को जितना दहेज
 मिलना चाहिए था भेजा । तब से दोनों राजाओं में मेल रहा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय
 कलिङ्ग-राजा की कन्यायें यह तरुण भिक्षुणियाँ थीं । नन्दिसेन सारिपुत्र ।
 तपस्वी तो मैं ही था ।

३०२. महाभस्सरोह जातक

“अदेय्येसु ददं दानं...” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय आनन्द स्थविर के बारे में कही। ‘वर्तमान-कथा’ पहले आ ही गई है। शास्ता ने ‘पूर्वकाल में पंडितों ने भी अपने उपकारियों का उपकार किया’ कह पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्व वाराणसी का राजा हो उत्पन्न हुए। वह धर्म-पूर्वक, न्यायपूर्वक राज्य करता था, दान देता था, शील की रक्षा करता था।

प्रत्यन्त-देश के विद्रोह को शान्त करने के लिये वह सेना सहित गया। उसे हार कर घोड़े पर चढ़ भागना पड़ा। भागता भागता वह एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचा। वहाँ तीस राज-सेवक रहते थे। वह प्रातःकाल ही गाँव के मध्य में इकट्ठे हो ग्राम-कृत्य करते थे। उसी समय राजा कसे हुए घोड़े पर चढ़ सजा-सजाया ही ग्रामद्वार से गाँवों में प्रविष्ट हुआ। वह ‘यह क्या’ डर कर, भाग कर, अपने अपने घर में जा चुके। लेकिन एक ने अपने घर पहुँच राजा की अगवानी कर पूछा—सुना है कि राजा तो प्रत्यन्त-देश में गया है। तू कौन है ? राज-पुरुष वा चोर-पुरुष ?

“सौम्य ! राज-पुरुष ।”

‘तौ आ’ कह राजा को घर ले जा अपने पीढ़े पर बिठाया। फिर भार्या को ‘भद्रे, आ मित्र के पाँव धो’ कह भार्या से पैर धुलवा अपनी सामर्थ्या-नुसार भोजन कराया। फिर ‘थोड़ा विश्राम करें’ कह बिछौना बिछा दिया। राजा लेट रहा। उसने इतने में घोड़े की काठी खोल, धुमा, पानी पिला, पीठ पर तेल की मालिश कर उसे घास दिया।

इस प्रकार तीन चार दिन राजा की सेवा करता रहा। जिस दिन राजा ने कहा—‘मित्र, जाता हूँ’ उस दिन भी राजा और अश्व के लिए जो जो करना उचित था, किया। राजा खाकर जाता हुआ बोला—सौम्य !

मेरा नाम महाश्वारोह है। मेरा घर नगर के बीच में है। यदि किसी काम से आना हो तो दक्षिण-द्वारपाल से पूछना कि महाश्वारोह किस घर में रहता है और उसे साथ ले हमारे घर आना। इतना कह चला गया। सेना ने भी राजा को न देख नगर के बाहर छावनी डाल ली थी। राजा को देखा तो अगवानी कर राजा के पास पहुँची।

राजा ने नगर में प्रवेश करते समय द्वार में एक द्वारपाल को बुलाया और जनता को एक ओर हटा कर कहा—तात। एक प्रत्यन्त-ग्रामवासी मुझे मिलने की इच्छा से आयागा और तुझे पूछेगा कि महाश्वारोह का घर कहाँ है? तू उसे हाथ से पकड़ मेरे पास लाना। तुझे हजार मिलेगा। वह नहीं आया। उसे न आता देख राजा ने जिस गाँव में वह रहता था उस गाँव की मालगुजारी (बलि) बढ़ा दी। मालगुजारी बढ़ने पर भी नहीं आया। इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी मालगुजारी बढ़ाई। वह नहीं ही आया।

तब उस गाँव के रहने वालों ने इकट्ठे हो उसे कहा—आर्य! तेरे अश्वारोह के आने के समय से हम मालगुजारी से इतने पीड़ित हो गये कि सिर भी नहीं उठा सकते। जा महाश्वारोह से कहकर हमें मालगुजारी से मुक्त करा।

“अच्छा, जाता हूँ। लेकिन खाली हाथ नहीं जा सकता। मेरे मित्र के दो बच्चे हैं। उनके लिये, उसकी भार्या के लिये तथा मेरे मित्र के लिये कपड़े लच्छे तथा गहने तैयार करो।”

“अच्छा, तैयार करते हैं” कह उन्होंने सब भेंट तैयार की।

उसने वे सब और अपने घर पके पूरे ले, दक्षिण-द्वार पहुँच, द्वारपाल से पूछा—“मित्र, महाश्वारोह का घर कहाँ है?” उसने “आ, तुझे बताऊँ” कह उसे हाथ से लिवा जाकर राजद्वार पर पहुँचाया। राजा ‘द्वारपाल प्रत्यन्त-वासी को लेकर आया है’ सुनते ही आसन से उठ खड़ा हुआ और बोला—मेरा मित्र और उसके साथ आये हुए (सब) आबें। उसने उसकी अगवानी कर, देखते ही गले लगा कर पूछा—मेरी मित्राणी और बच्चे स्वस्थ तो हैं न? फिर हाथ पकड़, महान् तल्ले पर चढ़, उसे श्वेत-छत्र के नीचे बिठाया और पटरानी को बुलाकर कहा—भद्रे! मेरे मित्र के पाँव धो।

उसने उसके पाँव धोये । राजा ने सोने की भँकारी से पानी डाला । देवी ने पाँवों धोकर उनमें सुगन्धित तेल की मालिश की । राजा ने पूछा— मित्र हमारे लिये कुछ खाने को है ? उसने “है” कह थैली में से पूर निकाले । राजा ने सोने की थाली में ले उसका आदर करते हुए ‘मेरे मित्र का लाया हुआ खाओ’ कह देवी और अमात्यों को दे स्वयं भी खाये ।

उसने दूसरी भेंट भी सामने रखी । राजा ने उसके प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए काशी (के बने) वस्त्र उतार कर उसके लाये वस्त्र पहने । देवी ने भी काशी-वस्त्र और अलङ्कार उतार उसके लाये वस्त्र तथा गहने पहने । राजा ने उसे भोजन खिलवा एक अमात्य को आज्ञा दी—जा, जैसे मेरी हजामत बनती है उसी तरह इसकी हजामत बनवा, सुगन्धित जल से स्नान करा, लाख के मूल्य का काशी-वस्त्र पहनवा, राजाभरण से अलङ्कृत करवा कर ला । उसने वैसा किया ।

राजा ने नगर में मुनादी करा, अमात्यों को इकट्ठा किया और श्वेतछत्र के मध्य में शुद्ध हिंगुल से रंगा सूत्र गिरा, आधा-राज्य दे दिया । उस समय से खाना, पीना सोना इकट्ठा होने लगा । परस्पर विश्वास दृढ़ हो गया, ऐसा जिसे कोई छिन्न-भिन्न न कर सके । राजा ने उसके स्त्री-पुत्रों को भी बुलवा, नगर में मकान बनवा दिया । वे मिल-जुल कर प्रसन्न चित्त रह राज्य करते ।

अमात्यों ने क्रोधित हो राजपुत्र को कहा—कुमार ! राजा ने एक गृहस्थ को आधा राज्य दे दिया है । वह उसके साथ खाता, पीता, सोता है और बच्चों से उसे नमस्कार करवाता है । हम नहीं जानते कि इसने राजा का क्या उपकार किया है ? राजा क्या करता है ? हमें लज्जा आती है । तू राजा से कह ।

उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया । फिर सारी बात राजा को सुनाकर निवेदन किया—महाराज, ऐसा न करें ।

“तात ! मैं युद्ध में पराजित होकर कहाँ रहा, जानते हो ?”

“देव ! नहीं जानता हूँ ।”

“मैं इसी के घर में रहकर स्वस्थ हो आकर राज्य करने लगा हूँ ।

जिसने मेरा इतना उपकार किया, उसे कैसे सम्पत्ति न दूँ ?”

इतना कह बोधिसत्व ने 'तात ! जो जिमे देना अयोग्य है, उसे देता है और जिसे देना योग्य है उसे नहीं देता है वह जय आपत्ति में पड़ता है तो (कोई) उसका कुछ उपकार नहीं करता' स्पष्ट करते हुए ये गाथायें कहीः—

अदेय्येसु ददं दानं देय्येसु नप्पवेच्छति,
 आपासु व्यसनं पत्तो सहायं नाधिगच्छति ॥
 नादेय्येसु ददं दानं देय्येसु यो पवेच्छति,
 आपासु व्यसनं पत्तो सहायमधिगच्छति ॥
 सज्जोग सम्भोग विसेसदस्सनं
 अनरियधम्मेसु सठेसु नस्सति,
 कतञ्च अरियेसु च अज्जसेसु च
 महप्फलो होति अणुप्पि तादिभु ॥
 यो पुब्बं कतकल्याणो अका लोके सुदुक्करं,
 पच्छा कयिरा न वा कयिरा अच्चन्तं पूजनारहो ॥

[जो जिन्हें देना अयोग्य है उन्हें देता है और जिन्हें देना चाहिए उन्हें नहीं देता, उसे आपत्ति में कष्ट भोगना पड़ने पर सहायक नहीं मिलता । जो जिन्हें देना अयोग्य है उन्हें नहीं देता और जिन्हें देना योग्य है उन्हें देता है, उसे आपत्ति में कष्ट भोगना पड़ने पर सहायक मिलता है ।

अनार्य-स्वभाव शठ पुरुषों के साथ का संयोग, संभोग अथवा उनके प्रति किया गया विशेष उपकार नष्ट हो जाता है । आर्यों के श्रेष्ठ मार्गानुयायियों वा स्थिरचित्त-मनुष्यों के प्रति किया गया थोड़ा भी उपकार महान् फल का देने वाला होता है ।

जिसने पहले उपकार किया है उसने लोक में दुष्कर कार्य किया है, वह पीछे उपकार करे वा न करे, वह अत्यन्त पूजनीय है ।]

और कहा भी गया :—

यथा बीजं अग्निस्मिं ब्रह्मति न विरूहति,
 एवं कतं असप्पुरिसे ब्रह्मति न विरूहति ॥
 कतञ्जुग्घि च पोसद्भि सीलवन्ते अरियबुद्धिने,
 सुखेत्ते विय बीजानि कतं तर्हि न नस्सति ॥

[जिस प्रकार आग में पड़ा हुआ बीज उगता नहीं है जल जाता है, उसी प्रकार असत्पुरुष का जो उपकार किया जाता है वह भी फलता नहीं है जल जाता है ।]

यह सुन न अमात्य ही फिर कुलु बंगले, न राजकुमार ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिटाया । उस समय प्रत्यन्त-वासी आनन्द था । वाराणसी राजा तो मैं ही था ।

३०३. एकराज जातक

“अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे ...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के एक सेवक के बारे में कही । वर्तमान-कथा नीचे सद्यंश जातक^१ में आ ही गई है । यहाँ इस कथा में तो शास्ता ने ‘केवल तू ही अनर्थ से अर्थ करने वाला नहीं है, पुराने पण्डितों ने भी अपने अनर्थ से अर्थ किया है’ कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी राजा के उपस्थायक अमात्य ने राजा के अन्तःपुर को दूषित कर दिया । राजा ने प्रत्यक्ष उसका दोष देख उसे राष्ट्र से निकाल दिया । वह दम्बसेन नामक कोशलराज की सेवा में रहने लगा... आदि सब महासीलव जातक में आया ही है ।

इस कथा में तो दम्बसेन ने महान् तल्ले पर मन्त्रियों के बीच बैठे वाराणसी नरेश को पकड़वा, छींके में डलवा, उत्तर की देहली में सिर नीचे पैर ऊपर कर लटकवा दिया । राजा चोर-राजा के प्रति मैत्री भावना कर योग द्वारा

^१ सद्यंश जातक (२८२)

^२ महासीलव जातक (११)

ध्यानावस्थित हुआ। उसका बन्धन टूट गया। तब राजा आकाश में पालथी मार बैठा। चोर-राजा के शरीर में जलन पैदा हुई। 'जलता हूँ' कहता हुआ इधर उधर लोटने लगा। 'इसका क्या कारण है ?' पूछने पर बताया गया कि महाराज आप ने इस प्रकार के धार्मिक राजा को निरपराध द्वार की उत्तर की देहली में सिर नीचे करके लटकवा दिया है।

“तो जल्दी से जाकर उसे मुक्त करो।”

लोगों ने जाकर राजा को आकाश में बैठा देख आकर दम्ब मेन को कहा। उसने जल्दी से पहुँच, उसकी वन्दना कर, क्षमा मांग पहली गाथा कही:—

अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे
भुत्वान पुब्बेवसि एकराजा,
सो दानि दुग्गे नरकग्घि खित्तो
नप्पजहे वयण बलं पुराणं ॥

[हे एकराज ! तू पहले अनुत्तर स्मृद्ध काम-भोगों को भोगता हुआ रहा। अब तुझे दुष्कर नरक में फँक दिया है। तो भी तू अपने पुराने वर्ण-बल को (कैसे) बनाये है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीं:—

पुब्बे खन्ती च तपो च मय्हं
सम्पत्थिता दम्बसेना अहोसि,
तं दानि लब्धान कथन्नु राज
जहे अहं वयणबलं पुराणं ॥
सब्बे किरेव परिनिट्ठितानि
यसस्सिनं पम्भवन्तं विसय्ह,
यसो च लब्धा पुरिमं उट्ठारं
नप्पजहे वयणबलं पुराणं
पनुज्ज दुक्खेन सुखं जनिन्द
सुखेन वा दुक्खमसय्हसाहि,
उभयत्थ सन्तो अभिनिव्वुत्तत्ता
सुखे च दुक्खे च भवन्ति तुत्था ॥

[हे दिव्यसेन ! मेरे द्वारा शान्ति और तप की पहले ही प्रार्थना की गई थी । उन्हें पाकर मैं अब अपने पुराने वर्ण को कैसे त्यागूँ ? हे यशस्वी ! हे प्रज्ञावान् ! हे सहनशील ! ये सब (दान शील आदि) कर्म पहले ही कर चुका हूँ और अपूर्व तथा उदार यश की प्राप्ति भी हो जाने के कारण मैं अपने पुराने वर्ण बल (सौन्दर्य) को नहीं छोड़ता हूँ । हे जनेन्द्र ! दुःख से सुख को दूरकर अथवा हे सहनशील ! सुख से दुःख को दूर कर जो शान्त पुरुष हैं, वे दोनों के प्रति उपेक्षावान् हो सुख तथा दुःख दोनों के प्रति समान-भाव रखते हैं ।]

यह सुन दम्बसेन ने बोधिसत्व से क्षमा माँगी । अपना राज्य आप ही संभालें, मैं चोरों से रक्षा-करूँगा, कह उस दुष्ट-अमात्य को राज-दण्ड दिला चला गया । बोधिसत्व भी अमात्यों को राज्य सौंप श्रुति-प्रब्रज्या ले ब्रह्मलोक परायण हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय दम्बसेन आनन्द था । वाराणसी राजा तो मैं ही था ।

३०४. दहर जातक

“इमानि मं दहर तापयन्ति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक क्रोधी के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

कथा तो नीचे कही ही गई है । उस समय धर्मसभा में उसके क्रोधीपन की बात चलने पर शास्ता ने आकर पूछा:—

“भिन्नुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत ।”

“शास्ता ने उस भिन्नु को बुलवा कर पूछा—

“भिन्नु ! क्या तू सचमुच क्रोधी है ?”

“भन्ते ! हाँ ।”

‘भिन्नुओ, यह केवल अभी क्रोधी नहीं है, पूर्व (जन्म) में भी यह क्रोधी ही रहा है । इसके क्रोध के कारण शुद्ध नागराज योनि में उत्पन्न पुराने पण्डितों को भी तीन वर्ष तक गन्दगी भरी कुरङ्गी में रहना पड़ा था’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में जो दहरपर्वत में दहर नागभवन है, वहाँ राज्य करने वाले दहर राजा के महादहर नाम के पुत्र हुए । छोटे भाई का नाम था चूळदहर । वह क्रोधी कठोर स्वभाव का था और नाग-माणवकों को गाली दिया करता तथा पीटा करता था । नागराजा को जब उसके कठोर स्वभाव का पता लगा तो उसने उसे नागभवन से निकाल देने की आज्ञा दी । महादहर ने पिता से क्षमा माँग आज्ञा टलवा दी । दूसरी बार भी राजा को उस पर क्रोध आया । दूसरी बार भी क्षमा माँग ली । लेकिन तीसरी बार उसने आज्ञा दी—तू इस अनाचारी को निकालने से मुझे रोकता है, जाओ तुम दोनों इस नागभवन से निकल वाराणसी में कूड़ा फेंकने की जगह जाकर तीन वर्ष तक रहो । वे वहाँ जाकर रहने लगे ।

उन्हें पानी तक कूड़ा फेंकने की जगह में भोजन ढूँढ़ते फिरते देख गाँव के लड़के प्रहार करके, पत्थर लकड़ी आदि फेंकते और गाली देते थे—कौन है ये बड़े बड़े सिरवाले, चीते (जैसे) पानी के सर्प । चूळदहर क्रोधी होने के कारण उनका वह अपमान सहन नहीं कर सकता था । वह बोला—भाई ! यह बालक हमारा मजाक उड़ाते हैं । यह नहीं जानते कि हम विपैले सर्प हैं । मैं इनका अपमान नहीं सह सकता हूँ । मैं इनको फुँकार मार कर नष्ट करूँगा । इस प्रकार भाई के साथ बातचीत करते हुए उसने पहली गथा कही :—

इमानि मं दहर तापयन्ति

वाचा दुरुत्तानि मनुस्सलोके,

मण्डकभस्त्रा उदकन्तसेवी

आसीविसं मं अविस्सा सपन्ति ॥

[हे दहर ! ये मनुष्यलोक की दूषित वाणियाँ मुझे दुःख देती हैं । ये निर्विष ग्राम-बालक मुझे 'मण्डक' खाने वाला तथा पानी के तट पर रहने वाला' कह कह कर गाली देते हैं ।]

उसकी बात सुन महादहर ने शेष गाथायें कहीं—

सका रट्ठा पम्बाजितो अम्भं जनपदं गतो,

महन्तं कोट्टं कयिराथ दुरुत्तानं निधेतवे ॥

यत्थ पोसं न जानन्ति जातिया विनयेन वा,

न तत्थ मानं कयिराथ वसमम्भातके बने ॥

विदेसवासं वसतो जातवेदसमेनपि,

खमितब्बं सपम्भेन अपि दासस्स तज्जितं ॥

[अपने देश से निकाल दिये जाने पर तथा दूसरे जनपद में जाने पर दुरुक्त वाणी (को रखने) के लिये आदमी अपने पास बड़ा कोठा रखे । अपरिचित जनों में रहते समय; जहाँ कोई अपनी जाति तथा शील से परिचित न हो, मान न करे । अग्नि के समान (प्रचण्ड) होने पर भी बुद्धिमान आदमी को चाहिए कि वह विदेश में रहते दास की घुड़की तक को भी ज़मा कर दे ।]

इस प्रकार वे वहाँ तीन वर्ष तक रहे । तब उनके पिता ने उन्हें बुलवा लिया । उस समय से वे अभिमान रहित हो गये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिन्नु अनागामी-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय चूळदहर क्रोधी भिन्नु था । महादहर तो मैं ही था ।

३०५. सीलवीमंसन जातक

“नत्थि लोके रहो नाम...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता के निग्रह करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा एकादश परिच्छेद के पाणीय जातक^१ में आयेगी। यहाँ यह संक्षिप्त वर्णन है। जेतवन-निवासी पाँच सौ भिन्नु आधी रात के बाद मन में काम भोग सम्बन्धी संकल्प उठाने लगे। शास्ता दिन-रात के छुआँ हिस्सों में उसी प्रकार भिन्नुओं पर सदा नजर रखते थे जैसे एक आँख वाला अपनी (एक) आँख की रक्षा करता है, एक ही पुत्र वाला अपने पुत्र की तथा चमरी अपनी पूँछ की। उन्होंने रात को दिव्यचक्षु से जेतवन को देखा तो उन्हें वे भिन्नु ऐसे लगे जैसे चक्रवर्ती राजा के महल में चोर घुस गये हों। गन्धकुटी खुलवा आनन्द स्थविर को बुलवा उन्होंने कहा—“आनन्द ! कोटि-सन्धार में भिन्नुओं को इकट्ठा कर गन्धकुटी द्वार पर आसन बिछा दो।” उसने वैसा करके शास्ता को सूचना दी। शास्ता ने धिळे आसन पर बैठ भिन्नुओं को सामुहिक तौर पर आमन्त्रित कर “भिन्नुओ, पुराने पण्डितों ने यह सोचकर कि कोई भी जगह ‘क्षिपी’ नहीं होती, पाप नहीं किया” कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मणकुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वहीं वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य के पास पाँच सौ विद्यार्थियों में ज्येष्ठ हांकर विद्या सिखाने लगे। आचार्य की आयु-प्राप्त लड़की थी। उसने सोचा कि इन विद्यार्थियों के शील की परीक्षा कर जो सदाचारी होंगा उसे ही पुत्री दूँगा। उसने विद्यार्थियों को बुला कर कहा—तात ! मेरी लड़की आयुप्राप्त हो गई। मैं इसका विवाह करूँगा।

^१ पाणीय जातक (४१३)

वस्त्रों तथा अलङ्कारों की अपेक्षा है। तुम अपने सम्बन्धियों की आँख बचाकर चुराकर वस्त्र तथा अलङ्कार लाओ। जिसे किसी ने न देखा हो, ऐसे ही वस्त्रालङ्कार ग्रहण करूँगा। जिन्हें किसी ने देख लिया होगा ऐसे नहीं ग्रहण करूँगा। वे 'अच्छा' कह स्वीकार कर तब से सम्बन्धियों की आँख बचा चुराकर वस्त्र तथा आभरण लाने लगे। आचार्य जो कुछ कोई लाता उसे पृथक पृथक ही रखते जाते। बोधिसत्व कुछ नहीं लाये। आचार्य ने पूछा—तात तू कुछ नहीं लाता ?

“आचार्य ! हाँ ।”

“तात ! क्यों ?”

“तुम किसी के देखते लाई चीज ग्रहण नहीं करते। मैं पाप करने के लिए कोई 'छिपी' जगह नहीं देखता ।”

यह प्रकट करते हुए ये दो गाथाएँ कहीः—

नस्थि लोके रहो नाम पापकम्मं पकुब्बतो,

पस्सन्ति वनभूतानि तं बालो मज्जती रहो ।

अहं रहो न पस्सामि सुअंवापि न विज्जति,

यत्थ अज्जं न पस्सामि असुज्जं होति तंमया ॥

[पाप कर्म करने वाले के लिये ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कोई न हो। मूर्ख आदमी उस स्थान को जहाँ वन के प्राणी देखते रहते हैं 'छिपी जगह' मानता है। मैं किसी जगह को 'छिपी' जगह नहीं देखता। कोई स्थान 'शून्य' स्थान नहीं है। जहाँ और कोई नहीं दिखाई देता उस स्थान पर मैं स्वयं तो होता ही हूँ ।]

आचार्य ने उस पर प्रसन्न हो कहा—तात ! मेरे घर में धन है। मैं ने तो सदाचारी को लड़की देने की इच्छा से इन विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। उसमें 'मेरी लड़की तुम्हारे ही योग्य है' कह, लड़की अलङ्कृत कर बोधिसत्व को दी और शेष विद्यार्थियों से कहा—तुम जो धन लाये हो उसे अपने अपने घर ले जाओ।

शास्ता ने 'भिच्छुओ ! अपनी दुःशीलता के कारण ही उन दुःशील विद्यार्थियों को वह स्त्री नहीं मिली। दूसरे पंडित विद्यार्थियों ने शीलवान होने के ही कारण प्राप्त की ।' इतना कह अभिसम्बुद्ध होने पर शेष दो गाथाएँ कहीः—

दुज्जच्चो च सुजच्चो च नन्दो च सुखवच्छको,

वेज्जो अदधुवसीलोच ते धम्मं जहुमत्थिका ।

ब्राह्मणो च कथं जहे सव्वधम्मानपारगू,

यो धम्ममनुपालेति धियत्ता सच्चनिककमो ॥

[दुज्जच्च, सुजच्च, नन्द, सुखवच्छक, वेज्ज तथा अदधुव शील आदि स्त्री की अपेक्षा रखने वाले उन विद्यार्थियों ने धर्म छोड़ दिया । लेकिन सभी धर्मों में पारंगत ब्राह्मण जो धृतिमान हैं जो सत्य में दृढ़ हैं, तथा जो धर्म का पालन करता है वह उसे कैसे छोड़े ?]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में वे पाँच सौ भिन्नु अर्हत हो गये । उस समय आचार्य सारिपुत्र थे । पण्डित विद्यार्थियों तो मैं ही था ।

३०६. सुजाता जातक

“किं अण्डका...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय मल्लिका देवी के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन उसका राजा से प्रेम-कलह हो गया—शयन-कलह भी कहा जाता है । राजा क्रोधित हो उसकी ओर से एक दम लापरवाह हो गया । मल्लिका देवी सोचने लगी—मैं समझती हूँ कि शास्ता यह नहीं जानते कि राजा मुझ पर क्रुद्ध है । शास्ता जानकर, ‘इन दोनों का मेल कराऊँगा’ सोच पूर्वाह्न समय पात्र-चीवर ले पाँच सौ भिन्नुओं के साथ श्रावस्ती में प्रविष्ट हो राजद्वार पर पहुँचे । राजा ने तथागत का पात्र ले, घर में लिवा लाकर, बिछे आसन पर बिठाया । फिर बुद्ध-प्रमुख भिन्नु-संघ के चरण धुला यवागू तथा खाने को कुछ लाया । शास्ता ने पात्र को हाथ से ढककर पूछा—देवी कहाँ है ?

“भन्ते ! उसेसे क्या काम ? वह अपने यश के मान में चूर है ।”

“महाराज, स्वयं यश देकर, स्त्री को ऊँचा स्थान दे, उसके द्वारा किये अपराध को न सहना अयोग्य है ।”

राजा ने शास्ता का वचन सुन उसे बुलवाया । उसने शास्ता को परोसा । शास्ता ‘परस्पर मिलकर रहना चाहिये’ कह ऐक्य-रस की प्रशंसा कर चले गये । उस समय से दोनों मिलकर रहने लगे ।

भिन्नुओं ने धर्मसभा में बात चलायी—आयुष्मानो ! शास्ता ने एक शब्द से ही दोनों में मेल करा दिया । शास्ता ने आकर पूछा—“भिन्नुओ, क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत ।”

“न केवल अभी किन्तु भिन्नुओ, मैंने पहले भी एक उपदेश से ही इनमें मेल कराया है ।”

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे । एक दिन राजा खिड़की खोले राजाङ्गन की ओर देखता खड़ा था । उसी समय एक माली की लड़की, जो सुन्दर थी और जिसकी चढ़ती जवानी थी, बेरों की टोकरी सर पर रख, ‘बेर लो, बेर लो’ कहती हुई राजाङ्गन में से गुजर गई । राजा ने उसका शब्द सुना तो आसक्त हो गया । यह जान कि वह किसी की नहीं है, उसने उसे बुलवा पट-रानी बना, बहुत संपत्ति दी । वह राजा की प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली । एक दिन राजा सोने की थाली में बैठा बेर खा रहा था । सुजाता देवी ने राजा को बेर खाते देख ‘महाराज ! आप यह क्या खा रहे हैं ?’ पूछते हुए पहली गाथा कही:—

किं अयच्छका इमे देव निम्बित्ता कंसमल्लके,

उपलोहितका वग्गु तम्मे अक्खाहि पुच्छितो ॥

[देव ! यह सोने की थाली में रखे हुए सुन्दर लालवर्ण अण्डे से क्या हैं ?—मैं पूछ रही हूँ, मुझे कहें ।]

राजा ने क्रोधित हो 'बेर बेचनेवाली माली की लड़की अपने कुल के बेरों को भी नहीं पहचानती' कह दो गाथाएँ कहीं:—

यानि पुरेतुवं देवि भण्डुनन्तकवासिनी,

उच्छृङ्खलहत्था पचिनासि तस्सा ते कोलियं फलं ॥

उड्डुहते न रमति भोगा विप्पजहन्ति तं,

तत्थेविमं पटिनेथ यत्थ कोलं पचिस्सति ॥

[हे देवि ! जिन्हें तुम पहले सिरमुँड़ी, चिथड़े पहने, अपनी गोद में इकट्ठे करती थीं, ये वही तेरे कुल के फल हैं ।

यह यहाँ उत्रल रही है, यहाँ मन नहीं लगता, इसे राज-भोग छोड़ रहे हैं । इसे वहीं ले जाओ जहाँ यह जाकर बेर चुगेगी ।]

बोधिसत्व ने सोचा मुझे छोड़ कोई दूसरा इनका मेल न करा सकेगा । मैं राजा को समझा इसका घर से निकालना रोकूँगा । उसने चौथी गाथा कही:—

होन्ति हेते महाराज इद्धिपत्ताय नारिया,

खम देव सुजाताय मास्सा कुज्झि रथेसभ ॥

[महाराज ! ऊँचे स्थान पर पहुँची स्त्रियों में यह दोष होते ही हैं । हे देव ! सुजाता को क्षमा करें । हे राजश्रेष्ठ ! इस पर क्रोध न करें ।]

राजा ने उसके वचन से देवी के उस अपराध को क्षमा कर दिया और उसे यथास्थान रहने दिया । तब से दोनों मेल से रहने लगे ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी । उस समय वाराणसी राना कोशल-राजा थे । सुजाता मल्लिका थी । अमात्य तो मैं ही था ।

३०७. पलास जातक

“अचेतनं ब्राह्मण...” यह शास्ता ने परिनिर्वाण-शैल्या पर लेटे लेटे आनन्द स्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् शोकाभिभूत हो उद्यान के बरामदे में कुण्डी पकड़े रो रहे थे कि आज रात को तड़के ही शास्ता का परिनिर्वाण हो जायगा, मैं अभी शौच ही हूँ, मेरा जीवनोद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ, और मेरे शास्ता परिनिर्वाण हो जायेंगे। मैं पच्चीस वर्ष तक जो उनकी सेवा में रहा वह सब निष्फल होगा। शास्ता ने उसे न देख, पूछा—आनन्द कहाँ है ? वृत्तान्त ज्ञात होने पर उसे बुलवा शास्ता ने कहा—आनन्द ! तू ने पुण्यार्जन किया है। प्रयत्न कर। तू शीघ्र ही अनाश्रव हो जायगा। चिन्ता मत कर। जब पूर्व जन्म में सराग होने के समय भी तू ने मेरी जो सेवा की वह निष्फल नहीं हुई, तो अब जो तूने मेरी सेवा की है वह कैसे निष्फल होगी ?

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी से थोड़ी दूर पलास वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए। उस समय वाराणसी-निवासी देवता-पूजक थे। नित्य बलि-कर्म आदि में लगे रहने वाले। एक दरिद्र ब्राह्मण ने सोचा—मैं भी एक देवता की सेवा करूँगा। वह एक ऊँचाई पर खड़े बड़े-बड़े पत्तों वाले वृक्ष की जड़ में (भूमि) बराबर कर, घास छील, चारों ओर बालु बिछवा, भाड़ू दे, वृक्ष पर पञ्चाङ्गुलि का चिह्न बना, माला, गन्ध, धूप से पूजा कर, दीपक जला, तथा वृक्ष की प्रदक्षिणा कर जाता और कहता—सुखपूर्वक सोना। दूसरे दिन प्रातःकाल ही जाकर पूछता—सुख से तो सोये ? एक दिन उस वृक्ष-देवता ने सोचा—यह ब्राह्मण मेरी बहुत सेवा करता है। मैं इसे पूछ कर जिस इच्छा की पूर्ति के लिये यह मेरी सेवा करता है वह पूरी करूँगा। उसने उस ब्राह्मण के आकर भाड़ू लगाते समय वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर, पास खड़े हो पहली गाथा कही :—

अचेतनं ब्राह्मणं अस्तुण्यन्तं,
जानो अज्ञानन्तमिमं पञ्चासं ।
आरद्विरियो बुवं अप्यमत्तो,
सुखसेव्यं पुण्डसि किस्स हेतु ?

[हे ब्राह्मण ! तू जान-बूझ कर मुझ चेतना-रहित, न सुन सकने वाले, न जान सकने वाले पलास-वृक्ष से क्यों नित्य आलस्य-रहित होकर पूछता है—क्या सुखपूर्वक सोये ? इसमें क्या हेतु है ?]

यह सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही :—

दूरे सुतोचेव ब्रहाच रुक्खो,

देसे णितो भूतनिवासरूपो ।

तस्मा नमस्सामि इमं पलासं,

ये चेत्थ भूता ते च धनस्स हेतु ॥

[दूर से ही प्रगट, महान्, (ऊँचे) प्रदेश में स्थित, तथै देवता का निवास स्थान होने के योग्य है । इसी लिये इस पलास-वृक्ष और इसमें रहने वाले देवता की पूजा करता हूँ, जिससे मुझे धन की प्राप्ति हो ।]

यह सुन ब्राह्मण पर प्रसन्न हो वृक्ष-देवता ने कहा—ब्राह्मण ! मैं इस वृक्ष पर रहने वाला देवता हूँ । डर मत । मैं तुझे धन दूँगा ।

इस प्रकार उसे आश्वसन दे, अपने विमान-द्वार पर देव-प्रताप के साथ आकाश में खड़े हो शेष दो गाथायें कहीं :—

सो ते करिस्सामि यथानुभावं,

कतम्भुतं ब्राह्मण पेक्खमानो ।

कथं हि आगम्म सतं सकासे,

मोघानि ते अस्सु परिफन्दितानि ॥

यो तिन्दुरुक्खस्स परो पिलक्खु,

परिवारितो पुब्बयम्भो उळारो ।

तस्सेव मूलस्मिं निधी निखातो,

अदायादो गच्छं तं उद्धराहि ॥

[हे ब्राह्मण ! मैं अपने में कृतज्ञता को देखता हूँ । इसलिये मैं यथा-सामर्थ्य तुम्हारा उपकार करूँगा । यह कैसे हो सकता है कि सत्पुरुष के पास आने पर भी तुम्हारा प्रयत्न असफल हो !]

यह जो तिन्दु (?) वृक्ष के आगे पाकर-वृक्ष है, उसी की जड़ में चारों ओर पूर्व-यज्ञों के फलस्वरूप विशाल खजाना गड़ा हुआ है । वह किसी का नहीं है । जा उसे खोद कर निकाल ले !]

इतना कह चुकने पर उस देवता ने उसे फिर कहा :—

“ब्राह्मण ! तुझे इसे खींच कर निकालने में कष्ट होगा । तू जा । मैं ही इसे तेरे घर ले जाकर अमुक स्थान में गाड़ दूँगा । तू आजन्म इस धन का भोग करना, दान देना और सदाचार-पूर्वक रहना ।”

इस प्रकार ब्राह्मण को उपदेश दे वह धन उसके घर पहुँचा दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय ब्राह्मण आनन्द था । वृद्ध देवता तो मैं ही था ।

३०८. जवसकुण जातक

“अकरहस ते किञ्चं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त की अकृतज्ञता के बारे में कही...। “भिन्नुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नहीं है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है” कह पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में कठफोड़ पत्नी की योनि में पैदा हुए । एक दिन मांस खाते समय एक सिंह के गले में हड्डी फँस गई । गला सूज गया । शिकार नहीं कर सकता था । बड़ी वेदना होती थी । चुगने जाते समय उस पत्नी ने शाखा पर बैठे ही बैठे उसे देखकर पूछा—मित्र ! तुझे क्या कष्ट है ? उसने वह हाल कहा । “मित्र ! मैं यह तेरी हड्डी निकाल दूँ । लेकिन भय से तेरे मुँह में प्रविष्ट होने का साहस नहीं होता । कहीं मुझे खा ही न जाये !”

“मित्र ! डर मत । मैं तुझे नहीं खाऊँगा । मेरा प्राण बचा ।”

उसने ‘अच्छा’ कह उसे करवट लिटाया । फिर ‘कौन जानता है यह क्या कर बैठे’ सोच उसके नीचे और ऊपर के जबड़े में एक लकड़ी लगा जिसमें वह मुँह न बंद कर सके, (उसके) मुँह में घुस हड्डी के सिरे पर

चोंच से चोट की। हड्डी गिर कर (बाहर) गई। उसने हड्डी गिरा, सिंह के मुँह से निकलते समय लकड़ी को चोंच से गिरा दिया और निकल कर शाखा पर जा बैठा। सिंह निरोग होकर एक दिन जंगली भैंसे को मार कर खा रहा था। पक्षी ने सोचा—इसकी परीक्षा करूँगा। उसने उसके ऊपर शाखा पर लटकते हुए उससे बातचीत करते हुए पहली गाथा कही :—

अकरह्यस ते किञ्च यं बलं अहुवह्यसे,

मृगराज नमो त्यथु अपि किञ्चि जभामसे ॥

[हे मृगराज ! यथाशक्ति हमने तेरा उपकार किया था। तुझे नमस्कार है। कुछ हमें भी मिले।]

यह सुन शेर ने दूसरी गाथा कही :—

मम लोहितभक्खस्स निच्चं लुहानि कुम्बतो,

दन्तन्तरगतो सन्तो तं बहुं यम्पि जीवसि ॥

[मेरे नित्य शिकार खेलने वाले, रक्त पीने वाले के मुँह में जाकर यही बहुत है कि नू जीता है।]

यह सुन पक्षी ने शेष दो गाथायें कहीं :—

अकतब्भुमकत्तारं कतस्स अप्पत्तिकारकं,

यस्मिं कतब्भुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।

यस्स सम्मुखचिण्णो न मित्तधम्मो न लब्भति,

अनुसुय्यमनक्कोसं सण्णिकं तस्मा अपक्कमे ॥

[जो अकृतज्ञ है, जो कुछ कर नहीं सकता, जो उपकार के बदले में प्रत्युपकार नहीं कर सकता, जिसमें कृतज्ञता का भाव नहीं है उसकी सेवा करना निरर्थक है।]

जिसका साक्षात् उपकार करने पर भी मित्र-धर्म की प्राप्ति नहीं होती, उसके प्रति बिना असूय्या किये और उसे बिना बुरा भला कहे, उसके पास से शीघ्र ही दूर हो जाना चाहिये।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय सिंह देवदत्त था। पक्षी तो मैं ही था।

३०६. छवक जातक

“सब्ब इदं चरिमवतं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय षड्वर्गीय भिक्षुओं के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा विनय (पिटक) में^१ विस्तार से आई ही है । यहाँ यह संक्षेप से है । शास्ता ने षड्वर्गीय भिक्षुओं को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच नीचे आसन पर बैठ, ऊँचे आसन पर बैठे हुए को धर्मोपदेश देते हो ?”

“भन्ते ! हां ।”

शास्ता ने उन भिक्षुओं की निन्दा करते हुए कहा—भिक्षुओ, मेरे धर्म का इस प्रकार अपमान करना अनुचित है । पुराने पण्डितों ने नीचे आसन पर बैठ बाहरी मन्त्र बँचवाने वालों तक की भी निन्दा की है । इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व चाण्डाल योनि में पैदा हो, बड़े होने पर कुटुम्ब पालने लगे । उसकी स्त्री को आम का दोहद पैदा हुआ । वह बोली—स्वामी ! आम खाना चाहती हूँ ।

“भद्रे ! इस समय आम नहीं है । कोई दूसरा खट्टा फल लाऊँगा ।”

“स्वामी ! मुझे आम मिलेगा तभी जीऊँगी, नहीं मिलेगा तो जीती नहीं रहूँगी ।”

^१ विनयपिटक (सुत्त विभागा, ६८, ६९)

वह उसपर आसक्त था, सोचने लगा—आम कहाँ मिलेगा ? उस समय वाराणसी नरेश के उद्यान में आम सदैव फलता था । उसने सोचा, वहाँ से पका आम लाकर इसका दोहद शान्त करूँगा । वह रात को उद्यान में पहुँचा और आम के पेड़ पर आम्र-फल खोजता हुआ एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमता रहा । उसके वैसा करते रहते ही रात बीत गई । उसने सोचा—यदि अब उतर कर जाऊँगा, तो मुझे देखकर 'चोर' समझ पकड़ लेंगे । रात को ही जाऊँगा । वह एक वृक्ष पर चढ़ छिप रहा ।

उस समय वाराणसी राजा पुरोहित से (वेद-) मन्त्र पढ़ता था । वह उद्यान में आम्रवृक्ष की छाया में ऊँचे आसन पर बैठ, आचार्य को नीचे आसन पर बिठा, मन्त्र सीखता था । बोधिसत्व ने ऊपर बैठे बैठे सोचा—यह राजा अधार्मिक है जो ऊँचे आसन पर बैठ कर मन्त्र सीखता है, ब्राह्मण भी अधार्मिक है जो नीचे आसन पर बैठ मन्त्र सिखाता है और मैं भी अधार्मिक हूँ जो स्त्री के कारण अपने जीवन की परवाह न कर आम ले जा रहा हूँ । वह वृक्ष से उतरते हुए एक लटकती हुई शाखा के सहारे उन दोनों के बीच में आ खड़ा हुआ, (और बोला—) महाराज ! मैं नष्ट हुआ, तुम मूर्ख हो और पुरोहित मर गया है । राजा ने पूछा क्यों ? उसने पहली गाथा कही:—

सब्बं इदं चरिमवतं उभो धम्मं न पश्यरे,
उभो पकतिया चुता यो चार्थं मन्तम्भायति
यो च मन्तं अधीयति ॥

[ये सब नीच-कर्म हैं ।^१ धर्म^२ का दोनों नहीं देखते हो । दोनों ही धर्म से च्युत हो—जो यह मन्त्र सीखता है और यह जो मन्त्र सिखाता है ।]
इसे सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही:—

^१ अपने चौर-कर्म की भी निन्दा करता है ।

^२ पुराने धर्म को । कहा भी है:—

धम्मो हवे पातुरहोसि पुब्बे,
पक्खा अधम्मो उदपादि लोके ॥

[पहले लोक में धर्म ही प्रादुर्भूत हुआ, अधर्म पीछे पैदा हुआ ।]

सालीनं भोजनं मुञ्जे सुखि मंसूपसेवनं,
तस्मा पृतं न सेवामि धम्मं इसिहि सेवितं ॥

[मैं (इस राजा के पास) अच्छी तरह पके मांस के साथ शालि धान का भोजन खाता हूँ । इसीलिये ऋषियों द्वारा सेवित इस धर्म का पालन नहीं करता हूँ ।]

इसे सुन दूसरे ने दो गाययें कहीं :—

परिव्रज महालोको पचन्तम्हेपि पाणिनो,
मा तं अधम्मो आचरितो अस्मा कुम्भमिवाभिदा ।
धिरथु तं यसत्ताभं धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या बुत्तिविनिपातेन अधम्मचरणेन वा ॥

[इस स्थान को छोड़ अन्यत्र जा । यह मंसार बड़ा है । दूसरे भी प्राणी (भोजन) पकाते ही हैं । ऐसा न हो कि यह तेरा आचरण किया अधर्म तुझे वैसे ही फोड़ दे जैसे पत्थर के घड़े को । हे ब्राह्मण ! उस सम्पत्ति को धिक्कार है, उस धन को धिक्कार है, जो पापपूर्ण जीविका या अधर्माचरण से प्राप्त हो ।]

राजा ने उसके धार्मिक भाव से प्रसन्न हो पूछा—

“तुम्हारी जाति क्या है ?”

“देव ! मैं चाण्डाल हूँ ।”

“भो ! यदि तू जाति वाला होता तो मैं तुम्हें राजा बनाता, अब से मैं दिन का राजा होऊँगा तू रात का राजा हो ।”

उसने अपने गले में पहनी फूलों की माला उसके गले से बांध उसे नगर का कोतवाल बना दिया । यही नगर कोतवालों के गले में लाल फूलों की माला पड़ने की परम्परा है । तब से राजा उसका उपदेश मान, आचार्य का आदर कर, नीचे आसन पर बैठकर मन्त्र सीखने लगा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय राजा आनन्द था । चाण्डाल-पुत्र तो मैं ही था ।

३१०. सय्ह जातक

“ससमुद्द परियायं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिच्छु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती में भिक्षा मांगते समय एक सुन्दर स्त्री को देखकर उद्विग्न हो गया और (बुद्ध) शासन में उसकी अरुचि हो गई । भिच्छु उसे भगवान के पास ले गये । भगवान ने पूछा—भिच्छु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त हुआ है ?

“भन्ते ! सचमुच ।”

“तुम्हें किसने उद्विग्न किया है ?”

उसने वह वृत्तान्त कहा । “इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर भी तू क्यों उद्विग्न हुआ है ? पूर्व समय में पण्डितों को पुरोहित का पद मिलता था, तो भी उसे छोड़ वे प्रव्रजित हुए” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने पुरोहित की ब्राह्मणी की कोख में आ, जिस दिन राजा के पुत्र ने जन्म ग्रहण किया, उसी दिन जन्म ग्रहण किया । राजा ने अमात्यों से पूछा—कोई है जो मेरे पुत्र के साथ एक ही दिन पैदा हुआ हो ?

“महाराज, पुरोहित का पुत्र है ।”

राजा ने उसे मँगावा, धाइयों को दे, पुत्र के साथ इकट्ठा पालन-पोषण कराया । दोनों के गहने और खाना पीना आदि सब समान था । बड़े होने पर वे तक्षशिला जा, सब विद्याएँ सीख कर आये । राजा ने पुत्र को युवराज बना दिया । बड़ी शान रही ।

तब से बोधिसत्व और राजपुत्र साथ इकट्ठे खाने पीने तथा सोने लगे । दोनों का परस्पर विश्वास बढ़ हो गया । आगे चलकर पिता के मरने पर राज-पुत्र राजा बन बड़ी सम्पत्ति का उपभोग करने लगा । बोधिसत्व ने सोचा—मेरा मित्र राज्यानुशासन करता है । ध्यान आते ही मुझे पुरोहित-पद देगा । लेकिन मुझे गृहस्थ-जीवन से क्या ? प्रव्रजित हो एकान्त सेवन करूँगा । उसने माता पिता को प्रणाम कर प्रव्रजित होने की आज्ञा मांगी । (फिर) महा सम्पत्ति छोड़, अकेला ही घर से निकल, हिमालय पहुँचा । वहाँ सुन्दर-प्रदेश में कुटी बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीड़ा में रत रहने लगा ।

राजा ने उसे याद कर पूछा—मेरा मित्र दिखाई नहीं देता, कहाँ है ? अमात्यों ने उत्तर दिया—वह प्रव्रजित हो गया है और सुन्दर वन-खण्ड में रहता है । राजा ने उसका निवास-स्थान पूछ सह नाम के अमात्य को कहा—जा मेरे मित्र को लिवा ला । उसे पुरोहित-पद दूँगा ।

उसने 'अच्छा' कह बाराणसी से निकल, क्रमशः प्रत्यन्त-देश के गाँव में पहुँच पड़ाव किया । फिर एक वनचर को साथ ले बोधिसत्व के निवास-स्थान पर पहुँच, बोधिसत्व को स्वर्ण-प्रतिमा की तरह कुटी के द्वार पर बैठा देखा । वह बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशल क्षेम पूछ कर बोला—भन्ते । राजा आप को पुरोहित-पद देना चाहता है । उसकी इच्छा है कि आप पधारें ।

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—पुरोहित-पद की क्या बात ! मैं सारा काशी, कोशल, जम्बुद्वीप का राज्य तथा चक्रवर्ती श्री मिलने पर भी नहीं जाऊँगा । परिणत एक बार के छोड़े भांगों को फिर नहीं ग्रहण करते । यह तो थूके को चाटने जैसा हो जाता है । इतना कह ये गाथायें कहींः—

समुद्परियायं महिसागर कुण्डलं,
न इच्छे सह निन्दाय एवं सह विजानहि ॥ १ ॥
धिरथु तं यसत्तामं धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या बुद्धि विनिपातेन अधम्मचरणेन वा ॥
अपिचे पत्तमादाय अनारागो परिब्बजे,
सायेव जीविका सेव्यो याचाधम्मेन एसना ॥

अपि चे पत्तमादाय अनागारो परिव्वजे,
अभ्यं अहिंसयं लोके अपि रउजेन तं वरं ॥

[चक्रवाल पर्वत सहित समुद्र के मध्य स्थित पृथ्वी को भी हे सख ! तू जान ले, मैं निन्दनीय होकर ग्रहण करने की इच्छा नहीं करता ॥१॥ हे ब्राह्मण ! उस यश-लाभ तथा धन-लाभ को धिक्कार है जिसकी प्राप्ति नीच-वृत्ति या अधर्माचरण से हो ॥२॥ अधर्म से जीविका चलाने की अपेक्षा पात्र लेकर बे-घर हो प्रब्रजित हो जाना ही अच्छा है ॥३॥ दुनिया में किसी की हिंसा न करते हुए पात्र लेकर अनागरिक हो प्रब्रजित होना राज्य-लाभ से भी अच्छा है ॥४॥]

इस प्रकार उसके बार बार प्रार्थना करने पर भी उसने अस्वीकार किया । सख ने भी उसकी स्वीकृति न पा, प्रणाम कर जाकर राजा से कहा— वह नहीं आया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्यों का प्रकाशन हो चुकने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ । अनेक दूसरों ने भी स्रोतापत्तिफल आदि साक्षात् किया । उस समय राजा आनन्द था । सख सारिपुत्र । पुरोहित-पुत्र तो मैं ही था ।

चौथा परिच्छेद

२. पुचिमन्द वर्ग

३११. पुचिमन्द जातक

“उट्टेहि चोर...” यह शास्ता ने वेलुवन में विहार करते समय आयुष्मान महामौद्गल्यायन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर (महामौद्गल्यायन) राजगृह के पास आरण्य-कुटी में विहार करते थे। एक चोर नगर-द्वार गाँव के एक घर में सेंध लगा, जो कुछ मूल्यवान् पदार्थ हाथ में आया ले, भाग कर, स्थविर की कुटी के आज्ञान में जा घुसा। उसने सोचा—यहाँ मैं सुरक्षित रहूँगा। वह स्थविर की कुटिया के सामने लेट रहा। स्थविर ने उसे सामने सोया जान उस पर शङ्का कर सोचा—चोर का संसर्ग उचित नहीं है और बाहर निकल कर उसे खदेड़ दिया—यहाँ मत सो। चोर वहाँ से निकल पद-चिह्नों को बिगाड़ता हुआ भागा।

आदमी मशाल लेकर चोर के पद-चिह्न देखते हुए वहाँ आए। उसके आने का स्थान, ठहरने का स्थान, बैठने का स्थान तथा सोने का स्थान देखकर वे कहने लगे—यहाँ आया, यहाँ ठहरा, यहाँ बैठा और यहाँ सोया; लेकिन इस स्थान से भागा यह हमने नहीं देखा। इधर उधर भटक कर वे बिना उसे देखे ही लौट गये।

अगले दिन स्थविर ने पूर्वाह्न समय राजगृह में भिक्षाटन कर, लौट, वेलुवन जा शास्ता से वह समाचार कहा। “मौद्गल्यायन! केवल तुम्हें सशक्त विषय में शङ्का नहीं हुई है, पुराने परिचितों को भी हुई थी।” स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नगर के श्मशानवन में नीम वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुए। एक दिन नगर-द्वार-गाँव में चोरी करके एक चोर वहाँ पहुँचा। उस समय वहाँ नीम और पीपल के दो बड़े वृक्ष थे। चोर नीम के वृक्ष के नीचे सामान रखकर सो गया। उन दिनों चोरों को पकड़ते थे तो उन्हें नीम के खूँटे से त्रास देते थे। उस देवता ने सोचा—यदि मनुष्य आकर इस चोर को पकड़ लेंगे तो इसी नीम की शाखा लील, खूँटा बना इसे त्रास देंगे। ऐसा होने से वृक्ष की हानि होषी। मैं इसे यहाँ से भगाऊँगा।

उसने उससे बात-चीत करते हुए पहली गाथा कही:—

उद्धेहि चोर किं सेसि को अत्थो सुपितेन ते,

मा तं गहेसुं राजानो गामे किंबिसकारकं ॥

[हे चोर ! उठ। सोने से क्या लाभ ? क्या सोता है ? कहीं तुझ डाका डालने वाले को राजपुरुष आकर पकड़ न लें ।]

उसे यह कह 'राजपुरुषों के आकर पकड़ने से पहले भाग जा' डरा कर भगा दिया। उसके भाग जाने पर पीपल वृक्ष के देवता ने दूसरी गाथा कही:—

यन्नु चोरं गहेस्सन्ति गामे किंबिसकारकं,

किं तत्थ पुच्चिमन्दस्स वने जातस्स तिट्ठतो ॥

[यदि गाँव में डाका डालने वाले चोर को (राजपुरुष) पकड़ लेंगे, तो वन में पैदा हुए स्थित तुझ नीम-वृक्ष को इससे क्या लेना देना ?]

इसे सुन नीम (वृक्ष पर के) देवता ने तीसरी गाथा कही:—

नत्वं अरसत्थ जानासि मम चोरस्स चन्तरं,

चोरं गहेत्त्वा राजानो गामे किंबिसकारकं,

अप्पेन्ति निम्बसूलस्मिं तरिंम मे सङ्कते मनो ॥

[हे पीपल-वृक्ष ! तू मेरे और चोर के भेद को नहीं जानता। राज-पुरुष गाँव में डाका डालने वाले चोर को पकड़ कर नीम-वृक्ष पर ही त्रास देंगे। मेरे मन में यही आशङ्का थी ।]

इस प्रकार उन देवताओं के परस्पर वार्तालाप करते समय ही, सामान के मालिक, हाथ में मशाल लिये वहाँ पहुँचे। उन्होंने पद-चिन्हों का अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँच और चोर के सोने की जगह देख साँचा—“भो ! चोर अभी उठकर भाग गया। हमें नहीं मिला। यदि मिलेगा तो या तो इसी नीम की शूलों पर ठोक कर जायेंगे, या शात्वा से लटका जायेंगे।” वे इधर-उधर भटक चोर को बिना देखे ही चले गये। उनकी उस बात को सुन पीपल-वृक्ष ने चौथी गाथा कही:—

सङ्केय सङ्कितम्बानि रक्खेय्यानागतं भयं

अनागतभया धीरो उभो लोके अवेक्खति ॥

[शङ्का करने योग्य बातों में शङ्का करनी चाहिये। भावी भय से अपनी रक्षा करनी चाहिए। धीर आदमी भावी-भय से बचता हुआ दोनों लोकों को देखता है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय पीपल-वृक्ष पर उत्पन्न देवता सारिपुत्र था। नीम-देवता तो मैं ही था।

३१२. कस्तप मन्दिय जातक

“अपि कस्तप मन्दिय...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कुल-पुत्र काम-भोगों के दुष्परिणाम को देख शास्ता के पास प्रब्रजित हो, योगाभ्यास में लग, शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुआ। आगे चलकर उसकी माता का देहान्त हो गया। माता के मरने पर उसने पिता और छोटे भाई को भी प्रब्रजित करा लिया। वे जेतवन में रहे। वर्षावास के समय चीवर-प्राप्ति सुलभ जान, वे तीनों एक गाँव के आवास में वर्षावास कर

फिर जेतवन लौटे। जेतवन के पास पहुँचने पर तरुण भिक्षु ने कहा—
 भ्रामण्योर ! स्थविर को विश्राम कराता हुआ ले आ। मैं आगे जाकर परिवेण को
 झाड़ता बुहारता हूँ। वह जेतवन गया। बूढ़ा स्थविर धीरे धीरे चलता था।
 भ्रामण्योर सिर में पीड़ा पहुँचाते हुए की तरह उसे बार-बार 'भन्ते ! चलें,
 भन्ते ! चलें' कह कर जवर्दस्ती ले चलता था। स्थविर 'तू मुझ पर हुक्म
 चलाता है' कह फिर आरम्भ से चलना आरम्भ करता। उनके इस प्रकार
 परस्पर कलह करते हुए ही मूर्ध्यास्त हो गया। श्रंघकार हो गया। दूसरे ने
 भी परिवेण साफ कर, पानी रख, उन्हें न आता देख मशाल ले अगवान्नी की।
 उन्हें आता देख पूछा—क्यों देर हुई ? बूढ़े ने वह कारण बताया। वह उन
 दोनों को आराम कराता हुआ शनैः शनैः लाया। उस दिन उमे बुद्ध की सेवा
 में जाने का अवकाश नहीं मिला। दूसरे दिन बुद्ध की सेवा में पहुँच, प्रणाम
 कर बैठने पर शास्ता ने पूछा—कब आया ?

“भन्ते ! कल।”

“कल आकर आज बुद्ध की सेवा में आया है ?”

उसने “हाँ भन्ते !” कह वह कारण बताया। शास्ता ने बूढ़े की
 निन्दा करते हुए कहा—“यह केवल अभी ऐसा काम नहीं करता है, पहले
 भी किया है। अब इसने तुझे कष्ट दिया है, पहले भी पण्डितों का कष्ट दिया
 है।” फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व
 काशी-ग्राम में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उसके बड़े होने पर माता मर
 गई। उसने माता का शरीर-कृत्य कर महीना, आधा-महीना बीतने पर धन
 दान दे, पिता और छोटे भाई को ले, हिमालय प्रदेश में जा, देव-दत्त वल्कल
 चीर पहन, ऋषि-प्रब्रज्या ग्रहण की। वहाँ वह जगह जगह से चुनकर मूल-
 फलादि खाकर रमणीय वन-खण्ड में रहने लगा। हिमालय में वर्षा-काल
 में जब मूसलाधार वर्षा होती है तब कन्दमूल खनना सम्भव नहीं होता और
 फलाफल तथा पत्ते भी गिर जाते हैं। प्रायः तपस्वी हिमालय से उतर बस्ती में
 चले आते हैं। उस समय बोधिसत्व भी पिता और छोटे भाई को ले बस्ती में

चले आये । फिर हिमालय के फलने फूलने पर उन दोनों को ले अपने आश्रम को लौटा । आश्रम के थोड़ी दूर रहने पर और सूर्य को अस्त होते देख 'तुम धीरे धीरे आओ मैं आगे जाकर आश्रम को ठीकठाक करता हूँ' कह उन्हें छोड़ गया । छोटा तपस्वी पिता के साथ धीरे आता हुआ, उसे कमर में सिर से टकर मारता हुआ 'चल चल' कह जबरदस्ती ले चलता था । बूढ़ा 'तू मुझे अपनी इच्छानुसार ले चलता है' कह लौटकर फिर आरम्भ से आता । इस प्रकार उनके भगड़ा करते रहते ही अंधेरा हो गया ।

बोधिसत्व ने भी कुटी को साफ़ कर, पानी रख, मशाल लेकर उन्हें रास्ते में आते देखा तो पूछा—इतनी देर क्या करते रहे ? छोटे तपस्वी ने पिता की करनी कही । बोधिसत्व ने उन दोनों को शनैः शनैः ले जा, कपड़ा लक्षा सम्भाल, पिता को स्नान करा, पैर धोना, (तेल) मारवना, पीठ दवाना आदि कर्म कर अंगीठी रखी । जय थकावट उतर गई तो पिता के पास बैठ कर कहा—तात ! तरुण लड़के मिट्टी के बरतनों की तरह होते हैं । क्षण भर में टूट जाते हैं । एक बार टूट जाने पर फिर जुट नहीं सकते । वे गाली दें, मखौल करें तब भी बड़ों का सहन करना होता है । इस प्रकार पिता को उपदेश देते हुए बोधिसत्व ने ये गाथाएँ कहींः—

अपि कस्तप मन्दिया युवा सपति हन्ति वा,
सम्बन्तं खमते धीरो पण्डितो तं तितिक्षति ॥
सचेपि सन्तो विवदन्ति क्षिप्यं सन्धीयरे पुन,
बाह्या पक्षाव भिज्जन्ति न ते समथमज्जगु ॥
एते भीय्यो समायन्ति सन्धि तेसं न जीरति,
यो चाधिपन्नं जानाति यो च जानाति देसनं ॥
एसोहि उत्तरितरो भारबाहो धुरन्धरो,
यो परेसाधिपन्नानं सयं सन्धातुमरहति ॥

[हे काश्यप ! मन्द-बुद्धि युवक गाली भी दे देते हैं और मार भी बैठते हैं । धीर ये सब क्षमा करता है । पण्डित इसे सहन करता है । यदि सज्जन कभी विवाद करते हैं तो फिर मिल जाते हैं । मूर्ख (मिट्टी के) बरतनों की तरह टूटते हैं और शान्ति को प्राप्त नहीं होते । ये दो जन फिर मिल जाते हैं, इनकी परस्पर की सन्धि नष्ट नहीं होती—जो अपना दोष स्वीकार कर

सकता है और जो दोष स्वीकार करने वाले को क्षमा कर सकता है । जो दूसरे दोषियों को स्वयं मिला सकता है, वह बढ़कर है, वही भारवाह है, वही धुरन्धर है ।]

इस प्रकार बाधिसत्व ने पिता को उपदेश दिया । वह भी तब से शान्त हो गया, अच्छी प्रकार शान्त ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का पिता तपस्वी बूढ़ा स्थविर था । छोटा तपस्वी भ्रामण्ये । पिता को उपदेश देने वाला तो मैं ही था ।

३१३. खन्तिवादी जातक

“यो ते हृत्यं च पादे च...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक क्रोधी भिक्षु के बारे में कही । कथा पहले आ ही गई है । शास्ता ने उस भिक्षु को ‘भिक्षु ! तू अक्रोधी बुद्ध के शासन में प्रव्रजित होकर क्रोध क्यों करता है ? पुराने पण्डितों ने शरीर पर हजारों प्रहार होने पर, हाथ पाँव कान नाक के काट लिये जाने पर भी, दूसरे के प्रति क्रोध नहीं किया’ कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में कलावु नाम का काशीराज राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व अस्ती करोड़ धन वाले ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । उनका नाम था कुण्डकुमार । बड़े होने पर वह तक्षशिला में सब शिल्प सीख कर आया और कुटुम्ब को पालने लगा । माता पिता के मरने पर उसने धनराशी की ओर देखते हुए सोचा—यह धन कमाकर मेरे सम्बन्धी इसे यहीं छोड़ गये, बिना साथ लिये ही चले गये । मुझे इसे साथ ले जाना चाहिए । उसने अपना वह सारा धन विचैव्यदान अर्थात् ‘जो जो कुछ ले जाये वह

उसे दिया, करके दान दे दिया और अपने हिमालय में प्रवेश कर, प्रव्रजित हो, फल-मूल खाता हुआ चिरकाल वहीं रहा। फिर नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती में, क्रमानुसार वाराणसी पहुँच, राजोद्यान में रहने लगा। अगले दिन नगर में भिक्षाटन करता हुआ सेनापति के गृहद्वार पर पहुँचा। सेनापति ने उसकी चर्या से प्रसन्न हो, घर में लिवा लाकर, अपने लिये तैयार भोजन कराया और बचन लेकर वहीं राजोद्यान में बसाया।

एक दिन कलाबुराज शराब के नशे में मस्त हो तमाशों से घिरा हुआ बड़ी शान के साथ उद्यान में पहुँचा। वहाँ उसने मङ्गल शिला-पट पर बिलौना बिलवाया और एक प्रिय मनोञ्ज स्त्री की गोद में सोया। गाने बजाने में हांशियार नर्तकियाँ गाना बजाना करने लगीं। देवेन्द्र शाक की तरह बड़ा ठाठ वाट था। राजा को नींद आ गई।

उन स्त्रियों ने सोचा—जिसके लिये हम गाना बजाना करती हैं, वह ही सो गया। अब गाने बजाने से क्या लाभ? वे वीणा, तुरिया आदि नहीं तहाँ छोड़ उद्यान में घूमने लगीं और फूल, फल तथा पत्तों से अनुरक्त हो बाग में रमण करने लगीं। उस समय बोधिसत्व उस उद्यान में पुष्पित शालवृक्ष की छाया में प्रब्रज्या-सुख का आनन्द लेते हुए वैसे ही बैठे थे जैसे श्रेष्ठ मस्त हाथी हो।

उद्यान में घूमती हुई वे स्त्रियाँ उसे देख 'आर्याओ, आओ इस वृक्ष की छाया में प्रव्रजित बैठो है। जब तक राजा सोता है तब तक हम इस के पास बैठी रहकर कुछ सुनें' कह जाकर, प्रणाम कर घेर कर बैठीं। वे बोलीं—हमारे योग्य कुछ उपदेश दें। बोधिसत्व ने उन्हें धर्मोपदेश दिया।

उस स्त्री की गोद के हिलने से राजा की आँख खुल गई। जब राजा ने जागने पर उन्हें न देखा तो वह बोला—कहाँ गईं वे चण्डालिनियाँ?

“महाराज। वे एक तपस्वी को घेर कर बैठी हैं।”

राजा को क्रोध आया। उसने तलवार निकाली और बड़े वेग से चला—उस दुष्ट तपस्वी को सबक सिखाता हूँ।

उन स्त्रियों ने राजा को क्रोध में भरा आता देखा तो उनमें जो राजा की अधिक प्रिया थी उसने जाकर राजा के हाथ से तलवार ले ली। इस प्रकार उन्होंने राजा को शान्त किया। उसने आकर बोधिसत्व के पास खड़े होकर पूछा—

“अमण! तुम्हारा क्या वाद (मत) है?”

“महाराज क्षमा-वाद ।”

“यह क्षमा क्या ?”

“गाली देने पर, प्रहार करने पर, मजाक करने पर, अक्रोधी रहना ।” राजा ने “देखता हूँ अभी तुझमें क्षमा है वा नहीं ?” जल्लाद को बुलवाया ।

वह अपने स्वभावानुसार कुल्हाड़ा और कब्जेदार चाबुक लिये, पीतवस्त्र तथा लाल-माला धारण किये आ पहुँचा । आकर राजा को प्रणाम कर बोला—“क्या आज्ञा है ?”

“इस चर दुष्ट तपस्वी को पकड़, घसीट, जमीन पर गिरा, कट्टीला चाबुक ले, आगे, पीछे और दोनों ओर दो हजार चाबुक लगाओ ।”

उसने वैसा किया । बोधिसत्व की खलड़ी उतर गई, चमड़ी उधड़ गई, मांस फट गया आदि और खून बहने लगा ।

राजा ने फिर पूछा—“भिच्छु, क्या वादी हो ?”

“महाराज ! क्षमावादी । क्या तुम समझते हो कि मेरी चमड़ी में क्षमा (छिपी) है ? नहीं महाराज, मेरी चमड़ी में क्षमा नहीं है । तुम उसे नहीं देख सकते । क्षमा मेरे हृदय में है ।”

चाण्डाल ने पूछा—क्या करूँ महाराज ?

“इस दुष्ट तपस्वी के दोनों हाथ काट डाल ।” उसने कुल्हाड़ा ले गण्डक पर रखकर हाथ काट डाले । तब कहा—

“पैर काट डाल ।”

उसने पाँव काट डाले । हाथ पाँव की जड़ों से घड़े के मुँह में से लाख-रस बहने की तरह रक्त बहने लगा ।

राजा ने फिर पूछा—“क्या वादी है ?”

“महाराज, क्षमावादी । तुम समझते हो कि (क्षमा) हाथ पाँव के मूल में है ? वह यहाँ नहीं है । मेरी क्षमा बड़ी गहराई में प्रतिष्ठित है ।”

राजा ने आज्ञा दी—“कान नाक काट डाल ।” उसने कान नाक काट डाले । सारा शरीर लहू-लोहान हो गया ।

फिर पूछा—“क्या वादी है ?”

“महाराज ! क्षमावादी । ऐसा मत समझें कि मेरी क्षमा कान नाक के मूल में प्रतिष्ठित है । मेरी क्षमा हृदय के अन्दर बहुत गहराई में स्थित है ।”

राजा उसके हृदय-स्थल पर एक ठोकर मार कर चल दिया—

‘दुष्ट तपस्वी ! तेरी क्षमा तुझे उठाकर बिठाये ।’

उसके चले जाने पर सेनापति ने बोधिसत्व के शरीर से रक्त पांछ और हाथ, पाँव, कान तथा नाक के मूल पर वस्त्र बाँध, बोधिसत्व को धीरेसे बिठा, प्रणाम किया । फिर एक ओर बैठ कर निवेदन किया कि भन्ते ! यदि आप क्रोधित हों तो केवल इस राजा पर क्रोधित हों जिसने आपको इतना कष्ट पहुँचाया है, किसी और पर क्रोध न करें । उसने यह प्रार्थना करते हुए पहली गाथा कही:—

यो ते हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,

तस्स कुज्झ महावीर मा रट्ठं विनस्स इदं ॥

[हे महावीर ! जिसने आपके हाथ-पाँव तथा नाक-कान कटवाये उसी पर क्रोधित हों; इस (काशी) राष्ट्र का विनाश न करें ।]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

यो मे हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,

चिरं जीवतु सो राजा नहि कुज्झन्ति मा दिसा ॥

[जिस राजा ने मेरे हाथ, पाँव तथा कान-नाक काट डाले वह चिर-काल तक जीवित रहे । मेरे जैसे (लोग) क्रोध नहीं करते ।]

राजा ज्यों ही उद्यान से निकल बोधिसत्व की आँख से ओझल हुआ, यह दो लाख चालीस हजार योजन मोटी महापृथ्वी धूल के वस्त्र की तरह फट गई । अवीची (नरक) से ज्वाला ने निकल कर उसे वैसे ही लपेट लिया जैसे कुल-प्राप्त लाल कम्बल लपेट ले ।

वह उद्यान के द्वार पर ही पृथ्वी में घुस महावीची नरक में पहुँचा । बोधिसत्व उसी दिन काल कर गये । राज-पुत्रों तथा नागरिकों ने गन्धमाला तथा दीप-धूप हाथ में ले, बोधिसत्व का शरीर-कृत्य किया । कोई कहते हैं कि बोधिसत्व हिमालय चले गये, सो यह सत्य नहीं है । ये दो सम्बुद्ध गाथायें हैं:—

अहू अतीतमद्धानं समयो खन्तिदीपनो,

सं खन्तियायेव ठितं कासिराजा अछेदयि ॥

तस्स कम्मस्स फलस्स विपाको कटुको अहु,
यं कासिराजा वेदेसि निरयग्धि समप्पितो ॥

[अतीत-काल में क्षमावान् भ्रमण हुआ। उसके क्षमाशील रहते काशी राजा ने उसे कटवा डाला। उस राजा के उस कठोर कर्म का फल (भी) कड़ुआ हुआ, जिसे काशीराज ने नरक में जाकर भोगा।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्त्यों के अन्त में क्रोधी भिक्षु अनागामीफल में प्रतिष्ठित हुआ। बहुत जनों को सोतापत्तिफल आदि प्राप्त हुये। उस समय कलाशु राजा देव-दत्त था। सेनापति सारिपुत्र था। क्षमावादी तपस्वी तो मैं ही था।

३१४. लोहकुम्भी जातक

“दुर्जीवितं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय कोशल नरेश ने रात को चार नारकीय प्राणियों की आवाज सुनी। एक केवल ‘दु’ बोला, दूसरा केवल ‘स’ बोला, तीसरा केवल ‘न’ बोला और चौथा केवल ‘सो’।

वे पूर्वजन्म में श्रावस्ती में ही परम्परा-गमन करने वाले राजपुत्र थे। उन्होंने पराई, सुरक्षित, झिपाई स्त्रियों के प्रति अपराध कर, तरह तरह की विचित्र क्रीड़ाएँ कर, बहुत पापकर्म किया था। मृत्यु-चक्र से कट कर वे श्रावस्ती के पास ही चार लोहकुम्भियों में पैदा हो साठ हजार वर्ष तक वहीं जलते रहे। लोहकुम्भियों के मुँह के धरे को ऊपर की ओर उठा देख चारों बड़े ऊँचे स्वर में क्रमशः चिल्लाये कि हम कब इस दुःख से मुक्त होंगे? राजा ने

उनकी आवाज सुन मृत्युमय के कारण बैठे ही बैठे सारी रात बिता दी ।
अवगोदय के समय ब्राह्मणों ने आकर पूछा—महाराज ! सुखपूर्वक सोये ?

“आचार्यों, मेरा सुखपूर्वक सोना कहाँ ! आज मैंने इस प्रकार के
चार भयानक काण्ड सुने ।” ब्राह्मणों ने हाथ पीटे ।

“आचार्यों ! क्या बात है ?”

“महाराज ! खतरनाक शब्द हैं ।”

“इनका कुछ इलाज है, वा नहीं है ?”

“चाहे इलाज नहीं है, तो भी महाराज ! हम लांग कुशल हैं ।”

“क्या करके इससे बचाओगे ?”

“महाराज ! इसका प्रतिकर्म तो बहुत बड़ा है, हो नहीं सकता; लेकिन
हम सर्वचतुष्क यज्ञ करके इसका वचाव करेंगे ।”

“तो शीघ्र ही चार हाथी, चार घोड़े, चार बैल, चार आदमी,
तीतर में आरम्भ करके सभी चार चार प्राणी लें, सर्वचतुष्क यज्ञ करके मुझे
सकुशल करें ।”

“महाराज ! अच्छा” कह उन्होंने जो-जो चाहिये सब ले, जाकर
यज्ञकुण्ड तैयार किया ।

बहुत सारे पापियों को खम्भे के पास जाकर खड़ा किया । ‘बहुत सा
मत्स्यमांस खाने को मिलेगा और बहुत सा धन’ सोच वे उत्साह से भर गए ।
‘देव, यह मिलना चाहिए, देव ! यह मिलना चाहिए’ चिल्लाते हुए इधर से
उधर घूमते थे । मल्लिका देवी ने पूछा:—“महाराज ! क्या कारण है ब्राह्मण
बहुत फूले फूले घूम रहे हैं ?”

“तुम्हें इससे क्या ! तू अपने ऐश्वर्य में मस्त है ! दुःख तो हमें ही है ।”

“महाराज ! क्या है ?”

“देवि ! मैंने इस प्रकार का न सुनने योग्य शब्द सुना । तब ब्राह्मणों
से पूछा कि इन शब्दों के सुनने का क्या प्रभाव पड़ेगा ? ब्राह्मणों ने कहा,
महाराज ! आपके राज्य पर अथवा भोगों पर अथवा जीवन पर खतरा
दिखाई देता है । सर्वचतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे । वे मेरे कहने से यज्ञ-
कुण्ड का निर्माण कर जिस जिस चीज़ की जरूरत होती है, उसके लिए
आते हैं ।”

“देव ! क्या तुम्हें जो शब्द सुनाई दिये उनकी उत्पत्ति देवताओं सहित लोक में जो अग्र-ब्राह्मण हैं उनसे पूछी ?”

“देवि ! कौन हैं यह देव सहित लोक में अग्र-ब्राह्मण ?”

“महागौतम सम्यक् सम्बुद्ध ।”

“देवि ! सम्यक् सम्बुद्ध को तो मैंने नहीं पूछा ।”

“तो, जाकर पूछें ।”

राजा उसकी बात सुन प्रातःकाल का भोजन करने के बाद श्रेष्ठ रथ पर चढ़ जेतवन पहुँचा । वहाँ शास्ता को प्रणाम कर उसने पूछा—भन्ते ! मैंने रात में चार आवाजें सुनीं । तब ब्राह्मणों को पूछा । वे ‘सर्व चतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे’ कह यज्ञ-कुण्ड बनवा रहे हैं । उन आवाजों के सुनने से मुझे क्या होगा ?

“महाराज ! कुछ नहीं । नारकीय प्राणी दुःख अनुभव करने के कारण इस प्रकार बोले हैं । यह शब्द केवल अभी तुने ही नहीं सुने हैं । पुराने राजाओं ने भी सुने ही हैं । वे भी ब्राह्मणों को पूछ कर पशुघात यज्ञ करना चाहते थे । पण्डितों की बात सुनकर यज्ञ नहीं किया । पण्डितों ने उन आवाजों का कारण बता प्राणियों को मुक्त करा कल्याण किया ।”

उसके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी (-जनपद) के किसी गाँव में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर काम-भोगों को छोड़ श्रुतियों की प्रव्रज्या ग्रहण की । ध्यान तथा अभिज्ञा उत्पन्न कर, ध्यान में ही रत रह हिमालय में रमणीय वनखण्ड में रहते थे ।

उस समय वाराणसी-राजा ने चारों नारकीयों की ये चारों आवाजें सुन इसी प्रकार ब्राह्मणों से पूछा । उन्होंने तीन खतरों में एक खतरे की बात कह, सर्वचतुष्क यज्ञ द्वारा उसे शान्त करने की बात कही । उनके ऐसा कहने पर (राजा ने यज्ञ कराना) स्वीकार किया । पुरोहित ने ब्राह्मणों के साथ यज्ञ-कुण्ड बनवाया । अनेक प्राणी खम्भे के पास लाये गए ।

उस समय बोधिसत्व ने मैत्री-भावना, युक्त चारिका करते हुए दिव्य-चक्षु से लोक को देखा। जब उन्हें यह दिखाई दिया तो उन्होंने सोचा कि मुझे जाना चाहिए, अनेक जनों का कल्याण होगा। वह ऋद्धि-बल से आकाश में उठ, वाराणसी-राजा के उद्यान में उतर, मंगल शिलापट पर सुवर्ण-प्रतिमा की तरह बैठे।

तब पुरोहित के ज्येष्ठ शिष्य ने आचार्य के पाम आकर निवेदन किया, “आचार्य ! क्या हमारे वेदों में पराए को मार कर कल्याण करना असम्भव नहीं बताया है ?” पुरोहित ने मना किया—“तू राजधन चाहता है, चुप रह। हम बहुत मत्स्य मांस खाएँगे और धन पायेंगे।” “मैं इसमें सहायक नहीं होंगा” कह निकल कर, वह राज-उद्यान में पहुँचा। वहाँ बोधिसत्व को देख, प्रणाम कर कुशलक्षेम पूछ एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने पूछा—“माणवक ! क्या राजा धर्मानुसार राज्य करता है ?”

“भन्ते ! राजा धर्मानुसार राज्य करता है। किन्तु, राजा को रात में चार आवाजें सुनाई दीं। उसने ब्राह्मणों से पूछा। ब्राह्मणों ने कहा—सर्व-चतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे। राजा पशुघात कर अपना कल्याण करना चाहता है। अनेक जन (यज्ञ) स्तम्भ के पास ले जाए गये हैं। क्या भन्ते ! आप जैसे सदाचारियों के लिए यह उचित नहीं है कि उन आवाजों की उत्पत्ति बताकर अनेक जनों को मृत्यु के मुख से बचाएँ ?”

“माणवक ! राजा हमें नहीं जानता, हम भी उसे नहीं जानते। लेकिन हम इन आवाजों की उत्पत्ति जानते हैं। यदि राजा हमारे पास आकर पूछे तो हम कह कर उसका शक मिटा देंगे।”

“तो भन्ते ! मुहूर्त भर यहीं रहें। मैं राजा को लाऊँगा !”

“माणवक ! अच्छा।”

उसने जाकर राजा को वह बात कही और राजा को ले आया।

राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—“क्या आप सचमुच मेरे सुने शब्दों का कारण जानते हैं ?”

“महाराज ! हाँ।”

“भन्ते ! कहें।”

“महाराज ! ये पूर्व जन्म में दूसरों की स्त्रियों से व्यभिचार करने वाले रहे हैं, और बाराणसी के आस पास चार लोह-कुम्भी नरकों में पैदा हुए । उबलते हुए, लहकते, पिघले लोहे में बुलबुले उठाते हुए पकते रहे । तीस हजार वर्ष तक नीचे रह, कुम्भी-तल से टकरा, ऊपर उठ तीस हजार वर्ष बाद कुम्भीमुख देखा । चारों जने चार गाथाएं पूरी कर कहना चाहते थे । वैयास न कर सके । एक एक अक्षर ही कह कर फिर लोह-कुम्भी में डूब गए । उनमें से ‘दु’ कह कर डूब जाने वाला प्राणी यह कहना चाहता था :—

दुर्जीवितं अजीविग्ह ये सन्ते न ददग्हसे ।

विजमानेसु भोगेसु दीपं नाकग्ह अत्तनो ॥

[पास होने पर भी जो नहीं दिया यह जीवन भी खराब जीवन ही रहा । भोगों के होने पर भी अपने लिये द्वीप नहीं बनाया ।]

‘लेकिन, सका नहीं’ कह बोधिसत्व ने अपने ज्ञान से ही वह गाथा पूरी की । शेष गाथाओं में भी इसी प्रकार । उनमें ‘स’ कह कर जो बोलना चाहता था उसकी यह गाथा है—

सट्ठिबस्ससहस्सानि परिपुण्णानि सम्बसो,

निरये पच्चमानानं कदा अन्तो भविस्सति ॥

[हर प्रकार से पूरे साठ हजार वर्ष तक नरक में जलते रहने का कब अन्त होगा ?]

‘न’ कह कर बोलने की इच्छा रखने वालीकी यह गाथा—

नत्थि अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो पट्ठिस्सति ।

तदाहि पकतं पापं मयं तुद्धं च मारिस ॥

[अन्त नहीं है । अन्त कहाँ से होगा ! अन्त दिखाई नहीं देता ! मित्र उस समय मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है ।]

‘स’ कह कर बोलने की इच्छा रखने वाले की गाथा—

ओहं नून इतो गन्त्वा योनिं लब्धान मानुसिं ।

वदञ्जू सीलसम्पन्नो काहामि कुसलं वहुँ ॥

[अब मैं निश्चय से यहां से जा कर मनुष्य देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी हो बहुत कुशल-कर्म करूंगा ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने एक एक गाथा कह राजा को समझाया—
महाराज ! वह नारकीय प्राणी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था ।
लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका । वह अपने कर्म-
फल को भोगता हुआ चिल्लाया । आपको इस आवाज के सुनने के कारण
कोई खतरा नहीं है । आप न डरें ।

राजा ने सब प्राणियों को मुक्त करा, सोने का ढोल पिटा, यज्ञ-कुण्ड
नष्ट करा दिया । बोधिसत्व प्राणियों का कल्याण कर, कुछ दिन रह, वहीं जा,
ध्वनावस्थित हो, ब्रह्म-लोक में पैदा हुए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय
पुरोहित-माणवक सारिपुत्र था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३१५. मंस जातक

“फरसा वत ते वाचा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते
समय सारिपुत्र द्वारा जुलाब लेने वालों को सरस-भोजन के देने के बारे
में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन में कुछ भिक्षुओं ने स्निग्ध जुलाब लिया । उन्हें
सरस भोजन चाहिये था । रोगी सेवक ‘रसपूर्ण भोजन लायेंगे’ सोच आवास्ती
में गये । उन्हें रसोइयों की गली में भिक्षाटन करने पर भी सरस भोजन नहीं
मिला । वे लौट आये । (सारिपुत्र) स्थविर दिन चढ़े भिक्षाटन के लिये
निकले । उन भिक्षुओं को देख उन्होंने पूछा—आयुष्मानो ! क्यों जल्दी ही
लौट रहे हो ? उन्होंने वह बात कही । ‘तो आओ’ कह स्थविर उन्हें ले उसी
गली में गये । मनुष्यों ने (पात्र) भर भर कर रस-पूर्ण भोजन दिया । रोगी-
सेवकों ने विहार में लाकर रोगियों को दिया । उन्होंने रस का उपभोग किया ।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! स्थविर ने जुलाब लेने वालों के सेवकों को रस-पूर्ण भोजन न पा लौटते देख, लेजाकर रसोइयों की गली में से भिन्नान कर, बहुत रसपूर्व भोजन भिन्नवाया । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, इस समय बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?

“अमुक बात चीत ।”

“भिक्षुओं, न केवल अभी सारिपुत्र को श्रेष्ठ मांस मिला, पहले भी कोमल प्रिय-वचन बोल सकने वाले पण्डितों को मिला ही है ।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सेठ-पुत्र थे । एक दिन एक शिकारी गाड़ी में बहुत सा मांस लिए शहर में बेचने के लिये चला आ रहा था । उसी समय वाराणसी-निवासी चार सेठ-पुत्र नगर से निकल किसी सार्वजनिक स्थान पर बैठे कुछ देखा-सुना बतिया रहे थे । उनमें से एक सेठ-पुत्र ने मांस की गाड़ी देख पूछा—इस शिकारी से मांस-खण्ड मँगवाऊँ ?

“जा लिवा ला ।”

उसने पास जाकर कहा—अरे शिकारी मुझे मांस का टुकड़ा दे । शिकारी बोला—“दूसरे से कुछ मांगते समय प्रिय-भाषी होना चाहिये । तेरी वाणी के अनुरूप ही तुझे मांस-खण्ड मिलेगा ।” उसने पहली गाथा कहीः—

करुसा वत्त ते वाचा मंसं याचनको असि,

किलोमसदिसी वाचा किलोमं सम्म द्दामि ते ॥

[तू मांस माँगता है किन्तु तेरी वाणी कठोर है । मित्र ! तेरी वाणी नीरस है, इसलिये तुझे कठोर (मांस-खण्ड) ही देता हूँ ।]

उसने उसे एक नीरस मांस-खण्ड उठाकर दे दिया ।

दूसरे सेठ-पुत्र ने पूछा—क्या कहकर मांगा ? ‘अरे’ कहकर । ‘मैं भी माँगूँगा’ कह उसने जाकर मांगा—“बड़े भाई ! मांस-खण्ड दे ।” ‘तुझे तेरी वाणी के अनुसार मिलेगा’, कह उसने दूसरी गाथा कही—

अङ्गमेतं मनुस्सानं भाता लोके पबुच्चति,

अङ्गस्स सविस्सी वाचा अङ्गं सम्म ददामि ते ॥

[संसार में 'भाई' मनुष्यों का 'अङ्ग' कहलाता है। तुम्हारी वाणी अङ्ग सदृश है, इसलिये हे मित्र, तुम्हें (मांस का) अङ्ग देता हूँ।]

ऐसा कह उसने उसे (मांस का) एक अङ्ग उठाकर दिया। तीसरे सेठ-पुत्र ने उसे भी पूछा—क्या कहकर माँगा ? 'भाई' कहकर। 'मैं भी माँगूँगा' कह उसने जाकर माँगा—“तात ! मुझे मांस-खण्ड दे,” ‘तुम्हें तेरी-वाणी के अनुरूप मिलेगा’ कह शिकारी ने तीसरी गाथा कही:—

ताताति पुत्तो वदमानो कम्पेति हृदयं पितु,

हृदयस्स सविस्सी वाचा हृदयं सम्म ददामि ते ॥

[पुत्र 'तात' कहता है तो पिता का हृदय काँप उठता है। तुम्हारी वाणी हृदय सदृश है, इसलिये मित्र ! तुम्हें हृदय देता हूँ।]

इस प्रकार कह हृदय-मांस के साथ मधुर-मांस उठाकर दिया। चौथे सेठपुत्र ने पूछा—क्या कहकर माँगा ? 'तात' कहकर। 'मैं भी माँगूँगा' कह उसने भी जाकर याचना की—दोस्त ! मुझे मांस-खण्ड दे। 'तेरी वाणी के अनुसार मिलेगा' कह शिकारी ने चौथी गाथा कही—

यस्स गामे सखा नत्थि यथारब्धं तथेव तं,

सब्बस्स सविस्सी वाचा सब्बं सम्म ददामि ते ॥

[जिसका गाँव में कोई सखा नहीं है, उसके लिये वह (गाँव) वैसा ही है जैसा जंगल। तुम्हारी वाणी 'सर्वस्व' सदृश है, इसलिये मित्र, मैं तुम्हें सारा मांस देता हूँ।]

इतना कहकर वह बोला—मित्र ! यह सारी मांस की गाड़ी मैं तेरे घर ले चलता हूँ। सेठ-पुत्र उससे गाड़ी हँकवा अपने घर ले गया। वहाँ मांस उतरवा, शिकारी का सत्कार-सम्मान किया। फिर उसके स्त्री-बच्चों को भी बुलवा उसे शिकारी के काम से छुड़वा अपने कुटुम्ब में बसा लिया। उसके साथ वह अभिन्न भाव से जीवन-भर एकचित्त होकर रहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाय। उस समय शिकारी सारिपुत्र था। सब मांस प्राप्त करने वाला सेठ-पुत्र तो मैं ही था।

३१६. सस जातक

“सत्त मे रोहिता मच्छा....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सभी आवश्यकताओं के दान के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

आवस्ती में एक गृहस्थ ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ के लिये सभी आवश्यक वस्तुओं के दान की तैयारी की । उसने गृह-द्वार पर मण्डप रचवा, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर, मण्डप में विछे श्रेष्ठ आसनो पर बिठाया । फिर नाना प्रकार के रस-पूर्ण श्रेष्ठ भोजन करा, अगले दिन के लिये, और फिर अगले दिन के लिए, इस प्रकार सात दिन तक दान दिया । सातवें दिन पाँच सौ भिक्षुओं को जिनमें बुद्ध प्रमुख थे, सभी आवश्यक वस्तुओं का दान किया । शास्ता ने भोजनानन्तर (दान-) अनुमोदन करते समय कहा—
उपासक ! तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये । यह दान पुराने पण्डितों की परम्परा के अनुरूप है । पुराने पण्डितों ने याचकों के आने पर अपना बलिदान कर अपना मांस तक दिया है । उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व खरगोश की योनि में उत्पन्न हो, जंगल में रहते थे । उस जंगल के एक तरफ पर्वत, एक तरफ नदी और एक तरफ प्रत्यन्त-ग्राम था । उसके तीन मित्र भी थे—बन्दर, गीदड़ और ऊद-बिलाव ।

ये चारों पण्डित एक साथ रहते हुये अपनी अपनी जगह भोजन खोजकर शाम को एक जगह इकट्ठे होते । खरगोश पण्डित तीनों जनों को

उपदेश देता—दान देना चाहिये, शील की रक्षा करनी चाहिये, उपोसथ-व्रत रखना चाहिए। वे उसका उपदेश मान अपने अपने निवास स्थान में जाकर रहते।

इस प्रकार समय व्यतीत होते रहने पर एक दिन बोधिसत्व ने आकाश में चन्द्रमा को देख और यह जान कि कल ही उपोसथ (व्रत) का दिन है शेष तीनों जनों को कहा—कल उपोसथ है। तुम भी तीनों जने शील ग्रहण कर उपोसथ व्रत धारी बनो। शील में प्रतिष्ठित हो जो दान दिया जाता है उसका महान् फल होता है। इस लिये किसी याचक के आने पर अपने खाने के आहार में से उसे देकर खाना। वे 'अच्छा' कह स्वीकार कर अपने निवास-स्थान पर चले गये।

अगले दिन उनमें से ऊदविलाव प्रातःकाल ही शिकार खोजने के लिए निकल कर गङ्गा तीर पर पहुँचा। एक मछुवे ने सात रोहित मछलियाँ पकड़ीं और उन्हें रस्सी में बाँध ले जाकर गंगा किनारे बालु में छिपा दिया। वह और मछलियाँ पकड़ने के लिए गंगा के नीचे की ओर जा रहा था। ऊद-विलाव ने मछली की गन्ध सूँघ, बालू हटा, मछलियों को देख, निकाल कर तीन बार घोंपणा की—कोई इनका मालिक है? जब उसे उनका मालिक न दिखाई दिया तो रस्सी के सिरे को मुँह से पकड़ अपने निवास-स्थान पर लाकर रख दिया—समय पर खाऊँगा। उन्हें देख वह अपने शील का विचार करता हुआ लोट रहा।

गीदड़ ने भी निकल कर, भोजन खोजते हुए एक खेत की रखवाली करने वाली की भाँपड़ी में, दो कबाब की सींखें, एक गोह और एक दही की हाँडी देखी। उसने तीन तीन बार घोंपणा की—कोई इनका मालिक है? जब कोई मालिक न दिखाई दिया तो दही की हाँडी लटकाने की रस्सी को गर्दन में लटका, कबाब की सींख और गोह को मुँह में डटा लाकर अपनी माँद में रक्खा—समय पर खाऊँगा। वह भी अपने शील का विचार करता हुआ लोट रहा।

बन्दर भी वन-खण्ड में जा आमों का गुच्छा ले आया। वह भी उसे अपने निवास-स्थान पर रख 'समय पर खाऊँगा' सोच अपने शील का विचार करता हुआ लोट रहा।

बोधिसत्व तो समय पर ही निकल कर बढ़िया घास खाऊँगा सोच अपनी भाड़ी में ही पड़े पड़े विचार करने लगे—मेरे पास आने वाले मंगतों को मैं घास नहीं दे सकता। तिल-तण्डुल आदि भी मेरे पास नहीं हैं। यदि मेरे पास मंगता आयेगा तो मैं उसे अपना शरीर-मांस दूँगा।

उसके शील-तेज से शक्र का पाण्डुकम्बलवर्ण शिलासन गर्म हो गया। उसने ध्यान लगाकर कारण मालूम किया। तब सोचा—शशराज की परीक्षा लूँगा। वह पहले उद-बिलाव के निवास-स्थान पर पहुँच, ब्राह्मण वेश बना खड़ा हुआ। ‘ब्राह्मण ! किस लिए खड़ा है ?’ पूछने पर बोला—

“पण्डित ! यदि कुछ आहार मिले तो उपास्य ब्रती होकर श्रमण धर्म पालन करूँ।”

उसने ‘अच्छा ! तुझे आहार दूँगा’ कह उससे बातचीत करते हुए पहली गाथा कही:—

सत्त मेरोहिता मच्छा उदका थलमुभता,

इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वस ।।

[हे ब्राह्मण ! पोनी में से स्थल पर लाई हुई मेरे गमसाग रंहित मछ-लियाँ हैं। इन्हें खाकर वन में निवास कर ।]

ब्राह्मण ‘अभी सबेरा है, रहे पीछे देखूँगा’ कह गीदड़ के पास गया। उसके भी ‘किस लिए खड़ा है ?’ पूछने पर वही कहा। गीदड़ ने ‘अच्छा दूँगा’ कह उसके साथ बात चीत करते हुए दूसरी गाथा कही:—

दुस्स मे खेत्तपालस्स रत्तिभत्तं अपाभत्तं,

मंस सूत्ता च द्वे गांधा एकच्च दधिवारकं,

इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वस ।।

[उस खेत की रखवाली करने वाले का रात्रि-भांजन लाया हुआ मेरे पास है—दो बवाब की सीखें, दो गोह और एक दही की हांडी ! हे ब्राह्मण ! यह मेरे पास है। इसे खाकर वन में रह ।]

ब्राह्मण ‘अभी सबेरा ही है, पीछे देखूँगा’ कह बन्दर के पास गया। उसके भी ‘किस लिए खड़ा है ?’ पूछने पर वैसा ही उत्तर दिया। बन्दर ने ‘अच्छा, देता हूँ’ कह उससे बातचीत करते हुए तीसरी गाथा कही:—

अग्न्यपक्वोदकं सीतं सीतच्छायं मनोरमं,

इदं ब्राह्मण मे अस्थि एतं भुत्वा वने वस ॥

[पके आम, ठण्डा जल और शीतल छाया—यह है हे ब्राह्मण ! मेरे पास । इसे खाकर वन में रह ।]

ब्राह्मण 'अभी सबेरा ही है, पीछे देखूँगा' कह शश-पंडित के पास गया । उसके भी 'किस लिये खड़ा है ?' पूछने पर वही बात कही । इसे सुन बोधिसत्व अति-प्रसन्न हो बोले—ब्राह्मण ! तूने अच्छा किया जो आहार के लिये मेरे पास आया । आज मैं ऐसा दान दूँगा जैसा पहले कभी नहीं दिया । तू सदाचारी है, इसलिये हिंसा नहीं करेगा । जा अनेक लकड़ियाँ इकट्ठी कर, अङ्गार बना कर मुझे सूचना दे । मैं आत्म-वलिदान कर अङ्गारों के बीच में गिरूँगा । मेरे शरीर के पकने पर तू मांस खाकर श्रमण-धर्म करना । इस प्रकार उससे बातचीत करते हुए बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

न ससस्स तिल्ला अस्थि न मुग्गा नपि तण्डुला,

इमिना अग्निना पक्कं ममं भुत्वा वने वस ॥

[शश के पास न तिल हैं, न मूँग हैं और न हैं चावल । इस आग से पके हुए मुझको ही खाकर वन में रह ।]

शक्र ने उसकी बात सुन अपने प्रताप से एक अङ्गारों का ढेर रख बोधिसत्व को सूचना दी । उसने बढ़िया घास की शैय्या से उठ तीन बार अपने शरीर को झाड़ा—यदि शरीर के बालों में कोई प्राणी हों तो न मरें । फिर सारे शरीर को दान कर, उछलकर प्रसन्नचित्त हो अङ्गारों के ढेर पर ऐसे कूदा मानों राजहंस कमलों के ढेर में कूदा हो । वह आग बोधिसत्व के शरीर के रोम-छिद्र तक को भी गर्म नहीं कर सकी । ऐसा हुआ जैसे हिम-गृह में प्रवेश किया हो । उसने शक्र को सम्बोधित कर पूछा—ब्राह्मण ! तेरी बनाई हुई आग अति शीतल है । मेरे शरीर के रोम-छिद्र तक को गर्म नहीं कर सकी है । यह क्या बात है ?

“पण्डित ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ । मैं शक्र हूँ । तेरी परीक्षा लेने आया हूँ ॥”

बोधिसत्व ने सिंह-नाद किया—शक्र ! तेरी तो बात क्या ! यदि यह सारा संसार भी मेरे दान की परीक्षा लेना चाहे, तो वह मुझमें न देने की इच्छा नहीं देख सकेगा ।

शक्र बोला—शश-पण्डित ! तेरा गुण सारे कल्पों तक प्रसिद्ध रहे । उसने पर्वत को निचोड़, पर्वत का रस ले चन्द्रमण्डल में शश का आकार बना दिया । फिर बोधिसत्व को बुला उस वन-खण्ड में, उसी भुरमुट में, नई दूध की घास पर लिटाया और (स्वयं) अपने देवलोक को चला गया । वे चारों पण्डित भी एकमत हो, प्रसन्नचित्त रहते हुये शील को पूरा कर, उपोसथ-व्रत का पालन कर कर्मानुसार (परलोक) गये ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना लासर्त्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बिठाया । सत्त्यों के अन्त में सभी आवश्यक वस्तुयें दान करने वाला गृहस्थ्य स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय ऊद-विलाऊ आनन्द था । गीदड़ मौद्गल्लायन था । बन्दर सारिपुत्र था । शक्र अनुरुद्ध था और शश-पण्डित तो मैं ही था ।

३१७. मतरौदन जातक

“मतमतमेव रोदथ...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसका भाई मर गया था । वह उसके मरने से शोकाभिभूत हो न नहाता, न खाना खाता, न (चन्दनादि) लेप करता; प्रातःकाल ही श्मशान में पहुँच शोकाकुल हो रोने लगता । शास्ता ने ब्राह्म-मुहूर्त में लोक का विचार करते हुए उसकी स्रोतापत्तिफल प्राप्ति की संभावना को देखा । उन्होंने सोचा कि इसके पूर्वजन्म की बात ला, शोक को शान्त कर इसे स्रोतापत्ति फल दे सकने वाला मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं, इसलिये मुझे इसका सहारा होना चाहिये । अगले दिन भिक्षाटन से लौट भोजनानन्तर अनुगामी-श्रमण के साथ शास्ता उसके गृह-द्वार पर पहुँचे । गृहस्थ ने जब सुना कि शास्ता आये

हैं तो उसने आसन बिछा कर कहा—उन्हें लिवा लाओ। शास्ता अन्दर जाकर बिछे आसन पर बैठे। गृहस्थ भी आकर शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। तब शास्ता ने पूछा—

गृहस्थ ! क्या चिन्तित हो ?

“भन्ते ! हाँ जब से मेरा भाई मरा है, मैं चिन्तित हूँ।”

“आयुष्मान् ! सभी संस्कार अनित्य हैं, भेदन-स्वभाव का भेदन होता ही है। उस विषय में चिन्ता-नहीं करनी चाहिए। पुराने पण्डितों ने भाई के मरने पर भी ‘भेदन-स्वभाव का भेदन होता ही है’ सोच चिन्ता नहीं की।”

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन वाले सेठ-कुल में पैदा हुए। उसके बड़े होने पर माता-पिता मर गये। उनके मरने पर बोधिसत्व का भाई कुटुम्ब को पोसता था। बोधिसत्व उसी के सहारे जीते थे। आगे चलकर वह भी किसी बीमारी से मर गया। जाति-मित्र इकट्ठे हो हाथ पकड़कर रोते पीटते थे, एक जना भी होश में नहीं रह सका। बोधिसत्व न रोते थे न पीटते। मनुष्यों ने निन्दा की—देखो, इसका भाई मर गया है, लेकिन इसके चेहरे पर एक चिन्ता की रेखा भी नहीं है। बहुत ही कठोर हृदय है। मालूम होता है दोनों हिस्से स्वयं भोगने के लिये यह भाई का मरण ही चाहता है। रिश्तेदार भी निन्दा करने लगे—तू भाई के मरने पर रोता नहीं है।

उसने उनकी बात सुन कर पूछा—तुम अपने अन्धेपन के कारण, मूर्खता के कारण, आठ लोक-धर्मों से अपरिचित होने से ‘मेरा भाई मरा है’ कहकर रोते हो। मैं भी मरूँगा, तुम भी मरोगे, अपने आपको भी, ‘हम भी मरेंगे’ कह कर क्यों नहीं रोते हो ? सभी संस्कार अनित्य हैं, होकर नहीं रहते हैं, ऐसा एक संस्कार भी नहीं है जो उसी अवस्था में स्थिर रह सके। तुम अपने अन्धेपन तथा मूर्खता के कारण आठ लोकधर्मों से अपरिचित होने से रोते हो तो मैं क्यों रोऊँ ? इतना कह ये गाथायें कहीं :—

मतमतमेव रोदध नहि तं रोदध यो मरिस्सति,
 सम्भवे सरीरधारिनो अनुपुब्बेन जहन्ति जीवितं ॥
 देवमनुस्सा चतुप्पदा पम्पिग्गणा उरगा च भोगिनो,
 सद्धि सरीरे अनिस्सरा रममानाव जहन्ति जीवितं ॥
 एवं चलितं असण्ठितं सुखदुक्खं मनुजेषु अपेक्खिस्सय,
 कन्दित-रुदितं निरत्थकं किं वो सोक्खाणाभिकीरे ॥
 यत्ता सोयडा अकता बाला सूरा अबोगिनो,
 धीरं मज्झन्ति बालोति ये धम्मस्स अकोविदा ॥

[मरे मरे को ही रोते हो, उसे नहीं रोते जो मरेगा । सभी शरीरधारी क्रमशः जीवन त्याग करेंगे । देवता, मनुष्य, चतुष्पाद, पक्षिगण, और वड़े फन वाले नाग तक अपने अपने शरीर पर कोई अधिकार न रख, भोगों में आसक्त रहते ही शरीर त्याग करेंगे । इस प्रकार मनुष्यों में सुख-दुःख जब चञ्चल है, अस्थिर है तो उसे देखते हुए रोना पीटना निरर्थक है । तुम ये सब शोक क्यों करते हो ? जो धूर्त हैं, जो सुरा आदि पीते हैं, जिन्होंने शास्त्राभ्यास नहीं किया है, जो मूर्ख हैं, जो (अकर्तव्य में) शूर हैं, जो अयोगी हैं और जो आठ लोकधर्मों से अपरिचित हैं वे (मेरे जैसे) धीर को समझते हैं कि यह मूर्ख है ।]

शास्ता ने यह धर्मोपदेश ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्त्यों के अन्त में यह स्थिति स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय जनता को धर्मोपदेश दे, उसके शोक को दूर करने वाला पण्डित मैं ही था ।

३१८. कणवेर जातक

“पन्तं वसन्तसमये.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्वभाय्या के आकर्षण के बारे में कही । (वर्तमान) कथा

इन्द्रिय जातक^१ में आएगी । शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु ! इसी के कारण पूर्वजन्म में तलवार से तेरा सिर काटा गया है' कह पूर्वजन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी (जनपद के) गाँव में एक गृहस्थ के घर में चोर-नक्षत्र में पैदा हुए । बड़े होने पर चोरी द्वारा जीविका चलाने लगे और लोक में बड़े बलवान बहादुर प्रसिद्ध हो गये । कोई भी उस चोर को पकड़ न सकता था । वह एक दिन एक सेठ के घर में सेंध लगाकर बहुत सा धन ले गया । नागरिकों ने आकर महाराज से शिकायत की—देव ! एक डाकू नगर लूट रहा है । उसे पकड़वायें । राजा ने नगर-कोतवाल को उसे पकड़ने की आज्ञा दी ।

उसने रात को जहाँ-तहाँ लोगों की टोलियों बनाकर उन्हें नियुक्त कर उसे धन सहित पकड़ लिया और राजा को सूचना दी । राजा ने नगर-कोतवाल को ही आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो ।

नगर-कोतवाल ने उसके दोनों हाथ पीछे कस कर बँधवा दिये, गर्दन में लाल कनेर की माला डलवा दी, सिर पर हूँट का चूरा बिखरवा दिया और उसे चौरस्ते-चौरस्ते पर चाबुक मारता हुआ, जोर से ढोल बजवाकर बध-स्थान की ओर ले चला । सारा नगर लुब्ध हो उठा—इस नगर में डाकू-चोर पकड़ा गया है ।

उस समय वाराणसी में हजार लेने वाली सामा नाम की वैश्या थी—राजा की प्रिया और पाँच सौ सुन्दर दासियों वाली । उसने महल की खिड़की खोल खड़े हो उसे ले जाये जाते देखा ।

वह रूपवान था, सुन्दर था, अत्यन्त शोभायमान था, देव-वर्ण वाला था, सभी का सिर-मौर प्रतीत होता था । उसे ले जाते देख, आसक्त हो वह सोचने लगी—किस उपाय से इस पुरुष को मैं अपना स्वामी बनाऊँ ? उसे सूझा—एक उपाय है । उसने अपना काम करने वाली के हाथ नगर-कोतवाल के पास एक हजार मुद्रा भिजवाई और कहलवाया—यह चोर सामा

का भाई है। सामा के अतिरिक्त इसका और कोई सहारा नहीं है। तुम यह हजार लेकर इसे छोड़ दो। उस काम करने वाली ने वैसा किया। नगर-कोतवाल ने उत्तर दिया—यह प्रसिद्ध चोर है। इसे ऐसे नहीं छोड़ सकता। इसकी जगह कोई दूसरा आदमी मिले तो इसे गाड़ी में छिपाकर, बिठाकर भेज सकता हूँ। उसने जाकर उसे कहा।

उस समय सामा पर आसक्त एक सेठ-पुत्र प्रतिदिन हजार दिया करता था। वह उस दिन भी हजार ले उसके घर पहुँचा। सामा हजार की थैली को जाँघ में दबा बैठ कर रोने लगी। ‘क्या बात है?’ पूछने पर बोली—स्वामी! यह चोर मेरा भाई है। मैं नीच-कर्म करती हूँ, इसलिये मेरे पास नहीं आता। नगरकोतवाल के पास भेजने पर उसने संदेश भिजवाया है कि हजार मिलेगा तो छोड़ दूँगा। अब ऐसा कोई नहीं मिलता जो इस हजार को लेकर नगर-कोतवाल के पास जाय। उसने उसपर आसक्त होने के कारण कहा—मैं जाऊँगा। तो यह जो तुम लाये हो, यही लेकर जाओ।

वह उसे ले नगर-कोतवाल के घर पहुँचा। नगर-कोतवाल ने उस सेठ-पुत्र को छिपी जगह में रख, चोर को छिपी गाड़ी में बिठा, सामा के पास भेजा और कहलाया कि यह चोर देश भर में प्रसिद्ध है, अच्छी तरह अन्वेषण हो जाने दे। उसने बहाना बनाया कि लोगों के सो जाने के समय इसे मरवाऊँगा। फिर थोड़ा समय व्यतीत होने पर, जब लोग सोने चले गये थे, उसने सेठ-पुत्र को बड़े पहरे में बध-स्थान पर ले जा तलवार से सिर काट शरीर को सूली पर टाँग नगर में प्रवेश किया।

उस समय से सामा किसी दूसरे के हाथ से कुछ न ग्रहण कर उम्मी के साथ रमण करती। वह सोचने लगा—यदि यह किसी दूसरे पर आसक्त हो गई तो यह मुझे भी मरवाकर किसी दूसरे के साथ रमण करेगी। यह अत्यन्त मित्र-द्रोही है। मुझे चाहिये कि यहाँ न रह कर शीघ्र भाग जाऊँ। लेकिन हाँ जाते समय खाली हाथ नहीं जाऊँगा। इसके गहनों की गठड़ी लेकर जाऊँगा। यह सोच बोला—

“भद्रे! हम पिञ्जरे में बन्द सुर्गों की तरह नित्य घर में ही रहते हैं। एक दिन उद्यान-क्रीड़ा के लिये चलें।” उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया

और सब खाद्य-भोजन सामग्री तैयार करा, सभी गहनों से अलंकृत हो उसके साथ पदों वाली गाड़ी में बैठ उद्यान को गई ।

उसने उसके साथ खेलते हुए 'अब मुझे भागना चाहिए' सोच उसके साथ रमण करने जावे-हुए की तरह, उसे कनेर के वृक्षों के बीच ले जा, उसका आलिङ्गन करने के बहाने, उसे दवाकर वेदोश कर गिरा दिया । फिर उसके सब गहने उतार, उसी की ओढ़नी में गठरी बाँध, उन्हें कंधे पर रख, बाग की दीवार लाँघ भाग गया ।

उसे होश आई तो उसने सेविकाओं के पास जाकर पूछा—'आर्य-पुत्र कहाँ है ? "आर्य ! हम नहीं जानतीं ।" उसने सोचा—'मुझे मरा समझ डर कर भाग गया होगा । वह दुखी हुई और घर पहुँच जमीन पर लेट रही - मैं तभी अलंकृत शैल्या पर लेटूँगी जब अपने प्रिय स्वामी को देख सकूँगी ।

उसने अच्छे वस्त्र पहनने छोड़ दिये । दोनों शाम भोजन करना छोड़ दिया । गन्धमाला धारण करना छोड़ दिया । 'जिस किसी तरह भी आर्य-पुत्र का पता लगाकर उसे बुलवाऊँगी' सोच उसने नटों को बुलवाकर उन्हें एक हजार दिये । उन्होंने पूछा:—

“आर्य ! क्या करें ?”

“ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ तुम्हारी पहुँच न हो । तुम ग्राम-निगम तथा राजधानियों में घूमते हुए तमाशा करते समय तमाशा देखने वालों के इकट्ठे होने पर पहले पहल यह गीत गाना ।” उसने नटों को पहली गाथा सिखाते हुए, “यदि आर्य-पुत्र उस परिपद में होगा तो तुम्हारे साथ बातचीत करेगा । उसे मेरा आरोग्य कहकर उसे लिवा लाना । यदि न आये तो मुझे सन्देशा भेजना” कह खर्चा दे विदा किया ।

ये वाराणसी से निकल जहाँ तहाँ तमाशा करते हुए एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचे । वह चोर भी भाग कर वहीं रहता था । उन्होंने वहाँ तमाशा करते समय पहले पहल यही गीत गाया—

यन्तं वसन्तसमये कणवेरेसु भानुसु,

सामं बाहाय पीळैसि सा तं आरोग्यसज्जिवि ॥

[तूने वसन्त समय में लाल लाल कनेर के वृक्षों के बीच में जिस सामा को हाथों से दबाया था, वह तुझे अपने आरोग्य की सूचना देती है ।]

चोर ने यह गीत सुन नट के पास आ “तू सामा जीती है” कहता है, मैं इस पर विश्वास नहीं करता” कह उसके साथ बतियाते हुए दूसरी गाथा कही—

अम्भो न किर सद्धेरं यं वातो पम्भतं वहे,

पम्भतञ्च वहे वातो सम्भस्मि पठिं वहे

यथ सामा कालकता सामं आरोग्यमब्रुवि ॥

[भो ! इस पर विश्वास नहीं होता कि हवा पर्वत को बहा ले जा सकती है, यदि वह पर्वत को बहा ले जाये तो फिर वह सारी पृथ्वी को भी बहा ले जा सकती है । (इसी लिये इस पर विश्वास नहीं होता कि) जो सामा मर गई वह मुझे अपने आरोग्य की सूचना दे ।]

उसका कथन सुन नट ने तीसरी गाथा कही—

न चेव सा कालकता न च सा अम्भमिच्छति,

एकभक्ता किर सामा तमेव अभिकङ्कति ॥

[न वह मरी है, न किसी दूसरे की इच्छा करती है । एक ही भर्ता वाली वह सामा उसी एक ही की इच्छा करती है ।]

इसे सुन चोर ने ‘चाहे वह जीती हो, चाहे न हो, मुझे उससे प्रयोजन नहीं’ कह चौथी गाथा कही—

असन्धुतं मं चिरसन्धुतेन

निमीनि सामा अधुवं धुवेन,

मयापि सामा निमिनेय्य अम्भं

इतो अहं दूरतरं गमिस्सं ॥

[सामा ने चिरकाल से संसर्ग किये हुए, ध्रुव-स्वामी को छोड़ कर मुझे जिसका पूर्व संसर्ग नहीं था और जो अध्रुव था अपनाया । अब सामा मुझसे भी किसी दूसरे को बदल सकती है । इसलिये मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ ।]

‘उसे मेरे यहाँ से भी चल देने की बात कहना’ कह उसने उनके देखते ही देखते कपड़े को और जोर से ओढ़ा और भाग निकला ।

नट ने जाकर उसका किया उसे सुनाया । उसने पश्चाताप करते हुए अपने ढङ्ग से ही दिन काटे ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिन्नु स्रोतापक्षिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय सेठ-पुत्र यह भिन्नु था। सामा पूर्व-भार्या। चोर तो मैं ही था।

३१६. तित्तिर जातक

“मुसुखं वत जीवामि...” यह शास्ता ने कोसम्बी के बदरिकाराम में विहार करते समय राहुल स्थविर के बारे में वही। (वर्तमान) कथा उक्त तिपल्लत्थ जातक^१ में आ ही गई है। धर्मसभा में भिन्नुओं के उस आयुष्मान के गुण कहने पर कि आयुष्मानों, राहुल शिन्ना-प्रेमी है, (बुरे कर्म में) अति संकोची है, उपदेश सुनता है, शास्ता ने आकर पूछा—“भिन्नुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर ‘भिन्नुओ, न केवल अभी राहुल शिन्ना-प्रेमी है, (बुरे कर्म में) अति-संकोची तथा उपदेश सुनने वाला है, पहले भी राहुल शिन्ना-प्रेमी, (बुरे कर्म में) अति-संकोची तथा उपदेश सुनने वाला ही रहा है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में सभी विद्यायें सीख, निकल कर, हिमालय प्रदेश में ऋषि-प्रब्रज्या ग्रहण कर, अभिञ्जा तथा समा-पत्तियाँ प्राप्त कीं। फिर ध्यान-क्रीड़ा में रत रह रमणीय वन-खण्ड में वास करते हुए निमक-खटाई खाने के लिए एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचे। मनुष्यों

^१ तिपल्लत्थमिग जातक (१६)

ने उन्हें वहाँ देख उनके प्रति श्रद्धावान हो किसी जङ्गल में पर्ण-कुटी बनवा सभी आवश्यक वस्तुयें पहुँचाते हुए (उस कुटी में) बसाया ।

उस समय उस गाँव का एक चिड़मार एक फँसाऊ तीतर को अच्छी तरह से सिखा-पढ़ा पिंजरे में रख पालता था । वह उसे जंगल में ले जा उसकी आवाज़ पर जो जो तीतर आते उन्हें पकड़ कर जीविका चलाता । तीतर सोचने लगा—मेरे कारण मेरे बहुत से जाति-वाले मारे जाते हैं । मैं पाप का भागी होता हूँ । उसने आवाज लगानी बन्द करदी । चिड़मार ने उसे चुप देखा तो वह बाँस की चपटी से उसके सिर पर मारने लगा । तीतर दुःखित हो आवाज़ लगाता । इस प्रकार वह शिकारी उसकी मदद से तीतरों को पकड़ जीविका चलाता ।

वह तीतर सोचने लगा—ये मरें ऐसी तो मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन जिस कर्म के होने से मरते हैं वह कर्म मुझे स्पर्श करता है । मैं आवाज नहीं लगाता तब ये नहीं आते, आवाज लगाता हूँ तभी आते हैं । जो जो आ फँसते हैं, उन्हें यह शिकारी पकड़ कर मार डालता है । मुझे इसमें पाप लगता है वा नहीं ? उस समय से वह किसी ऐसे पण्डित को ग़ो़जता हुआ विचरने लगा जो उसके इस सन्देह को मिटा सके ।

एक दिन शिकारी बहुत से तीतरों को पकड़, टोकरा भर, पानी पीने के लिए बोधिसत्व के आश्रम गया । उस पिंजरे को बांधिसत्व के पास रख पानी पी, बालु पर लेट सो गया । उसे सोया जान तीतर ने सोचा कि मैं अपना सन्देह इस तपस्वी से पूछूँ । जानता होगा तो मेरे सन्देह को दूर करेगा । उसने पिंजरे में पड़े ही पड़े उसे पूछते हुए पहली गाथा कही—

सुसुखं वत जीवामि लभामि चैव भुञ्जितुं,

परिपन्थे च तिष्ठामि कानु भन्ते गति मम ॥

[मैं सुख से रहता हूँ और खाना पाता हूँ लेकिन साथ ही उस रस्ते पर रहता हूँ (जहाँ मेरे जाति-वाले आकर फँसते हैं) भन्ते ! मेरी क्या गति होगी ?]

उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए बांधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

मनो चे ते न पणमति पक्खि पापस्स कम्मनो,

अग्घावटस्स भद्रस्स न पापमुपलप्पति ॥

[हे पक्षि ! यदि तेरा मन पापकर्म की ओर नहीं झुकता तो पाप-कर्म न करने वाले तুম भद्र को पाप नहीं लगता ।]

उसे सुन तीतर ने तीसरी गाथा कही—

जातको नो निसिञ्चोति बहु आगच्छते जनो,

पटिच्चकम्मं फुसति तस्मिं मे सङ्कते मनो ॥

[हमारी जातिका पैठा है, समझ बहुत से आ जाते हैं । मेरे होने से इन्हें (प्राणि-हत्या का) कर्म स्पर्श करता है । इस विषय में मेरे मन में सन्देह है ।]

उसे सुन बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

पटिच्चकम्मं न फुसति मनो चे नप्पदुस्सति,

अप्पोसुक्कस्स भद्रस्स न पापमुपलिप्पति ॥

[यदि मन दूषित न हो तो प्रतीत्य-कर्म स्पर्श नहीं करता । जो पाप करने के लिए उत्सुक नहीं है, ऐसे भद्रजन को पाप नहीं लगता ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने तीतर को समझाया । वह भी उनके कारण निश्चिन्त हो गया । चिड़ियामार जागने पर बोधिसत्व को प्रणाम कर पिंजरा ले चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय तीतर राहुल था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३२०. सुचज जातक

“सुचजं वत नच्चजी...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह गाँव में कर्जा बसूल करने के लिए भाय्या सहित वहाँ गया । कर्जा बसूल कर ‘गाड़ी लाकर बाद में ले जाऊँगा’ सोच उसने बसूल किया हुआ

सामान एक गृहस्थ के घर में रख दिया और भावस्ती की ओर चला । रास्ते में उन्होंने एक पर्वत देखा । उसकी भार्या बोली—स्वामी ! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो जाय तो मुझे भी कुछ दोगे ?

“तू कौन है, कुछ नहीं दूंगा ।”

वह असन्तुष्ट हो गई—कितना कठोर-हृदय है यह ! पर्वत के स्वर्णमय होने पर भी मुझे कुछ नहीं देगा । वे जेतवन के समीप आये तो पानी पीने के लिये विहार में जा उन्होंने पानी पिया । शास्ता भी अति प्रातः काल हो उनकी प्रतीक्षा करते हुए गन्धकुटी के वरामदे में बैठे थे, क्योंकि उन्होंने उनकी सोतापत्ति-फल प्राप्ति की संभावना को देखा था । उनके शरीर से छः वर्ण की रश्मियाँ निकल रही थीं । वे भी पानी पी आकर शास्ता को प्रणाम कर बैठ रहे । शास्ता ने उनका कुशलक्षेम पूछने के बाद पूछा—कहाँ गये थे ?

“भन्ते ! अपने गाँव में वसूली करने के लिये ।”

“उपासिका ! क्या तेरा स्वामी तेरा हितचिंतक है ? तेरा उपकार करता है ?”

“भन्ते ! मैं तो इससे स्नेह करती हूँ, किन्तु यह मुझ से स्नेह नहीं करता । आज मैंने पूछा—यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो, तो मुझे कुछ देगा ? यह बोला—तू कौन है ? कुछ नहीं दूंगा । यह ऐसा कठोर-हृदय है ।”

“उपासिका ! यह ऐसा कहता भर है लेकिन जब यह तेरे गुणों को याद करता है तो तुझे सब ऐश्वर्य देता है ।”

उनके प्रार्थना करने पर कि भन्ते ! (पूर्व-जन्म की कथा) कहें, शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उसके सर्वार्थसाधक अमात्य हुए । एक दिन राजा ने राजकुमार को सेवा में आते देख सोचा, शायद यह मेरे विरुद्ध षडयंत्र करे । उसने उसे बुलाकर आज्ञा दी—तात जब तक मैं जीता हूँ तुम नगर में नहीं रह सकते, अन्यत्र रहकर मेरे मरने पर राज्य संभालना ।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पिता को प्रणाम किया । व्येष्ट भार्या को साथ ले नगर से निकल पड़ा । प्रत्यंत-देश में पहुँच पर्व-कुटी बना जंगल के फल मूल खाकर रहने लगा । समय बीतने पर राजा मर गया ।

उपराज ने नक्षत्र देख जाना, कि उसका पिता मर गया । वाराणसी आते हुये रास्ते में एक पर्वत देखा ।

भार्या बंली—देव ! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो तो मुझे कुछ देंगे ?

“तू कौन है कुछ नहीं दूंगा ।” वह असन्तुष्ट हो गई—मैं इसके प्रति स्नेह न छोड़ सकने के कारण जंगल में आई और यह इस तरह बोलता है । अति कठोर-हृदय है । राजा होकर यह मेरा क्या भला करेगा ?

उसने आकर राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर उसे पटरानी बनाया । उसे यह यशमात्र दिया, और सत्कार सम्मान कुछ नहीं । मानो वह है ही नहीं । बोधिसत्व ने सोचा—इस देवी ने इस राजा का उपकार किया । अपने दुःख का ख्याल न कर इसके साथ जंगल में रही । लेकिन यह राजा इसका ख्याल न कर दूसरी के साथ रमण करता रहता है । मैं कुछ ऐसा करूँ जिसमें इसे सब ऐश्वर्य मिले । एक दिन बोधिसत्व ने उस देवी के पास आकर कहा—महादेवी ! हमें तुम से भिक्षा-मात्र भी नहीं मिलती ? हमारे प्रात इतनी उपेक्षा क्यों ? आप बड़ी कठोर-हृदय हैं ?

“तात ! यदि मुझे मिले तो तुम्हें भी दूँ । कुछ न मिलने पर क्या दूँ ? राजा भी मुझे अब क्या देगा जिसने रास्ते में इस पर्वत के स्वर्णमय हाने पर ‘मुझे कुछ दोगे ?’ पूछने पर ‘तू कौन है ? कुछ न दूंगा’ उत्तर दिया था । जो आसानी से दिया जा सकता था वह भी नहीं दिया ।”

“क्या तुम राजा के सामने यह बात कह सकोगी ।”

“तात ! क्यों न कह सकूंगी ?”

“तो राजा की उपस्थिति में पूछूंगा । तुम कहना ।”

“तात ! अच्छा ।”

बोधिसत्व ने देवी के राजा की सेवा में आकर खड़ी होने पर कहा—
आर्ये ! हमें तुम से कुछ नहीं मिलता ?

“तात ! मुझे मिले तो मैं तुम्हें दूँ । मुझे ही कुछ नहीं मिलता । राजा भी मुझे अब क्या देगा । इसने तो जंगल से लौटते समय मेरे एक पर्वत

को देखकर 'इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर मुझे दोगे ?' पूछने पर 'तू कौन है ? कुछ नहीं दूंगा' उत्तर दिया था । जो आसानी से दिया जा सकता था वह भी नहीं दिया ।"

यही बात कहने के लिये उसने पहली गाथा कही—

सुचजं वत नचजो वाचाय अददं गिरिं,

किं हि तस्स चजन्तस्स वाचाय अददं पव्वतं ॥

[वाणी से पर्वत का त्याग न कर जो सरलता से दिया जा सकता था, वह भी नहीं दिया । उसका त्याग करने में क्या लगा था ? इसने वाणी से भी पर्वत नहीं दिया ।]

इसे सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

यं हि कयिरा तंहि वदे यं न कयिरा न तं वदे,

अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पयिब्बता ॥

[जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे । न करते हुए केवल कहने वाले को परिष्ठत जन पहचान लेते हैं ।]

इसे सुन देवी ने राजा के सामने हाथ-जोड़ तीसरी गाथा कही—

राजपुत्त नमो त्थप्थु सच्चे धम्मो ठितोवसिं,

यस्स ते व्यसनं पत्तो सच्चस्मिं रमते मनो ॥

[राजपुत्र ! तू सत्य और धर्म में स्थित है । आपत्ति में पड़ने पर भी तेरा मन सत्य में ही रमण करता है, तुझे नमस्कार है ।]

इस प्रकार देवी के राजा का गुणानुवाद करने पर उसकी बात सुन बोधिसत्व ने उसके गुण कहने के लिये चौथी गाथा कही—

या दळिही दळिहस्स अब्बा अब्बस्स कित्तिमा,

सा हिस्स परमा भरिया सहिरब्जस्स इत्थियो ॥

[जो स्त्री दरिद्र पति के साथ दरिद्री बनकर रहती है और धनी होने पर धनवान बनकर रहती है, वही कीर्तिमान नारी ही उसकी परं श्रेष्ठ भार्या है; यूँ धनवान की स्त्रियाँ तो होती ही हैं ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवी के गुण कहे और राजा से निवेदन किया—महाराज ! यह तुम्हारी विपत्ति के समय तुम्हारे दुःख में शामिल रही । इसका सम्मान करना चाहिये ।

राजा ने उसके कहने से देवी के गुणों का ध्यान कर 'परिङित तेरे कहने से मुझे देवी के गुण याद आये' कह उसे सब ऐश्वर्य दिया । 'और तूने मुझे देवी का गुण याद कराया' कह बोधिसत्व का भी बड़ा सत्कार किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर पति-पत्नी सोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए ।

उस समय वाराणसी राजा यह गृहस्थ था । देवी यह उपासिका । परिङित अमात्य तो मैं ही था ।



चौथा परिच्छेद

३. कुटिदूसक वर्ग

३२१. कुटिदूसक जातक

“मनुस्ससेव ते सीसं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाकश्यप स्थविर की कुटि जला देने वाले तरुण भिन्नु के बारे में कही। घटना राजगृह में घटी।

क. वर्तमान कथा

उस समय स्थविर राजगृह के पास जंगल में कुटी में रहते थे। दो तरुण (भिन्नु) उसकी सेवा में थे। उनमें से एक स्थविर का उपकारी था और दूसरा बात न सहन करने वाला। वह दूसरे के किये को अपने किये जैसा करके दिखाता था। उपकारी भिन्नु के मुँह धोने का पानी आदि लाकर रखने पर वह स्थविर के पास जा प्रणाम कर ‘भन्ते ! मैंने पानी रख दिया है, मुँह धोयें’ आदि कहता। उसके प्रातःकाल ही उठकर स्थविर का परिवेण साफ करने पर स्थविर के बाहर निकलने के समय इधर उधर (भाड़ू) मार सारा परिवेण अपने साफ किया जैसा कर देता। कर्तव्य-परायण भिन्नु ने सोचा—यह, बात न सह सकने वाला जो कुछ मैं करता हूँ उसे अपना किया बना देता है। मैं इसको करतूत प्रकट करूँगा। उसके गाँव में जाकर, खाकर, आकर सोते समय नहाने का पानी गर्म कर पाँछे की कोठरी में रख दिया, और दूसरा आधी नाली मात्र पानी चूल्हे पर रख दिया। उसने उठकर आकर भाप उठती देखी। सोचा—पानी गर्म करके कोठरी में रखा होगा। स्थविर के पास जाकर बोला—भन्ते ! स्नानागार में पानी रखा है, स्नान करें। स्थविर ‘नहाता हूँ’ कह उसी के साथ आये। कोठरी में जब पानी नहीं दिखाई दिया तो पूछा—कहाँ है ? उसने जल्दी से अग्निशाला में पहुँच खाली बर्तन में कड़छी धुमाई। कड़छी ने खाली बर्तन के तल में

लग 'सर' आवाज की। तब से उसका नाम ही 'उलुङ्कशब्दक' अर्थात् उलुङ्क शब्द करने वाला पड़ गया। उस समय दूसरे ने पीछे की कोठरी में से पानी लाकर कहा—भन्ते ! स्नान करें। स्थविर ने स्नान कर विचार करने पर 'उलुङ्कशब्दक' के बारे में यह जान कि यह कठिनाई से बात मानने वाला है, शाम को उसके सेवा में आने पर उसे उपदेश दिया—आयुष्मान ! श्रमण को चाहिये कि अपने किये को ही किया कहे, अन्यथा जानबूझ कर भूट योलना होता है। अब से ऐसा न करना। वह स्थविर से क्रुद्ध हो अगले दिन स्थविर के साथ भिक्षाटन के लिये गाँव में नहीं गया। स्थविर दूसरे के ही साथ गये। उलुङ्कशब्दक भी स्थविर के सेवक-परिवार में पहुँचा। वहाँ पूछा—भन्ते ! स्थविर कहाँ है ?

“अस्वस्थ होने के कारण विहार में ही बैठे हैं।”

“भन्ते ! तो क्या क्या चाहिये ?”

“यह दें, वह दें” कह लेकर अपने मन की जाह जा, ग्याकर विहार में पहुँचा। अगले दिन स्थविर उसी परिवार में जाकर बैठे। मनुष्यों ने पूछा—भन्ते आर्य को क्या कष्ट है ? कल विहार में बैठे रहे। हमने अमुक तरुण के हाथ आहार भेजा। आर्य ने आहार ग्रहण किया ? स्थविर ने चुपचाप भोजन समाप्त कर विहार जा शाम को उसके सेवा में आने पर कहा—आयुष्मान अमुक गाँव में अमुक परिवार में स्थविर के लिए यह चाहिए कह तुम लागये। मुँह से माँगना अनुचित है। फिर ऐसा अनाचार न करना। इससे उसके मन में स्थविर के प्रति बैर बढ़ गया। उसने सोचा, कल इसने केवल पानी के लिए मेरे साथ भगड़ा किया आज इसके सेवकों के घर जो मैंने एक मुट्ठी भात खा लिया उसे न सह सकने के कारण फिर भगड़ा करता है। देखूँगा इसके साथ क्या करना चाहिए। अगले दिन जब स्थविर भिक्षाटन के लिए गये, उसने मुग़्दर ले काम में आने वाले बर्तनों को तोड़ फोड़ दिया। और पर्णकुटी में आग लगा भाग गया। वह जीते जी मनुष्य-प्रेत हो सुख गया और मरने पर अवीची नरक में पैदा हुआ। उसका अनाचार जनता में प्रकट हो गया। कुछ भिक्षु राजगृह से श्रवास्ती आये। उन्होंने अनुकूल स्थान पर अपना पात्र चीवर संभाल कर रखा, और शास्ता के समीप जा प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने उनसे कुशल-प्रश्न करके पूछा—कहाँ से आये ?

“भन्ते ! राज-गृह से ।”

“वहां उपदेश देने वाला आचार्य कौन है ?”

“भन्ते ! महाकाश्यप स्थविर ।”

“भिच्छुओ ! काश्यप सकुशल है ?”

“हाँ भन्ते ! स्थविर तो सुख से हैं, लेकिन उनका शिष्य उनके उपदेश देने से क्रोधित हो, जिस समय स्थविर भिन्नाटन के लिये गये थे, मुग्धर ले काम के बर्तनों को तोड़ फोड़ स्थविर की पर्ण-कुटी में आग लगा भाग गया ।”

शास्ता ने कहा—भिच्छुओ इस प्रकार के मूर्ख के साथ रहने से काश्यप के लिए अकेले रहना ही अच्छा है । उन्होंने धम्म पद की यह गायी कही:—

चरं चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो,

एकचरियं द्दळ्हं कयिरा नित्थ बाले सहायता^१ ॥

[यदि अपने से श्रेष्ठ वा अपने जैसा साथी न मिले तो दृढ़ता पूर्वक अकेला ही रहे । मूर्ख की संगति (अच्छी नहीं है ।]

यह कह उन भिच्छुओं को फिर सम्बोधन कर भगवान बोले—

“भिच्छुओ न केवल अभी यह कुटी को नष्ट करने वाला है पहले भी यह कुटी को नष्ट करने वाला ही रहा है । न केवल अभी यह उपदेश देने वाले पर क्रोधित होता है पहले भी क्रोधित हुआ ही है ।” फिर उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बये की योनि में पैदा हुए । बड़े होने पर अपने लिये वर्षा से सुरक्षित सुन्दर बोंसला बना, हिमालय प्रदेश में रहने लगे । एक दिन मूसलाधार वर्षा के समय सर्दी से ठिठुरता हुआ दाँत कटकटाता हुआ एक बन्दर बोधिसत्व के पास आ बैठा । बोधिसत्व ने उसे कष्ट पाते देख, उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही:—

^१ बाल बना (२)

मनुस्ससेव ते सीसं हत्थपादा च वानर,
अथ केन नु वय्येन अगारं ते न विज्जति ॥

[हे वानर ! तेरा सिर भी मनुष्य के समान है और तेरे हाथ पाँव भी । तो फिर क्या कारण है कि तुझे घर नहीं है ?]

इसे सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कही:—

मनुस्ससेव मे सीसं हत्थपादा च सिंगिख,
याहु सेट्ठा मनुस्सेसु सा मे पञ्जा न विज्जति ॥

[हे बयें ! मेरा सिर मनुष्य का ही है और हाथ पाँव भी । लेकिन मनुष्यों में जो श्रेष्ठ कहलाती है वह प्रजा मेरे पास नहीं है ।]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कहीं:—

अनवद्धितचित्तस्स लहुचित्तस्स दुब्भिनो,
निच्चं अध्वसीलस्स सुचिभावो न विज्जति ॥
सो करस्सानुभावं वीतिवत्तस्सु सीलियं;
शीतवातपरित्ताणं करस्सु कुटिकं कपि ॥

[जो अस्थिर-चित्त है, जो हलके चित्त का है, जो मित्रद्रोही है तथा जिसका शील स्थिर नहीं है उसे सुख नहीं होता । इसलिये हे कपि ! तू दुःशीलता को त्याग कर (कुछ) उपाय कर और एक घर बना, जो शीत-वात से रक्षा कर सके ।]

बन्दर ने सोचा यह स्वयं वर्षा से सुरक्षित स्थान में बैठा होने के कारण मेरा परिहास करता है । इसे इस घोंसले में न बैठने दूँगा । वह बोधिसत्व को पकड़ने के लिये क्रुद्धा । बोधिसत्व उड़कर अन्यत्र चले गये । बन्दर ने घोंसले को नष्ट कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया और चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय बन्दर (यह) कुटी जलाने वाला था । बया तो मैं ही था ।

३२२. ददभ जातक

“ददभायलि भदन्ते...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक तैरिंक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

तैरिंक जेतवन के पास जहाँ तहाँ काँटों पर सोते थे, पंचाग्नि ताप तपते थे तथा अन्य नाना प्रकार के मिथ्या तप करते थे । बहुत से भिक्षुओं ने श्रावस्ती में भिक्षाटन कर जेतवन आते समय रास्ते में उन्हें देखा । उन्होंने शास्ता के पास जाकर पूछा—भन्ते ! इन अन्य सम्प्रदायों के श्रमण ब्राह्मणों के व्रतों में सार है ? शास्ता ने उत्तर दिया—उनके व्रतों में सार या विशेषता नहीं है, उन्हें कसौटी पर कसने पर या परीक्षा करने पर गोबर की पहाड़ी पर खरगोश की चिल्लाहट के समान ठहरते हैं । “भन्ते ! हम इसका चिल्लाहट जैसा होना नहीं जानते हैं, हमें कहे ।” उनके प्रार्थना करने कर शास्ता ने अतीत कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बांधिसत्व शेर की योनि में पैदा हुए । बड़े होने पर जंगल में रहते थे । उस समय पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड़ का बन था । वहाँ एक खरगोश बेल वृक्ष की जड़ में एक ताड़ के गाल के नीचे रहता था ।

एक दिन वह शिकार लेकर आया और ताड़ की छाया में लेट रहा । उसने पड़े पड़े सोचा यदि यह महान पृथ्वी उल्टे तो मैं कहाँ जाऊँगा ? उसी समय एक पका हुआ बेल ताड़ के पत्ते पर गिरा । उसने उसकी आवाज सुन समझा कि पृथ्वी उलट रही है और बिना पीछे देखे भागा । मरने के डर के मारे तेजी से भागते हुये उसे देख दूसरे खरगोश ने पूछा—भो ! क्या बात है, अत्यन्त डरकर भाग रहे हो ? “भो ! मत पूछ ।” क्या डर की बात है, पूछता हुआ वह भी पीछे दौड़ने लगा । दूसरे ने रुककर बिना देखे ही कहा—यहाँ पृथ्वी उलट रही है । वह भी उसके पीछे भागा । इस प्रकार उसे दूसरे ने

देखा और फिर तीसरे ने और एक हजार खरगोश इकट्ठे होकर भागने लगे ।

एक मृग भी उन्हें देख उनके पीछे भागा । एक सुअर, एक नीलगाय, एक भैंस, एक बैल, एक गैंड़ा, एक व्याघ्र, एक सिंह तथा एक हाथी भी उन्हें देख, 'यह क्या है ?' पूछ 'यहाँ पृथ्वी पलटती है' बताये जाने पर भागा । इस प्रकार क्रमशः योजन भर की पशु-सेना हो गई ।

तब बोधिसत्व ने उस सेना को भागते देख पूछा—यह क्या है ? जब उसने सुना यहाँ पृथ्वी उलटती है तो सोचा पृथ्वी उलटना कभी नहीं होता । निःसंशय इन्होंने कुछ देखा होगा । यदि मैं कुछ प्रयत्न न करूँगा तो यह सब नष्ट हो जायेंगे । मैं इन्हें जीवनदान दूँगा । उसने सिंहवेग से आगे पहुँच पर्वत के दामन में खड़े हो तीन बार सिंह-नाद किया । सिंह-भय से भयभीत वे रुक कर इकट्ठे हो खड़े हो गये ।

सिंह ने उनके बीच में जा पूछा—क्यों भाग रहे हो ?

“पृथ्वी उलट रही है ।”

“पृथ्वी को उलटते किसने देखा ?”

“हाथी जानते हैं ।”

हाथियों ने पूछा । वे बोले—हम नहीं जानते, सिंह जानते हैं । सिंह भी बोले—हम नहीं जानते, व्याघ्र जानते हैं । व्याघ्र भी—हम नहीं जानते, गैंड़े जानते हैं । गैंड़े भी—हम नहीं जानते, बैल जानते हैं । बैल भी—हम नहीं जानते, भैंसे जानते हैं । भैंसे भी—हम नहीं जानते, नीलगायें जानती हैं । नीलगायें भी—हम नहीं जानतीं, सुअर जानते हैं । सुअर भी हम नहीं जानते, मृग जानते हैं । मृग भी—हम नहीं जानते, खरगोश जानते हैं । खरगोशों से पूछने पर उन्होंने वह खरगोश दिखाकर कहा—यह कहता है ।

तब उसे पूछा—सौम्य ! क्या तूने ऐसा देखा कि पृथ्वी उलट रही है ? “स्वामी ! हाँ मैंने देखा ।”

“कहाँ रहते हुये देखा ?”

“पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड़ के बन में रहता हूँ । मैंने वहाँ बेल-वृक्ष की जड़ में, ताड़-वृक्ष के ताड़-पत्र की छाया में लेटे लेटे सोचा था,

पृथ्वी उलटी तो मैं कहाँ जाऊँगा ! उसी क्षण पृथ्वी के उलटने का शब्द सुन कर मैं भागा हूँ ।”

सिंह ने सोचा, निश्चय से उस ताड़-पत्र पर पका बेल गिरने से ‘धब’ शब्द हुआ होगा । उसी शब्द को सुन कर यह पृथ्वी पलट रही है समझ भागा होगा । मैं यथार्थ बात जानूँगा । उसने उस खरगोश को ले जनता को आश्वासन दिया—मैं जहाँ उसने देखा है वहाँ पृथ्वी का उलटना वा न उलटना यथार्थ रूप से जानकर आऊँगा । जब तक मैं आऊँ तब तक तुम यहीं रहो ।

उसने खरगोश को पीठ पर चढ़ाया और सिंह-वेग से छलांग मार उसे ताड़-वन में उतार कर कहा—आ, अपनी देखी जगह दिखा ।

“स्वामी ! साहस नहीं होता ।”

“आ, डर मत ।”

उसने बेल-वृक्ष के पास न जा सकने के कारण कुछ दूर पर ही खड़े हो “स्वामी ! यह ‘धब’ आवाज होने का स्थान है” कहते हुए पहली गाथा कही—

दह्मयति भदन्ते यस्मिं देसे वसामहं,

अहम्पेतं न जानामि किमेतं दह्मयति ॥

[तुम्हारा भला हो, जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ ‘धब’ शब्द होता है । मैं भी नहीं जानता हूँ कि यह क्या है जो ‘धब’ आवाज करता है ।]

ऐसा करने पर सिंह ने बेल-वृक्ष के नीचे जा ताड़-वृक्ष के नीचे खरगोश के लेटे रहने की जगह और ताड़ के पत्ते पर गिरा हुआ पका बेल देखकर पृथ्वी के न पलटने की बात यथार्थ रूप से जानी । वह खरगोश की पीठ पर बिठा सिंह-वेग से पशुओं के संघ में पहुँचा । और पशु समूह को आश्वासन दिया कि डरें नहीं । तब सिंह ने सब को विदा किया । यदि तब बोधिसत्व न होते तो सभी समुद्र में गिरकर नष्ट हो जाते । बोधिसत्व के कारण सब के प्राण बचे ।

ये तीन सम्बुद्ध गाथायें हैं:—

बेलुवं पतितं सुखा दह्मन्ति ससो जवि,

ससस्स वचनं सुखा सन्तत्ता सिग्गवाहिनी ॥

अप्यस्वा पदविम्बायां परघोसानुसारिनो,
पमादपरमाबाह्या ते होन्ति परपत्तिया ॥
ये च लीलेन सम्पन्ना पञ्चायुपसमे रता ,
आरता विरता धीरा न होन्ति परपत्तिया ॥

[बेल के गिरने की 'धव' आवाज को सुनकर खरगोश भागा । खर-
गोश की बात सुन पशु-समूह त्रस्त हुआ । दूसरों की बात सुन वैसा ही करने
वाले स्वयं ज्ञान न प्राप्त कर, दूसरों का ही विश्वास करने वाले परं प्रमादी
हाते हैं । जो सदाचारी हैं, जो प्रज्ञा द्वारा (चित्ताग्नि को) शान्त करने में रत
हैं, जो (पाप कर्मों से) दूर हैं, जो विरत हैं, वे धीर-जन दूसरों का अन्धानु-
करण करने वाले नहीं होते ॥ ३ ॥]

इसी से कहा गया है :—

अस्सद्धो अकतञ्जुच संधिच्छेदो च यो नरो,
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो^१ ॥

[जो (अन्धी) श्रद्धा से रहित है, जो अकृत का शत्रु है, जो (जन्म
मरण रूपी) सन्धि का छेद कर चुका है, जिसने (दुष्कर्म के अवकाश को
नष्ट कर दिया, जिसकी सब आशाएँ जाती रहीं वही उत्तम पुरुष है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय
सिंह मैं ही था ।

३२३. ब्रह्मदत्त जातक

“द्वयं याचनको राज...” यह शास्ता ने अल्लबी के पास अम्गालव
चैत्य में विहार करते समय कुटी बनाने के नियम के बारे में कही ।

^१ धम्म-पद, अरहत्तवगो ।

क. वर्तमान कथा

कथा ऊपर पणिकण्ठ जातक^२ में आ ही गई है। इस कथा में भगवान ने पूछा—भिक्षुओ! क्या तुम सचमुच अत्यधिक याचना करते, अत्यधिक मांगा करते हो? 'भन्ते! हां' कहने पर भगवान ने उन भिक्षुओं की निन्दा की और बोले—भिक्षुओ, पुराने पण्डितों में राजा के मांगने का आग्रह करने पर भी पत्तों की छतरी और एक तले का जूती-जोड़ा मांगने की इच्छा रहने पर भी लज्जामय के कारण जनता के सामने न मांग, एकान्त में ही मांगा। इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कम्पिल राष्ट्र में उत्तर-पञ्चाल नगर में पाञ्चाल-राज के राज्य करते समय बोधिसत्व एक निगम-ग्राम में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुये। बड़े होने पर तक्षशिला जा, सब शिल्प सीखे। फिर तपस्वी प्रव्रज्या ले हिमालय में फल-मूल चुगकर खाते हुए जीवनयापन करने लगे। चिर काल तक हिमालय में रह नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती की ओर आ उत्तर पञ्चाल-नगर में पहुँचे। वहाँ राजोद्यान में ठहर, अगले दिन भिक्षार्थ नगर में जाकर वापिस उद्यान में लौटे।

राजा ने उसकी चर्या से प्रसन्न हो, उसे महान् तल्ले पर बिठा राज-भोजन खिलवाया। फिर प्रतिज्ञा ले राजोद्यान में ही बसाया। उसने नित्य राजा के यहाँ ही भोजन करते हुये वर्षाकाल की समाप्ति पर हिमालय लौटना चाहा। उसकी इच्छा हुई कि रास्ता चलते समय उसके पास एक तले का जूता और एक पत्तों का छाता होना चाहिये। उसने सोचा—राजा से माँगूंगा। एक दिन राजा उद्यान में आकर प्रणाम करके बैठा। उसे देख सोचा, जूता और छाता माँगूंगा। फिर सोचा—दूसरे से 'यह दो' (मांगने वाला) मांगते समय रोता है, दूसरा भी 'नहीं है' कहता हुआ रोता है। जनता

मुझे और राजा को रोता हुआ न देखे। एकान्त में छिपे हुये स्थान पर दोनों रोकर चुप हो जायेंगे।

उसने राजा से कहा—महाराज ! एकान्त चाहिये। राजा ने सुना तो राज-पुरुषों को दूर हटा दिया। बोधिसत्व ने सोचा—यदि मेरे याचना करने पर राजा ने न दिया तो हमारी मैत्री टूटेगी। इसलिये नहीं माँगूँगा। उस दिन नाम न ले सकने के कारण कहा—महाराज ! जायें फिर किसी दिन देखूँगा।

फिर एक दिन राजा के उद्यान आने पर उसी तरह, और फिर उसी तरह, इस प्रकार याचना न करते हुए ही बारह वर्ष बीत गये। तब राजा ने सोचा—आर्य ! मुझसे एकान्त चाहते हैं। लेकिन परिपद के चले जाने पर कुछ नहीं कह सकते। कहने की इच्छा रखे ही रखे बारह वर्ष बीत गये। इन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में रहते चिरकाल बीत गया। मालूम होता है उद्विग्नचित्त हो भोग भोगने की इच्छा से राजा चाहते हैं। लेकिन राज्य का नाम न ले सकने के कारण चुप हो जाते हैं। आज मैं इन्हें राज्य से लेकर जो चाहेंगे सो दूँगा।

उसने उद्यान में जा, प्रणाम कर, बैठने पर, जब बोधिसत्व ने एकान्त चाहा तब लोगों के चले जाने पर, बोधिसत्व के कुछ भी न कह सकने पर कहा—तुम बारह वर्ष से 'एकान्त चाहिये' कह एकान्त मिलने पर कुछ भी नहीं कह सकते। मैं राज्य से लेकर सब कुछ देने को तैयार हूँ। जो इच्छा हो, वह निर्भय होकर माँगें।

“महाराज ! जो मैं माँगूँगा, वह देंगे ?”

“भन्ते ! दूँगा।”

“महाराज ! मुझे रास्ता चलते समय एक तलेवाला एक जोड़ा जूता और एक पत्तों का छाता चाहिये।”

“भन्ते ! बारह वर्ष तक आप यह न माँग सके ?”

“महाराज ! हाँ।”

“भन्ते ! ऐसा क्यों किया ?”

“महाराज ! जो 'यह मुझे दो' कह कर माँगता है, वह रोता है, जो 'नहीं है' कहता है, वह रोता है। यदि तुम मेरे माँगने पर न दो तो हम दोनों का रोना जनता न देखे, इसीलिये एकान्त चाहता रहा।”

यह कह आरम्भ से तीन गाथायें कहीं—

द्वयं याचनको राज ब्रह्मदत्त निगच्छति,
अलाभं धनलाभं वा एवं धम्मा हि याचना ॥
याचनं रोदनं आहु पञ्चालानं रथेसभ,
यो याचनं पञ्चकलाति तमाहु पटिरोदनं ॥
मा महसंसु रोदन्तं पञ्चाला सुसमागता,
तुवं वा पटिरोदन्तं तस्मा इच्छामहं रहो ॥

[हे ब्रह्मदत्त राजन् ! मांगने वाले की दो ही गतियाँ होती हैं—धन-प्राप्ति अथवा अप्राप्ति । याचना का यही धर्म है ॥१॥ हे पञ्चालेश्वर ! माँगना रुदन कहलाता है और जो मांगने पर न देना है वह प्रतिरुदन कहलाता है ॥२॥ इसलिये मैं एकान्त चाहता रहा जिसमें यहाँ इकट्ठे हुये पञ्चाल मेरा रुदन और तेरा प्रतिरुदन न देख सकें ॥३॥]

राजा ने बोधिसत्व के आत्म-गौरव के भाव पर प्रसन्न हो, वर देते हुये चौथी गाथा कही:—

ददामि ते ब्राह्मण रोहिणीं
गवं सहस्सं सह पुङ्गवेन,
अरियो हि अरियस्स कथं न वज्जे
सुत्थान गाथा तव धम्मयुत्ता ॥

[ब्राह्मण ! मैं तुम्हें वैलों सहित हजार लाल गौवें देता हूँ । तुम्हारी धर्म-युक्त गाथाओं को सुनकर एक (आर्य) दूसरे (आर्य) को कैसे न देवे ?]

‘महाराज ! मुझे वस्तुओं की इच्छा नहीं है । जो मैं चाहता हूँ तुम्हें वही दे दें ।’ एक तले का जूता और पत्तों का छाता ले उन्होंने राजा को उपदेश दिया—महाराज ! प्रमाद रहित रहें । दान दें । शील की रक्षा करें । उपोसथ-कर्म करें । फिर, राजा ठहरने का आग्रह ही करता रह गया, वे हिमालय चले गये । वहाँ अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३२४. चम्म साटक जातक

“कल्याणरूपो वतयं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक चम्मसाटक नामक परिव्राजक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

चमड़ा ही उसका पहनना-ओढ़ना होता था । वह एक दिन परिव्राजकाराम से निकलकर भिक्षाटन करता हुआ मेढ़ों के लड़ने की जगह पहुँचा । मेढ़ा उसे देख टक्कर मारने के लिये पीछे हटा । परिव्राजक ने सोचा यह मेरे प्रति गौरव प्रकट कर रहा है । वह न हटा । मेढ़े ने जोर से आ उसकी जाँघ में टक्कर मार गिरा दिया । उसका इस प्रकार चण्ड के पास जाना भिक्षु-संघ में प्रसिद्ध हो गया । भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! चर्म-साटक परिव्राजक चण्ड के पास जाने से विनाश को प्राप्त हुआ ।

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत ।”

“भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, यह पहले भी चण्ड के पास जाकर विनाश को प्राप्त हो चुका है ।”

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक व्यापारी-कुल में पैदा हो व्यापार करते थे । उस समय चम्मसाटक परिव्राजक वाराणसी में भिक्षाटन करता हुआ मेढ़ों के युद्ध करने की जगह पहुँचा । जब उसने मेढ़े को पीछे हटता देखा तो समझा मेरे प्रति गौरव प्रदर्शित करता है । वह पीछे नहीं हटा । उसने सोचा इतने मनुष्यों में यह

मेढ़ा ही मेरे गुणों से परिचित है । उसने हाथ जोड़े खड़े ही खड़े पहली गाथा कही —

कल्याणरूपो वतयं चतुष्पदो,
सुभद्रको चैव सुपेसलो च,
यो ब्राह्मणं जातिमन्तुपपन्नं,
अपचायति मेघवरो यसस्सी ॥

[जो यह यशस्वी मेढ़ा जाति मन्त्रयुक्त ब्राह्मण के प्रति गौरव प्रदर्शित करता है, वह यह चतुष्पाद सुन्दर है, भद्र है, प्रियकर है ।]

उस समय दुकान पर बैठे हुये पंडित-व्यापारी ने उस परिव्राजक को मना करते हुए दूसरी गाथा कही—

मा ब्राह्मण इत्तरदस्सनेन,
विस्सासमापज्जि चतुष्पदस्स,
दळहप्पहारं अभिक्खमानो,
अपसक्कति दस्सति सुप्पहारं ॥

[ब्राह्मण ! क्षण-मात्र के दर्शन से चौपाये का विश्वास मत कर । यह जोर की चोट मारने के लिये पीछे हटा है । यह जोर की चोट करेगा ।]

उस पण्डित-व्यापारी के कहते ही समय मेढ़े ने जोर से आकर जाँघ पर चोट कर उसे वहीं गिरा दिया । वह वेदनामय हो गया । और पड़ा-पड़ा चिल्लाता था ।

शास्ता ने उस बात को प्रकट करते हुये तीसरी गाथा कही—

ऊरट्ठि भागं पत्तितो खारिभारो,
सब्बं भण्डं ब्राह्मणस्सेव भिन्नं ।
उभोपि वाहा पग्गय्ह कन्दति,
अभिधावथ हज्जति ब्रह्मचारि ॥

[जाँघ की हड्डी टूट गई । खारि-भार गिर पड़ा । ब्राह्मण के सभी भाण्डे टूट गये । अब दोनों बाहें पकड़ कर रोता है—दौड़ो, ब्रह्मचारि मारा जाता है ।]

परिव्राजक ने चौथी गाथा कही:—

एवं सो निहतो सेति यो अपूजं पश्यंति,

यथाहमज्ज पहतो हतो मेण्डेन दुग्गमति ॥

[जो अपूज्य की प्रशंसा करता है वह इसी तरह मारा जाता है जैसे मैं मूर्ख उस मेढ़े द्वारा चोट खा गया ।]

वह रोता पीटता वहीं मर गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का चम्मसाटक अब का चम्मसाटक ही था । पण्डित-व्यापारी तो मैं ही था ।

३२५. गोध जातक

“समणं तं मञ्जमानो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय ढोंगी भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पहले आ ही गई है । यहां भी उस भिक्षु को शास्ता के सामने लाकर भिक्षुओं ने कहा—भन्ते ! यह भिक्षु ढोंगी है । शास्ता ने ‘भिक्षुओं, न केवल अभी, पहले भी यह ढोंगी ही रहा है’ कह पूर्वजन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गोध की योनि में पैदा हुए । बड़ी आयु तथा शरीर के होने पर जङ्गल में रहने लगे ।

एक दुराचारी तपस्वी उससे कुछ ही दूर पर्ण-कुटी बना रहता था । बोधिसत्व ने शिकार खोजते हुए उसे देख समझा सदाचारी तपस्वी की पर्ण-कुटी होगी । वहाँ जा तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान पर गये ।

एक दिन उस कुटिल तपस्वी को सेवकों के घर पका मधुर मांस मिला । पूछा—यह क्या मांस है ? यह सुन कर कि गोह का मांस है, रस-तृष्णा से अभिभूत होने के कारण उसने सोचा कि जो गोह मेरे आश्रम पर नित्य आती है उसे मार कर यथारुचि पका कर खाऊँगा । घी, दही और मसाले आदि ले वहाँ जा काषाय-वस्त्र से मुँगरी को ढक, पर्ण-कुटी के दरवाजे पर बोधिसत्व की प्रतीक्षा करता हुआ शान्त, दान्त की तरह बैठा ।

गोह ने आकर उसकी द्वेप-भरी शकल देख, सोचा, इसने हमारी जाति के किसी का मांस खाया होगा । मैं इसकी जाँच करती हूँ । उसने जिधर हवा जा रही थी उधर खड़े होकर शरीर की गन्ध सूँधी । उसे पता लग गया कि उसकी जाति के किसी का मांस खाया गया है । वह तपस्वी के पास आकर लौट गई । तपस्वी ने भी उसे न आते देख मुँगरी फेंकी । मुँगरी शरीर पर न लग, पंछ के सिरे पर लगी । तपस्वी बोला, जा मैं चूक गया । बोधिसत्व ने उत्तर दिया, मुझे तो चूक गया लेकिन चार अपायों को नहीं चूकेगा । उसने भाग कर चंक्रमण के सिरे पर स्थित, बिल में घुस दूसरे छिद्र से सिर निकाल कर उससे बात करते हुए दो गाथाएँ कहीं—

समणं तं मञ्जमानो उपगच्छिं असञ्जतं ।

सो मं दण्डेन पाहासि यथा अस्समणो तथा ॥

किन्ते जटाहि दुग्मेध किं ते अजिनसाटिया,

अबभन्तरं ते गहणं बाहिरं परिमज्जसि ॥

[तुझे श्रमण समझ कर (तुझ) असंयत के पास आयी । जैसे कोई अश्रमण मारे वैसे ही तूने मुझे डण्डे से मारा । हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ ?) और मृगचर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तू मैला है, बाहर से धोता है ।]

इसे सुन तपस्वी ने तीसरी गाथा कही—

एहि गोध निवत्तस्सु मुञ्ज सालीनमोदनं,

तेलं लोणञ्च मे अत्थि पट्टतं मरुह पिप्फली ॥

[हे गोह ! आ रुक, शाली धान का भात खा । मेरे पास तेल है, नमक है (और हींग, ज़ीरा, अदरक, मिरच, तथा) पिप्फली आदि मसाले भी बहुत हैं ।]

इसे सुन बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

एस भीर्यो पवेक्खामि वग्गिकं सत्तपोरिसं,
तेलं लोणञ्च कित्तेसि अहितं मय्ह पिप्फली ॥

[इस सौ पोरसे के तिल में फिर प्रवेश करूँगी । तू तेल और निमक की बढ़ाई करता है । पिप्फली मेरे अनुकूल नहीं पड़ती ।]

ऐसा कह कर फिर उस कुटिल तपस्वी को डराया—अरे कुटिल जटिल ! यदि यहाँ रहेगा तो आस पास के मनुष्यों द्वारा ‘यह चोर है’ कह पकड़ा, अपमानित कराऊँगी । शीघ्र भाग जा ! कुटिल जटिल वहीं से भाग गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय कुटिल जटिल तो यह ढोंगी भिक्षु ही था । गोह-राजा तो मैं ही था ।

३२६. कक्कारु जातक

“कायेन यो नावहरे...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसके संघ में फूट डालकर अग्र-श्रावकों तथा परिषद के साथ चले जाने पर मुँह से गर्म खून गिरा । भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त ने झूठ बोलकर संघ में फूट डाली । अब रोगी होकर महान दुःख भोग रहा है । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ! ‘अमुक बातचीत’ कहने पर ‘न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी यह मृषावादी ही था, न केवल अभी मृषावाद के कारण यह दुःख भोगता है, पहले भी भोगा ही है’ कह शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व त्रयोविंश-भवन में एक देव-पुत्र हुए। उस समय वाराणसी में महोत्सव था। बहुत से नाग, गरुड़ और भुम्भट्टक देवताओं ने आकर उत्सव देखा। त्रयो-विंश भवन से भी चारों देवपुत्र कक्कार नाम के दिव्य पुष्पों से बने गजरे पहन उत्सव देखने आये। वारह योजन का नगर उन फूलों की सुगन्ध से महक गया। मनुष्य सोचते थे—इन पुष्पों को किसने पहना है ? उन देवपुत्रों ने जब देखा कि लोग हमें खोज रहे हैं तो वे राजाङ्गण में ऊपर उठ महान् देवता-प्रताप से आकाश में स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा, सेट्टी तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे।

लोगों ने पूछा—स्वामी ! किस देवलोक से आना हुआ ?

“त्रयस्त्रिंश देवलोक से आये हैं।”

“किस कार्य से आये हैं ?”

“उत्सव देखने के लिये।”

“इन फूलों का क्या नाम है ?”

“यह दिव्य-कक्कार पुष्प हैं।”

“स्वामी ! आप दिव्यलोक में दूसरे पहन ले। यह हमें दे दें।”

“यह दिव्य-पुष्प बड़े प्रताप वाले हैं। देवताओं के ही योग्य हैं। मनुष्य-लोक में रहने वाले खराब, मूर्ख, तुच्छ-विचार वाले, दुश्चरित्र लोगों के योग्य नहीं। लेकिन जिन लोगों में यह यह गुण हों उनके योग्य हैं।”

इतना कह, उनमें जो ज्येष्ठ देवपुत्र था, उसने यह पहली गाथा कही:—

कायेन यो नावहरे वाचाय न मुसाभणे,

यसो खद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति ॥

[जो काय से किसी की कोई चीज हरण न करे, वाणी से झूठ न बोले तथा ऐश्वर्य मिलने पर प्रमादी न हो, वही कक्कार के योग्य है।]

इसलिये जो इन गुणों से युक्त हो, मांगे, दे देंगे।

यह सुन पुरोहित ने सोचा, यद्यपि मुझमें इन गुणों में से एक भी गुण नहीं है, तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले पहनूँ । इससे जनता मुझे इन गुणों से युक्त समझेगी । 'मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह उसने वे पुष्प मँगवा कर पहने । तब उसने दूसरे देवपुत्र से याचना की—

धम्मेन वित्तमेसेय्य न निकत्था धनं हरे,

भोगे लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति ॥

[जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और भोग्य-वस्तुओं के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पाने के योग्य है ।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह मँगवा, पहन कर, तीसरे देव-पुत्र से याचना की । वह तीसरी गाथा बोला—

यस्स चित्तं अहाळिहं सद्धा च अविरागिनी,

एको सादुं न भुञ्जेय्य सवे कक्कारुमरहति ॥

[जिस का चित्त हल्दी की तरह नहीं अर्थात् स्थिर प्रेम वाला है और जिसकी श्रद्धा दृढ़ है और जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेला नहीं खाता वही कक्कारु के योग्य है ।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह उन फूलों को मँगवा, पहन कर, चौथे देव-पुत्र से याचना की । उसने चौथी गाथा कही—

सम्मुखा वा तिरोक्खा वा यो सन्ते न परिभासति,

यथावादी तथाकारी सवे कक्कारुमरहति ॥

[जो न सामने और न अनुपस्थिति में ही सन्त-जनों की हंसी उड़ाता है, जो जैसा कहता है वैसा ही करता है वह कक्कारु के योग्य है ।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह उन्हें भी मँगवा कर पहना ।

चारों देव-पुत्र चारों गजरे पुरोहित को ही देकर देव-लोक गये । उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर में बड़ा दर्द हुआ । ऐसा लगता था जैसे तेज धार से काटा जाता हो वा लोहे के पट्टे से रगड़ा जाता हो । वह दुःख से पीड़ित हो इधर-उधर लोटता हुआ जोर से चिल्लाया । क्या बात है ? पूछने पर बोला :—

'मैंने अपने में जो गुण नहीं है उनके बारे में झूठ ही है कह कर उन देव-पुत्रों से ये पुष्प मांगे । इन्हें मेरे सिर पर से ले जाओ ।'

उन्हें निकालने का प्रयत्न करने पर न निकाल सके । लोहे के पट्टे से जकड़े जैसे हो गये ।

उसे उठाकर घर ले गये । उसके वहाँ चिल्लाते हुये सात दिन बीत गये । राजा ने अमात्यों को बुलाकर पूछा—दुश्चरित्र ब्राह्मण मर जायगा, क्या करें ?

“देव ! फिर उत्सव करायें । देव-पुत्र फिर आयेंगे ।”

राजा ने फिर उत्सव कराया । देव-पुत्र फिर आये और सारे नगर को फूलों की सुगन्ध से महकाकर उसी तरह राजाङ्गण में स्थित हुए ।

जनता ने इकट्ठे हो उस दुष्ट ब्राह्मण को ला देवताओं के सामने सीधा पीठ के बल लिटा दिया । उसने देव-पुत्रों से याचना की—स्वामी मुझे जीवन दान दे ।

वे देव-पुत्र बोले—ये फूल तुम्हें दुष्ट, दुश्शील पाजी के योग्य नहीं हैं । तू ने सोचा इन्हें ठगूँगा । तुम्हें अपने झूठ बोलने का फल मिला । इस प्रकार देव-पुत्र जनता के बीच में उसकी निन्दाकर; सिर से फूलों का गजरा उतार, जनता को उपदेश दे, अपने स्थान पर चले गये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल धैठाया, उस समय ब्राह्मण देव-दत्त था । उन देव-पुत्रों में एक काश्यप, एक महामौद्गल्यायन, एक सारिपुत्र । ज्येष्ठ देव-पुत्र तो मैं ही था ।

३२७. काकाती जातक

“वाति चायं ततो गन्धो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्दिग्ग-चित्त भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—भिक्षु क्या तू सचमुच उद्दिग्ग-चित्त है ?

“भन्ते ! सचमुच ।”

“किस लिये उद्विग्न-चित्त है ?”

“भन्ते ! राग के कारण ?”

“भिच्छु ! छियों की रक्षा नहीं की जा सकती । वे अरक्षणीय होती हैं । पुराने-पण्डितों ने छियों को समुद्र के बीच में, सेमर वृक्ष पर बसाकर उनको सुरक्षित रखना चाहा । वे नहीं रख सके ।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुये । बड़े होने पर पिता की मृत्यु के अनन्तर राज्य करने लगे । काकाती नामक उसकी पटरानी थी, सुन्दर देवा-प्सरा सदृश । यह यहाँ संक्षिप्त कथा है । विस्तृत अतीत-कथा कुणाल जातक^१ में आयागी ।

उस समय एक गरुड़-राज मनुष्य-भेस में आया । वह राजा के साथ जुआ खेलता हुआ पटरानी पर अनुरक्त हो उसे गरुड़-भवन ले गया । वहाँ उसने उसके साथ रमण किया । राजा को जब देवी नहीं दिखाई दी तो उसने नटकुबेर नामक गंधर्व को उसे खोजने के लिये कहा । उसने पता लगाया कि वह गरुड़-राज के पास है और वह एक सरोवर में एरक-वन में लेटा है । जिस समय गरुड़-राज वहाँ से जाने लगता वह उसके पंखों में से एक में छिप रहता । इस प्रकार गरुड़-भवन पहुँच, वहाँ पंख में से निकल उसके साथ रमण करता । फिर उसके पंख में ही छिप, आकर, जिस समय गरुड़-राज राजा के साथ जुआ खेलता तो वह अपनी वीणा ले, जुआ खेलने के स्थान पर राजा के पास खड़ा हो पहली गाथा गाता :—

वाति चावं ततो गन्धो यत्थ मे वसति पिया,

दूरे इतो हि काकाती यत्थ मे निरतो मनो ॥

^१कुणाल जातक (५३६)

[यह सुगन्धि जहाँ मेरी प्रिया रहती है वहीं से आती है। इस स्थान से दूर जहाँ मेरा मन रत है, वहीं काकाती रहती है।]

इसे सुन गरुड़-राज ने दूसरी गाथा कही—

कथं समुद्रमतरि कथं अतरि केबुकं,

कथं सत्त समुद्धानि कथं सिम्बलिमारुहि ॥

[कैसे तो समुद्र पार किया और कैसे केबुक नदी, कैसे सात समुद्र लांघे और कैसे सेमर वृक्ष पर चढ़ा ?]

इसे सुन नट कुबेर ने तीसरी गाथा कही—

तथा समुद्रमतरि तथा अतरि केबुकं,

तथा सत्तसमुद्धानि तथा सिम्बलिमारुहि ॥

[तेरे (साहाय्य) से ही समुद्र लांघा, तेरे (साहाय्य) से ही केबुक नदी पार की और तेरे से ही सात समुद्र लांघे। तेरे (साहाय्य) से ही सेमर वृक्ष पर चढ़ा।]

तब गरुड़-राज ने चौथी गाथा कही—

धिराथु मं महाकायं धिराथु मं अचेतनं,

यथ जायायहं जारं आवहामि वहामि च ॥

[मेरे महान् शरीर को धिक्कार है, मेरी जड़ता को धिक्कार है जो मैं अपनी पत्नी के जार को उठाकर लाता हूँ और ले जाता हूँ।]

उसने उसे लाकर राजा को दे दिया और फिर नगर में नहीं गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बिठाया। सत्त्यों की समाप्ति पर उद्विग्न-चित्त भिन्नु सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय नट-कुबेर उद्विग्न-चित्त भिन्नु था। राजा तो मैं ही था।

३२८. अननुसोचिय जातक

“बहून् विज्जति भोति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में, जिसकी भार्या मर गई थी, कही ।

क. वर्तमान कथा

वह भार्या के मरने से न नहाता था, न खाता था, न कुछ काम करता था, केवल श्मशान भूमि में आकर रोता पीटता घूमता था । लेकिन घड़े में प्रदीप की तरह इसके भीतर स्रोतापत्ति-मार्ग का आधार प्रज्वलित था ।

शास्ता ने प्रातःकाल लोक पर दृष्टि डाली तो उसे देख सोचा— मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है जो इसका शोक दूर कर उसे स्रोतापत्ति मार्ग दे सके । मैं इसका आधार होऊँगा । वह भिक्षाटन से लौट, भोजना-नन्तर सेवक-श्रमण को साथ ले उसके घर गये । गृहस्थ ने जब आना सुना तो उसने स्वागत-सत्कार करके बिठाया और स्वयं आकर एक ओर बैठा । शास्ता ने पूछा:—

“उपासक ! क्या चिन्तित है ?”

“भन्ते ! हाँ मेरी भार्या मर गई है । उसकी सोच करता हुआ चिन्तित हूँ ।”

“उपासक ! जिसका धर्म टूटना है वह टूटता ही है । उसके टूटने पर चिन्तित होना अनुचित है । पूर्व काल में पण्डित लोगों ने भार्या के मरने पर ‘जिसका धर्म टूटना है वह टूट गया’ सोच चिन्ता नहीं की ।”

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर अतीत-कथा कही । अतीत-कथा दसवें परिच्छेद में चुल्लबोधि जातक^१ में आयगी । यह तो यहाँ संक्षेप है:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर तक्षिला में सब शिल्प सीख

^१ चुल्लबोधि जातक (२५३)

माता पिता के पास लौटे। इस जातक में बोधिसत्व कुमार-ब्रह्मचारी थे। माता पिता ने उसे सूचना दी कि हम तेरे लिये भार्या खोजते हैं। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—मुझे गृहस्थी से काम नहीं। तुम्हारे बाद प्रव्रजित होऊँगा। उनके बार बार आग्रह करने पर एक स्वर्ण कुमारी बनवाकर कहा—ऐसी मिलेगी तो ग्रहण करूँगा।

उसके माता पिता ने उस स्वर्ण-प्रतिमा को ढकी गाड़ी में रखा और अनेक अनुयाइयों के साथ आदिमियों को भेजा कि जाओ और जम्बुद्वीप भर में घूमते हुये जहाँ इस तरह की ब्राह्मण-कुमारी दिखाई दे वहाँ यह प्रतिमा देकर उसे ले आओ। उस समय एक पुण्यवान् प्राणी ब्रह्म लोक से च्युत होकर काशी राष्ट्र में ही एक निगम-ग्राम में अस्सी करोड़ धन वाले ब्राह्मण के घर में लड़की होकर पैदा हुआ। उसका नाम रक्खा गया सम्मिल हासिनी।

वह सोलह वर्ष की होने पर सुन्दरी थी, मनोरम, देवाप्सरा सदृश और सभी अङ्गों से सम्पूर्ण। उसके मन में भी कभी राग उत्पन्न नहीं हुआ था, अत्यन्त ब्रह्मचारिणी थी। स्वर्ण-मूर्ति लिए घूमने वाले उस गाँव पहुँचे। मनुष्यों ने उस मूर्ति को देखा तो बोल उठे—अमुक ब्राह्मण की लड़की सम्मिल-हासिनी यहाँ किस लिये खड़ी है ?

उन मनुष्यों ने यह बात सुनी तो ब्राह्मण के घर जा सम्मिल-हासिनी को बरा। उसने माता पिता के पास सन्देश भेजा—मुझे गृहस्थी से काम नहीं। मैं तुम्हारे मरने पर प्रव्रजित होऊँगी। “लड़की ! क्या कहती है ?” कह उन्होंने वह स्वर्ण-प्रतिमा ले उसे बड़ी शान-वान के साथ विदा किया। बोधिसत्व और सम्मिल-हासिनी दोनों की इच्छा न रहते भी विवाह कर दिया गया। उन्होंने एक घर में रहते हुए एक शैल्या पर सोते हुए भी एक दूसरे को रागद्वेष से नहीं देखा। वे दो भिक्षुओं, दो ब्राह्मणों की तरह एक जगह रहे।

आगे चलकर बोधिसत्व के माता-पिता काल कर गये। उसने उनका शरीर-कृत्य समाप्त कर सम्मिल-हासिनी को बुलाकर कहा—भद्रे ! मेरे कुल का अस्सी करोड़ और अपने कुल का अस्सी करोड़ लेकर इस परिवार को पाल। मैं प्रव्रजित ही होऊँगा।”

“आर्य पुत्र ! तुम्हारे प्रव्रजित होने पर मैं भी प्रव्रजित होऊँगी। मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।”

ये दोनों सारा धन दान कर, सम्पत्ति को धूक की तरह छोड़ हिमालय चले गये। वहाँ दोनों ने तपस्वी-प्रब्रज्या ली। चिरकाल तक जंगल के फलमूल खाते रहकर वे निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से उतर क्रमशः वाराणसी पहुँच राजोद्यान में रहने लगे।

उनके वहाँ रहते समय सुकुमारी परिव्राजिका को रुखा-खूखा, मिला-जुला भोजन खाने से रक्त-विकार रोग हो गया। उचित औषधि न मिलने से दुर्बल हो गई। बोधिसत्व भिक्षाटन के समय उसे नगर-द्वार तक ले जाते और वहाँ एक शाला में पड़े पर लिटा स्वयं भिक्षा के लिए (नगर में) प्रवेश करते। वह उसकी अनुपस्थिति में ही मर गई। जनता परिव्राजिका का सौन्दर्य देख उसे घेर रोने-पीटने लगी। बोधिसत्व भिक्षा से लौटे तो उसे मरा देखा। उन्होंने यह सोच कि जिसका स्वभाव टूटना है वह टूटता है, सभी संस्कार अनित्य हैं और यही इनकी गति है, जिस पट्टे पर वह पड़ी थी उसी पर बैठ मिला-जुला भोजन खा मुँह धोया। घेर कर खड़े लोगों ने पूछा—

“भन्ते ! यह परिव्राजिका तुम्हारी कौन होती थी ?”

“गृहस्थ रहते यह मेरी चरण-सेविका थी।”

“भन्ते ! हम सहन नहीं कर सकते, रोते हैं, पीटते हैं—तुम क्यों नहीं रोते ?”

“जीनी थी तो यह मेरी कुछ लगती थी, अब परलोक-वासिनी होने से मेरी कुछ नहीं लगती। जो दूसरों के वश में चली गई है, उसके लिए मैं क्यों रोऊँ ?”

बोधिसत्व ने जनता को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथाएँ कहीं :—

बहून् विज्जति भोती वेहि मे किं भविस्सति,
तस्मा एतं न सोचाति पियं सम्मिह्हासिनि ॥१॥

तं तन्वे अनुसोचेय्यं यं तस्स न विज्जति,
अत्तानमनुसोचेय्य सदा मच्चुवसं पत्तं ॥२॥

नहेव ठितं नासीनं न सयानं न पद्धगुं,
याव पाति निमिस्सति तत्रापि सरती वयो ॥३॥

तत्थत्तनि वतप्पद्धे विनाभावे असंसये,
भूतं सेसं दयितव्वं वीतं अननुसोचियं ॥४॥

[वे आप बहुतों के बीच में हैं, उनके बीच में रहती हुई अब मेरी क्या लगती है ? इसी लिये मैं इस प्रिय सम्मिल्ल-हासिनि के बारे में शोक नहीं करता हूँ ॥१॥ उसी की सोच करे जो मनुष्य के अपने पास न हो । (यदि मृत्यु के लिये शोक करे) तो सदैव मृत्यु के वश में अपने आप के ही बारे में शोक करे ॥२॥ खड़े रहने, बैठने, लेटने तथा चलने के समय की तो बात ही क्या आँख खोलने और बन्द करने के समय भी आयु का क्षय होता ही रहता है ॥३॥ जब अपनी आधी आयु पूर्ण होने पर अपना मरण भी संशय-रहित है, तो सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिये और जो बीत जाये उनके बारे में शोक नहीं करना चाहिये ॥४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चार गाथाओं द्वारा अनित्यता को प्रकाशित करते हुये धर्मोपदेश दिया । जनता ने परिब्राजिका का शरीर-कृत्य किया । बोधिसत्व हिमालय में प्रवेश कर, ध्यान तथा अभिज्ञा प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में गृहस्थ स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय सम्मिल्ल-हासिनि राहूल-माता थी । तपस्वी तो मैं ही था ।

३२६. कालबाहु जातक

“यं अन्नपाणस्त...” यह शास्ता ने वेळू वन में विहरते समय देवदत्त के बारे में, जिसका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया था कही ।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त ने तथागत के प्रति अकारण ही मन में वैर-भाव रख उन्हें मारने के लिये धनुषधारियों को नियुक्त किया और नालागिरि हाथी मेजा तो उसका द्वेष प्रकट हो गया । जो उसे नियमित बँधा भोजन पहुँचाते थे, वह

उन मनुष्यों ने बंद कर दिया। राजा ने भी उसके पास आना बन्द कर दिया। जब उसका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया तो वह गृहस्थों से माँग-माँग कर खाता हुआ घूमने लगा। भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त ने लाभ-सत्कार पैदा करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह जो प्राप्त था उसे भी स्थिर न रख सका।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? “अमुक बात चीत।” “न केवल अभी, भिक्षुओं, यह पहले भी नष्ट-लाभ-सत्कार ही रहा है,” कह शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में धनञ्जय के राज्य करने के समय बोधिसत्व राघ नामक तोता हुए। बड़ा परिवार, पूर्ण शरीर। छोटे भाई का नाम था पोटुपाद।

एक शिकारी ने उन दोनों जनों को बाँध ले जाकर वाराणसी-राजा को दिया। राजा उन्हें सोने के पिंजरे में बन्द रख, सोने की थाली में मीठे खील और शरवत पिला कर पालता था। बड़ा सत्कार होता था। लाभ और यश दोनों सबसे अधिक थे।

एक वनचर ने काळवाहु नाम का एक बड़ा काला बन्दर लाकर राजा को दिया। वह पीछे आया होने से उसका अधिक लाभ-सत्कार होने लगा। तोतों का लाभ-सत्कार कम हुआ। बोधिसत्व में चित्त की स्थिरता थी, वह कुछ नहीं बोला। छोटे में चित्त की स्थिरता नहीं थी। वह बोला—भाई ! इस राजकुल में हमें ही स्वादिष्ट सरस भोजन मिलते थे। अब हमें नहीं मिलते, काळवाहु बन्दर को ही मिलते हैं। जब हमें यहाँ धनञ्जय राजा के पास लाभ-सत्कार नहीं मिलता तो यहाँ क्या करेंगे ? आ, जङ्गल में ही चलकर रहें। उसने भाई के साथ बातचीत करते हुए पहली गाथा कही—

यं अन्नपाण्यस्य पुरे लभाम
तन्वानि सास्त्रामिगमेव गच्छति,
गच्छामदानि वनमेव राध
असक्तताचरम धनञ्जयाय ॥

[इस राजा से हमें जो अन्न-पान मिलता था वह अब बन्दर को ही प्राप्त होता है । हे राध ! हम वन को जायें । हम धनञ्जय के द्वारा असत्कृत हैं ।]

इसे सुन राध ने दूसरी गाथा कही—

लामो अलामो अयसो यसोच
निन्दा पसंसा च सुखञ्च दुःखं,
एते अनिच्चा मनुजेषु धम्मा
मा सोची किं सोचसि पोट्टपाद ॥

[हे पोट्टपाद ! लाभ, हानि, यश, अपयश, निंदा, प्रशंसा, सुख तथा दुःख यह मनुष्यलोक के अनित्य-धर्म हैं । क्या चिन्ता करता है ? चिन्ता मत कर ।]

इसे सुन बन्दर के प्रति ईर्ष्या दूर करने में असमर्थ पाट्टपाद ने तीसरी गाथा कही—

अद्धा तुवं पण्डितकोसि राध
जानासि अस्थानि अनागतानि,
कथं नु साखामिगं दक्खिसाम
निघापितं राजकुलतोव जग्गं ॥

[माना । तू हे राध ! निश्चय से पण्डित है । भावी बातों को जानता है । यह बता कि इस नीच बन्दर को राज-कुल से निकाला जाता कैसे देखेंगे ?]

यह सुन राध ने चौथी गाथा कही—

चालेति कण्ठं भकुटिं करोति
मुहुं मुहुं भाययते कुमारे,
सयमेव तं काहति काळबाहु
येनारका ठस्सति अन्नपाया ॥

[कानों को हिलाता है और मुँह चिढ़ाता है, इस प्रकार बार बार (राज-) कुमारों को डराता है । यह काळबाहु स्वयं ही ऐसा करेगा जिससे अन्न-पान से दूर हो जाये ।]

काळवाहु ने भी कुछ ही दिन में राजकुमारों के सामने कान हिलाना आदि करके उन्हें डरा दिया । वे डरकर चिल्लाये । राजा ने पूछा—क्या बात है ? कारण मालूम होने पर 'इसे निकालो' कह उसे निकलवा दिया । तांतों का लाभ सत्कार फिर पूर्ववत् हो गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय काळवाहु देवदत्त था । पोटुपाद आनन्द था । राध तो मैं ही था ।

३३०. सीलवीमंस जातक

“सीलं किरिव कल्याणं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सदाचार की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे में कही ।

ख. अतीत कथा

दो कथाएँ पहले कही जा चुकी हैं ।^१ इस (अतीत) कथा में बोधिसत्व वाराणसी राजा के पुरोहित हुए । उसने अपने सदाचार की परीक्षा लेने के लिये तीन दिन सोने के तख्ते पर २५ कार्पाण उठाये । उसे 'चोर' मान कर राजा के सामने पेश किया । वह राजा के पास खड़े हो, इस पहली गाथा से शील की महिमा का वर्णन कर, राजा से प्रब्रजित होने की आज्ञा माँग प्रब्रज्या लेने गया :—

सीलं किरिव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,

पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हब्भति ॥

[संसार में सदाचार ही कल्याणकारी है, सदाचार ही श्रेष्ठ है । देखो, घोर विषैला सर्प भी 'सदाचारी' समझे जाने के कारण मारा नहीं जाता ।]

^१ सीलवीमंस जातक (८६)

इस प्रथम गाथा से शील की प्रशंसा कर, राजा से प्रब्रज्या की आशा ले, प्रब्रजित होने के लिये गया। एक कसाई की दुकान से एक बाज ने मांस का टुकड़ा लिया और आकाश में उड़ गया। दूसरे पक्षियों ने उसे घेर पैर, नाखून तथा चोंच से मारना शुरू किया। उसने वह दुःख न सह सकने के कारण मांस का टुकड़ा छोड़ दिया। तब दूसरे ने ले लिया। जो कोई उसे लेता पक्षी उसी का पीछा करते। जो जो छोड़ देता वह सुखी हो जाता। बोधिसत्व ने यह देख सोचा कि यह काम-भोग इस मांस के टुकड़े ही की तरह है, जो ग्रहण करता है वही दुखी होता है, जो छोड़ता है वह सुखी होता है। उसने दूसरी गाथा कही :—

यावदेवस्सहू किञ्चि तावदेव अखादिसुं,
सङ्गमम कुळला लोके न हिंसन्ति अकिञ्चनं ॥

[जब तक इस चील के पास कुछ था, तभी तक पक्षी इकट्ठे होकर इसे खाते रहे। लोक में जिसके पास कुछ नहीं, उसकी हिंसा नहीं करते।]

वह नगर से निकल रास्ते में एक गाँव में शाम के समय किसी के घर सोया। वहाँ पिङ्गला नाम की दासी ने किसी पुरुष के साथ इशारा किया कि इस समय आना। उसने मालिकों के पाँव धो, उनके सो जाने पर दालान में बैठ 'अब आता होगा, अब आता होगा' प्रतीक्षा करते हुए प्रथम-याम और फिर मध्यम-याम रात्रि भी बिता दी। प्रत्यूप समय में 'अब नहीं आएगा' निराश हो लेट कर सो गई। बोधिसत्व ने देखा कि यह दासी उस पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा में इतनी देर आशा लगाये बैठी रही, अब आने की संभावना न रहने पर निराश हो सुख से सांती है। उसने सोचा—काम-भोगों के प्रति आशा रखना ही दुःख है। निराश रहना ही सुख है। यह तीसरी गाथा कही—

सुखं निरासा सुपति आसा फलवती सुखा,
आसं निरासं कत्वान सुखं सुपति पिङ्गला ॥

[आशा रहित सुख से सोता है, आशा फलती है तो 'सुख' होता है। आशा से निराश होकर पिङ्गला सुख से सोती है।]

अगले दिन उस गाँव से जंगल में जाते समय जंगल में एक तपस्वी को ध्यानारूढ़ बैठे देख सोचा, इस लोक और परलोक में ध्यान-सुख से बढ़कर सुख नहीं। यह चौथी गाथा कही—

न समाधिपरो अस्थि अस्मिं लोके परहि च,

न परं नापि अत्तानं विहिंसति समाहितो ॥

[इस लोक तथा परलोक में समाधि से बढ़ कर सुख नहीं है। एकाग्र-चित्त न अपने को दुख देता है, न दूसरे को।]

उसने जंगल में प्रविष्ट हो, ऋषि-प्रब्रज्या ले, ध्यान तथा अभिब्जा उत्पन्न की और ब्रह्मलोक-नामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी मैं ही था।



चौथा परिच्छेद

४. कोकिल वर्ग

३३१. कोकालिक जातक

“यो वे काले असम्पत्ते...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार कैरते समय कोकालिक के बारे में कही। (वर्तमान-) कथा तत्कारिय जातक^१ में विस्तार से आई है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके मन्त्री-रत्न हुए। राजा बड़ा वाचाल था। बोधिसत्व उसकी वाचालता रोकने के लिये एक उपमा खोजते घूमते थे।

एक दिन राजा उद्यान में पहुँच मङ्गल-शिला पर बैठा। उसके ऊपर आम का वृक्ष था। उस पर एक कौवे के घोंसले में काली कोयल अपना अण्डा रख गई। कौवी उस कोयल के अण्डे को पोसती रही। आगे चलकर उसमें से कोयल का बच्चा निकला। कौवी उसे अपना पुत्र समझ चोंच से चोगा ला उसे पालती थी। उसने असमय ही, जब उसके पर भी नहीं निकले थे कोयल की आवाज की। कौवी ने सोचा, यह अभी और तरह की आवाज करता है, बड़ा होने पर क्या करेगा ? उसने चोंच से ठोंगे मार मार कर उसकी हत्या कर दी और घोंसले से नीचे गिरा दिया। वह राजा के पैरों में गिरा। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—मित्र ! यह क्या है ? बोधिसत्व ने सोचा, मैं राजा को (अधिक बोलने से) रोकने के लिये एक उपमा खोजता रहा, अब मुझे वह मिल गई। उसने कहा—महाराज ! अति वाचाल, बहुत बोलने वालों की यह गति होती है। महाराज ! यह कोयल का बच्चा कौवी द्वारा पोसा

गया । इसने असमय ही, जब इसके पर नहीं उगे थे, कोयल की आवाज लगाई । उस कौवी को जब यह मालूम हुआ कि यह मेरा पुत्र नहीं है तो उसने चोंच से टोंगे मार-मार कर इसकी हत्या कर दी और घोंसले से गिरा दिया । 'चाहे मनुष्य हों चाहे पशु-पक्षी असमय अधिक बंलने से इस तरह का दुःख भोगते हैं' कह ये गाथायें कहीं—

यो वे काले असम्पत्ते अतिवेलं पभासति,
एवं सो निहतो सेति कोकिलायिव अग्रजो ॥१॥
न हि सत्थं सुनिसितं विसं हलाहलम्मिव,
एवं निकट्ठे पातेति वाचा दुब्भासिता यथा ॥२॥
तस्मा काले अकाले च वाचं रक्खेय्य पण्डितो,
नातिवेलं पभासेय्य अपि अत्तसम्महि वा ॥३॥
यो च कालेमितं भासे मतिपुब्बो विचक्खणो,
सब्बे अमिच्चे आदेति सुपण्णो उरगम्मिव ॥४॥

[जो समय से पूर्व दीर्घकाल तक बोलता है, वह इसी प्रकार मरकर पड़ा रहता है जैसे यह कोयल का बच्चा ॥१॥ जिस प्रकार हलाहल विष के समान दुर्भाषित वाणी उसी क्षण गिरा देती है, उस प्रकार अच्छी तरह से तेज किया हुआ शस्त्र भी नहीं ॥२॥ इसलिये पण्डित आदमी को चाहिये कि वह समय असमय वाणी की रक्षा करे, अपने ही समान हो तो भी किसी के साथ बहुत अधिक बातचीत न करे ॥३॥ जो बुद्धिमान् समय पर विचार-पूर्वक थोड़ा बोलता है वह सब शत्रुओं को उसी प्रकार अपने अधिकार में ले लेता है जैसे गरुड़ सर्प को ॥४॥]

राजा बोधिसत्व का धर्मोपदेश सुनने के बाद से मितभाषी हो गया । उसने बोधिसत्व को बहुत सम्पत्ति दी ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय कोयल-बच्चा कोकालिक था । पण्डित-अमात्य तो मैं ही था ।

३३२. रथलट्टि जातक

“अपि हन्त्वा हतो ब्रूति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल-राज के पुरोहित के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह रथ से अपनी जमींदारी के गांव की ओर जा रहा था । अड़चन की जगह पर रथ हांकते हुए उसने गाड़ियों के क्राफले को आते देख कहा— अपनी गाड़ियों को हटाओ, हटाओ । गाड़ियों के न हटाये जाने पर क्रोधित हो, उसने चाबुक की लकड़ी से पहली गाड़ी के गाड़ीवान की गाड़ी के रथ की धुरि पर प्रहार किया । वह लकड़ी रथ की धुरी से उच्छट कर उसी के माथे में लगी । उसी समय माथे पर गोला पड़ गया । उसने रुककर राजा से कहा— मुझे गाड़ीवानों ने मारा । गाड़ीवानों को बुलाकर फैसला करने वालों को उसी का दोष दिखाई दिया ।

एक दिन (भिन्नुओं ने) धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! राजा के पुरोहित ने मुकद्दमा किया कि गाड़ीवानों ने उसे मारा, किन्तु स्वयं पराजित हुआ । शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? “अमुक बातचीत ।” “न केवल अभी, भिन्नुओ, पहले भी इसने ऐसा ही किया है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसी के न्याय-मन्त्री थे । राजा का पुरोहित अपनी जमींदारी के गांव में जाता हुआ.....(सब ऊपरोक्त की तरह ही) । लेकिन इस कथा में राजा के कहने पर, उसने स्वयं न्याय करना आरम्भ कर, बिना मुकद्दमा किये ही गाड़ीवानों को बुलाकर कहा कि तुमने मेरे पुरोहित को पीटकर उसके सिर में गोला उठा दिया; और उनके सर्वस्व हरण की आज्ञा दी । बोधिसत्व ने निवेदन किया— महाराज ! तुमने बिना मुकद्दमा किये ही इनका सर्वस्व हरण कराया । कोई

कोई स्वयं अपने को चोट लगाकर भी 'दूसरे ने मारा' कहते हैं। इसलिये बिना न्याय किये कुछ करना उचित नहीं। राज्य करने वाले को सुनकर ही फैसला करना चाहिये।

इतना कह ये गाथायें कहीः—

अपि हन्त्वा हतो ब्रूति जेत्वा जितोति भासति,

पुब्वमस्त्रायिनो राज एकदर्थुं न सद्दे ॥१॥

तस्मा पण्डितजातियो सुणेय्य इतरस्सपि,

उभिन्नं वचनं सुत्वा यथाधम्मो तथा करे ॥२॥

अलसो गिही कामभोगी न साधु

असम्मतो पव्वजितो न साधु,

राजा न साधु अनिसम्मकारी

यो पण्डितो कोधनो तं न साधु ॥३॥

निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म विसम्पति,

निसम्मकारिनो रज्जो यसो किञ्चि च वड्ढति ॥४॥

[कोई कोई स्वयं पीटकर 'पीटा गया' तथा स्वयं जीतकर 'जीता गया' भी कहते हैं। इसलिये राजन् ! जो पहले आकर कहे उसी की बात एकदम नहीं मान लेनी चाहिये। पण्डित को चाहिये कि दूसरे की बात भी सुने और दोनों का कथन सुनकर जो न्याय हो सो करे ॥१-२॥ आलसी गृहस्थ काम-भोगी अच्छा नहीं। असंयमी साधु अच्छा नहीं। बिना विचारे करने वाला राजा अच्छा नहीं। जो पण्डित होकर क्रोध करे वह भी अच्छा नहीं ॥३॥ क्षत्रिय को विचार कर करना चाहिये, राजा को बिना विचारे नहीं करना चाहिये। विचार-पूर्वक (काम) करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढ़ती है ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व की बात सुन धर्मानुसार न्याय किया। धर्म से फैसला करने पर ब्राह्मण का ही दोष निकला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का ब्राह्मण अब का ब्राह्मण ही था। पण्डित-श्रमात्य तो मैं ही था।

३३३. पक्कगोध जातक

“तदेव मे त्वं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान) कथा पहले विस्तार से आ ही गई है^१। इस उनके उधार बसूली करके आते समय रस्ते में उन्हें एक शिकारी ने पकी गोह दी कि दोनों जने खायें। उस आदमी ने भार्या को पानी के लिये भेजा और स्वयं सब गोह खा गया। जब वह लौटकर आई तो बोला भद्रे ! गोह भाग गई। वह बोली—अच्छा स्वामी ! जब पकी गोह भाग जाती है तब क्या किया जा सकता है ?

जेतवन में पानी पीकर जब वह शास्ता के पास बैठी थी, तो शास्ता ने पूछा—उपासिका ! क्या यह (पनि) तेरा हित-चित्तक हूँ, स्नेही है, उपकारी है ?

“भन्ते । मैं तो इसकी हित-चिन्तक हूँ, स्नेही हूँ, उपकारिणी हूँ, लेकिन यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है।”

“रहने दे, अभी यह ऐसा करता है, लेकिन जब तेरे गुणों का स्मरण करता है तो तुझे सब ऐश्वर्य दे देता है।”

उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही

ख. अतीत कथा

अतीत-कथा भी पूर्वोक्त सदृश ही है। इस कथा में उनके लौटते समय रास्ते में शिकारी ने उन्हें थका देख एक पकी गोह दी कि दोनों जने

खायें । राज-कन्या उसे लता में बांध लेकर चली । वे एक तालाब देख रस्ते में हट एक पीपल के नीचे बैठे । राज-पुत्र बोला—भद्रे ! जा तालाब से कंवल-पत्र में पानी ले आ, मांस खायें । वह गोह को शाखा पर टांग पानी के लिये गई । दूसरे ने सारी गोह खाली और पूँछ का सिरा हाथ में ले दूसरी ओर मुँह करके बैठ रहा । जब वह पानी लेकर आई तो बोला—भद्रे ! गोह शाखा से उतर बिल में घुस गई । मैं ने दौड़ कर पूँछ के सिरे से पकड़ा । जो हाथ में था उतना हिस्सा हाथ में ही छोड़ तुड़ा कर घुस गई ।

“हो देव ! पकी गोह जब भाग जाय तब क्या करे ? चलें ।”

वे पानी पी वाराणसी पहुँचे । राज-पुत्र ने राज्य प्राप्त होने पर उसे केवल पटरानी बना दिया । सत्कार-सम्मान उसका कुछ नहीं ।

बोधिसत्व ने उसका सत्कार-सम्मान कराने की इच्छा से राजा के पास खड़े हो कहा—आर्ये ! हमें तुम से कुछ नहीं मिलता न ? क्या हमारी ओर नहीं देखती ?

“तात ! मुझे ही राजा से कुछ नहीं मिलता, तुम्हें क्या दूँ ? और राजा भी अब मुझे क्या देगा, जो जंगल से आने के समय पकी गोह को अकेला ही खा गया ।”

“आर्ये ! ऐसा मत कहें । देव ऐसा नहीं करेंगे ।”

“तात ! उसका तुम्हें पता नहीं । राजा को और मुझे ही पता है ।”

यह कह उसने पहली गाथा कही—

तदेव मे त्वं विदितो वनमग्ने रथेसम,

यस्स ते खगाबन्धस्स सन्नद्धस्स तिरीटिनो,

अस्सत्थदुमसाखाय पक्का गोधा पलायथ ॥१॥

[हे राजन ! मैंने तुम्हें उसी समय जान लिया था, जब तुम्हारे वल्कल-धारी, जर्जर-बक्कर पहने और तलवार बांधे हुये रहते पीपल के पेड़ से बंधी गोह भाग गई ।]

इस प्रकार राजा के दोष को लोगों के सामने प्रकट करके कहा ।

यह सुन बोधिसत्व ने ‘आर्ये ! जब से देव तुम्हें प्यार नहीं करता तब से दोनों के लिये कष्टकर होकर यहाँ क्यों रहती हो ?’ कह ये दो गाथायें कहीः—

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं
 किञ्चानुकुम्बस्स करेय्य किञ्चं,
 नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
 असम्भजन्तस्मि न सम्भजेय्य ॥२॥
 चजे चजन्तं वनत्थं न कथिरा
 अपेतचित्ते न न सम्भजेय्य,
 विजो दुमं खीणफलं व जत्वा
 अञ्जं समेक्खेय्य महा हि लोको ॥३॥

[जो अपने प्रति नम्र हों, उसके प्रति नम्र होवे, जो अपने साथ रहना चाहे, उसके साथ रहे; जो अपना काम करे उसका काम करे, जो अपना अनर्थ चाहता हो उसका अर्थ न करे और जो अपने साथ न रहना चाहता हो उसके साथ न रहे ॥२॥ जो अपने को छोड़े उसे छोड़ दे, तृष्णा-स्नेह न करे; विरक्त-मन वांछे की संगति न करे। जिस प्रकार वृक्ष को फलरहित जान यती अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार (अपने लिये) दूसरा स्थान खोजे। संसार बड़ा है ॥३॥]

राजा ने बोधिसत्व के कहते ही कहते उसके गुणों को याद कर कहा—भद्र, इतने समय तक मैंने तेरे गुणों की कदर नहीं की। पण्डित की बात से ही जाने। तुम मेरे अपराधों को सहन करती रही। तुम्हें ही मैं यह सारा राज्य देता हूँ। यह कह चौथी गाथा कही—

सो ते करिस्सामि यथानुभावं
 कतम्भन्तं खसिये पेक्खमानो,
 सम्बन्धं से इस्सरियं द्दामि
 यस्सिच्छसि तस्स तुवं द्दामि ॥

[हे क्षत्रिये ! तेरा कृतज्ञ होने के कारण यथासामर्थ्य तेरे लिये सब करूँगा। तुझे सारा ऐश्वर्य दूँगा। जिसकी तू इच्छा करे, वही तुझे दूँगा ॥४॥]

यह कह राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य दिया। 'इसने मुझे इसका गुण याद कराया' सोच पण्डित को भी बहुत ऐश्वर्य दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पति-पत्नी सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उस समय के पति-पत्नी इस समय के पति पत्नी ही थे। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३३४. राजोवाद जातक

“गवञ्चे तरमानानं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय राजोपदेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान) कथा सकुण जानक^१ में आयेगी। इस कथा में शास्ता ने ‘महाराज ! पुराने राजागण भी पण्डितों की बात सुन धर्मानुसार राज्य कर स्वर्ग पधारे’ कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर सब शिल्प सीखे। फिर ऋषि-प्रब्रज्या ले अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर रमणीय हिमालय प्रदेश में फल-मूल का आहार करते हुए रहने लगे।

उस समय राजा अपने दोष ढूँढ़ने वाला हो, किसी ऐसे आदमी को खोजता था जो उसके दोष कहे। उसने अन्दर के आदमियों, बाहर के आदमियों, नगर के आदमियों तथा नगर के बाहर के आदमियों में से किसी को भी अपने दोष कहने वाला न पाया। उसने सोचा ‘जनपद’ में कहेंगे।

^१ सकुण जातक (?)

इसलिये भेस बदल जनपद में घूमा। जब वहाँ भी कोई दोष कहने वाला न मिला, गुण ही सुनने को मिले तो यह सोच कि हिमालय प्रदेश में कहेंगे, वह जंगल में घूमता-घूमता बोधिसत्व के आश्रम पर पहुँचा और प्रणाम किया। बोधिसत्व ने कुशल ज्ञेय पूछा। वह एक ओर बैठा।

तब बोधिसत्व जंगल से पके गोदे लाकर खाते थे। वे मीठे थे, शक्ति-वर्धक थे और शक्कर समान थे। उसने राजा को भी सम्बोधित कर कहा—
“महापुण्य! यह गोदे खाकर पानी पियो।” राजा ने गोदे खा, पानी पी, बोधिसत्व से पूछा—भन्ते! क्या बात है यह गोदे बहुत ही मीठे हैं?

“महापुण्य! राजा निश्चय से धर्मानुसार न्याय से राज्य करता है। उसी से यह मीठे हैं।”

“भन्ते! राजा के अधार्मिक होने पर अमधुर हो जाता है?”

“हाँ महापुण्य! राजाओं के अधार्मिक होने पर तेल, मधु, शक्कर आदि तथा जंगल के फल-मूल भी अमधुर हो जाते हैं, ओज-रहित हो जाते हैं। केवल ये ही नहीं, सारा राष्ट्र ही ओज-रहित हो जाता है, खराब हो जाता है। उनके धार्मिक होने पर वे मधुर होते हैं, शक्ति-वर्धक होते हैं और सारा राष्ट्र शक्तिशाली होता है।”

राजा ‘भन्ते! ऐसा होगा’ वह और अपना राजा होना बिना प्रकट किये बोधिसत्व को प्रणाम कर वाराणसी चला आया। उसने सोचा तपस्वी के कथन की परीक्षा करना। ‘अधर्म से राज्य कर, अय देखूँगा’ सोच, कुछ समय बिता, वह फिर वहाँ पहुँचा। प्रणाम करके एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने भी उसे दैटो ही कह पके गोदे दिये। वह उसे कट्टुए लगे। राजा ने अस्वादिष्ट जान थूक सहित फेंक कहा—भन्ते! कट्टुआ है।

“महापुण्य! राजा निश्चय से अधार्मिक होगा। राजाओं के अधार्मिक होने पर जंगल के फल-मूल से लेकर सभी नीरस हो जाता है, ओज-रहित हो जाता है।”

यह कह ये गाथायें कही—

गवं चे तरमानानं जिह्वं गच्छति पुद्गलो,

सब्बा गावी जिह्वं यन्ति नेते जिह्वं गते सति ॥१॥

एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो,
 सो चे अधम्मं चरति पगेव इतरा पजा,
 सब्बं रट्ठं दुक्खं सेति राजा चे होति अधम्मिको ॥२॥
 गधं चे तरमानानं उज्जं गच्छति पुद्गवो,
 सब्बा गावां उज्जं यन्ति नेत्ते उज्जाते सति ॥३॥
 एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो,
 सो चेपि धम्मं चरति पगेव इतरा पजा,
 सब्बं रट्ठं सुखं सेति राजा चे होति धम्मिको ॥४॥

[गौवां के (नदी) तैरने के समय यदि पैल टेढ़ा जाता है तो नेता के टेढ़े जाने के कारण सभी गौवं टेढ़ी जाती हैं ॥१॥ इस प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ माना जाता है यदि वह अधर्म करता है तो शेष प्रजा पहले ही अधर्म करती है। राजा के अधार्मिक होने पर सारा राज्य दुःख को प्राप्त होता है ॥२॥ गौओं के (नदी) तरने के समय यदि पैल सीधा जाता है तो नेता के सीधा जाने के कारण सभी गौवं सीधी जाती हैं ॥३॥ इसी प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ माना जाता है यदि वह धर्म करता है तो शेष प्रजा पहले ही धर्म करती है। राजा के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुख प्राप्त करता है ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व से धर्म सुन, अपना राजा होना प्रकट किया—
 भन्ते ! मैंने ही पहले गांधों को मीठा कर फिर कटायी किया। अब फिर मीठा कलंगा उसने बोधिसत्व को प्रणाम कर नगर में जा धर्मानुसार राज्य कर सब कुल प्राकृतिक अवस्था में कर दिया

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का नेता बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३३५. जम्बुक जातक

“ब्रह्मा पवट्टकायो सो...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के तथागत की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पहले आ ही चुकी है।^१ यहाँ पर संक्षिप्त है। शास्ता ने पूछा—सारिपुत्र ! देवदत्त ने तुम्हें देखकर क्या किया ? स्थविर बोले—भन्ते ! वह आपकी नकल करता हुआ मेरे हाथ में पंखा लेकर लेट रहा। तब कोकालिक ने उसकी छाती में घुटने की चोट मारी। इस प्रकार आप की नकल करने जाकर उसने दुःख भोगा।

यह सुन शास्ता ने 'सारिपुत्र ! न केवल अभी देवदत्त ने मेरी नकल करने जाकर दुःख भोगा है, पहले भी भोगा ही है' कह स्थविर के प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बांधिसत्व सिंह-योनि में पैदा हुए। वह हिमालय में एक गुफा में रहता था। एक दिन भैंसे को मार, मांस खा, पानी पी गुफा को लौटते समय एक शृगाल ने जब उसे देखा तो भाग न सकने के कारण छाती के बल लेट रहा। सिंह ने पूछा—जम्बुक ! क्या है ? “भद्र ! मैं आपकी सेवा करूँगा।” “तो आ” कह सिंह उसे अपने वास-स्थान पर ले गया और राज रोज मांस लाकर पोसने लगा। सिंह का मारा हुआ शिकार खा खा कर मोटे हुए जम्बुक के दिल में एक दिन अभिमान पैदा हो गया। वह सिंह के पास आकर बोला—“स्वामी ! मेरे कारण आप को नित्य असुविधा होती है। आप नित्य मांस लाकर मुझे पोसते हैं। आज आप यहीं रहें। मैं एक हाथी को मार, मांस खा, आप के लिये भी लाऊँगा।”

“जम्बुक ! अच्छा हो, यदि तू ऐसी इच्छा न करे। तू हाथी मार कर मांस खाने वाली योनि में पैदा नहीं हुआ। मैं तुझे हाथी मार कर दूँगा। हाथी बड़े डील-डौल वाले होते हैं। उलटी बात मत कर। मेरा कहना मान।”

सिंह ने यह कह पहली गाथा कहीः—

^१ लक्ष्मण जातक (११)

महा पवब्दकायो सो दीघदाढो च जम्बुक,

न त्वं तग्धि कुले जातो यत्थ गण्हन्ति कुअरं ॥

[हे जम्बुक । वह मोटा, बड़े शरीर वाला तथा लंबे दान्तों वाला होता है । तू उस कुल में पैदा नहीं हुआ है जिसमें पैदा होकर हाथियों को पकड़ते हैं ।]

शृगाल सिंह के मना करने पर भी गुफा से निकल, तीन बार 'हुक्का हुक्का' गीदड़ की आवाज लगा, पर्वत के शिखर पर चढ़ गया । वहाँ पर्वत के नीचे उसने एक काले हाथी को जाते देखा, तो सोचा उछल कर इसके माथे पर जा बैठूंगा । वह उसके पाँव में आकर गिरा । हाथी भी श्रगला पाँव उठा उसके मस्तक पर रख दिया । सिर फूट कर चूर्ण-विचूर्ण हो गया और वह चिल्लाता हुआ वहाँ ढेर हो गया । हाथी कौंच-नाद करता हुआ चला गया । बोधिसत्व ने जा, पर्वत के शिखर पर खड़े हो, उसे नाश को प्राप्त हुआ देख, 'अपने अभिमान के कारण यह शृगाल विनाश को प्राप्त हुआ' कहा और ये तीन गायार्थें कहीं:—

असीहो सीहमानेन यो अत्तानं विकुब्बति,

कोरथुं व गजमासज्ज सेति भुम्या अनुत्थुनं ॥२॥

यसस्सिनो उत्तमपुगालस्स

सज्जातखण्डस्स महबलस्स,

असमेक्खिय थामबलूपपसिं

ससेति नागेन हतोव जम्बुको ॥

यो चीघ कम्मं कुरुवे पमाय

थामबलं अत्तनि संविदित्वा,

जण्येन मन्तेन सुभासितेन

परिक्खवासो विपुलं जिनाति ॥

[जो सिंह न होकर सिंह का अभिमान करता है, वह हाथी पर आक्रमण करने वाले शृगाल की तरह चिल्लाता हुआ भूमि पर ढेर हो जाता है ॥२॥ यशस्वी, उत्तम व्यक्ति, अच्छे सुदृढ़ शरीर वाले तथा महाबलवान की शक्ति, बल और योनि को न देख कर (जो उसकी बराबरी करता है) वह हाथी द्वारा मारे गये जम्बुक की तरह ढेर हो जाता है ॥३॥ जो अपनी

शक्ति और बल को जान कर शक्ति के भीतर काम करता है, वह विचार पूर्वक काम करने वाला अध्ययन, मन्त्रणा और निर्दोष वाणी से बड़े अर्थ को प्राप्त कर लेता है ॥४॥]

इस प्रकार बांधिसत्व ने इन तीन गाथाओं द्वारा इस लोक में जो कर्तव्य है, सो बताया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी । उस समय शृगाल देवदत्त था । सिंह तो मैं ही था ।

३३६. ब्रह्मदत्त जातक

“तिष्ठं तिष्ठन्ति लपसि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय ढोंगी भिक्षु के थार में कही । वर्तमान कथा आ ही चुकी है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक अमात्य हुये । वाराणसी-नरेश ने बड़ी सेना से कौशल-राज पर चढ़ाई कर, श्रावस्ती जा, युद्ध करके नगर में दाखिल हो राजा को पकड़ लिया । कौशलराज का छत्र नामक पुत्र था । सो भेष बदल कर निकल तक्षशिला गया । वहाँ तीनों वेद और अष्टारह विद्यायें सीख तक्ष-शिला से निकल (रास्ते में) सब तरह के शिल्प सीखता हुआ एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचा । उसके आश्रय से पाँच सौ तपस्वी जंगल में कुटी बना कर रहते थे । कुमार ने उनके पास जा सोचा कि उनसे भी कुछ सीखूँ और प्रब्रजित हो जो वे जानते थे वह सब सीख लिया । वह आगे चलकर गण का शास्ता हो गया ।

एक दिन ऋषि-गण को सम्बोधित कर उसने पूछा —

“मित्रो ! मध्यम-देश क्यों नहीं जाते ?”

“मित्रो । मध्यम-देश के लोग परिडित होते हैं । वह प्रश्न पूछते हैं । (पुण्य-) अनुमोदन कराते हैं । मङ्गल (-सूत्र) का पाठ कराते हैं । असमर्थ होने पर निन्दा करते हैं । हम इसी डर से नहीं जाते हैं ।”

“तुम मत डरो । मैं यह सब करूँगा ।”

“तो चलें ।”

सभी अपनी तरह तरह की चीजें ले क्रमशः वाराणसी पहुँचे । वाराणसी-राजा ने कोशल नरेश को अपने आधीन कर, वहाँ राज्याधिकारी नियुक्त किये और वहाँ जो धन था उसे वाराणसी ले आया । उस धन से उसने लोहे की गागरें भरवा उन्हें उद्यान में गड़वा दिया । स्वयं वह वाराणसी में ही रहने लगा ।

वे ऋषि-गण रात भर राजा के उद्यान में रह, अगले दिन मित्रार्थ नगर में जा राज-द्वार पर पहुँचे । राजा ने उनकी चर्या से प्रसन्न हो उन्हें बुलवाया और महान् तल्ले पर बिठा यवागु और खज्जक खिलाया । फिर भोजन के समय तक अनेक प्रश्न पूछता रहा । लुत्त ने राजा के वित्त को प्रसन्न करते हुये सभी प्रश्नों का उत्तर दे भोजनोपरान्त विचित्र दानानुमोदन किया ।

राजा ने बहुत प्रसन्न हो, वचन ले, उन सभी को उद्यान में टिकाया । लुत्त खजाना निकालने का मन्त्र जानता था । उसने वहाँ रहते हुए मन्त्र-बल से पता लगाया कि इसने मेरे पिता का धन कहाँ छिपा रखा है ? उसे पता लग गया कि राजोद्यान में है । ‘यह धन लेकर मैं अपना राज्य वापिस लूँगा’ सोच उसने तपस्वियों को सम्बोधित कर कहा—मित्रो ! मैं कोशल-राज का पुत्र हूँ । वाराणसी के राजा ने हमारा राज्य छीन लिया है । मेस बदल कर इतने दिन अपने जीवन की रक्षा की । अब अपने कुल का धन मिल गया है । मैं इसे ले जाकर अपना राज्य लूँगा । तुम क्या करोगे ?

“हम तेरे साथ ही चलेंगे ।”

उसने ‘अञ्जु’ कह चमड़े के बड़े-बड़े थैले बनवाये और रात को भूमि खनवा कर धन की गागरें निकलवायीं । (फिर) थैलों में धन को डाल गागरों में तिनके भरवा दिये । पाँच सौ ऋषियों और अन्य मनुष्यों से धन लिवा भाग कर श्रावस्ती पहुँचा । वहाँ राज्याधिकारियों को पकड़वा, (अपना) राज्य वापिस लिया । फिर चार-दीवारी तथा अटारी आदि की मरम्मत करा

उसे ऐसा बनवा दिया कि फिर भी वह राजा उसे न ले सके । स्वयं नगर में रहने लगा ।

वाराणसी-राजा को भी खबर दी गई कि तपस्वी उद्यान से धन लेकर भाग गये । उसने उद्यान जा, गागरों को निकलवाया तो उनमें तृण-मात्र दिखाई दिया । धन (चला जाने) के कारण उसको शोक हुआ । वह नगर में जा 'तृण, तृण' पुकारता घूमने लगा । कोई उसके शोक का शमन नहीं कर सकता था । बोधिसत्व ने सोचा—राजा को शोक बहुत है । विलाप करता घूमता है । मुझे छोड़ कोई दूसरा इसके शोक का शमन नहीं कर सकता । मैं इसके शोक को दूर करूँगा । उसने एक दिन उसके साथ सुख से बैठे हुए उसके विलाप करने के समय पहली गाथा कही :—

तिणं तिणन्ति लपन्ति कोनु ते तिणमाहरि,

किन्नु ते तिणं किञ्चित्ति तिणमेव पभाससि ॥१॥

[तृण तृण ही प्रलाप करता है, कौन है जो तेरे तृण ले गया ? तुझे तृण की क्या आवश्यकता है ? तू केवल तृण ही तृण कहता है ।]

राजा ने यह सुन दूसरी गाथा कही—

इध्मागमा ब्रह्मचारी ब्रह्मा छत्तो बहुस्सुतो,

सो मे सब्बं समादाय तिणं निम्बिस्स पगच्छति ॥२॥

[यहाँ छत्त नाम का एक बड़ा और बहुश्रुत ब्रह्मचारी आया । वह मेरा सब लेकर और तृण डालकर चला गया ।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

एवेतं होति कत्तव्वं अप्पेन बहुमिच्छता,

सव्वं सकस्स आदानं अनादानं तिणस्स च,

तिणस्स चाटिसु गतो तत्थ का परिदेवना ॥३॥

[जो थोड़े से बहुत की इच्छा करता है उसे ऐसा ही करना होता है; अपने सारे धन का लेना और तृण का न लेना । तृण के घड़ों में जाने पर रोना-पीटना क्या ?]

यह सुन राजा ने चौथी गाथा कही:—

सीलवन्तो न कुम्बन्ति बाहो सीलानि कुम्बन्ति,

अनिच्चसीलं दुस्सलील्यं किं पयिक्कच्चं करिस्सति ॥४॥

[सदाचारी (ऐसा) नहीं करते, मूर्ख ही (ऐसा) सदाचार करता है ।
जिसका शील स्थिर नहीं, जो दुश्शील है उसका पाण्डित्य किम काम का ?]

इस प्रकार उसकी निन्दा कर बोधिसत्व की उन गाथाओं में निश्शोक
हो राजा ने धर्मानुसार राज्य किया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया । उस
समय बड़ा लूच ढोंगी भिन्नु था । पण्डित अमात्य तो मैं ही था ।

३३७. पीठ जातक

“नते पीठमदायिम्ह...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय
एक भिन्नु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह जनपद से जेतवन पहुँचा । पात्र चीवर संभाल, रख, शास्ता को
प्रणाम कर उसने तरुण श्रमणों में पूछा - आयुष्मानो ! अतिथि भिन्नुओं
का उपकार कौन करते हैं ?

“आयुष्मान् ! अनाथपिण्डिक नाम का महासेठ और विसाखा
नाम की महा-उपायिका, दोनों माता पिता के समान उपकार करते हैं ।”

वह ‘अच्छा’ कह अगले दिन जब एक भी भिन्नु ने नगर में प्रवेश
नहीं किया था, अनाथ-पिण्डिक के गृह-द्वार पर पहुँचा । असमय गया होने
से किसी ने ध्यान नहीं दिया । वहाँ कुछ न पाकर वह विसाखा के गृह-द्वार
पर पहुँचा । वहाँ भी बहुत सबेरे पहुँचने के कारण कुछ न मिला । फिर
जहाँ तहाँ घूम कर यवागु समाप्त होने पर पहुँचा । और फिर जहाँ तहाँ घूम
कर भात के समाप्त होने पर पहुँचा । वह विहार पहुँचकर दोनों परिवारों की

‘इस प्रकार न उसे प्रातःकाल की भिन्ना मिली और न मध्याह्न का भोजन ।

निन्दा करता हुआ घूमने लगा—ये भिन्नु कहते हैं कि ये कुल श्रद्धावान् हैं, भक्ति रखते हैं, किन्तु ये परिवार तो श्रद्धावान् हैं, भक्त नहीं हैं।

एक दिन भिन्नुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक जानपदिक भिन्नु अति-प्रातःकाल गृहस्थों के घर भिक्षार्थ पहुँचा और अब न मिलने से उनकी निन्दा करता हुआ घूम रहा है। शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत'। शास्ता ने उस भिन्नु को बुलवा कर पूछा, 'क्या सचमुच ?' और उसके 'भन्ते सचमुच' कहने पर शास्ता ने कहा—भिन्नु ! तू क्रोध क्यों करता है ? पूर्व समय में जब बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे, उस समय तपस्वी भी गृहस्थों के घर जाकर भिक्षा न मिलने पर शान्त रहे। यह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तत्तशिला के सब शिल्प सीखे। आगे चल कर तपस्वी-परिव्रज्या ले हिमालय में रहने लगा। वहाँ चिरकाल तक रहकर आगे चल कर नगर में भिक्षार्थ प्रवेश किया। उस समय वाराणसी सेठ श्रद्धावान् तथा भक्त था। बोधिसत्व ने 'कौनसा परिवार श्रद्धावान् है ?' पूछा। उत्तर मिला—मेठ का घर। वह सेठ के घर पहुँचा। उस समय मेठ राज दरबार में गया था। दूमरे आदमियों ने भी उसे नहीं देखा। वह लौटा जा रहा था। राज-दरबार में निकलते समय उस सेठ ने उसे देख लिया। वह प्रणाम कर, भिक्षा-पात्र ले, घर ले गया और वहाँ बिठा, पैर धुला, माख, यवागु-खाद्य आदि परोसा। फिर भोजन करते समय कुछ न कह, भोजन की समाप्ति पर प्रणाम कर निवेदन किया—

“भन्ते ! हमारे गृह-द्वार पर कोई भिग्न-मंगा वा धार्मिक श्रमण-ब्राह्मण आकर खाली हाथ लौट गया हो ऐसा आज तक नहीं हुआ। आज हमारे बच्चों ने आप को नहीं देखा। इसलिये आज आप को न आसन मिला, न पानी मिला, न पैर धुलाये गये और न यवागु-भात ही मिला। आप यूँ ही लौटे जा रहे थे। यह हमारा अपराध है। हमें क्षमा करना चाहिये।”

उसने यह पहली गाथा कही—

न ते पीठमदायिन्ह न पायं नपि भोजनं,
ब्रह्मचारि खमस्सु मे एतं पस्साम अच्चयं ॥१॥

[न तुझे पीठा दिया, न पानी और न भोजन । हे ब्रह्मचारी ! हमें क्षमा करें, हम अपने इस अपराध को स्वीकार करते हैं ।]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

नेवाभिसज्जामि न चापि कुप्पे
न चापि मे अप्पियमासि किञ्चि,
अथोपि मे आसि मनो वितङ्को
एतादिसो नून कुलस्स धम्मो ॥२॥

[न आसक्त होता हूँ, न कोध करता हूँ और मुझे कुछ अप्रिय भी नहीं लगा । मेरे मन में यही वितर्क पैदा हुआ कि इस परिवार का निश्चय से यही धर्म होगा ।]

यह सुन सेठ ने दो गाथायें कही—

एसम्हाकं कुले धम्मो पितुपितामहो सदा,
आसनं उदकं पज्जं सब्बेतं निपदामसे ॥३॥
एसम्हाकं कुले धम्मो पितुपितामहो सदा,
सक्कच्चं उपतिट्ठाम उत्तमं विष जातकं ॥४॥

[यह हमारे पिता-पितामह से हमारे कुल का धर्म है कि हम आसन, पानी और पैर में माखने के लिये तेल—यह सब देते हैं । यह हमारे पिता, पिता-मह मे हमारा कुल-धर्म है कि हम उत्तम जनों की सेवा वैसी ही अच्छी तरह करते हैं जैसे अपने सम्बन्धियों की ॥३-४॥]

बोधिसत्व कुछ दिन वाराणसी-सेठ को धर्मोपदेश देते हुए वहीं रहे । फिर हिमालय जा अभिज्जा और समागच्छियाँ प्राप्त कीं ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के श्रुत में वह भिक्षु बोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय वाराणसी-सेठ आनन्द था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३३८. थुस जातक

“विदितं थुस.....” यह शास्ता ने वेळू वन में विहार करते समझ अजात-शत्रु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसके माता की कोख में रहने पर उसकी माँ कोशलराज-पुत्री के मन में राजा बिम्बिसार की जाँघ का खून पीने का दाँहद पैदा हुआ और वह दड़ हो गया । सेविकाओं के पूछने पर उसने उन्हें वह बात कही । राजा ने भी सुना तो लक्ष्मणों को बुलाकर पूछा—इस का क्या अर्थ है ? लक्ष्मणों ने कहा कि देवी की कोख में जो प्राणी है वह तुम्हें मारकर राज्य लेगा । राजा बोला—यदि मेरा पुत्र मुझे मारकर राज्य लेगा तो इस में क्या हर्ज है ? उसने दाहिनी जाँघ को शस्त्र से फाड़, सोने के कटारों में खून ले, भेजकर, देवी को पिलवाया । उसने सोचा—यदि मेरी काँख से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता को मारेगा तो मुझे ऐसे पुत्र से क्या ? गर्भ गिराने के लिये उसने काँख मलवाई । राजा को मालूम हुआ तो देवी को बुलवाकर उसने कहा—“भद्रे ! मेरा पुत्र मुझे मारकर राज्य लेगा । मैं अजरअमर तो हूँ नहीं । मुझे पुत्र-मुख देखने दे । अब से इस तरह का काम न करना ।” तब वह उद्यान में जाकर वहाँ कोख मलवाने लगी । राजा को मालूम हुआ तो उसने उद्यान जाना रोक दिया । उसने गर्भ पूरा होने पर पुत्र को जन्म दिया । नाम-करण के दिन, अजात होने पर भी पिता के प्रति शत्रुता रखने के कारण उसका नाम अजात-शत्रु ही रखा गया । वह पाला पोसा जाकर बड़ा हो रहा था । एक दिन शास्ता पाँच सौ भिक्षुओं के साथ राजा के घर जाकर बैठे । राजा बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को श्रेष्ठ खाद्य भोज्य परोस शास्ता का प्रणाम कर एक ओर बैठ कर धर्म सुनने लगा । उसी समय कुमार को अलंकृत कर राजा को दिया । राजा ने स्नेह की अधिकता से पुत्र को ले, गोद में बिठा लिया । वह पुत्र-प्रेम

के कारण पुत्र से ही लाड़ प्यार करता था—धर्म नहीं सुनता था । शास्ता ने राजा का प्रमाद देखा तो कहा—महाराज ! पहले के राजा पुत्र पर आशङ्का कर उसे किसी जगह छिपा देते थे और आज्ञा देते थे कि मेरे मरने के बाद इसे निकाल कर राज्य पर बिठाना ।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही: —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तक्षिला में सर्वत्र प्रसिद्ध आचार्य्य हो बहुत से राजकुमारों तथा ब्राह्मण कुमारों को विद्या पढ़ाते थे । वाराणसी के राज-पुत्र ने सोलह वर्ष की आयु होने पर उसके पास जा तीनों वेद और सब शिल्प सीख आचार्य्य से विद्या मांगी । आचार्य्य ने अङ्ग-विद्या से जाना कि इमें पुत्र से खतरा है । उसने सोचा कि मैं अपने प्रताप से इसका खतरा दूर करूँगा । उसने चार गाथाएँ बना कुमार को दीं और नियम किया—तात ! पहली गाथा राज-गद्दी पर बैठ, जब तेरा पुत्र सोलह वर्ष का हो, तेरे साथ बैठा भोजन करता हो उस समय कहना, दूसरी बड़े दरबार के समय, तीसरी महल पर चढ़ने के समय सीढ़ियों के शिखर पर खड़े हो और चौथी शयनागार में प्रवेश करते समय बरामदे में खड़े होकर । वह 'अच्छा' कह, स्वीकार कर आचार्य्य को प्रणाम कर गया और उपराज बन पिता के मरने पर राजा बना । उसके पुत्र ने सोलह वर्ष का होने पर उद्यान-क्रीड़ा आदि के लिये बाहर निकले राजा का ऐश्वर्य्य देखकर उमें मार राज्य पाने की इच्छा की । उसने अपने सेवकों से कहा । वे बोले—देव ! बुढ़ापे में ऐश्वर्य्य मिला तो किस काम का ? जिस किसी उपाय से राजा को मार कर राज्य ग्रहण करना चाहिये । कुमार ने सोचा—विष खिला कर मारूँगा । वह पिता के साथ शाम को भोजन करते समय विष पास लेकर बैठा । राजा ने थाली में भात डालते ही पहली गाथा कही :—

चिदितं धुसं उन्दुरानं चिदितं पन तण्डुलं,

धुसं थूलं विवग्जित्वा तण्डुलं पन खादरे ॥१॥

[चूहों को तुष का भी पता है और तण्डुल का भी पता है । वे स्थूल तुष को छोड़ तण्डुल खाते हैं ।]

कुमार ने समझा, मेरा पता लग गया। वह भय के मारे थाली में विष नहीं डाल सका और राजा को प्रणाम करके चला गया। उसने यह बात अपने सेवकों को सुना कर पूछा—आज तो मेरा पता लग गया। अब कैसे मारूँ ? उन्होंने उद्यान जाते समय छिपकर सलाह की और सोचा—एक उपाय है। उन्होंने व्यवस्था दी—तलवार को तैयार रख, राज-दरबार में जाने के समय, अमात्यों के बीच में खड़े हो, राजा को असावधान देख, तलवार का प्रहार कर मारना चाहिये। कुमार ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और दरबार के समय तलवारबंद होकर वहाँ जा इधर उधर राजा पर प्रहार करने का अवसर ढूँढने लगा। उस समय राजा ने दूसरी गाथा कही :—

या मन्तना अरञ्जस्मिं या च गामे निकणिका,
यञ्चेतं इतिचिति च एतस्मि विदितं मया ॥२॥

[जो जंगल में मन्त्रणा हुई और जो गाँव में काना-फूसी हुई तथा यह जो इधर उधर अवसर ढूँढ़ता है यह भी मुझे मालूम हो गया।]

कुमार समझ गया कि पिता मेरे वैरी-भाव को जानता है। उसने भाग कर सेवकों से कहा। उन्होंने सात आठ दिन बीतने पर कहा—पिता तुम्हारे वैरी होंगे को नहीं जानता। तुम अन्दाजे से ही ऐसा समझते हो। उसे मारो। वह एक दिन तलवार ले सीढ़ियों के ऊपर कमरे के द्वार पर खड़ा हुआ। राजा ने सीढ़ियों के शिखर पर खड़े हो तीसरी गाथा कही :—

धम्मेन किर जातस्स पिता पुत्तस्स मक्खटो,
दहरस्सेव सन्तस्स दन्तेहि फल्लमच्छिवा ॥३॥

[बन्दर-पिता ने धर्म से पैदा हुए अपने पुत्र से यह आशङ्का होने के कारण कि वह यूथ-पति हो जायगा, बाल काल में ही दाँतों से बधिया कर दिया।]

कुमार ने समझा पिता मुझे पकड़वाना चाहता है। वह डरके मारे भागा और सेवकों से जाकर कहा कि पिता ने मुझे धमकाया है। उन्होंने आधा-महीना बीत जाने के बाद कहा—कुमार ! यदि राजा तुझे जान जाता तो इतने दिन सहन न करता। उसने अन्दाजे से ही कहा है। उसे मार। वह एक दिन तलवार ले ऊपर महल में शयनागार के अन्दर घुस पलंग के नीचे लेट रहा कि आते ही उस पर प्रहार करूँगा। राजा ने शाम का

भोजन कर 'लेटूँगा' कह सेवक-जन को विदा किया और शयनागार में प्रवेश कर बरामदे में ही खड़े हो चौथी गाथा कही :—

यमेतं परिसप्पसि अजकाणोव आसये,
योपायंहेटुतो सेसि एतम्पि विदितं मया ॥४॥

[यह जो सरसों के खेत में कानी बकरी की तरह भय से इधर से उधर सरकता है और यह जो नीचे लेटा है—यह भी मुझे शत है ।]

कुमार ने सोचा, पिता को मेरा पता लग गया है, अब मुझे नष्ट कर-वायेगा । उसने भयभीत हो, पलंग के नीचे से निकल, राजा के पैरों में तलवार रख दी और चरणों में साष्टांग लेट गया—देव ! क्षमा करें । राजा ने उसे धमकाया—तू समझता है कि मेरी करतूत को कोई नहीं जानता । उसने उसे जंजीर से बंधवा, कैदखाने में डलवा दिया और उस पर पहरा बिठावा दिया । तब राजा ने बोधिसत्व का गुण समझा । राजा आगे चलकर मर गया । उसका शरीर-कृत्य करने के बाद कुमार को कैदखाने से निकाल राज्य पर बिठाया गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज ! इस प्रकार पुराने पण्डित लोग सर्शकित विषय में आशङ्का करते थे' कह यह बात समझाई । ऐसा कहने पर भी राजा ने ध्यान नहीं दिया । शास्ता ने जातक का मेल बिठाया । उस समय तक्षशिला में प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था ।

३३६. बावेरु जातक

“अदस्सनेन मोरस्स.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय नष्ट लाभ-सत्कार तैर्थिकों के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध के उत्पन्न होने से पहले तैर्थिकों को लाभ और यश की प्राप्ति थी, बुद्ध के उत्पन्न होने पर उनका लाभ और यश जाता रहा; उनकी दशा

ऐसी ही हो गई जैसी सूर्य के उदय होने पर जुगनुओं की। उनके इस समाचार के बारे में धर्मसभा में बात चीत चली। शास्ता ने आकर पूछा— भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ? ‘अमुक बातचीत।’ “न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी जब तक गुणवान् पैदा नहीं हुए, तभी तक गुण-हीनों को श्रेष्ठ लाभ और श्रेष्ठ यश मिलता रहा। गुणवानों के पैदा होने पर गुण-हीनों का लाभ सत्कार जाता रहा।”

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व मौर की योनि में पैदा हो, बड़े होने पर विशेष सुन्दर हो जङ्गल में विचरने लगे। उस समय कुछ बनिये दिशा-कौआ^१ ले कर जहाज से बावेरु^२ राष्ट्र गये। उस समय बावेरु राष्ट्र में पत्नी नहीं होते थे। उस राष्ट्र के जो जो निवासी आते उस कौवे को पिंजरे में पड़ा देख कहते—इसकी चमड़ी के वर्ण को देखो। गले तक चोच है। मणि की गोलियों जैसी आँखें हैं। इस प्रकार कौवे की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उन व्यापारियों से कहा—आर्यों ! यह पत्नी हमें दे दो। हमें भी इसकी जरूरत है। तुम्हें अपने राष्ट्र में दूसरा मिल जायगा।

“तो कीमत देकर ले लो।”

“पाँच कार्पापण लेकर दे दें।”

“न देंगे।”

इस प्रकार क्रमशः बढ़ाने पर सौ कार्पापण तक पहुँचे। ‘हमारे लिये यह बहुत काम का है, लेकिन खैर तुम्हारी मैत्री का ख्याल है’ कह सौ कार्पापण लेकर दे दिया।

उन्होंने उसे सोने के पिंजरे में रख नाना प्रकार के मछली-मांस तथा फलाफल से पाला। दूसरे पक्षियों के न होने के कारण यह दुर्गुणों से युक्त कौवा भी श्रेष्ठ-लाभी हुआ। अगली बार वे बनिये एक मोर को जो चुटकी बजाने पर आवाज लगाता और ताली बजाने पर नाचता, सिखा-पढ़ा कर

^१ (स्थल की) दिशा जानने के लिये जहाज पर जो कौआ रखा जाता था।

साथ ले गये। वह जनता के इकट्ठा हो जाने पर, नौका की धुर पर खड़ा हो, परो को भाड़, मधुर-स्वर से आवाज लगाता हुआ नाचा। मनुष्यों ने प्रसन्न हो कहा—आर्यों ! यह सुन्दर सुशिक्षित पक्षी-राज हमें दो।

“पहले हम कौवा लेकर आये, वह ले लिया। अब एक मोर-राज लेकर आये वह भी लेना चाहते हो। तुम्हारे राष्ट्र में पक्षी लेकर आना ही कठिन है।”

“आर्यों ! जो भी हो। अपने राष्ट्र में दूसरा मिल जायगा। यह हमें दें।” उन्होंने कीमत बढ़ाकर उसे हजार में लिया।

उसे सात रत्नों के सुन्दर पिंजरे में रख, मछली-मांस, फलादि तथा मधु-खील और शर्वत में पाला। मोर-राज को श्रेष्ठ लाभ और यश मिला। जब से वह पहुँचा तब से कौवे का लाभ-सत्कार घट गया। कोई उसकी ओर देखना भी नहीं चाहता था। कौवे को जो खाना-भोजन नहीं मिला, तब वह ‘का, का’ चिल्लाता हुआ जाकर कूड़ा-कर्कट गिराने की जगह पर उतरा। शास्ता ने दो कथाएँ मिला, अभि-सम्बुद्ध होने पर ये दो गाथाएँ कहीं :—

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुभाणिनो,

काकं तत्थ अपूजेसुं मंसेन च फलेन च ॥१॥

यदा च सरस्सम्पन्नो मोरो बावेरुमारामा,

अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ ॥२॥

याव नुप्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभङ्करो,

ताव अग्गे अपूजेसुं पुथु समणब्राह्मणे ॥३॥

यदा च सरस्सम्पन्नो बुद्धो धम्मं अदेसथि,

अथ लाभो च सक्कारो तिथियानं अहायथ ॥४॥

[जब तक मधुर-भापी, शिखी मोर नहीं देखा तब तक वहाँ मांस और फल से कौवे की पूजा हुई ॥१॥ जब स्वर-युक्त मोर बावेरु राष्ट्र पहुँचा, तो कौवे का लाभ सत्कार घट गया ॥२॥ इसी तरह जब तक प्रभङ्कर धर्म-राज पैदा नहीं हुए तब तक अनेक दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों की पूजा हुई, लेकिन जब स्वर-युक्त बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया तो तैर्थिकों का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।]

यह चार गाथाएँ कह जातक का मेल बैठाया। उस समय कौवा निगण्ठ-नाथ पुत्र (निर्ग्रन्थ जाति-पुत्र) था। मोर राजा तो मैं ही था।

३४०. विसय्ह जातक

“अदासि दानानि...” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय अनाथ पिण्डिक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक^१ में आ ही गई है । इस कथा में शास्ता ने अनाथ-पिण्डिक को सम्बोधन कर “हे गृहपति ! पुराने पिण्डितों ने शक्र के आकाश में खड़े हो कर ‘दान मत दो’ कहने को अस्वीकार करके भी दान दिया” कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही,—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्ती करोड़ धन के मालिक विसय्ह नाम के सेठ हुए । वह पाँच शीलों से युक्त था और स्वभाव का दानी । वह चारों नगर-द्वारों पर, नगर के मध्य में तथा अपने दरवाजे पर छः जगहों पर दानशालायें बनवा दान देता । प्रति दिन छः लाख खर्च करता । उसके सारे जम्बुद्वीप को उद्वेलित कर दान देने से, दान के प्रताप से, शक्र का भवन काँप उठा । देवेन्द्र का पाण्डु (-वर्ण) कम्बल-शिलासन गर्म हो उठा ।

शक्र सोचने लगा—कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है ? उसने देखा कि यह विसय्ह नाम का महामेठ ही है जो अत्यधिक पैर फैलाकर सारे जम्बू-द्वीप में हलचल मचाता हुआ दान देता है । सम्भव है इस दान के प्रताप से मुझे च्युत कर स्वयं शक्र हो जाय । उसने सोचा—मैं

^१ खदिरङ्गार जातक (४०) ।

इसके धन का नाश कर इसे दरिद्र बनाऊँगा जिसमें यह दान न दे सके । तब, उसने उसका सारा धन-धान्य, तेल, मधु, शक्कर, और तो और दास, नौकर-चाकर आदि भी अन्तर्धान कर दिये । दान-प्रबन्धकों ने आकर कहा—स्वामी, दान-शालाएँ खाली हो गईं, जहाँ जो रखा था कहीं कुछ नहीं दिखाई देता ।

दान-उच्छेद मत होने दो, खर्चा यहाँ से ले जाओ, कह उसने भार्या को बुलाकर कहा—भद्रे, दान चालू कराओ ।

उसने सारा घर खोजा । जब उसे आधे मासे भर भी कहीं कुछ न दिखाई दिया, तो बोली—आर्य्य, जो वस्त्र हम पहने हैं उन्हें छोड़ कहीं कुछ नहीं दिखाई देता । सारा घर खाली है । सात रत्नों से भरे कोठों के द्वार खुलवाने पर भी कुछ न दिखाई दिया । सेठ और उसकी भार्या को छोड़ दूसरे दास, नौकर-चाकर भी नहीं दिखाई दिये ।

महासत्व ने फिर भार्या को सम्बोधित किया—भद्रे ! दान नहीं बन्द किया जा सकता । सारे घर में खोजकर कुछ अवश्य निकालो ।

उसी समय एक घसियारा दराती, बहँगी और घास बाँधने की रस्सी दरवाजे के अन्दर फँककर भाग गया । सेठ की भार्या ने वही लाकर दी—स्वामी ! इन्हें छोड़ घर में और कुछ नहीं दिखाई देता । महासत्व ने कहा—भद्रे ! इससे पहले मैंने कभी घास नहीं काटी है । लेकिन आज घास लील कर, लाकर, बेचकर, यथायोग्य दान दूँगा । वह दान देना बन्द न हो, इस डर से दराती, बहँगी और रस्सी ले नगर से निकल घास की जगह पर गया । वहाँ घास लील, दो ढेरियां बाँध, बहँगी पर रखकर यह सोच नगर में बेचने के लिये लाया कि एक हिस्से का दाम हमारे लिये होगा और दूसरे हिस्से के दाम से दान देंगे । नगर द्वार पर घास बेचने से उसे जो मासक मिले उनका एक हिस्सा उमने याचकों को दे दिया । याचक बहुत थे । उनके 'मुझे भी दें' चिल्लाने पर दूसरा हिस्सा भी देकर भार्या सहित वह उस दिन निराहार ही रहा ।

इस प्रकार छः दिन बीत गये । सातवें दिन जब वह घास ला रहा था, निराहार रहने तथा अति सुकुमार होने के कारण माथे पर सूर्यातप के लगते ही उसकी आँखें चकरा गईं । वह होश न संभाले रख सका और घास को

बिखेर, गिर पड़ा। शक्र उसकी करनी को देखता हुआ विचरता था। उसी क्षण उसने आकाश में खड़े हो पहली गाथा कही :—

अदासि दानानि पुरे विसृज्य,
ददतो च ते स्वयंभूमो अहोसि ।
इतो परम्भे न ददेय्य दानं,
सिटेठय्युं ते संयमन्तस्स भोगा ॥

[विसृज्य ! तूने पूर्व समय से दान दिये हैं। दान देते-देते तेरे धन का क्षय हो गया है। यदि भविष्य में दान देना छोड़ दे तो (दान देने से) संयत रहने पर तेरा सब धन तुझे प्राप्त हो जाय।]

महासत्व ने उसकी बात सुनकर पूछा—तू कौन है ?

“मैं शक्र हूँ ।”

“शक्र तो स्वयं दान देकर, शील का पालनकर, उपोसथ-कर्म कर, सात व्रतों की पूर्तिकर, शक्रत्व को प्राप्त हुआ। लेकिन तू तो अपने ऐश्वर्य के कारण दान को रोक रहा है। यह अनार्य-कृत्य है ।”

इतना कह तीन गाथायें कहीं :—

अनरियमरियेन सहस्सनेत्त,
सुदुग्मतेनापि अकिच्चमाहु ।
मा वो धनं तं अहु देवराज,
यं भोगहेतु विजहेसु सद्धं ॥१॥
येन एको रथो याति याति तेन परो रथो,
पोराणं निह्मितं वट्टं वत्ततञ्जेव वासव ॥२॥
यदि हेस्सति दस्साम असन्ते किं ददामसे,
एवं भूतापि दस्साम मा दानं पमदाग्घसे ॥३॥

[हे सहस्रनेत्र ! दरिद्रता का प्राप्त हुए आर्य के लिये भी यह उचित नहीं कि वह अनार्य-कर्म करे। हे देवराज ! जिस धन को भोगने के लिये (दान) श्रद्धा का त्याग करना पड़े, वह धन ही न रहे ॥१॥ जिस (मार्ग) से एक रथ जाता है, उसीसे दूसरा रथ जाता है। हे वासव ! यह पुराना (दान का) रास्ता चलता ही रहे ॥२॥ जब तक पास होगा देंगे, न होने पर क्या देंगे ? ऐसी अवस्था होने पर भी देंगे। दान में प्रमादी न बनाइये।]

शक्र जब उसे रोक न सका, तो पूछा—दान किस लिये देता है ?

“न शक्रत्व की इच्छा है, न ब्रह्मत्व की, मैं तो सर्वशता की प्रार्थना करता हुआ दान देता हूँ ।”

शक्र ने उसकी बात सुन प्रसन्न हो उसकी पीठ पर हाथ फेरा । बोधिसत्व का शरीर उसी क्षण भोजन खाये हुए के शरीर की भाँति भर गया । शक्र के प्रताप से उसका सारा धन भी पूर्ववत् हो गया । तब शक्र उसे अपरिमित धन दे और दान देने के लिये प्रेरितकर अपने निवासस्थान को गया । वह कहता गया—महासेठ ! अब से तू प्रति दिन बारह बारह हजार का दान दे ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय सेठ की भार्या राहुल-माता थी । विसय तो मैं ही था ।

चौथा परिच्छेद

५. चूलकुणाल वर्ग

३४१. किन्नरी जातक

“नरानमारामकरासु...” इस जातक की विस्तृत कथा कुणाल जातक^१ में आयेगी।

३४२. वानर जातक

“असक्खिं वत अत्तानं...” यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बंध करने के प्रयत्न के बारे में कही। कथा पूर्व में आ ही चुकी है^२।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में बन्दर की योनि में पैदा हो, बड़े होने पर गङ्गा-तट पर रहने लगा।

तब गङ्गा में रहने वाली एक मगरमच्छनी ने बोधिसत्व का हृदय-मांस खाने का दोहद उत्पन्न कर मगरमच्छ से कहा। उसने उस बन्दर को पानी में डुबा, मार, हृदय-मांस मगरमच्छनी को देने का विचार कर बोधिसत्व से कहा—मित्र, आ द्वीप में आम खाने चलें।

१. कणाल जातक (२३६)। २. सुसुमार जातक (२०८), वानरेन्द्र जातक (२७)।

“मैं कैसे जा सकूँगा ?”

“तुझे अपनी पीठ पर बिठा कर ले जाऊँगा ।”

वह उसके मन की बात न जानने के कारण उछलकर पीठ पर जा बैठा । मगरमच्छ ने थोड़ी दूर जा चुबकी लगाना आरम्भ किया ।

बन्दर ने उसे पूछा—भो ! क्यों मुझे पानी में डुबाते हो ?

“मैं तुझे मार कर तेरा हृदय-मांस अपनी भार्या को दूँगा ।”

“तू भी मूर्ख है जो समझता है कि मेरा हृदय-मांस मेरी छाती में है ।”

“तो तूने कहाँ रखा है !”

“उस गूलर के पेड़ पर लटकता हुआ नहीं दिखाई देता ?”

“देखता हूँ, लेकिन तू मुझे देगा ।”

“हाँ, दूँगा ।”

मगरमच्छ जड़-बुद्धि होने के कारण उसे ले नदी-तट पर गूलर के वृक्ष के नीचे पहुँचा । बोधिसत्व ने उसकी पीठ पर से छलांग मार गूलर के पेड़ पर बैठ ये गाथायें कहीं :—

असंखितं वत अत्तानं उद्धातुं उद्धा वलं,
नदानाहं पुन तुच्छं वसं गच्छामि वारिज ॥१॥

अलमेनेहि अम्बेहि जम्बूहि पणसेहि च,
यानि पारं समुदस्स वरं मय्ठं उदुम्बरो ॥२॥

यो च उप्पतितं अत्थं न खिप्पमनुबुद्धमिति,
अमित्तवसमम्बेति पच्छा च अनुतप्पति ॥३॥

यो च उप्पतितं अत्थं खिप्पमेव निबोधति,

मुच्चते सत्तुसम्भावा न च पच्छानुतप्पति ॥४॥

[हे मगरमच्छ ! मैं अपने आप को पानी से स्थल पर लाकर बचा सका हूँ अब मैं फिर तेरे वश में नहीं आऊँगा ॥१॥ जो आम, जामुन तथा पणस समुद्र (गङ्गा) पार हैं उनकी मुझे अपेक्षा नहीं । मेरे लिये गूलर ही अच्छा है ॥२॥ जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही नहीं समझ लेता है, वह शत्रु के बशी-भूत हो पीछे अनुताप को प्राप्त होता है ॥३॥ जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के हाथ से बच निकलता है और उसे पीछे पछताना नहीं होता ॥४॥]

इस प्रकार इन चार गाथाओं द्वारा उसने लौकिक-कृत्यों की सफलता का कारण कहा और फिर वन-खण्ड को ही चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मगरमच्छ देवदत्त था । वन्दर तो मैं ही था ।

३४३. कुन्तिनी जातक

“अवसिद्धा यवागरे...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल नरेश के घर में रहने वाले एक क्रौञ्च-पक्षी के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह राजा की दूतिनी थी । दो उसके बच्चे भी थे । राजा ने उसे सन्देश देकर एक राजा के पास भेजा । उसके चले जाने पर राजकुल के बच्चों ने उन बच्चों को हाथों से मसलकर मार डाला । उसने आकर उन्हें मरा देख, पूछा—मेरे बच्चों को किसने मार डाला ?

“अमुक ने, और अमुक ने ।”

उस समय राजकुल में एक पोसा हुआ व्याघ्र था, कठोर, परुष, बंधा हुआ ही रहता । वे बच्चे उसे देखने गये । वह भी उनके साथ साथ गई और यह सोच कि जैसे इन्होंने मेरे बच्चे मार डाले, मैं भी वैसा ही करूँगी; उसने उन बच्चों को व्याघ्र के सामने फेंक दिया । व्याघ्र ने तोड़ मरोड़ खा डाला । वह अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया, सोच, उड़कर हिमालय को चली गई । इस बात को सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! राजकुल में क्रौञ्च-पक्षी, जिन्होंने उसके बच्चे मारे उन बच्चों को व्याघ्र के पैरों में फेंक हिमालय गई । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत ।”

“भिड्डुओ, केवल अभी नहीं। पहले भी यह अपने बच्चों को मारने वाले लड़कों को व्याघ्र के सामने फेंक हिमालय ही चली गई थी।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में बोधिसत्व धर्मानुसार न्याय से राज्य करते थे। उसके घर में एक क्रौञ्च-पक्षी सन्देश ले जाने वाली थी। (सभी पूर्व सदृश हैं, यह विशेष बात है) उसने बच्चों को मरवा डालने के वाद सोचा—अब मैं यहाँ नहीं रह सकती हूँ। जाऊँगी। राजा को बिना सूचित किये ही जाऊँगी। लेकिन उसने (फिर) सोचा राजा को कहकर ही जाऊँगी। वह राजा के पास जा, एक ओर खड़ी होकर बोली:—

“स्वामी ! तुम्हारी ला-परवाही से लड़कों ने मेरे बच्चे मार दिये। मैंने भी क्रोध के वशीभूत हो उन बच्चों को मरवा डाला। अब मैं यहाँ नहीं रह सकती।”

उसने पहली गाथा कही—

अवसिग्हा तवागारे निब्वं सकतपूजिता,
त्वमेवदानिसकरि हन्द राज वज्राग्घं ॥१॥

[तेरे घर में नित्य सत्कृत तथा पूजित होकर रही। अब तू ही मेरे जाने का कारण हुआ। हन्त ! राजन ! अब मैं जाती हूँ।]

राजा ने दूसरी गाथा कही:—

यो वे कते पटिकते किम्बिसे पटिकिम्बिसे,
एवन्तं सम्मति वेरं वस कुन्तिनी मा गम ॥२॥

[जो समझता है कि बुरे कर्म के बदले में बुरा कर्म किया गया है, उसका वैर शान्त हो जाता है। हे क्रौञ्च-पक्षी रह। मत जा।]

यह सुन क्रौञ्च-पक्षी ने तीसरी गाथा कही—

न कतस्स च कत्ता च मेत्ति सन्धीयते पुन,
हवयं नानुजानाति गच्छब्बेव रथेसम ॥३॥

[दोषी तथा जिसके प्रति दोष किया गया है, उनकी फिर मैत्री नहीं होती। राजन् ! अब मेरा दिल रहने की आशा नहीं देता। मैं जाती ही हूँ।]

यह सुन राजा ने चौथी गाथा कही:—

कतस्स चेव कत्ता च मेत्ति सन्धीयते पुन,

धीरानं नो च बालानं वस कुन्तिनी मा राम ॥४॥

[दोषी तथा जिसके प्रति दोष किया गया है, उनकी फिर भी मैत्री हो जाती है—किन्तु धोर पुरुषों की, मूर्खों की नहीं । हे क्रौञ्च-पत्नी ! रह । मत जा ।]

ऐसा होने पर भी 'स्वामी ! मैं यहाँ नहीं रह सकती' कह राजा को प्रणाम कर वह उड़कर हिमालय को ही चली गई ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय जो क्रौञ्च पत्नी, वही इस समय क्रौञ्च-पत्नी । वाराणसी, राजा तो मैं ही था ।

३४४. अम्ब जातक

“यां नीलियं मण्डयति....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक आम-रत्नक स्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह वृद्धावस्था होने पर प्रव्रजित हो जेतवन की सीमा पर आम्रवन में पर्णकुटी बनाकर आमों की रखवाली करता हुआ रहता था । गिरे हुए पके आमों को खाता और अपने परिचित मनुष्यों को भी देता । उसके भिक्षाटन के समय आम-चोर आमों को गिरा खाते और ले जाते । उस समय चार सेठ लड़कियाँ अचिरवती में स्नान कर घूमती घामती उसके आम्रवन में चली आईं । बूढ़े ने आकर उन्हें देख कहा—तुम मेरे आम खा गईं ।

“भन्ते ! हम अभी आई हैं । हम ने तुम्हारे आम नहीं खाये ।”

“तो कसम खाओ ।”

“भन्ते ! कसम खाती हैं ।”

वृद्ध ने उनसे कसम खिलवा, लज्जित कर विदा किया। उसकी यह करतूत सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक वृद्ध ने अपने निवासस्थान आम्रवन में आई सेठ लड़कियों को कसम खिलवा, लज्जित कर विदा किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत।”

“न केवल अभी भिक्षुओं ! इसने पहले भी आम्र-रक्षक हो, सेठ की लड़कियों से कसम खिलवा, उन्हें लज्जित कर विदा किया है।”

यह कह पूर्व-जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा!

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुये थे। उस समय एक दुष्ट जटाधारी वाराणसी के पास नदी के किनारे आम्रवन में पर्णकुटी बना कर आमों की रखवाली करता हुआ रहता था। वह गिरे पड़े आमों को खाता, सम्बन्धी मनुष्यों को देता, तथा नाना प्रकार की मिथ्या-जीविकाओं से जीविका चलाता था। उस समय देवराज शक्र लोक में यह देख रहा था कि कौन हैं जो माता-पिता की सेवा करते हैं, कौन हैं जो बड़ों का आदर करते हैं, कौन हैं जो दान देते हैं, कौन हैं जो शीत की रक्षा करते हैं, कौन हैं जो उपोसथ-व्रत करते हैं, कौन हैं जो प्रब्रजित हो श्रमण-धर्म का ठीक-ठीक पालन करते हैं, तथा कौन हैं जो दुराचारी हैं ? इस प्रकार देखते हुए उसने हम आमों की रखवाली करने वाले दुराचारी, जटाधारी को देखा। और सोचा कि यह दुष्ट जटिल योगाम्यास आदि अपने श्रमण-धर्म को छोड़ आम्र-वन की रखवाली करता रहता है। इसे धमकाऊंगा। उसने जिस समय वह भित्तार्थ गाँव में गया था अपने प्रताप से आमों को गिराकर ऐसा कर दिया मानों चोर लूट ले गये हों।

उस समय वाराणसी से चार सेठ की लड़कियाँ उस आम्र-वन में घुसीं। दुष्ट तपस्वी ने उन्हें देख रोका—तुमने मेरे आम खाये हैं ?

“भन्ते, हम अभी आई हैं। तुम्हारे आम नहीं खाए।”

“तो कसम खाओ।”

“कसम खाने से जा सकेंगी ?”

“हाँ जा सकोगी ।”

“अच्छा भन्ते” कह उनमें से ज्येष्ठ ने कसम खाते हुए पहली गाथा कही—

यो नीलियं मण्डयति सण्डासेन विह्वलति,

तस्स सा वसमन्वेतु या ते अग्ने अवाहरि ॥१॥

[जो (सफेद बालों को) काले करता है और जो (सफेद बालों को) चिमटी से (उखाड़ता हुआ) कष्ट पाता है; जिसने तुम्हारे आराम लिए हों उम्मे वैसा पति मिले ।]

तपस्वी ने ‘तू एक ओर खड़ी रह’ दूसरी सेठ की लड़की से कसम खिलवाई । उसने कसम खाते हुए दूसरी गाथा कही:—

वीसं वा पञ्चवीसं वा उनत्तिसंव जातिया,

सादिसा पतिमाब्ध्या या ते अग्ने अवाहरि ॥२॥

[बीस, पचीस या उनत्तीस वर्ष की ही होने पर उसे पति मिले जिसने तेरे आराम लिए हों ।]

उसके भी कसम खाकर एक ओर खड़ी होने पर तीसरी ने तीसरी गाथा कही:—

दीर्घं गच्छतु अद्धानं एकिका अभिसारिया,

सङ्केते पतिमाप्स या ते अग्ने अवाहरि ॥३॥

[वह अभिसारिका बड़ी दूरी तक अकेली जाये और जिस जगह संकेत किया हो वहाँ उसे पति न मिले जिसने तेरे आराम लिए हों ।]

उसके भी कसम खाकर एक ओर खड़ी होने पर चौथी ने चौथी गाथा कही:—

अलङ्कता सुवसना मालिनी चन्दमुस्सदा,

एकिका सयने सेतु या ते अग्ने अवाहरि ॥४॥

[अलङ्कृत हो, अच्छे वस्त्र पहन, माला धारण कर तथा चन्दन का लेप कर वह अकेली शय्या पर सोये जिसने तेरे आराम लिए हों ।]

तपस्वी ने उन्हें छोड़ दिया—तुमने बहुत भारी भारी कसमें खाई हैं ।
ग्राम दूसरों ने खाये होंगे अब जाओ । शक्र ने भैरव-रूप दिखा दुष्ट तपस्वी को
वहाँ से भगाया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय
दुष्ट तपस्वी यह ग्राम की रखवाली करने वाला बूढ़ा था । चारों सेट की लड़-
कियाँ यही थीं । देवराज शक्र तो मैं ही था ।

३४५. गजकुम्भ जातक

“वनं यदग्निं दहति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय
एक आलसी भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र (बुद्ध-) शासन में हृदय से प्रव्रजित होकर भी
आलसी था । (बुद्धवचन का) पाठ करने में, जिज्ञासा में, उचित रूप से सोचने
में, तथा कर्त्तव्य पालन में (सीमा से) बाहर था । वह नीवरणों (चित्त-मलों)
से अभिभूत था और बैठने उठने आदि में जहाँ का तहाँ रहता था । उसके
उस आलसीपन के बारे में धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानो, अमुक
भिक्षु इस प्रकार के कल्याणकारी (बुद्ध) शासन में प्रव्रजित होकर भी आलसी
बन, नीवरणों से युक्त हो विचरता है । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ,
बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

“अमुक बातचीत ।”

“न केवल अभी भिक्षुओ, यह पहले भी आलसी ही था” कह पूर्व-
जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका मन्त्री-रत्न था । वाराणसी राजा आलसी था । बोधिसत्व उसको शिक्षा देने के उद्देश्य से एक उपमा की खोज में थे ।

एक दिन राजा अमात्यों सहित उद्यान में विहार कर रहा था । उस समय उसने एक गजकुम्भ नामक आलसी (जन्तु) देखा । उस प्रकार के आलसी (जन्तु) सारा दिन चलते रहने पर भी एक दो अङ्गुल मात्र जाते हैं । राजा ने उसे देख बोधिसत्व से पूछा—मित्र ! यह कौन जन्तु है ?

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महाराज ! यह गजकुम्भ नाम का आलसी (जन्तु) है । इस तरह का आलसी (जन्तु) सारे दिन चलते रहने पर भी एक दो अङ्गुल मात्र जाता है ।

फिर बोधिसत्व ने उस गजकुम्भ से बात करते हुए पूछा—भो गजकुम्भ ! तुम्हारी चाल इतनी सुस्त है, इस जंगल में दावानल उठने पर क्या करोगे ? और पहली गाथा कहीः—

वनं यदग्निं दहति पावको कण्ववर्तनी,

कथं करोसि पचलक एवं दन्धपरक्कमो ॥१॥

[हे पचलक ! तू इस प्रकार मन्द पराक्रमी है । वन को जो आग = पावक = कृष्णवर्तनी जला देती है, उसके लगने पर तू कैसे करेगा ?]

यह सुन गजकुम्भ ने दूसरी गाथा कही—

बहुनि स्खल्लिहानि पठब्बा विवरानि च,

तानि च नाभिसम्भोम होति नो कालपरियायो ॥२॥

[बहुत से वृक्ष-छिद्र हैं तथा पृथ्वी में विवर हैं । यदि उन तक न पहुँचें, तो मरण हो ।]

इसे सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कहींः—

यो दन्धकाले तरति तरणीये च दन्धति,

सुक्खपयणं च अक्कम्म अत्थं मज्जति असन्नो ॥३॥

यो दन्धकाले दन्धेति तरणीये च तारयि,

ससीव रत्तिं विभजं तस्सत्थो परिपूरति ॥४॥

[जो शनैः शनैः काम करने के समय पर जल्दबाजी करता है, और शीघ्रता करने के समय पर आलस्य करता है, वह अपने अर्थ को उसी प्रकार चूर्ण-विचूर्ण कर नष्ट कर देता है जैसे कोई सूखे पत्तों को पैर के नीचे दबाकर (चूर्ण-विचूर्ण कर देता है)। जो शनैः शनैः करने के समय शनैः शनैः करता है और शीघ्रता करने के समय शीघ्रता करता है, उसका अर्थ उसी प्रकार पूर्णता को प्राप्त होता है जैसे (शुक्ल-पद्म की) रात को (कृष्णपद्म की रात से) प्रयत्न करता हुआ चन्द्रमा पूर्णता को प्राप्त होता है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजकुम्भ आलसी भिन्दु था। परिणत अमात्य तो मैं ही था।

३४६. केसव जातक

“मनुस्मिन्दं जहित्वान...” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय विश्वस्त-भोजन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डक के घर पाँच सौ भिन्दुओं का नित्य का भोजन बंधा था। उसका घर क्या था भिन्दुओं की इच्छा-पूर्ति का स्रोत था, नित्य काषाय वस्त्र से प्रज्वलित रहता और श्रृणियों की हवा बहती रहती।

एक दिन राजा ने नगर की प्रदक्षिणा करते समय सेठ के घर भिन्दु-संघ को देखकर सोचा—मैं भी आर्यसंघ को नित्य भोजन कराऊँगा। उसने बिहार जा, शास्ता को प्रणाम कर पाँच सौ भिन्दुओं को नित्य भोजन दिया जाना निश्चित किया। उस समय से राजा के महल में नित्य भिक्षा दी जाने लगी। तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित शाली धान का भात होता, किन्तु विश्वास से, स्नेह से अपने हाथ से परोसने वाले न थे। राजा के अफसर दिलाते थे। भिन्दु बैठकर खाना न चाहते थे। नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ले, अपने

अपने सेवकों के घर पहुँच, वह उन्हें दे और उनका दिया हुआ रुखा वा सूखा जैसा मिलता वैसा भोजन करते। एक दिन राजा के लिये बहुत से फला-फल लाये गये। राजा ने कहा—भिन्नसंघ को दो। भिन्नसंघों ने दानशाला में पहुँच एक भिन्न को भी नहीं देखा। उन्होंने राजा से कहा—एक भिन्न भी नहीं है।

“अभी तो समय है न ?”

“हाँ समय है। लेकिन भिन्न तुम्हारे घर से भोजन ले जाकर अपने विश्वस्त सेवकों के घरों पर जा, वह भोजन उन्हें दे और उनका दिया हुआ रुखा-सूखा वा श्रेष्ठ जैसा मिला वैसा भोजन ग्रहण करते हैं।”

राजा ने सोचा—हमारा भोजन बढ़िया होता है। किस कारण से उसे न ग्रहण कर दूसरा ग्रहण करते हैं ? शास्ता से पूछूँगा। उसने विहार जा शास्ता को प्रणाम करके पूछा।

शास्ता ने उत्तर दिया—महाराज, भोजन में विश्वाम ही बड़ी चीज है। तुम्हारे घर विश्वास उत्पन्न कर, स्नेह पूर्वक भिक्षा देने वालों के न होने से भिन्न भोजन ले जाकर अपनी अपनी विश्वस्त-जगह पर खाते हैं। महाराज, विश्वास के समान दूसरा रस नहीं है। अविश्वासी का दिया हुआ चार प्रकार का मधुर-रस विश्वासी के दिये हुए तक्र की भी बराबरी नहीं करता। पुराने पण्डितों ने रोग उत्पन्न होने पर राजा द्वारा पाँच वैद्यकुलों की औपधि कराने पर भी स्वस्थ न हो, विश्वस्त जनों के पास जा, बिना नमक का सामाक-नीवार तथा यवागु और बिना नमक के ही पानी में उबाले पत्ते खाकर स्वास्थ्य लाभ किया है।

फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशीराष्ट्र में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उसका नाम रखवा गया कल्प कुमार। वह बड़ा होने पर तक्षशिला जा सब विद्यार्थी सीख आगे चलकर श्रुषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ। उस समय केशव नामक तपस्वी पाँच सौ तपस्वियों का शास्ता बन हिमालय में रहता था। बोधिसत्व उसके पास जाकर

पाँच सौ शिष्यों में प्रधान शिष्य हो रहने लगा। केशव तपस्वी का आशय मैत्री तथा स्नेह-पूर्ण था। वे परस्पर अति विश्वासी हो गये।

आगे चलकर उन तपस्वियों सहित केशव तपस्वी नमक-खटाई खाने के लिए वस्ती आया। वह वाराणसी पहुँच, राजोद्यान में रह अगले दिन भिक्षार्थ नगर में प्रविष्ट हो राज-द्वार पर पहुँचा। राजा ने ऋषि-गण को देख, बुला, मद्दल के अन्दर भोजन करा, वचन ले, उद्यान में बसाया। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर केशव तपस्वीने राजा से विदा चाही। राजा बोला—भन्ते आप वृद्ध हैं, अभी हमारे पास रहें। तरुण तपस्वियों को हिमालय भेज दें।

उसने अच्छा कह स्वीकार किया और प्रधान-शिष्य के साथ उन तपस्वियों को हिमालय भेज स्वयं अकेला रह गया। कल्प भी हिमालय जा तपस्वियों के साथ रहने लगा। केशव बिना कल्प के रहता हुआ उद्विग्न रहने लगा। उसे देखने की इच्छा से उसे नींद न आती। नींद न आने से भोजन ठीक-ठीक न पचता। खून के जुलाब लग गये ! तीव्र वेदना होने लगी।

राजा ने पाँच वैद्य परिवारों को ले तपस्वी की सेवा की।

रोग शान्त नहीं होता था। केशव ने राजा से पूछा—

“क्या चाहते हो मैं मर जाऊँ अथवा स्वस्थ हो जाऊँ ?”

“भन्ते ! स्वस्थ होना।”

“तो मुझे हिमालय भेजें।”

“भन्ते, अच्छा” कह राजा ने नारद नाम के अमात्य को बुलाकर कहा—“नारद ! हमारे भदन्त को ले वनचरों के साथ हिमालय जाओ।”

नारद उसे वहाँ पहुँचाकर लौट आया। केशव ने भी ज्यों ही कल्प को देखा, उसका चैतसिक-रोग शान्त हो गया और उद्विग्नता जाती रही। कल्प ने उसे बिना नमक के, बिना छुँके, केवल पानी में उबले पत्तों के साथ सामाक-नीवार-यवागु दिया। उसी क्षण उसके खून के जुलाब बन्द हो गये। राजा ने फिर नारद को भेजा—जा केशव तपस्वी का समाचार ला। उसने जा उसे स्वस्थ देख पूछा—भन्ते ! वाराणसी नरेश पाँच वैद्य-परिवारों को लेकर आप की सेवा-सूश्रूषा करता हुआ भी आपको स्वस्थ न कर सका। कल्प ने आपकी सेवा-सूश्रूषा कैसे की ?

यह पूछते हुए उसने पहली गाथा कही—

मनुस्सिन्दं जाह्वान सम्बकामसमिद्धिनं,
कथं नु भगवा केली कप्पस्स रमति अस्समे ॥१॥

[सब कामनाओं के पूरा करने में समर्थ राजा को छोड़कर भगवान् केशव कल्प के आश्रम में कैसे रमण करते हैं ?]

इस प्रकार दूसरे से बातचीत करते हुए की तरह केशव के मन लगने का कारण पूछा । केशव ने दूसरी गाथा कही :—

साधूनि रमणीयानि सन्ति रुक्खा मनोरमा,
सुभाषितानि कप्पस्स नारद रमयन्तिमं ॥२॥

[सुन्दर, रमणीय तथा मनोहर वृक्ष हैं । और हे नारद ! कल्प के सुभाषित (वचन) मेरे मन को लगाये हैं ।]

इतना कहकर यह भी कहा कि कल्प ने मुझे बिना नमकके बिना छौंके, केवल पानी में उबले पत्तों के साथ सामाक-नीवार यवागु पिलाया । उसी से मेरा रोग शान्त हुआ और मैं निरोग हो गया । इसे सुन नारद ने तीसरी गाथा कही :—

शालीनं ओदनं भुञ्जे सुचिमंसूपसेचनं,
कथं सामाकनीवारं अलोणं छादयन्ति तं ॥३॥

[तुम शुद्ध मांस के साथ शाली का भात खाते थे । तुम्हें बिना नमक का सामाक-नीवार कैसे अच्छा लगा ?]

इसे सुन के सब ने चौथी गाथा कही—

सादुं वा यदि वासादुं अप्पं वा यदि वा बड्डुं,
विस्सट्ठो यत्थ भुञ्जेय्य विस्भासपरमा रसा ॥४॥

[स्वादु हो अथवा अस्वादु, थोड़ा हो या बहुत, विश्वस्त होकर जहां खाया जाता है (वही अच्छा लगता है) । रसों में विश्वास ही प्रधान है ।]

नारद ने उसकी बात सुन राजा के पास जाकर कहा कि केशव ऐसा कहता है ।

शास्ता ने धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । नारद सारिपुत्र । केशव बक-महाब्रह्मा । कल्प तो मैं ही था ।

३४७. अथकूट जातक

“सम्भास्यं कूटं.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लोकोपकार के बार में कही। (वर्तमान) कथा ‘महाकण्ह जातक’ में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वारणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में गर्भ धारण किया। बड़े होने पर शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राजा हो, धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगे।

उस समय मनुष्य देव-पूजक होने के कारण अनेक भेड़ बकरियों को मार देवताओं को बलि चढ़ाते थे। बोधिसत्व ने मुनादी कराई कि प्राणियों की हत्या न की जाय। यज्ञों को बलि न मिली तो वह बोधिसत्व पर विगड़े। उन्होंने हिमालय में सभा कर एक यज्ञ को बोधिसत्व की हत्या करने के लिये भेजा। वह बल्ली जितना बड़ा जलता हुआ लोहे का टुकड़ा ले, आकर आधीरात के बाद बोधिसत्व की शैथ्या के सिर पर खड़ा हो गया कि इसके प्रहार से मारूंगा। उस समय शक्र का आसन गर्म हुआ। उसने विचार करने पर वह बात मालूम की और इन्द्रवज्र ले आकर यज्ञ के ऊपर खड़ा हो गया। बोधिसत्व ने यज्ञ को देख, यह जानने के लिये कि यह मेरी रक्षा करने के लिये खड़ा है, अथवा मुझे मारने के लिये, उससे बात करते हुए पहली गाथा बही —

सम्भास्यं कूटमतिप्पमाणं
पग्गच्छ यो तिट्ठसि अन्तजिक्खे,
रक्खाय मं त्वं विहितोनुत्तज्ज
उदाहु मे वायमसे वधाय ॥१॥

[बड़े अयस-कूट को लेकर जो तू अन्तरिक्ष में खड़ा है सो तू आज मेरी रक्षा के लिये तैयार है अथवा मुझे मारने के लिये ?]

बोधिसत्व यत्न को ही देखते थे, शक्र को नहीं। लेकिन यत्न शक्र के भय से बोधिसत्व पर प्रहार नहीं कर सकता था। उसने बोधिसत्व की बात सुन उत्तर दिया—महाराज ! मैं तुम्हारी रक्षा के लिये नहीं हूँ किन्तु इस ज्वलित अयस-कूट के प्रहार से तुम्हें मारने के लिये आया हूँ। शक्र के भय से तुम्हें नहीं मार सकता हूँ। यही बात प्रकट करते हुए उसने दूसरी गाथा कही—

दूतो अहं राजिध रक्खसानं
वधाय तुय्हं पहितोहमस्मि,
इन्दो च तं रक्खति देवराजा
तेनुत्तमङ्गं न ते फालयामि ॥२॥

[हे राजन् ! मैं राज्ञों का दूत हूँ और तुम्हारे वध के लिये मेजा गया हूँ। लेकिन देवराज इन्द्र तुम्हारी रक्षा कर रहा है। इसी से मैं तुम्हारा सिर नहीं फाड़ डाल रहा हूँ।]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कही

सचे च मं रक्खति देवराजा
देवानमिन्दो मघवा सुजम्पति,
कामं पिशाचा विनदन्तु सब्बे
न सन्तसे रक्खसिया पजाय ॥३॥
कामं कन्दन्तु कुम्भएवा सब्बे पंसुपिसाचका,
नालं पिशाचा युद्धाय महती सा विभिंसिका ॥४॥

[यदि देवराज, देवेन्द्र, मघवा, सुजम्पति मेरी रक्षा करता है तो फिर चाहे सभी पिशाच निनाद करें, राज्ञी प्रजा से मुझे डर नहीं ॥३॥ चाहे सारे कुम्भएड (राक्षस) तथा पशु-पिशाच क्रन्दन करें उनकी विभीषिका बड़ी होने पर भी वे युद्ध के लिये समर्थ नहीं हैं।]

शक्र ने यत्न को भगाकर महासत्व को उपदेश दिया—महाराज डरें नहीं। अब से आपकी रक्षा का भार मुझ पर है। यह कह वह अपने स्थान को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय शक्र अनुबद्ध था । वाराणसी राजा तो मैं ही था ।

३४८. अरञ्ज जातक

“अरञ्जा गाममागम्म...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रौढ़ कुमारी के साथ आसक्ति के वारे में कही । (वर्तमान) कथा चुल्ल-नारद कस्सप जातक^१ में आयेगी ।

स्व. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया । बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, भार्या के मरने पर पुत्र सहित ऋषि-प्रब्रज्या ली । वह हिमालय में रहते समय पुत्र को आश्रम में छोड़ फल-मूल के लिये जाता ।

उस समय चोरों ने सीमा पर के गांवों को लूटा था और वे बन्दि्यों को लिये जा रहे थे । एक कुमारी भाग कर उस आश्रम में पहुँची । उसने तपस्वी-कुमार को आकर्षित कर उसका शील नष्ट कर कहा—आ चलें ।

“मेरा पिता आ जाये, उससे आज्ञा लेकर जाऊँगा ।”

“तो आज्ञा लेकर आ” कह वह निकल कर रास्ते में बैठी । तपस्वी-कुमार ने पिता के आने पर पहली गाथा कही—

अरञ्जा गाममागम्म किं सीलं किं वतं अहं,

पुरिसं तात सेवेयं तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥१॥

[तात ! अरण्य से बस्ती में जाने पर मैं किस शील, किस व्रत वाले पुरुष की संगति करूँ ? मैं पूछता हूँ, कहें ।]

^१ चुल्ल नारद कस्सप जातक (४७७)

उसके पिता ने उपदेश देते हुए तीन गाथायें कहीं—

यो तं विस्वासये तात विस्वासञ्च खमेय्यते,
सुस्तूसीच तितिक्षी च तं भजेहि इतोगतो ॥२॥

यस्स कायेन वाचाय मनसा नस्थि दुक्कटं,
ओरसीव पतिट्ठाय तं भजे हि इतो गतो ॥३॥

हळिहरागं कपिचित्तं पुरिसं रागविरागिनं,
तादिसं तात मा सेवि निमनुस्सप्पिचेसिया ॥४॥

[जो तेरा विश्वास करे और जिसका तू विश्वास कर सके, जो तेरी बात सुनना चाहे और तेरे दोष को सहन कर सके, यहाँ से जाने पर ऐसे पुरुष की संगत करना ॥२॥ जो काय, वाणी तथा मन से दुष्कर्म न करता हो, जो औरस-पुत्र की तरह प्रतिष्ठित हो, यहाँ से जाने पर ऐसे पुरुष की संगत करना ॥३॥ हे तात ! चाहे कोई मनुष्य न भी मिले तो भी जो हल्दी के रंग की तरह अस्थिर हो, जिसका चित्त बन्दर के चित्त की तरह चञ्चल हो, जो थोड़ी देर में रागी और थोड़ी ही देर में विरागी होता हो, ऐसे पुरुष की संगति मत करना ॥४॥]

यह सुन तपस्वी-कुमार रुक गया, बोला—तात ! इन गुणों से युक्त पुरुष मुझे कहाँ मिलेगा । मैं नहीं जाऊँगा । तुम्हारे ही पास रहूँगा । उसके पिता ने उमे योग-विधि कही । दोनों ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक-गामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय पुत्र और कुमारी ये ही थे । तपस्वी तो मैं ही था ।

३४६. सन्धिभेद जातक

“नेव इत्थीसु सामञ्ज”...” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय चुगल-खोरी न करने की शिक्षा के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने जब यह सुना कि पड़-वर्गीय भिन्नु चुगली खाते फिरते हैं तो उन्हें बुलवाकर पूछा—

“भिन्नुओ, क्या तुम सचमुच भगड़े हुए, कलह करते हुए, विवाद करते हुए, भिन्नुओं की चुगली खाते फिरते हो ? उससे नये अनुत्पन्न भगड़े पैदा हो जाते हैं, पैदा हुए भगड़े अधिक बढ़ जाते हैं ?”

“हाँ सचमुच ।”

भगवान् ने उनकी निन्दा करते हुए कहा—भिन्नुओ, चुगल-खोरी तीक्ष्ण शस्त्र-प्रहार जैसी होती है, उससे दृढ़ विश्वास भी शीघ्र टूट जाता है, और उसे लेकर आदमी वैसे ही अपनी मैत्री नष्ट कर देता है जैसे सिंह और बैलों की कथा में ।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका पुत्र होकर जन्मे । बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प ग्रहण कर पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगे ।

उस समय एक ग्वाला जंगल में गौवें चराकर वापिस लौटते समय एक गाभिन गौ को भूल, उसे जंगल में छोड़ लौट आया । उसकी एक सिंहनी के साथ दोस्ती हो गई । वे दोनों पक्की दोस्त हो एक जगह चरती थीं । आगे चलकर गौ ने बछड़े को तथा सिंहनी ने शेर के बच्चे को जन्म दिया । वे दोनों कुलागत मैत्री के कारण पक्के दोस्त हो इकट्ठे रहते थे ।

एक जंगली आदमी ने जंगल में दाखिल हो उनकी मैत्री देखी । जब उसने जंगल में पैदा हुआ सामान ले जाकर वाराणसी-राजा को दिया तो उसने पूछा—मित्र ! तू ने जंगल में कोई आश्चर्य की बात देखी ?

“देव ! और तो कुछ नहीं देखा एक सिंह और एक बैल को परस्पर मित्र हो साथ चरते/देखा है ।”

“इन में तीसरा आ मिलने पर विपत्ति आएगी । जब इनमें किसी तीसरे को देखे तो मुझे कहना ।”

“देव ! अच्छा ।”

जंगली आदमी के बाराणसी जाने पर एक गीदड़ सिंह और बैल की सेवा में रहने लगा । जंगली आदमी ने जंगल में जा उन्हें देख सोचा कि मैं अब तीसरे के आ मिलने की बात राजा से कहूँगा । वह नगर को गया । गीदड़ ने सोचा—सिंह और बैल के मांस को छोड़ कर दूसरा कोई ऐसा मांस नहीं है जो मैंने न खाया हो । इनमें फूट डाल कर इनका मांस खाऊँगा । उसने ‘यह तुझे ऐसा कहता है, और यह तुझे ऐसा कहता है’ कह दोनों में परस्पर फूट डाल उन्हें ऐसा कर दिया कि शीघ्र ही लड़कर मर जायें ।

जंगली आदमी ने आकर राजा को सूचना दी—देव ! उनमें तीसरा आ मिला है ।

“वह कौन है ?”

“देव ! गीदड़ है”

‘वह दोनों में फूट डाल उन्हें मार डालेगा । हम उनके मरने के समय पहुँचेंगे’ कह राजा रथ पर चढ़ जंगली आदमी के बताए मार्ग से चलकर वहाँ उस समय पहुँचा जब वे परस्पर लड़कर मर चुके थे । गीदड़ प्रसन्नचित्त हो एक बार सिंह का मांस खाता, एक बार बैल का मांस । राजा ने उन दोनों को मरे देख, रथ पर बैठे ही बैठे सारथी से बात-चीत करते हुए यह गाथाएँ कहीं—

नेव इत्थीसु सामञ्जं नपि भक्खेसु सारथि,
अथस्स सन्धिभेदस्स पस्स याव सुचिन्तितं ॥१॥
असि तिक्खोव मंसग्घि पेसुञ्जं परिवत्तति,
यत्थूतभञ्च सीहञ्च भक्खयन्ति मिगाधमा ॥२॥
इमं सो सयनं सेति यायिमं पस्ससि सारथि,
यो वाचं सन्धिभेदस्स पिसुणस्स निबोधति ॥३॥
ते जना सुखमेधन्ति नरा समागतारिब,
ये वाचं सन्धिभेदस्स नावबोधन्ति सारथि ॥४॥

[न इनमें स्त्रियों की समानता है न भोजन की (इस प्रकार कलह का कोई भी कारण उपस्थित नहीं); इसलिये इस फूट डालने वाले की चतु-राई देख । चुगल खोरी तेज तलवार की तरह मांस में घुसती है; इसीलिये अधम-पशु सिंह और वृषभ को खाते हैं । सारथी ! जो आदमी चुगल-खोर फूट डालने वाले के वचन को सुनता है, वह यह जो तू देखता है इसी अवस्था का प्राप्त होता है । और हे सारथी ! जो फूट डालने वाले चुगल खार की वाणी को ओर ध्यान नहीं देते वह स्वर्ग-गामी आदमियों की तरह सुख से सांते हैं ।]

राजा गाथायें कह सिंह के केसर, चर्म, नख, दाढ़ आदि ज़िवा नगर को गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा मैं ही था ।

३५०. देवतापञ्च जातक

“हन्ति हत्येहि पादेहि.....” यह देवता-प्रश्नावलि उम्भगा जातक^१ में आयेगी ।

पाँचवाँ परिच्छेद

१. मणिकुण्डल वर्ग

३५१. मणिकुण्डल जातक

“जीनो रथस्स मणिकुण्डले च.....” यह शास्ता ने जेतवन में विद्वार करते समय कोशल-राज के अन्तःपुर के सर्वार्थसाधक दुष्ट अमात्य के बारे में कही । (वर्तमान) कथा पहले कह ही दी गई है ।

लेकिन इस कथा में बोधिसत्व वाराणसी राजा था । दुष्ट अमात्य ने कोशल राज को ला काशी राष्ट्र को जितवा, वाराणसी नरेश को कैद करा कारागार में डलवाया । राजा ध्यानावस्थित हो आकाश में पालथी मार बैठा । चोर-राजा का शरीर जलने लगा । उसने वाराणसी नरेश के पास आ पहली गाथा कही—

जीनो रथस्समणिकुण्डले च
पुत्ते च द्वारेच तथेव जीनो,
सब्बेसु भोगेसु असेसितेसु
कस्मा न सन्तप्पसि सोककाले ॥१॥

[हे राजन ! तेरे रथ, अश्व, तथा मणि-कुण्डल जाते रहे और तू पुत्र-दारा से भी रहित हो गया । सभी अशेष भोगों के (जाते रहने पर भी) तू शोक के समय क्यों दुखी नहीं होता ?]

यह सुन बोधिसत्व ने ये दो गाथायें कहीं—

पुब्बेवमच्चं विजहन्ति भोगा ।
मच्चो वा ते पुब्बतरं जहाति,
असस्सता भोगिनो कामकानि
तस्मा न सोचामहं सोककाले ॥२॥
उदेति आपूरति वेति चन्दो
अत्थं तपेत्त्वान पलेति सूरियो,

विदिता मया सत्तु क लोकधम्मा
तस्मा न सोच्चाहं सोककाले ॥३॥

[हे कामकामि ! भोग ही आदमी को पहले ही त्याग देते हैं, अथवा आदमी ही उन्हें पहले ही छोड़ देता है । भोग भांगने वाले अनित्य हैं । इसलिये मैं (औरों के) शोक करने के समय भी शोक नहीं करता हूँ ॥२॥ हे शत्रुक ! चन्द्रमा उदय होता है, वदता है (फिर क्षय को प्राप्त होता है) वा सूर्य भी संसार को तपाकर अस्त होता है, उसी तरह सभी लोकधर्मों को मैं ने (उदयास्त-स्वाभाव वाले) जाना है । इसलिये मैं शोक के समय शोक नहीं करता हूँ ॥३॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चोर-राजा को धर्मोपदेश दे, फिर उसी की निन्दा करते हुए ये गायार्थ कहीं:—

अलसो गिही कामभोगी न साधु
असम्मतो पण्डितो न साधु,
राजा न साधु अनिसम्मकारी
यो पण्डितो कोधनो तं न साधु ॥४॥
निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म विसम्पत्ति,
निसम्मकारिनो रज्जो यसो कित्तिञ्च वड्ढति^१ ॥५॥

[आलसी गृहस्थ कामभोगी अच्छा कहीं । असंयमी साधु अच्छा नहीं । बिना विचारे करने वाला राजा अच्छा नहीं । जो पण्डित होकर क्रोध करे, वह भी अच्छा नहीं ॥४॥ क्षत्रिय को विचार कर करना चाहिये, राजा को बिना विचारे नहीं करना चाहिये । विचार पूर्वक (काम) करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढ़ती है ॥५॥]

चोर राजा बोधिसत्व से क्षमा माँग, (उसे) राज्य सौंप, स्वयं जनपद ही चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय कोशल राजा आनन्द था । वाराणसी राजा तो मैं ही था ।

^१ ये दोनों गायार्थ पूर्वोक्त रथलङ्घि जातक (३३२) में आ चुकी हैं ।

३५२. सुजात जातक

“किन्नुसन्तरमानोव...” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में कही, जिसका पिता मर गया था ।

क. वर्तमान कथा

वह पिता के मरने पर रोता पीटता फिरता था । शोक को रोक नहीं सकता था । शास्ता ने उसके खांतागति-फल-प्राप्त होने की सम्भावना को देखा तो श्रावस्ती में भिक्षार्थ घूमते हुए एक श्रमण को साथ लिये उसके घर पहुँचे । वहाँ बिछे आसन पर बैठ, उस उपासक के प्रणाम कर बैठने पर पूछा—उपासक ! क्या सोच करता है ? “भन्ते ! हाँ” कहने पर “उपासक पुराने पण्डितों ने पण्डितों का बात सुन पिता के मरने पर चिन्ता नहीं की” कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व (एक) गृहस्थ के घर में पैदा हुए । उसका नाम रखा गया सुजात कुमार । उसके बड़े होने पर उसका पितामह मर गया । उसका पिता (अपने) पिता के मरने के बाद से शोकाकुल हो गया । उसने श्मशान जा, वहाँ से हड्डियाँ ला, अपने उद्यान में मिट्टी का स्तूप बनाया । उन हड्डियों को उस स्तूप में रखा । फिर समय असमय स्तूप की पुष्पों से पूजा करता, चैत्य के चारों ओर चक्कर काटता हुआ रोता-पीटता, न स्नान करता, न (चन्दनादि का) लेप करता, न खाता और न (खेती का) काम देखता ।

यह देख बोधिसत्व ने सोचा कि अय्या के मरने के बाद से पिता शोकातुर है । मुझे छोड़ और कोई इसे नहीं समझ सकता । एक उपाय

से इसका शोक दूर करूँगा । उसने गाँव के बाहर एक मरा बैल देखा और घास-पानी ले उसके सामने कर 'खा खा, पी पी' कहने लगा । जो कोई आता उसे देख कहता—सुजात ! क्या पगले हो ? मरे हुए बैल को घास-पानी देते हो ? वह कुछ उत्तर न देता । उन्होंने उसके पिता से जाकर कहा—तेरा पुत्र पगला गया है । मरे बैल को घास पानी देता है । यह सुन गृहस्थ का पितृ-शोक जाता रहा, उसकी जगह पुत्र-शोक उत्पन्न हो गया । उसने जल्दी जल्दी आकर पूछा—“तात सुजात ! क्या तू पण्डित नहीं है ? मरे बैल को घास पानी क्यों देता है ?”

यह कह उसने दो गाथायें कहीं—

किन्नु सन्तरमानोव लायित्वा हरितं तिणं,

खाद खादाति विलपि गतसत्तं जरग्गवं ॥१॥

नहि अन्नेन पायेन मतो गोणो समुट्ठहे,

त्थञ्च तुच्छं विलपसि यथा तं दुम्मती तथा ॥२॥

[यह क्या जल्दबाज़ की तरह हरे-घास को लेकर निष्प्राण बूढ़े बैल के सामने 'खा खा' कह कर विलाप करता है ? ॥१॥ अन्न से और पानी से मरा बैल नहीं जी उठता । तू मूर्ख की तरह वेकार विलाप करता है ॥२॥]

तब बोधिसत्व ने दो गाथायें कहीं—

तथेव तिट्ठति सीलं हत्थपादा च बाळधि,

सोता तथेव तिट्ठन्ति मग्गे गोणो समुट्ठहे ॥३॥

नेवय्यकस्स सीलं वा हत्थपादा न विस्सरे,

इदं मत्तिकथूपस्मिं ननु त्वग्गेव दुम्मती ॥४॥

[उसका सिर वैसे ही है, उसके हाथ-पाँव और पूँछ वैसे ही है तथा उसके कान भी वैसे ही है; इसलिये मैं सोचता हूँ कि (शायद) बैल (जी) उठे ॥३॥ लेकिन, अय्या का तो न सिर दिखाई देता है, न हाथ-पैर दिखाई देते हैं । क्या तू ही दुमर्ती नहीं है, जो उसे मिट्टी का स्तूप बना कर रोता है ? ॥४॥]

यह सुन बोधिसत्व के पिता ने सोचा, मेरा पुत्र पण्डित है, इहलोक-कृत्य तथा परलोक-कृत्य दोनों जानता है । मुझे समझाने के लिये ही उसने यह कर्म किया है । वह बोला—तात सुजात पण्डित ! मैं समझ गया कि

सभी संस्कार अनित्य हैं । पिता का शोक हरण करने वाले पुत्र को ऐसा ही होना चाहिये । यह कह पुत्र की प्रशंसा करते हुए कहा —

आदित्तं वत मं सन्तं घतसित्तं पावकं,
वारिना विद्य ओसिञ्चं सव्वं निब्बापये दरं ॥

* अब्बूळ्हं वत मे सत्त्वं लोकं हृदयनिस्सित्तं,
यो मे सोकपरेतस्स पितुसोकं अपानुदि ॥

सोहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि वीतसोको अनाविलो
न सोचामि न रोदामि तव सुत्थान माणव ॥

एवं करोन्ति सप्पज्जा ये होन्ति अनुकम्पका,

विनिवत्तयन्ति लोकग्हा सुजातो पितरं यथा ॥

[घी पड़ी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे (हृदय के) दुःख को पानी से अग्नि शान्त कर देने की तरह शान्त कर दे । मेरे हृदय में लगे हुए शोक-शल्य को निकाल दिया, जो यह मुझ शोकानुर का पितृ-शोक दूर कर दिया । हे माणव ! तेरी बात सुनकर मैं शोक-रहित हो गया हूँ, चञ्चलता-रहित हो गया हूँ, शल्य-रहित हो गया हूँ । अब मैं न चिन्ता करता हूँ, न रोता हूँ । इस प्रकार जिन प्रशवानों के हृदय में अनुकम्पा होती है, वे (दूसरों को) शोक से उसी प्रकार मुक्त कर देते हैं जैसे सुजात ने पिता को ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्वों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्वों के अन्त में गृहस्थी स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय सुजात मैं ही था ।

३५३. धोनसाख जातक

“नीयदं निच्चं भवितव्वं...” यह शास्ता ने भग्ग (जनपद) में सुसुमार-गिरि के पास भेसकलावन में विहार करते समय बोधि-राजकुमार के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय उदयन का बोधि-राजकुमार नाम का पुत्र सुसुमार-गिरि में रहता था । उसने एक चतुर बड़ई को बुलवा, कोकनद नाम का एक ऐसा प्रासाद बनवाया जैसा और किसी राजा का न हो । प्रासाद बनवा चुकने पर उसने ईर्ष्या के कारण उस बड़ई की आँखें निकलवा दीं, जिसमें कहीं वह किसी दूसरे राजा का भी वैसा ही प्रासाद न बना दे । उसकी आँख निकलवा देने की बात भिक्षु संघ में प्रकट हो गई । भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो ! बोधि-राजकुमार ने कैसे बड़ई की आँखें निकलवा दीं । ओह ! वह कितना कठोर है, परुष है, दुस्साहसिक है । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ? ‘अमुक बात चीत’ कहने पर ‘भिक्षुओ, न केवल अभी यह कठोर, परुष तथा दुस्साहसिक है, न केवल अभी किन्तु पहले भी हजार क्षत्रियों की आँखें निकलवा कर उनके मांस की बलि दिलवाई’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व तक्षशिला में प्रसिद्ध आचार्य्य हुए । जम्बुद्वीप भर के क्षत्रिय-विद्यार्थी तथा ब्राह्मण-विद्यार्थी उसी के पास विद्या सीखते थे । वाराणसी-राज के पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार ने भी उसके पास तीनों वेद पढ़े । वह स्वभाव से कठोर, परुष, तथा दुस्साहसी था । बोधिसत्त्व ने उसके शरीर-लक्षणों से ही उसका कठोर, परुष तथा दुस्साहसिक स्वभाव पहचान उसे उपदेश दिया—तात ! तू कठोर, परुष तथा दुस्साहसी है । इस प्रकार के आदमी द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य्य स्थायी नहीं होता । ऐश्वर्य्य नष्ट होने पर उसे वैसे ही आश्रय नहीं मिलता जैसे समुद्र में नौका के नष्ट होने पर । इसलिये ऐसा मत हो । उसने दो गाययें कहीं :—

नयिदं निष्चं भवितव्यं ब्रह्मदत्त,
खेमं सुभिक्षं सुखताच्च काये,

अत्यञ्चये मा अद्भु, सम्पमूळहो,
 भिन्नप्लवो सागरस्तेव मज्जे ॥१॥
 यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति,
 कल्याणकारी कल्याणं पापकारीच पापकं,
 यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते कलं ॥२॥

[हे ब्रह्मदत्त ! कल्याण, अच्छी पैदावार, तथा शरीर का सुख—ये सब सदैव (एकसा) नहीं रहता । इसलिये जिस प्रकार सागर के मध्य में नौका टूट जाने पर (आदमी) दिशा-मूढ़ हो जाता है, उसी प्रकार अर्थ का क्षय होने पर तू भी मूढ़ न होना ॥१॥ मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उन्हें अपने भोगता है—शुभ-कर्म करने वाला शुभ-फल भोगता है, अशुभ-कर्म करनेवाला अशुभ-फल । जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल पाता है ॥२॥]

वह आचार्य्य को प्रणाम कर, वाराणसी जा, पिता को शिल्प दिखा, युवराज-पद पर प्रतिष्ठित हो, पिता के मरने पर राजा बना । उसका पिङ्गय नाम का पुरोहित था कठोर, पुरुष । उसने ऐश्वर्य्य के लोभ से सोचा कि, मैं इस राजा द्वारा सकल जम्बुद्वीप के सारे राजा पकड़वाऊँ । ऐसा होने पर यह एक-छत्र राजा होगा और मैं एक ही पुरोहित । उसने उस राजा को अपनी बात समझाई ।

राजा ने बड़ी भारी सेना के साथ निकल एक राजा के नगर को घेर उसे पकड़ लिया । इसी प्रकार सारे जम्बुद्वीप के राज्य ले, हजार राजाओं के साथ तक्षशिला का राज्य लेने के लिये वहाँ पहुँचा । बोधिसत्व ने नगर की मरम्मत करा उसे ऐसा बना दिया कि दूसरे उसका ध्वंस न कर सकें ।

वाराणसी-राज भी गङ्गा नदी के तट पर, बड़े बटवृक्ष के नीचे, कनात धिरवा और उस पर चन्दवा तनवा, उसके नीचे शैय्या बिछवाकर रहने लगा । उसने जम्बुद्वीप के हजार राजाओं को जीतकर तक्षशिला को न जीत सकने पर पुरोहित से पूछा—आचार्य्य ! हम इतने राजाओं के साथ आकर भी तक्षशिला नहीं ले सकते । क्या करना चाहिये ?

“महाराज ! हजार नरेशों की आँखें निकाल, (उन्हें) मार, कोल चीर, पाँच प्रकार का मधुर-मांस ले इस बट वृक्ष पर रहने वाले देवता की

बलि दें, आन्तों की बत्ती से वृक्ष को घेर, लहु के पञ्चङ्गुली-चिह्न लगायें । इस प्रकार शीघ्र ही हमारी जय होगी ।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह, स्वीकार कर कनात के अन्दर महायोधा मल्लों को रखा । फिर एक एक राजा को बुलवा, दबवा कर बेहोश करवा, आँखें निकलवा (उन्हें) मरवा डाला । मांस लेकर लार्शें गङ्गा में बहा दी गईं । फिर जैसे कहा गया है वैसे ही बलि चढ़ा, बलि-मेरी बजवा युद्ध के लिये निकला । तब अज्जिसकत नाम का एक यक्ष आया और राजा की दाहिनी आँख निकाल कर ले गया । बड़ी वेदना हुई । वह पीड़ा से बेहोश हो आकर वट-वृक्ष के नीचे विछे आसन पर चित पड़ रहा ।

उस समय एक गीध ने एक तीक्ष्ण सिरे वाली हड्डी ले, वृक्ष की शाखा पर बैठ, मांस खा गिरा दी । हड्डी की नोक आकर राजा की बाईं आँख में लोहे के कांटे की तरह लगी और उसकी आँख फोड़ दी । उस समय उसे बोधिसत्व का वचन याद आया । उसने कहा—मालूम होता है हमारे आचार्य ने यह देखकर ही कहा था कि जिस प्रकार बीज के अनुरूप फल होता है, उसी प्रकार कर्मानुरूप विपाक अनुभव करते हैं । उसने विलाप करते हुए दो गाययें कहीं :—

इदं तदाचरियवचो पारासरियो तदब्रवि,
मास्सु त्वं अकरा पापं यं तं पब्बा कत्तं तपे ॥३॥
अयमेव सो पिङ्गिय वेनसाखो,
यम्हि घातयि खत्तियानं सहस्से,
अलङ्कते चन्दनसारलित्ते,
तमेव दुक्खं पब्बागतं ममं ॥४॥

[यही वह आचार्य का वचन है, पाराशर्य (आचार्य) ने जो कहा था कि तू पाप न करे जो तुझे पीछे कष्ट दे ॥३॥ हे पिङ्गिय ! यही वह विस्तृत शाखाओं वाला वट-वृक्ष है, जहां अलङ्कृत तथा चन्दनसार लगाये हुए हजार क्षत्रियों को मार डाला । अब वही दुःख मेरे पास लौट आया है ॥४॥]

इस प्रकार रोते-पीटते उसने पटरानी को याद किया—

सामापि खो चन्दन खिलगता,
सिङ्गि ख सोमञ्जनकस्स उगता,

अविस्वाव कालं करिस्सामि उब्बरिं,

तं मे इतो दुक्खतरं भविस्सति ॥५॥

[चन्दन लित गातवाली, सिङ्गु (?) वृक्ष की लता के समान ऊपर उठी हुई शोभायमान (मेरी) श्यामा भाव्या है। अब मैं उस उब्बरि को बिना देखे ही मर जाऊँगा यह मेरे लिये इससे भी अधिक दुख दायक होगा।]

वह इस प्रकार विलाप करता हुआ ही मरकर नरक में पैदा हुआ। न वह ऐश्वर्य-लोभी पुरोहित ही उसकी रक्षा कर सका, न उसका अपना ऐश्वर्य। उसके मरते ही भारी सेनायें तितर-धितर हो भाग गईं।

शास्ता ने वह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा बोधिसत्व-राजकुमार था। पिङ्गिय देवदत्त था। प्रसिद्ध आचार्य में ही था।

३५४. उरग जातक

“उरगोव तच्चं जिएणं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ऐसे गृहस्थ के बारे में कही, जिसका पुत्र मर गया था।

क. वर्तमान कथा

कथा उसकी (कथा) सी ही जिसकी भाव्या और पिता मर गया था। इस (कथा) में भी शास्ता वैसे ही उसके घर गये। वह आकर प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने पूछा—आयुष्मान ! क्यों क्या चिन्ता करता है ?”

“हाँ भन्ते ! जब से पुत्र मरा है तब से मैं सोच में पड़ा हूँ।”

“आयुष्मान ! जिसका टूटने का स्वभाव है वह टूट जाता है; जिसका नष्ट होने का स्वभाव है, वह नष्ट हो जाता है। वह न एक ही को होता है, न एक ही गाँव में। अनन्त चक्रवालों तथा तीनों-भवों में एक भी ऐसा नहीं जिसका मरण न हो। उसी अवस्था में ठहरने वाला एक भी शाश्वत संस्कार

नहीं है। सभी प्राणी मरणशील हैं, संस्कार अनित्य हैं (टूटने वाले) हैं। पुराने पण्डितों ने भी पुत्रों के मरने पर 'नष्ट होने वाले नष्ट हो गये' सोच चिन्ता नहीं की।"

यह कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी के द्वार पर के गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो कृषी-कर्म से जीविका चलाते थे। उसका पुत्र और पुत्री, दो बच्चे थे। आसु होने पर वह पुत्र के लिये समान-कुल की लड़की ले आया।

दासी के सहित वे छः जने हो गये—बोधिसत्व, भार्या, पुत्र, लड़की, पुत्र-बधु और दासी। वे आपस में बड़े मेल से, प्रसन्न-चित्त, प्रेम-पूर्वक रहते थे। बोधिसत्व शेष पाँचों को इस प्रकार उपदेश देते—तुम जो मिले उसमें से दान दो, शील की रक्षा करो, उपोसथ-व्रत रखो, मरण-स्मृति की भावना करो, अपने मरण का खयाल करो, इन प्राणियों का मरना निश्चित है, जीना अनिश्चित है, सभी संस्कार अनित्य हैं, क्षय-व्यय स्वभाव वाले हैं। रात दिन अप्रमादी होकर विचरो।

वे 'अच्छा' कह, उपदेश ग्रहण कर, अप्रमादी हो, मरण-स्मृति की भावना करते थे।

एक दिन बोधिसत्व पुत्र के साथ खेत पर जा, हल चला रहे थे। पुत्र कूड़ा निकाल जला रहा था। उसके पास एक बिल में विपैला साँप था। धुआँ उसकी आँखों में लगा। उसने क्रोधित हो, निकल, यह सोच कि इसी से मुझे भय है, चारों दान्त गड़ा कर उसे डस लिया। वह मरकर ही गिर पड़ा। बोधिसत्व ने लौट उसे गिरा देखा तां बैलों को रोक, जाकर उसे मरा पाया, उठा लाकर एक वृद्ध के नीचे लिटा दिया और कपड़े से ढक दिया। वह न रोया, न चिल्लाया। इस प्रकार अनित्यता का विचार कर कि टूटने के स्वभाव वाला टूट गया, मरण-स्वभाव वाला मर गया, सभी संस्कार अनित्य हैं, मरण-शील हैं, वह हल चलाने लगा।

उसने खेत के पास से जाने वाले एक विश्वस्त आदमी को देख कर पूछा—तात ! घर जाते हो ?

“हाँ ।”

“तो हमारे घर जाकर ब्राह्मणी को कहना कि आज पूर्व की तरह दो जनों का भोजन न ला एक ही जने का भोजन लाये। पहले अकेली दासी ही भोजन लाती थी, आज चारों-जने शुद्ध वस्त्र पहन, हाथ में सुगन्धि-फूल लिये आयें ।”

उसने ‘अच्छा’ कह ब्राह्मणी से वैसे ही जा कहा ।

‘तात ! यह सन्देश तुम्हें किसने दिया ?’

“आयें ! ब्राह्मण ने ।”

वह जान गई कि मेरा पुत्र मर गया है, किन्तु उसे कम्पन मात्र भी नहीं हुआ । इसी प्रकार मुसंयत-चित्त वाली वह स्वच्छ वस्त्र पहन हाथ में सुगन्धि-फूल ले, आहार लिवा बाकियों के साथ खेत पर पहुँची । एक भी न रोई, न चिल्लाई । बोधिसत्व ने जहाँ पुत्र पड़ा था, वहीं छाया में बैठकर खाया । भोजनानन्तर सब ने लकड़ियाँ ले, चिता पर रख, गन्ध-पुष्पों से पूजा कर आग लगाई । किसी की आँख से एक बूँद भी आँस नहीं गिरा । सभी ने मरणानुस्मृति का अभ्यास किया था । उनके शील के तेज से शक्र का भवन गर्म हो गया ।

उसने विचार किया—कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है ? उसे पता लगा कि उनके गुण-तेज से ही उसका महल गर्म हुआ है । वह प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि मुझे इनके पास जा इनसे सिंह-घोषणा करा, सिंह-घोषणा कर चुकने पर इनके घर को सात रत्नों से भर देना चाहिये । वह शीघ्रता से वहाँ पहुँचा और दाह-क्रिया के स्थान पर एक और खड़ा होकर बोला—“तात ! क्या करते हो ?”

“स्वामी ! एक मनुष्य को जला रहे हैं ।”

“मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम मनुष्य को नहीं जला रहे हो, किन्तु एक मृग को मार कर पका रहे हो ।”

“नहीं, स्वामी ! मनुष्य को ही जला रहे हैं ।”

“तो किसी बैरी मनुष्य को जला रहे होंगे ?”

“स्वामी ! बैरी-पुरुष नहीं है, औरस-पुत्र है ।”

“तो अप्रिय-पुत्र होगा ।”

“स्वामी ! मेरा अति-प्रिय पुत्र है ।”

“तो क्यों नहीं रोते हो ?”

उसने न रोने का कारण कहते हुए पहली गाथा कही—

उरगोव तच्च जिण्यं हित्वा गच्छति संतनुं

एवं सरीरे निम्भोगे पेटे कालकृते सति ।

बद्धमानो न जानाति आतीनं परिदेवितं,

तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥१॥

[जिस प्रकार सर्प अपनी केचुली को छोड़कर चला जाता है, उसी प्रकार (प्राणी) अपने शरीर को छोड़कर चला जाता है । इस प्रकार भोगहीन शरीर के काल कर जाने पर जब उसे जलाया जाता है तो वह रिश्तेदारों के रोने को नहीं जानता है । इसलिए मैं इसकी सोच नहीं करता हूँ । वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥१॥]

शक्र ने बोधिसत्व की बात सुन ब्राह्मणी से पूछा—“माँ ! तेरा वह क्या होता था ?”

“स्वामी ! दस महीने कोख में लेकर, स्तन पान करा, हाथ पाँव ठीक कर पाला पोसा हुआ पुत्र ।”

“माँ ! पिता चाहे पुरुष होने के कारण न रोये, किन्तु माता का हृदय कोमल होता है, तू क्यों नहीं रोती ?”

उसने न रोने का कारण कहते हुये ये दो गाथायें कहीं—

अनन्भितो ततो आग अननुज्जातो इतो गतो,

यथागतो तथागतो तत्थ का परिदेवना ॥१॥

उद्धमानो न जानाति आतीनं परिदेवितं,

तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[बिन बुलाये वहाँ से आया, बिना आज्ञा लिये यहाँ से गया । जैसे आया, वैसे चला गया, उसमें अब रोना पीटना क्या ? ॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता । इसलिये मैं उसकी सोच नहीं करती हूँ । वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥]

तब शक्र ने ब्राह्मणी की बात सुन वहन से पूछा—

“अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?”

“स्वामी ! मेरा भाई होता था ।”

“अम्म ! वहनों का भाई से प्रेम होता है । तू क्यों नहीं रोती ?”

उसने भी न रोने के कारण कहते हुए ये दो गायार्थे कहीं—

सचे रोदे किंसा अस्सं तस्सा मे किं फलं सिया,

आतिमिच्चासुहज्जनं भीयो नो अरती सिया ॥१॥

उटहमानो न जानाति आतीनं परिदेवितं,

तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[यदि रोज़ों का कृष हो जाऊँगी, उससे मुझे क्या लाभ होगा ? हमारे आती-मित्र तथा सुहृदों को और भी अरुचि होगी ॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तादारों के रोने-पीटने को नहीं जानता । इसलिये मैं उसकी सोच नहीं करती हूँ । वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥]

शक्र ने वहन की बात सुन उसकी भार्य्या से पूछा—

“अम्म ! तेरा वह क्या था ?

“स्वामी ! मेरा पति था ।”

“पति के मरने पर स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, अनाथ । तू क्यों नहीं रोती ?”

उसने भी उसे (अपना) न रोने का कारण बताते हुए ये दो गायार्थे कहीं—

यथापि दारकोचन्दं गच्छन्तं अनुरोदति,

एवं सम्पदमेवेतं योपेतमनुसोचति ॥१॥

उटहमानो न जानाति आतीनं परिदेवितं,

तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[जैसे बालक जाते हुए चन्द्रमा को देख (उसे लेने के लिये) रोता है, वैसा ही उसका आचरण है जो किसी मरे हुए को रोता है ॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने पीटने को नहीं जानता । इसलिये मैं उसकी सोच करती हूँ । वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ।]

शक्र ने भार्य्या की बात सुन दासी से पूछा—

“अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?”

“स्वामी ! मेरा आर्य ।”

“निश्चय से उसने तुझे पीड़ित कर पीटकर काम लिया होगा, इसी से तू सोचती है कि अच्छा हुआ यह मर गया, और रोती नहीं है ।”

“स्वामी ! ऐसा न कहें । यह इनके योग्य नहीं है । जमा, मैत्री तथा दया से युक्त मेरा आर्य-पुत्र हृदय से पाले पुत्र के समान था ।”

“अम्म ! तो तू क्यों नहीं रोती है ?”

उसने भी अपना न रोने का कारण कहते हुए दो गाययें कहीं—

यथापि उदककुम्भो भिन्नो अप्पटिसन्धयो,

एवं सम्पदमेवेतं यो पेतमनुसोचति ॥

ब्रह्मानो न जानाति आतीनं परिदेवितं

तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥

[जैसे टूटा हुआ पानी का घड़ा फिर जुड़ नहीं सकता (और उसके लिये रोना बेकार होता है) वैसा ही उसका आचरण है जो मरे के लिये रोता है । जलाया जाता हुआ०]

शक्र ने सब की धर्म-कथा सुन प्रसन्न होकर कहा “तुमने अप्रमादी हो मरणानुस्मृति का अभ्यास किया है । अब से तुम अपने हाथ से काम न करो । मैं शक्रदेवराज हूँ । मैं घर में अनन्त सात-रत्न कर दूँगा । तुम दान दो, शील रखो, उपोसथ व्रत करो और अप्रमादी रहो ।” उन्हें उपदेश दे और उनके घर को असीम धन से भर शक्र चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों का प्रकाशन होने पर गृहस्थ स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय दासी खज्जुत्तरा थी । लड़की उत्पल-वर्णा थी । पुत्र राहुल था । माता खेमा थी । ब्राह्मण तो मैं ही था ।

३५५. घत जातक

“अब्जो सोचन्ति रोदन्ति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राज के एक अमात्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा उक्त कथाके समान ही है। इस (कथा) में राजा ने अपने उपकारी अमात्य को बहुत सा ऐश्वर्य्य दे, (फिर) फूट डालने वालों की बात पर विश्वास कर उसे बंधवा कारागार में डलवा दिया। उसने वहाँ बैठे बैठे सोतापत्ति-मार्ग प्राप्त कर लिया। राजा ने उसके गुणों को याद कर उसे छुड़वाया। वह सुगन्धि-माला ले, शास्ता के पास जाकर प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने उसे पूछा—

“तेरे साथ अनर्थ हुआ ?”

“हाँ भन्ते ! लेकिन अनर्थ में से मुझे अर्थ प्राप्त हो गया। सोतापत्ति-मार्ग का लाभ हुआ।”

“उपासक ! तूने ही अनर्थ से अर्थ की प्राप्ति नहीं की है, पुराने पण्डितों ने भी अनर्थ से अर्थ की प्राप्ति की है।”

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में गर्भ धारण किया। उसका नाम रखा गया धृत कुमार। वह आगे चलकर तक्षशिला जा, शिल्प सीख धर्मानुसार राज्य करने लगा। उसके अन्तःपुर में एक अमात्य ने दुराचार किया। उसने उसका दोष प्रत्यक्ष देख उसे देश से निकाल दिया।

उस समय श्रावस्ती में धङ्गराजा राज्य करता था। उसने उसके पास जा उस की सेवा में रह, अपनी बात मना, वाराणसी राज्य जितवा दिया। उसने राज्य ले बोधिसत्व को जंजीर से बन्धवा, कारागार में डलवा दिया। बोधिसत्व

ध्यानारूढ़ हो आकाश में पालथी मार बैठे । धङ्क का शरीर जल उठा । उसने जाकर बोधिसत्व के मुँह को देखा । वह सोने के दर्पण की तरह, खिले कमल की तरह शोभा-युक्त था । उसने बोधिसत्व को पूछते हुए यह पहली गाथा कही:—

अग्ने सोचन्ति रोदन्ति अग्ने असुमुखा जना,
पसन्नमुखवयणोसि कस्मा घत न सोचसि ॥

[हे घृत ! तुझे छोड़ कर अन्य लोग रोते हैं, अन्यो के मुँह पर आँसू हैं । तेरा मुख-वर्ण प्रसन्न है । तू क्यों नहीं रोता है ?]

बोधिसत्व ने उसे अपने न सोचने का कारण कहते हुए शेष गायार्थे कही—

नाम्भतीतहरो सोको नानागतसुखावहो,
तस्मा धङ्क न सोचामि नत्थि सोके दुत्तीयता ॥
सोचं पण्डुं किंसो होति भत्तञ्चस्स न रुच्चति,
अमित्ता सुमना होन्ति सत्तविद्धस्स रूपतो ॥
गामे वा यदि वा रग्गे निन्ने वा यदि वा थत्थे,
ठितं मं नागमिस्सति एवं विट्ठपदो अहं ॥
यस्सत्ता नात्तमेकोव सत्तकामरसाहरो.
सम्भापि पठवी तस्स न सुखं आवहिस्सति ॥

[न तो बीते सुख को ला सकता है, न भविष्यत् के सुख को । शोक किसी प्रकार सहायक (-द्वितीय) नहीं होता । इसलिये धङ्क मैं चिन्ता नहीं करता । चिन्ता करने से पाण्डु-वर्ण हो जाता है, कृषगात्र हो जाता है । चिन्ता करने वाले को भात भी अच्छा नहीं लगता । शोक-शल्य से दुःख पाने वाले के शत्रु प्रसन्न होते हैं ॥ हे धङ्क ! मैंने अब वह पद प्राप्त कर लिया है कि चाहे मैं गाँव में रहूँ, चाहे आरण्य में रहूँ, चाहे निम्न स्थान में रहूँ, चाहे स्थल पर रहूँ—कहीं रहूँ—मेरे पास पाण्डु-वर्ण होना आदि दुःख नहीं आयेंगे ॥ जिसका अकेला अपना आप ही उसे सब काम-रस (सुख) नहीं दे सकता, उसे सारी पृथ्वी भी सुखी नहीं कर सकती ॥]

धङ्क यह चारों गायार्थे सुन, बोधिसत्व से क्षमा मांग, राज्य सौंप, चला गया । बोधिसत्व भी अमात्यों को राज्य सौंप, हिमालय को जा, श्रद्धा-प्रब्रज्या ले, ध्यानावस्थित हो, ब्रह्मलोकगामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय धङ्क राजा आनन्द था । धृत-राजा तो मैं ही था ।

३५६. कारण्डिय जातक

“एको अरब्जे.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्म-सेनापति के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

स्थविर जो जो दुराचारी आते—शिकारी, मछुवे आदि—जिसे जिसे देखते सभी को ‘शील लो, शील लो’ कह शील देते । वह स्थविर के प्रति आदर का भाव होने से और उनकी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण शील ले लेते, किन्तु शील ग्रहण कर उसकी रक्षा न करते । (शिकार करना, मछली पकड़ना आदि) अपना काम ही करते । स्थविर ने अपने साथियों को बुलाकर कहा—आयुष्मानो, इन मनुष्यों ने मुझसे शील ग्रहण किये । लेकिन ग्रहण करके उनकी रक्षा नहीं की ।

“मन्ते ! आप उनकी अरुचि से उन्हें शील देते हैं । यह आप की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण ग्रहण करते हैं । आप अब से ऐसों को शील न दें ।”

स्थविर असन्तुष्ट हो गये । यह समाचार सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, आयुष्मान सारिपुत्र जिसे देखते हैं उसे शील देते हैं । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ? “अमुक बात चीत ।” “न केवल अभी भिक्षुओ, यह पहले भी जिसे देखते उसे बिना मांगे ही शील देते थे” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर, बड़े होने पर तक्षशिला के प्रसिद्ध शिष्य हुए । नाम था कारण्डव्य ।

उस समय वह आचार्य्य जिसे जिसे देखते—मनुष्यों आदि को—बिना मांगे ही 'शील लो, शील लो' कह शील देते । वे ग्रहण करके भी नहीं रखते थे । आचार्य ने वह बात अपने शिष्यों से कही । शिष्यों ने उत्तर दिया—भन्ते ! आप इनकी अरुचि से ही शील देते हैं । इसीलिये शील भङ्ग करते हैं । अब से मांगने वालों को ही शील दें, बिना मांगे नहीं । वह असन्तुष्ट हुए । किन्तु, ऐसा होने पर भी जिसे जिसे देखते शील दे ही देते ।

एक दिन एक गाँव से लोग आये और उन्होंने आचार्य्य को पाठ करने के लिये^१ निमन्त्रित किया । उसने कारण्डव्य माणव को बुलाकर भेजा—तात ! मैं नहीं जाता हूँ । तू इन पाँच सौ ब्रह्मचारियों को ले, वहाँ जा, पाठ समाप्त कर हमारा हिस्सा ले आ ।

उसने जा लौटते समय रास्ते में एक कन्दरा को देख कर सोचा—हमारा आचार्य्य जिसे देखता है, बिना मांगे ही शील दे देता है । अब से ऐसा करूँगा कि वह शील की मांग करने वालों को ही शील दे । जिस समय वह ब्रह्मचारीमुख से बैठे थे, उसने उठकर एक बड़ी शिला उठा कर कन्दरा में फेंकी । फिर (एक और भी) फेंकी । फिर भी फेंकी ।

उन ब्रह्मचारियों ने उठकर पूछा—आचार्य्य ! क्या करते हो ? वह कुछ नहीं बोला । उन्होंने जल्दी से आकर आचार्य्य से कहा । आचार्य्य ने आकर उसके साथ बात चीत करते हुए पहली गाथा कही—

एको अरञ्जे गिरिकन्दरायं,
पग्गय्ह पग्गय्ह सिखं पवेउम्मसि,
पुनप्पुनं सन्तरमानरूपो,
कारण्डव्य को नु तवयिअत्थो ॥१॥

ब्राह्मण वाचन-कथा ।

[कारण्डिय ! तू अकेला जंगल में पर्वत-कन्दरा पर चढ़-चढ़कर बार-बार बहुत जल्द-बाज की तरह शिला फेंक रहा है, इससे तुझे क्या लाभ है ?]

उसने उसकी बात सुन आचार्य्य को दोषी ठहराने के लिये दूसरी गाथा कही—

अहं हिमं सागरसेवितन्तं,
समं करिस्सामि यथापि पाणिं,
विकिरिय सानूनि च पण्णतानि च,
तस्मा सिलं दरिया पक्खिपामि ॥२॥

[मैं इस सागर से घिरी पृथ्वी को बालू-पर्वत तथा शिलापर्वतों को विखेर कर हाथ की हथेली के समान बराबर कर दूँगा । इसी लिये कन्दरा में शिलाओं को फेंक रहा हूँ ।]

इसे सुन ब्राह्मण ने तीसरी गाथा कही—

नयिमं महिं अरहति पाणिरुपं,
समं मनुस्सो करणायमेको,
मज्झामि मज्जेव दरिं जितिसं,
कारण्डिय हाहसि जीवलोकं ॥३॥

[कारण्डिय ! अकेला मनुष्य इस पृथ्वी को हाथ की हथेली के समान करने में असमर्थ है । मैं मानता हूँ कि इसी एक कन्दरा को भरने का प्रयत्न करते हुये (तू) जीव-लोक को छोड़ जायेगा ।]

यह सुन ब्रह्मचारी ने चौथी गाथा कही—

सचे अयं भूतधरं न सक्को,
समं मनुस्सो करणायमेको,
एवमेव त्वं ब्रह्मे इमे मनुस्से,
नानादिट्ठिके नानयिस्ससि से ॥४॥

[यदि एक मनुष्य इस पृथ्वी को समान नहीं कर सकता, तो हे ब्रह्म ! तू भी इन नाना दृष्टि के लोगों को (अपने मत में) न ला सकेगा ।]

इसे सुन आचार्य्य ने सोचा, कारण्डिय ठीक कहता है । अब से ऐसा न करूँगा । उसने 'अपने से विरुद्ध होना' जान पांचवीं गाथा कही—

सङ्कितरूपेण भवं ममार्थं,
अक्खासि कारण्डिय एवमेतं,
यथा न सक्का पठवीसमार्यं,
काहुं मनुस्सेन तथा मनुस्सा ।

[कारण्डिय ! आपने मुझे संक्षेप से यह बात समझाई कि जिस प्रकार (एक) मनुष्य इस पृथ्वी को समान नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोई (सारे) मनुष्यों को भी ।]

इस प्रकार आचार्य ने ब्रह्मचारी की प्रशंसा की । वह भी उसे समझा कर घर ले गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय ब्राह्मण सारिपुत्र था, कारण्डिय-पंडित तो मैं ही था ।

३५७. लटुकिक जातक

“धन्दामि तं कुब्जर सट्टिहायनं...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त कठोर है, पुरुष है, दुस्साहसी है । प्राणियों के प्रति उसमें करुणा भी नहीं है । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने ‘न केवल अभी, भिक्षुओं यह पहले भी करुणा-रहित ही था’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हाथी की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर सुन्दर, महान् शरीर वाले हो, अस्सी हजार हाथियों के नेता बन, हिमालय प्रदेश में रहने लगे।

उस समय एक लटुकिका चिड़ी ने हाथियों के विचरने की जगह पर अण्डे दिये। अण्डे सेये जाकर उनमें से चोगे बाहर आये। अभी जब उनके पर नहीं निकले थे, जब वह उड़ नहीं सकते थे, उसी समय हजार हाथियों के साथ बोधिसत्व चरते-चरते वहां आ पहुँचे। उसे देख लटुकिका ने सोचा— यह हस्ति-राज मेरे बच्चों को कुचल कर मार देगा। हन्त ! मैं इन बच्चों की रक्षा के लिये इससे धार्मिक-याचना करूँ। उसने दोनों पक्ष जोड़ उसके आगे खड़ी हो पहली गाथा कही—

वन्दामि तं कुञ्जरसट्टिहायनं,
आरब्धकं यूथपतिं यसस्सि,
पक्खे हि तं पञ्चलिकं करोमि,
मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥१॥

[हे आरण्यक ! हे यूथपति ! हे यशस्वी ! हे साठे हाथी ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। मैं पक्षों से तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ—सुभ दुर्बल के पुत्रों का बध मत करो ॥१॥]

बोधिसत्व ने कहा—लटुकिके ! मैं तेरे पुत्रों की रक्षा करूँगा। तू चिन्ता न कर। वह उन बच्चों के ऊपर खड़े हो गये। फिर अस्सी हजार हाथियों के चले जाने पर लटुकिका को सम्बोधितकर कहा—हमारे पीछे एक अकेला हाथी आती है। वह हमारा कहना नहीं मानता। उसके आने पर उससे भी प्रार्थना कर पुत्रों की रक्षा करना। यह कह चला गया।

उसने उसका स्वागत कर दो पक्षों से हाथ जोड़ दूसरी गाथा कही—

वन्दामि तं कुञ्जरपुक्कचारिं
आरब्धकं पञ्चतसानुगोचरं,
पक्खेहि तं पञ्चलिकं करोमि
मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥२॥

[हे आरण्यक ! हे पर्वत-वासी ! हे एकचारी कुब्जर ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । मैं पड़्यों से तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का बध मत करें ।]

उसने उसकी बात सुन तीसरी गाथा कही:—

वधिस्सामि ते लडकिके पुत्तकानि
किं मे तुवं काहसि दुब्बलासि,
सतंसहस्सानिपि तादिसीनं
वामेन पादेन पपोधयेद्व्यं ॥

[लडकिके ! तू दुर्बल है, मेरा क्या करेगी ? मैं तेरे बच्चों को मारूँगा । तेरे जैसी लाखों को भी मैं बायें पाँव से कुचल दूँगा ।]

यह कह वह उसके बच्चों को पाँव से चूर्ण-विचूर्ण कर उन्हें अपने मूत्र से बहा चिंघाड़ता हुआ चला गया । लडकिका ने वृक्ष की शाखा पर बैठ—हाथी ! अब तो तू चिंघाड़ता हुआ जाता है । कुछ दिन में मेरी क्रिया देखेगा । तू नहीं जानता है कि शरीर-बल से ज्ञान-बल बढ़ कर है । अच्छा तुम्हें जनाऊँगी । उसे धमकाने हुए चौथी गाथा कही:—

न हेव सम्बत्थ बलेन किञ्च
बलं हि बालस्स वधाय होति,
करिस्सामि ते नागराजा अनर्थं
यो मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥

[बल ही सर्वत्र काम नहीं देता । बल मूर्खों के बध का कारण होता है । हे नागराज तूने मुझ दुर्बल के बच्चों को मारा है, मैं भी तेरा अनर्थ करूँगी ।]

यह कह उसने कुछ दिन एक कौवे की सेवा की । कौवे ने प्रसन्न होकर पूछा—तेरे लिये क्या करूँ ?

“स्वामी ! मैं और कुछ नहीं कराना चाहती, केवल यही आशा करती हूँ कि आप अपनी चौंच से इस अकेले घूमने वाले हाथी की आँख फोड़ दें ।”

उसके ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर लेने पर उसने एक मक्खी की सेवा की । उसके भी ‘तेरे लिये क्या करूँ ?’ पूछने पर ‘इस कौवे द्वारा इस अकेले

घूमने वाले हाथी की आँख फोड़ दिये जाने पर, मैं तुमसे चाहती हूँ कि तुम उस जगह पर अण्डा दे देना ।' उसने भी 'अच्छा' कह स्वीकार किया । तब उसने एक मेंढक की सेवा की । उसने पूछा—“क्या करूँ ?”

“जब अकेला घूमने वाला हाथी अन्धा हो पानी की खोज करे, तब तुम पर्वत के ऊपर खड़े हो आवाज करना और उसके पर्वत पर चढ़ जाने पर, तुम उतर कर (नीचे) प्रपात में आवाज लगाना । मैं इतना ही तुमसे चाहती हूँ ।”

उसने उसकी बात सुन 'अच्छा' कह स्वीकार किया ।

एक दिन कौवे ने हाथी की दोनों आँखें चोंच से फोड़ दीं । मक्खी ने आकर अण्डे दे दिये । वह कीड़ों से खाया जाता हुआ, वेदना से व्याकुल हो, पानी खोजता हुआ घूमता था । उसी समय मेंढक ने पर्वत के ऊपर खड़े हो आवाज दी । हाथी 'यहाँ पानी होगा' समझ पर्वत पर चढ़ा । मेंढक ने उतर प्रपात में खड़े हो आवाज लगाई । हाथी 'पानी होगा' समझ प्रपात की ओर जाता हुआ फिसल कर पर्वत के नीचे गिरा और मर गया ।

लटुकिका ने उसे मरा जाना, तो प्रसन्न हुई कि शत्रु की पीठ देख ली । वह उसके शरीर पर चल फिर कर यथा-कर्म (परलोक) गई ।

“भिन्नुओ ! किसी के साथ वैर नहीं करना चाहिये । इस प्रकार के बलवान हाथी को भी इन चार जनों ने मिलकर मार डाला” कह शास्ता ने निम्नलिखित अभिसम्बुद्ध गाथा कही और जातक का मेल बैठाया:--

काकञ्च पस्स लटुकिकं मण्डुकं नीलमखिलकं,

एते नागं अपातेसुं पस्स वेरस्स वेरिनं,

तस्मा वेरं न कथिराय अपियेनपि केनचि ॥

[वैरियों के वैर की (दुर्गति) देखो—कौवे, लटुकिका, मेंढक और मक्खी ने (मिलकर) हाथी को मार डाला । इसलिये किसी अप्रिय से भी वैर न करे ।]

तब अकेला विचरने वाला हाथी देवदत्त था । हाथियों के समूह का नेता तो मैं ही था ।

३५८. चुल्लधम्मपाल जातक

“अहमेव दूसिया भूनहता.....” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बध करने के प्रयत्न के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

दूसरी जातक कथाओं में देवदत्त बोधिसत्व को त्रास भी नहीं पहुँचा सका । लेकिन इस चुल्लधम्मपाल जातक^१ में तो सात महीने की अवस्था में बोधिसत्व के हाथ, पैर, सिर कटवा कर अग्निमालक बनाया । दहर जातक^२ में गर्दन मरोड़ कर मार डाला और चूल्हे पर माँसपका कर खाया । खन्ति-वादि जातक^३ में दो चाबुकों से हजार चाबुक मार, हाथ, पाँव तथा कान, नाक, काट जटाओं से पकड़ कर खींचा और चित लिटाकर छाती में पैर की ठोकर लगा भाग गया । बोधिसत्व ने उसीदिन प्राण त्याग किया । चुल्लनन्दिय जातक^४ तथा महाकपि जातक^५ में भी मार ही डाला । इस प्रकार दीर्घकाल तक बध के लिए प्रयत्न करते रह बुद्ध (होने के) समय भी प्रयत्न किया । एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बात चलाई—आयुष्मान देवदत्त बुद्धों के मारने का उपाय करता है । सम्यक सम्बुद्ध को मारने के लिये उसने धनुर्धारियों को नियुक्त किया, शिला गिराई, नालागिरी (हाथी) भेजा । शास्ता ने पूछा— भिक्षुओं, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर ‘न केवल अभी किन्तु भिक्षुओं, पहले भी मेरे बध के लिये प्रयत्न

^१ चुल्लधम्मपाल जातक (३५८)

^२ दहर जातक (१७२)

^३ खन्ति-वादि जातक (३१३)

^४ चुल्लनन्दिय जातक (२२२)

^५ महाकपि जातक (४०७)

किया है, अब तो त्रास मात्रभी नहीं दे सका है, किन्तु पहले धर्मपाल-कुमार के समय अपने पुत्र समान मुझे मरवा कर असिमालक बनवाई' कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महाप्रताप राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व उसकी चन्दा देवी नामक पटरानी की कोख से पैदा हुए। नाम धर्मपाल रक्खा गया। सात महीने की अवस्था में माता उसे सुगन्धित जल से नहला, सजा, बैठी खिला रही थी। राजा उसके निवास-स्थान पर गया। वह पुत्र से खेल रही थी। इसलिये स्नेह के वशी भूत हो वह राजा को देख कर भी नहीं उठी। राजा ने सोचा—यह अभी पुत्र के कारण मान करती है, मुझे कुछ भी नहीं समझती। पुत्र के बढ़ने पर मुझे मनुष्य भी नहीं समझेगी। अभी मरवाता हूँ।

उसने लौट, जाकर, राज्यासन पर बैठ घातक को आज्ञा भिजवाई—अपनी तैय्यारी के साथ आये। वह कापाय वस्त्र पहने, लाल माला धारण किये, कन्धे पर फरसा लिये, अपने सिर के नीचे रखने के वर्तन तथा हाथ पाँव जकड़ने के दण्डों के साथ आ पहुँचा और राजा को प्रणाम कर बोला—देव ! क्या करूँ ?

“देवी के शयनागार में जा धर्मपाल को ले आ।” देवी भी राजा के क्रुद्ध होकर लौटने की बात समझ बोधिसत्व को छाती से लगाए बैठी रो रही थी।

घातक ने जाकर उसकी पीठ पर मुक्का मार हाथ से कुमार को छीन लिया और राजा के सामने लाकर बोला—देव क्या करूँ ? राजा ने आज्ञा दी—एक पटड़ा मंगवा कर, सामने बिछवा। इसे उस पर लिटा। उसने वैसा ही किया। चन्दा-देवी पुत्र के पीछे रोती हुई आई। घातक ने फिर पूछा—देव ! क्या करूँ ?

धर्मपाल के हाथ काट। चन्दादेवी—महाराज। मेरा पुत्र सात महीने का बच्चा है। कुछ नहीं जानता। इसका कुछ दोष नहीं है। दोष बढ़ा होने पर भी मेरा ही होगा, इसलिए मेरे हाथ कटवायें।

यही बात प्रगट करते हुए उसने पहली गाथा कही:—

अहमेव दूसिया भूनहता रब्जो महापतापस्स,

एतं सुञ्चतु धम्मपालं हत्थे मे देव छेदेहि ॥

[मैं भ्रूण हत्यारी ही राजा महाप्रताप की दोषी हूँ । देव ! इस धर्मपाल को छोड़ दें, मेरे हाथ काट दें ।]

राजा ने घातक की ओर देखा । देव क्या करूँ ? देर न करके हाथ काट डाल ! उसी क्षण घातक ने तेज फरसा ले कुमार के नये बाँस के पोरे के समान दोनों हाथ काट डाले । हाथ कटते समय न वह रोया न चिल्लाया । शान्ति तथा मैत्री को आगे करके (दुःख) सह लिया ।

चन्दादेवी कटे हाथों को गोद में ले, लहू से तर-बतर हो, रोती पीटती घूमने लगी । घातक ने फिर पूछा—देव क्या करूँ ? “दोनों पाँव काट ।” यह सुन चन्दा देवी ने दूसरी गाथा कही:—

• अहमेवदूसिया भूनहता रब्जो महापतापस्स,

एतं सुञ्चतु धम्मपालं पादे मे देव छेदेहि ॥

[अर्थ पूर्वाक्तानुसार ही है] राजा ने भी फिर घातक को आज्ञा दी । उसने दोनों पाँव काट डाले । चन्दा देवी ने कटे पैरों को गोद में ले लहू से तर-बतर हो रोते-चिल्लाते हुए कहा—स्वामिन ! महाप्रताप क्या तुम्हारे द्वारा कटे हाथ पैर वाले बच्चों का पालन पोषण माताओं द्वारा नहीं कराया जाना चाहिए ? मैं मजदूरी करके इसे पोस लूँगी । मुझे इसे दें । घातक ने पूछा—देव, राजाज्ञा का पालन हुआ, क्या मेरा काम समाप्त है ?

“नहीं अभी समाप्त नहीं”

“तो क्या करूँ”

“इसका सिर काट डाल ।”

चन्दा देवी ने तीसरी गाथा कही:—

अहमेव दूसिया भूनहता रब्जो महापतापस्स,

एतं सुञ्चतु धम्मपालं सीसं मे देव छेदेहि ॥

‘यह कह’ उसने अपना सिर आगे कर दिया । घातक ने फिर पूछा—देव क्या करूँ ?

“इसका सिर काट डाल ।”

उसने सिर काट कर पृष्ठा -- देव ! राजाशा का पालन हो गया !

“नहीं अभी नहीं ।”

“देव क्या करूँ ?”

तलवार की नोक पर इमे ले ‘असिमाला’ बनाओ ।

उसने उसकी लाश को आकाश में फेंक तलवार की नोक पर ले ‘असिमाला’ बना महान तल्ले पर बिखेर दिया । चन्दादेवी बोधिसत्व के मांस को गोद में ले महान तल्ले पर रोंत ! पीटती ये गाथायें बोली:—

नहनूनिमस्स रब्भो मित्ता मच्चाव विज्जरे सुहदा,

ये न वदन्ति राजानं मा घातयि ओरसं पुत्तं ॥

नहनूनिमस्स रब्भो मित्ता आतीव विज्जरे सुहदा,

ये न वदन्ति राजानं मा घातयि अन्नजं पुत्तं ॥

[निश्चय से इस राजा के कोई मित्र, अमात्य या सुहृद (ऐसे) नहीं है जो राजा को कहें कि अपने ओरस-पुत्र की हत्या मत करा ।]

ये दो गाथायें कह चन्दा देवी ने दोनों हाथों से हृदय-मांस को सँभालते हुए तीसरी गाथा कही:—

चन्दनसारानुलिप्ता बाहा छिज्जन्ति धम्मपालस्स,

दायादस्स पठव्या पाणा मे देव रुज्जन्ति ॥

[पृथ्वी (राज्य) के उत्तराधिकारी धम्मपाल की चन्दन सार से लिप्त बाहें छीज रही हैं (पैर छीज रहें हैं, सिर छीज रहा है); और (यह देख) हे देव ! मेरे प्राण अवरुद्ध होते हैं ।]

उसके इस प्रकार रोंते हुए, जलते वेणुवन में वेणु के फटने के समान उसका हृदय फट गया । उसका वहीं शरीरांत हो गया । राजा सिंहासन पर न बैठा रह सका । महान तल्ले पर गिरा । दरार फट गई । वह वहाँ से पृथ्वी पर आ पड़ा । दो लाख चुरान्नवे योजन घनी मोटी पृथ्वी भी उसका दगुण न सह सकने के कारण फट पड़ी और उसने रास्ता दिया । अवीची (नरक) से ज्वाला उठी और उसने कुल-प्रदत्त कम्बल में लपेट लेने की तरह उसे लपेट अवीची नरक में फेंका । आमात्यों ने चन्दा और बोधिसत्व का शरीर-कृत्य किया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा देवदत्त था। चन्दा देवी महा प्रजापती गौतमी। धम्मपाल कुमार तो मैं ही था।

३५६. सुवर्णमणि जातक

“विक्कम रे महामणि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती की एक कुल-कन्या के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती में दोनों प्रधान-श्रावकों के सेवक-परिवार की लड़की थी—श्रद्धालु, बुद्ध, धर्म तथा संघ को प्यार करने वाली, सदाचारिणी, पण्डिता और दान आदि पुण्य-कर्मों में रत। उसे श्रावस्ती में ही दूसरे समान जाति के कुल में, जो मिथ्या-मत मानने वाला था, व्याह्र दिया गया। उसके माता पिताने कहा—हमारी लड़की श्रद्धालु है, तीनों रत्नों को प्यार करती है, और दानादि पुण्य क्रियाओं में रत है। तुम मिथ्या-दृष्टि वाले होने से इसे भी यथा-रुचि दान देना, धर्म सुनना, विहार जाना, शील पालन करना अथवा उपोसथ-व्रत धारण करना न करने दोगे। इसलिये हम इसे तुम्हें नहीं देंगे। अपने जैसे मिथ्या-दृष्टि कुल से ही कुमारी ले आओ।” वे बोले—“तुम्हारी लड़की हमारे घर जाकर यथारुचि यह सब करे। हम उसे नहीं रोकेंगे। हमें दे”।”

“तो ले जाओ।”

वह शुभ नक्षत्र में (विवाह-) मङ्गल कर उसे अपने घर ले आये।

वह लड़की कर्तव्य-परायण सदाचारिणी थी, पति को देवता तुल्य समझती थी और सास-श्वसुर तथा पति (की सेवा आदि) के कर्तव्य किये ही रहती थी। एक दिन उसने अपने पति से कहा—

“आर्यपुत्र ! मैं अपने कुल-विश्वस्त स्थविरो को दान देना चाहती हूँ ।”

“भद्रे ! अच्छा यथा-रुचि दे ।”

उसने स्थविरो को निमन्त्रण भिजवा बड़ा सत्कार कर, प्रणीत भोजन करा, एक ओर बैठ कर प्रार्थना की—भन्ते ! यह मिथ्या-दृष्टि कुल है, अश्रद्धावान् तीनों रत्नों के गुणों से अपरिचित । अच्छा हो, आर्य ! जब तक इस कुल के लोग तीन-रत्नों के गुणों से परिचित हों, तब तक यहीं भिक्षा ग्रहण करें ।

स्थविरो ने स्वीकार किया और प्रति दिन उसी घर में भोजन करने लगे ।

उसने फिर अपने पति से कहा—आर्य पुत्र ! स्थविर यहाँ प्रतिदिन आते हैं । तुम क्यों उनके दर्शन नहीं करते ?

“अच्छा, करूँगा ।”

उसने अगले दिन फिर स्थविरो के भोजन कर चुकने पर उसे कहा । वह जाकर स्थविरो से कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा । धर्म-सेनापति ने उसे धर्मोपदेश दिया । वह स्थविर के धर्मोपदेश तथा उनकी चर्या पर प्रसन्न हुआ और तब से स्थविरो के लिए आसन विछाता, पानी छानता और भोजनान्तर धर्मोपदेश सुनता । आगे चलकर उसकी मिथ्या-दृष्टि जाती रही । एक दिन स्थविर ने उन दोनों को धर्मोपदेश देते हुए (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया । सत्यों के अन्त में दोनों श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए । उसके बाद उनके माता पिता से आरंभकर दास तथा नौकरों चाकरो तक सभी मिथ्यादृष्टि छोड़ बुद्ध, धर्म तथा संध के भक्त हो गये । एक दिन उस लड़की ने पति से निवेदन किया—आर्य पुत्र ! मुझे गृहस्थी से क्या ? मैं प्रव्रजित होना चाहती हूँ । वह बोला—भद्रे, अच्छा मैं भी प्रव्रजित होऊँगा और अनेक लोगों के साथ उसे भिक्षुणी-उपाश्रय ले जाकर प्रव्रजित कराया और स्वयं भी शास्ता के पास जा प्रव्रज्या की याचना की । शास्ता ने उसे प्रव्रज्या तथा उपसंपदा दी । उन दोनों ने विदर्शना-भावना का अभ्यास कर अचिर काल में ही अर्हत्व प्राप्त किया । एक दिन धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक नाम की तरुण भिक्षुणी अपनी सहायक हुई । अपने स्वामी की ।

वह स्वयं भी प्रब्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुई और उसे भी अर्हत्व की प्राप्ति कराई। शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिन्नुओ ! न केवल अभी इसने स्वामी को राग-पाश से मुक्त किया है, किन्तु इसने पहले भी पुराने पड़ितों को मरण-पाश से मुक्त किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व मृगयोनि में पैदा हुए। बड़े होने पर सुन्दर हुआ, मनोरम हुआ, दर्शनीय हुआ। वह स्वर्णवर्ण का था, उसके हाथ पाँव ऐसे थे मानो लाखरस से चित्रित हों, सींग ऐसे थे मानो चाँदी की माला हों, आँखें ऐसी थीं मानो मणियाँ हों, मुँह ऐसा था मानो लाल-कम्बल की गेंद हो। उसकी भार्या भी तृण मृगी सुन्दर थी, मनोरम थी। वे मेल से रहते थे। अस्सी हज़ार सुन्दर मृग बोधिसत्व की सेवा में थे। उस समय शिकारी मृगों का बध करते थे, जाल लगाते थे।

एक दिन बोधिसत्व मृगों के आगे-आगे जा रहा था। उसका पाँव जाल में फँस गया। जाल को तोड़-डालूँ गा, सोच उसने पाँव खींचा। चमड़ा छिल गया। और खींचा तो मांस कट गया, नस कट गई और जाल हड्डी पर जाकर ठहरा। जब वह जाल को न छेद सका तो उसने मरण-भय से भयभीत हो बन्धन-शब्द किया। उसे सुन भयभीत मृग-समूह भाग गया। लेकिन उसकी भार्या ने भागते समय, जब उसे मृगों में नहीं देखा तो सोचा, यह इतना मेरे प्रिय स्वामी को पैदा हुआ होगा। वह शीघ्रता से उसके पास पहुँची और आँखों में आंसू भर उसे उत्साहित करती हुई बोली—स्वामी, तू महा बलवान है। क्या इस जाल को नहीं सहन कर सकता ? भटका देकर तोड़ डाल।

उसने पहली गाथा कही :—

विक्रम रे महामिग विक्रम रे हरिपद्,

छिन्द वारसिकं पापं नाहं एका बने रमे ॥

[हे महामृग ! विक्रम कर, हे स्वर्णपाद ! विक्रम कर, यह चर्म-जाज तोड़ दे। मैं अकेली वन में नहीं रह सकती।]

यह सुन मृग ने दूसरी गाया कही :—

विष्कमामि न पारेमि भूमिं सुम्भामि वेगसा,

दृढहो वारत्तिको पासो पादं मे परिकन्तति ॥

[भद्रे, पराक्रम करता हूँ, जमीन को जोर से भटका देता हूँ किन्तु (जाल को तोड़) नहीं सकता हूँ। चमड़े का जाल मजबूत है। यह मेरे पांव काटता है।]

तब मृगी बोली—स्वामी डरें नहीं। मैं अपने बल से शिकारी से याचना कर तुम्हारी रक्षा करूँगी। यदि याचना करके सफल न होऊँगी तो अपने प्राण देकर भी तुम्हारे प्राणों की रक्षा करूँगी। इस प्रकार बोधिसत्व को आश्वासन दे लहू से लथपथ बोधिसत्व को ले खड़ी हुई। शिकारी भी तलवार और शक्ति ले कल्पान्त-अग्नि की तरह आया। वह उसे आता देख बोली—स्वामी, शिकारी आता है। मैं अपना प्रयत्न करूँगी। आप मत डरें। उसे आश्वासन दे वह शिकारी के रास्ते में जा लौट कर एक ओर खड़ी हुई और उसे नमस्कार कर बोली—स्वामी, मेरा पति स्वर्ण-वर्ण का है, सदाचारी है, अस्त्री हजार मृगों का राजा है। इस प्रकार बोधिसत्व की प्रशंसा कर मृगराज के खड़े रहते ही उसने अपने बध की याचना करते हुए तीसरी गाया कही :—

अत्थरस्सु पलासानि असिं निब्बाहं लुहक,

पठमं मं वधित्वानं हन पच्छा महामिगं ॥

[शिकारी ! (मांस रखने के लिए) पत्तों को पैला और तलवार निकाल कर पहले मेरा बध कर, पीछे महामृग का ।]

यह सुन शिकारी ने सोचा—मनुष्य होकर भी (लोग) स्वामी के लिए अपने प्राण नहीं देते, यह पशु होकर भी अपना प्राण परित्याग कर रही है, और मनुष्य-भाषा में मधुर-स्वर से बोल रही है। आज इसे और इसके पति को जीवन दूँगा। उसने प्रसन्न-चित्त हो चौथी गाया कही :—

न मे सुतं वा विट्ठं वा भासन्तिं मानुसिं मिमिं,

त्वच्च भद्रे ! सुखी होहि एसो चापि महामिगो ॥

[मैंने मानुषी भाषा बोलने वाली मृगी न देखी, न सुनी। भद्रे ! तू सुखी हो, और यह महामृग भी सुखी होवे ।]

[इस प्रकार दोनों जनों को आश्वासन दे शिकारी ने बोधिसत्व के पास जा छुरी-कुल्हाड़ी से चमड़े का बन्धन काट दिया और पाँव से लगा हुआ फन्दा धीरे से हटा, नसों को नसों से, माँस को माँस से तथा चमड़ी को चमड़ी से ढक पाँव पर हाथ फेरा । उसी क्षण बोधिसत्व द्वारा पूरी की गई पारमिताओं के प्रताप से, शिकारी के मैत्री-चित्त के प्रताप से और मृगी के मैत्रीधर्म के प्रताप से माँस चर्म और नसें पूर्ववत् हो गईं । बोधिसत्व भी सुखी दुख-रहित हो खड़ा हुआ ।]

मृगी ने बोधिसत्व को सुखी देख प्रसन्न-चित्त हो शिकारी का अनुमोदन करते हुए पाँचवीं गाथा कही:—

एवं लुब्धक नन्दस्सु सह सम्बेहि जातिहि

यथाहमज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा महामिमां ॥

[शिकारी, सभी जातियों के साथ उसी तरह आनन्दित होओ जैसे मैं महामृग को मुक्त देखकर आज प्रसन्न हूँ ।]

बोधिसत्व ने ‘यह शिकारी मेरा उपकारी हुआ, मुझे भी इसका उपकारी होना चाहिए’ सोच चरने की जगह पर एक मणि-ढेरी देख, उसे देकर कहा—सौम्य, अब से प्राणी-हिंसा मत करना । इससे कुटुंब का पालन करते हुए, वृक्षों का पोषण करते हुए, दान शीलादि पुण्य कर्म करना । इस प्रकार इसे उपदेश दे बोधिसत्व जंगल को गये ।

शास्ता ने धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय शिकारी छत्र था । मृगी तरुण भिक्षुणी । मृगराज तो मैं ही था ।

३६०. सुसन्धि जातक

“जातिगन्धो तिमिरानं.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्दिग्ध-चित्त भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ? 'हाँ सचमुच' कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्न-चित्त हुआ ? वह बोला—अलंकृत स्त्री को देख कर । तब शास्ता ने कहा—यह जो स्त्री है, इसको सुरक्षित रखा नहीं जा सकता; पुराने पण्डित गरुड़-भवन में ले जाकर सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने पर भी असमर्थ रहे ।

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में तम्ब-राजा नामक राजा राज्य करता था । उसकी सुसन्धि नामक भार्या थी, उत्तम रूप वाली । उस समय बोधिसत्व गरुड़-योनि में पैदा हुए थे, और उस समय नाग-द्वीप का नाम सेरुम द्वीप था । बोधिसत्व इस द्वीप में गरुड़-भवन में रहते थे । वह गरुड़-भवन से निकल वाराणसी जा तम्ब-राजा के साथ युवक के वेप में जुआ खेलते थे । उसका रूप-सौन्दर्य देख परिचारिकाओं ने सुसन्धि से कहा—हमारे राजा के साथ इस प्रकार का युवक जुआ खेलता है । यह सुन वह एक दिन उसे देखने की इच्छा से सज सजाकर जुआ खेलने के स्थान पर आई और परिचारिकाओं में खड़ी होकर उसने उसे देखा । उसने भी देवी को देखा । दोनों परस्पर आकर्षित हो गये । गरुड़-राज ने अपने प्रताप से नगर में आन्धी उठा दी । घरों के गिरने के डर से राज-महल के निवासी बाहर निकल पड़े ।

तब उसने अपने प्रताप से आन्धेरा कर दिया और देवी को आकाश मार्ग से ले जा नाग द्वीप में अपने भवन में प्रविष्ट हुआ । कोई नहीं जानता था कि सुसन्धि कहाँ गई । वह उसके साथ रमण कर जाकर राजा के साथ जुआ खेलता । राजा का अग्र नामक गर्न्धव था । राजा को जब देवी के जाने की जगह का पता नहीं लगा तो उसने उस गर्न्धव को बुला कर प्रेरित किया—तात ! सब स्थल-पथों तथा जल-पथों में घूमकर पता लगाओ कि देवी कहाँ गई ?

वह खर्चा ले द्वार-नाम से ही खोज करता करता भरकच्छ^१ पहुँचा । उस समय भरकच्छ के व्यापारी नौका से स्वर्ण-भूमि जाते थे । वह उनके पास जाकर बोला—

मैं गन्धर्व हूँ । नौका का किराया न देकर उसकी बजाय तुम्हारे लिये गाना बजाना करूँगा । मुझे भी नौका में ले चलें ।

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नौका छोड़ दी । सुख से चली जा रही नौका में उन्होंने उसे बुलाकर कहा—

“हमारे लिये गाना-बजाना करो ।”

“यदि मैं गाऊँ बजाऊँगा, तो मेरे गाने बजाने पर मछलियाँ चञ्चल हो जायेंगी । तुम्हारी नौका टूट जायगी ।”

“मनुष्य-मात्र के गाना-बजाना करने से मछलियाँ चञ्चल नहीं होतीं । (गाना-बजाना) करो ।”

“तो मुझ पर क्रोधित न होना ।”

उसने वीणा खोली, तार के स्वर से गीत का स्वर और गीत के स्वर से तार का स्वर मिला कर गाना-बजाना किया । उसके स्वर से मस्त होकर मच्छ चञ्चल हो गये ।

एक मगर-मच्छ उछल कर नाव में आ पड़ा । नौका तोड़ दी । वह अग्र लकड़ी के तख्ते से चिपटा हुआ, वायु के अनुसार बहता बहता नाग-द्वीप में गरुड़-भवन के पास निग्रोध-वृक्ष के समीप पहुँचा । सुसन्धि देवी भी गरुड़-राज के जुआ खेलने जाने पर विमान से उतर समुद्र-तट पर विचरती थी । उसने उस अग्र गन्धर्व को देखे, पहचान कर पूछा—

“कैसे आया ?” उसने सब कहा । ‘तो डर मत’ कह उसे बाहों से पकड़, विमान पर ले जा शैय्या पर लिटाया । विश्राम कर चुकने पर दिव्य भोजन दे, दिव्य गन्धोदक से नहला, दिव्य वस्त्र पहना, दिव्य सुगन्धित पुष्पों से सजा उसे फिर दिव्य शैय्या पर लिटाया ।

इस प्रकार उसकी सेवा करती हुई वह गरुड़-राज के आने के समय उसे छिपाकर रखती, चले जाने पर उसके साथ रमण करती । तब महीने

ढेड़ महीने के बाद वाराणसी-निवासी व्यापारी लकड़ी-पानी लेने के लिये उस द्वीप के निग्रोध-वृक्ष के पास पहुँचे। वह उनके साथ नौका पर चढ़ वाराणसी पहुँचा। वहाँ राजा को देखते ही, उसके जुआ खेलते समय, बीणा ले, राजा के सम्मुख गाना-बजाना करते हुए उसने पहली गाथा कही—

वाति गन्धो तिमिरानं कुसमुद्रा च घोसवा,
दूरे इतो हि सुसन्धि तम्ब कामा तुदन्ति मं ॥

[(जहाँ) तिमिर (-वृक्षों) की गन्ध बहती है, समुद्र घोषणा करता है, (वहाँ) यहाँ से दूर सुसन्धि है, हे तम्ब ! काम मुझे वींधते हैं ।]

यह सुन गरुड़-राज ने दूसरी गाथा कही—

कथं समुद्रमतरि कथं अहस्त्रि सेरुमं,
कथं तस्स च तुहहञ्च अहु अग्ग समागमो ॥

[कैसे समुद्र पार किया ? कैसे सेरुम देखा ? हे अग्र ! उसका और तुम्हारा समागम कैसे हुआ ?]

तब अग्र ने तीन गाथायें कहीं—

भरुकच्छा पयातानं वाणिजानं धनेसिनं,
मकरेहम्भिदा नावा फलकेनाहमप्लविं ॥
सा मं सणहेन मुदुना निच्चं चन्दनगन्धिनी,
अङ्गेने उद्धरी भद्दा माता पुत्तंव ओरसं ॥
सा मं अन्नेन पाणेन वस्येन सयनेन च,
अत्तनापि च महली एवं तम्ब विजानहि ॥

[भरुकच्छ से चले अनेच्छुक व्यापारियों की नौका मगर-मच्छों ने तोड़ दी। मैं उसी नाव के तख्ते से तट पर लगा। उस भद्रा ने—जो नित्य चन्दन की सुगन्धी देती है—प्रिय तथा मृदु-वाणी के साथ (मेरा) अङ्ग पकड़ कर मेरा उद्धार किया, वैसे ही जैसे माता ओरस-पुत्रका। उस मस्त-आख-वाली ने, हे तम्ब ! तू यह जान ले कि अन्न-पान, वस्त्र, शयन तथा अपने-आप से (मेरी सेवा की) ।]

गरुड़-राज को गन्धर्व के कहने के ही समय पश्चाताप हुआ। उसने सोचा—मैं गरुड़-भवन में रहता हुआ भी इसको सुरक्षित नहीं रख सका,

मुझे इस दुःशीला से क्या ! वह उसे लाया और राजा को लौटा कर चला गया । फिर उसके बाद नहीं आया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों की समाप्ति पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय राजा आनन्द था । गरुड़-राज तो मैं ही था ।

पाँचवाँ परिच्छेद

२. वरणारोह वर्ग

३६१. वरणारोह जातक

“वरणारोहेन...” यह शास्ता ने श्रावस्ती के पास जेतवन में विहार करते समय दोनों प्रधान-श्रावकों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक बार दोनों महास्थविर ‘इस वर्षा-काल में आरण्य-वास करेंगे’ सोच, शास्ता से आज्ञा ले, मण्डली छोड़, अपना अपना पात्र-चीवर स्वयं अपने ही उठा, जेतवन से निकल, एक प्रत्यन्त-गाँव के पास के जङ्गल में रहने लगे। एक उच्छिष्ट खाने वाला आदमी भी स्थविरों की सेवा करता हुआ वहीं एक ओर रहने लगा। उसने स्थविरों को मेल-मिलाप से रहते देख सोचा—यह अत्यन्त प्रेम से रहते हैं। क्या मैं इनमें परस्पर फूट डाल सकता हूँ ? वह सारि-पुत्र स्थविर के पास गया और पूछने लगा—भन्ते क्या आर्य महामौदगल्यायन स्थविर के साथ आपका किसी प्रकार का वैर है ?

“क्यों, आयुष्मान !”

“भन्ते, यह मेरे आने पर आपकी यही कह कर निन्दा करते हैं कि सारिपुत्र जाति, गोत्र, कुल अथवा सुत्तन्त अथवा ज्ञान अथवा श्रद्धा में मेरा क्या मुकाबला कर सकता है ?”

स्थविर ने मुस्कराकर कहा—आयुष्मान तू जा। दूसरे दिन वह महामौदगल्यायन स्थविर के पास जाकर भी यही बोला। उसने भी मुस्कराकर कहा—आयुष्मान तू जा। महामौदगल्यायन स्थविर ने सारिपुत्र स्थविर के पास जाकर पूछा—आयुष्मान यह उच्छिष्ट-भोजी तुम्हारे पास आकर कुछ कहता था ?

“आयुष्मान, यह मुझसे भी कहता था इसे निकाल देना चाहिए।”

“अच्छा आयुष्मान, निकाल” कहने पर स्थविर ने “यहाँ मत रह” कह चुटकी बजाकर उसे निकाल दिया । वे दोनों मेल मिलाप से रहे । फिर शास्ता के पास जा प्रणाम कर बैठे । शास्ता के कुशल क्षेम पूछने के बाद प्रश्न किया—भन्ते ! एक उच्छिष्ट भोजी ने हममें फूट डालने का प्रयत्न किया । वह असफल रहा और भाग गया ।

“न केवल अभी सारिपुत्र, इसने पहले भी तुममें फूट डालने का प्रयत्न किया, परन्तु असमर्थ रहा और भाग गया ।”

शास्ता ने उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता हुए । उस समय एक सिंह और व्याघ्र जंगल में पर्वत गुफा में रहते थे । एक गीदड़ उनका सेवा में रह कर उच्छिष्ट खाकर मोटा हो गया और एक दिन सोचने लगा—मैंने सिंह और व्याघ्र का मांस कभी नहीं खाया । मुझे इन दोनों जनों में फूट डालनी चाहिए । जब ये भगड़ा कर मरेंगे तब इनका मांस खाऊँगा । उसने सिंह के पास जाकर पूछा—“स्वामी ! क्या आपका व्याघ्र के साथ कुछ वैर है ?”

“सौम्य, क्या बात है ?”

“भन्ते, यह मेरे आने के समय तुम्हारी यह कह कर निन्दा ही करता है कि सिंह न शरीर-वर्ण में, न शरीर की गठन में, न जाति में, न बल में और न वीर्य में ही मेरा एक हिस्सा भी है ।”

सिंह ने उत्तर दिया—तू जा । यह ऐसा नहीं कहेगा । उसने व्याघ्र के पास भी जाकर इसी प्रकार कहा । व्याघ्र यह सुन सिंह के पास पहुँचा । उसने ‘मित्र क्या तूने यह यह कहा ?’ पूछते हुए पहली गाथा कही—

वण्णारोहेन जातिया बज्जनिक्खमयेन च,

सुबाहु न मया सेव्यो सुदाठ इति भाससि ॥

[हे मृगराज ! क्या तूने यह कहा है कि सुबाहु न वर्ण में, न शरीर-गठन में, न जाति में, न काय-बल में और न पराक्रम में ही मुझसे बढ़कर है ?]

यह सुन सुदाठ ने शेष चार गाथायें कहीं—

वयणारोहेन जातिया बलनिष्कलमणेन च,
 सुदाधो न मया सेव्यो सुबाहु इति भाससि ॥
 एवम्वे मंविहरन्तं सुबाहु सग्न दुग्भसि,
 तदानाहं तया सद्धिं संवासं अभिरोचये ॥
 यो परेसं वचनानि सहहेय यथातथं,
 खिप्यं भिज्जेथ मित्तिंमि वेरञ्च पसवे वहूँ ॥
 न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो
 भेदासङ्की रन्धमेवानुपस्सी,
 यस्मिञ्च सेति उरसीव पुत्तो
 सवे मित्तो यो अभेज्जो परेहि ॥

[हे मित्र सुबाहु ! जब से उसने मुझे यह कह कर कि सुबाहु मुझे ऐसा कहता है कि सुदाठ नवर्ण में, न शरीर-गठन में, न जाति में, न काय-बल में और न पराक्रम में ही मुझ से बढ़कर है, मेरे मन में द्वेष पैदा करना चाहा है, तब से मुझे इसके साथ रहना पसन्द नहीं । जो दूसरों के जैमे तैसे वचनों का विश्वास कर लेता है वह जल्दी ही मित्रों से फूट पड़ता है और उसके मन में बहुत वैर पैदा हो जाता है । जो सदा फूट की आशंका से अप्रमादी हो मित्र के छिद्र ही ढूँढ़ता रहता है, वह मित्र नहीं है । मित्र तो वही है, जिसे दूसरे फोड़ नहीं सकते और जिसकी गोद में ऐसे सिर रख कर सोया जा सकता है जैसे पुत्र (माता की गोद में) ।]

इनचार गाथाओं द्वारा सिंह ने जब मित्र के गुणों का वर्णन किया तो व्याघ्र ने अपने को दोषी समझ सिंह से क्षमा मांगी । वे उसी प्रकार मेल मिलाप से रहे । लेकिन शृगाल भागकर अन्यत्र चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मृग उच्छिष्ट-भोजी था । सिंह सारिपुत्र । व्याघ्र मौदगल्यायन । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला तथा उस वन में रहने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

३६२. सीलवीमंस जातक

“सीलं सेय्यो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक सदाचार की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

राजा उसे अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा विशेष मानता था, (क्योंकि) वह सदाचारी था । उसने सोचा—क्या राजा सदाचारी होने के कारण मेरा सम्मान करता है अथवा (बहु-) श्रुत होने के कारण ? मैं परीक्षा करूँगा कि सदाचार अधिक महत्व का होता है वा (बहु-) श्रुत होना ? उसने एक दिन सराफ के तख्ते पर से कार्पापण उठा लिया । सराफ गौरव का ख्याल कर कुछ न बोला । दूसरी बार भी उसने कुछ न कहा । लेकिन तीसरी बार तो उसे पकड़ ले जाकर राजा को दिखाया—यह डाकू-चोर है । राजा ने पूछा—इसने क्या किया ?

“कुटुम्ब (की सम्पत्ति) लूटता है ।”

“ब्राह्मण ! क्या सचमुच ?”

“महाराज ! कुटुम्ब (की सम्पत्ति) नहीं लूटता हूँ । मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हुआ था कि सदाचार अधिक महत्व की चीज है वा (बहु-) श्रुत होना । इसलिये इन दोनों में कौन अधिक महत्व का है, परीक्षा करने के लिये मैंने तीन बार कार्पापण उठाये । यह मुझे बाँध कर तुम्हारे पास ले आया है । अब मैं समझ गया हूँ कि (बहु-) श्रुत होने की अपेक्षा सदाचारी होना बढ़कर है । मुझे गृहस्थी नहीं चाहिये । मैं प्रव्रजित होऊँगा ।”

उसने प्रव्रज्या की स्वीकृति ले, बिना घर द्वार की ओर देखे जेतवन जा शास्ता से प्रव्रज्या की याचना की । शास्ता ने उसे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा दिलवाई । वह उपसम्पदा के थोड़े ही समय बाद विपश्यना-भावना का अभ्यास कर अग्र-फल^१ में प्रतिष्ठित हुआ । भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-

^१ अग्र-फल = अर्हत्व ।

चीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक ब्राह्मण अपने शील की परीक्षा कर, प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुआ । शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत” कहने पर “भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी परिणितों ने अपने शील की परीक्षा कर, प्रव्रजित हो, अपने आपको प्रतिष्ठित किया है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर उसने तक्षिला जा, सब विद्यायें सीख, वाराणसी लौट राजा से भेंट की । राजा ने उसे अपना पुरोहित बनाया । वह पञ्चशीलों की रक्षा करता था । राजा भी उसे सदाचारी जान उसका आदर करता था । उसने सोचा क्या राजा मेरा आदर सदाचारी होने के कारण करता है अथवा (बहु-) श्रुत होने के कारण सारी कथा ‘वर्तमान-कथा’ के समान है । लेकिन इस कथा में उस ब्राह्मण ने ‘अब मैंने (बहु-) श्रुत होने की अपेक्षा सदाचारी होने को बड़ा समझ लिया’ कह ये पाँच गाथायें कहीं:—

सीलं सेय्यो सुतं सेय्यो इति मे संसयो अहु,
 सीलमेव सुता सेय्यो इति मे नत्थि संसयो ॥
 मोघा जाति च वरणो च सीलमेव किरुत्तमं,
 सीलेन अनुपेतस्स सुतेन अत्थो न विज्जति ॥
 खत्तियो च अधम्मट्ठो वेस्सो चाधम्मनिस्सितो,
 ते परिच्चज्जुभो लोके उपपज्जन्ति दुग्गतिं ॥
 खलिया ब्राह्मणा वेस्सा सुहा चण्डाल पुक्कुसा,
 इध धम्मं चरित्वा न भवन्ति तिविवे समा ॥
 न वेदा सम्परायाय न जाति न पि बन्धवा,
 रुक्कञ्च सीलं संसुद्धं सम्पराय सुखावहं ॥

[सदाचारी होना श्रेष्ठ है, अथवा (बहु-) श्रुत होना श्रेष्ठ है, इस बारे में मुझे संशय था । लेकिन अब मुझे संशय नहीं है, सदाचार ही (बहु-) श्रुतता से श्रेष्ठ है ॥१॥ जाति और वर्ण व्यर्थ है, शील ही श्रेष्ठ है । जो

शील से युक्त है, उसे (बहु-) श्रुत होने से काम नहीं ॥२॥ अधार्मिक क्षत्रिय हो, चाहे अधार्मिक वैश्य हो, वे (देव-लोक तथा मनुष्य-लोक) दोनों लोकों को छोड़ दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥३॥ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल तथा पुक्कुस^१—सभी इस लोक में धर्माचरण करने से देवताओं के समान होते हैं ॥४॥ न वेद, न जाति और न बन्धु ही परलोक में सुख दे सकते हैं, अपना शुद्ध शील ही परलोक में सुख का दायक होता है ॥५॥]

इस प्रकार बोधिसत्व शील की प्रशंसा कर, राजा से प्रब्रज्या की स्वीकृति ले, उसी दिन हिमालय चला गया और वहाँ ऋषि-प्रब्रज्या ले, अभिज्जा तथा समायत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्म-लोक-गामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी । उस समय शील की परीक्षा कर ऋषि-प्रब्रज्या लेने वाला मैं ही था ।

३६३. हिरि जातक

“हिरिं तरन्तं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाय पिण्डक के मित्र प्रत्यन्त-निवासी सेठ के बारे में कही ।

(क) वर्तमान कथा (ख) अतीत कथा

दोनों कथायें प्रथम परिच्छेद के नौवें वर्ग के अन्तिम जातक में विस्तार से आ ही गई हैं । लेकिन उस कथा में जब प्रत्यन्त (देश) निवासी सेठ के आदिमियों ने वाराणसी सेठ से कहा कि हम सब सम्पत्ति छिन जाने पर, अपने पास का माल कुछ भी पास न रहने पर भागे तो वाराणसी सेठ ने ‘जो अपने

^१ शव छोड़ने वाले चण्डाल तथा फूल (= हड्डियाँ ?) छोड़ने वाले पुक्कुस ।

पास आने वालों के प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं करते, उन्हें भी कोई उप-कार करने वाला नहीं मिलता' कह ये गाथायें कहीः—

हिरि तरन्तं विजिगृच्छमानं
तवाहमस्मि इति भासमानं,
सेय्यानि कर्मानि अनादियन्तं
ने सो ममन्ति इति नं विजिघ्र्जा ॥
यं हि कयिरा तं हि वदे यं न कयिरा न तं वदे,
अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पण्डिता ॥
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो
भेदासङ्की रन्धमेवानुपस्सी,
यस्मिञ्च सेति उरुव पुत्तो
सवे मित्तो यो अभेज्जो परेहि
पामोञ्जकरणं ठानं पसंसावहनं सुखं,
फलानिसंसो भावेति वहन्तो पोरिसं धुरं ॥
पविवेक रत्नं पीत्वा रसं उपसमस्स च,
निहरो होति निष्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥

[लज्जा-रहित, घृणित, 'मैं तेरा हूँ' यूँ ही बात बनाने वाला, उचित कर्मों का न करने वाला (जो आदमी हो) उसे जान ले कि यह मेरा नहीं है। जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे; बिना किये (केवल) कहने वाले को पण्डित जान जायें हैं । जो सदा फूट की आशङ्का से अप्रमादी हो मित्र के छिद्र ही ढूँढ़ता रहता है, वह मित्र नहीं है, मित्र तो वही है, जिसे दूसरे फोड़ नहीं सकते ॥ प्रमोद देनेवाले, प्रशंसा देने वाले तथा सुख देने वाले मैत्री-भाव को पुरुष के कर्तव्य को करने वाले (प्रमोद प्रशंसा और सुख के) फल की आशा से बड़ाते हैं ॥ एकान्त (वास) तथा शान्ति के रस को पान कर आदमी निडर होता है और धर्म के प्रेम-रस को पान कर निष्पाप ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पाप-मित्र संसर्ग से उद्धिग्न हो (एकान्त-) वास के रस से अमृत महानिर्वाण की प्राप्ति करा धर्म-देशना को ऊँचे से ऊँचे उठाया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का प्रत्यन्त वासी अथवा प्रत्यन्त-वासी ही था । उस समय का वाराणसी सेठ मैं ही था ।

३६४. खज्जोपनक जातक

“कोनु सन्तमिह पज्जोते...” यह खज्जोपनक-पट्ठो महा-उम्मगा जातक^१ में विस्तार से आई है ।

३६५. अहिगुण्डिक जातक

“धुत्तोमिह...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त सालक-जातक^२ में आई है । इस कथा में भी वह वृद्ध ग्राम-बालक को साधु बना गाली देता और पीटता था । लड़का भाग गया और साधु नहीं रहा । दूसरी बार भी उसे साधु बना वैसा ही किया । दूसरी बार भी वह साधु नहीं रहा । और फिर कहने पर उधर देखना भी नहीं चाहता था । भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अमुक वृद्ध न

^१ महाउम्मगा जातक (२४६)

^२ सालक जातक (२४६)

अपने श्रामणेर के साथ रह सकता है न उसके बिना । लड़का उसका दोष देख फिर इधर देखना भी नहीं चाहता । कुमार का दिल अच्छा है । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? “अमुक बात चीत” कहने पर “भिक्षुओ न केवल अभी किन्तु पहले भी यह श्रामणेर सुहृदय ही रहा है और एक बार दोष देखकर फिर उधर देखना भी नहीं चाहता” कह पूर्व जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व धान्य व्यापारी के कुल में पैदा हो बड़े होने पर धान्य विक्री करके ही जीविका चलाते थे । एक सपेरा बन्दर ले, उसे सिखा, साँप का खेल करता था । वाराणसी में उत्सव की घोषणा होने पर वह उस बन्दर को धान्य व्यापारी के पास छोड़ तमाशा करता हुआ सान दिन विचरता रहा । उस व्यापारी ने बन्दर को खान भोज्य दिया । सपेरे ने सातवें दिन लौट उत्सव-क्रीड़ा की मस्ती के कारण उस बन्दर को बांस की छपटी से तीन बार मारा । वह उसे लेकर उद्यान गया और वहाँ बांध कर सो गया । बन्दर बन्धन खोल आम के वृक्ष पर चढ़ गया और बैठ कर आम खाने लगा । सपेरे ने उठकर वृक्ष पर बन्दर को देखा और सोचा, मुझे इसे बहका कर पकड़ना चाहिये । उसने उससे बात करते हुए पहली गाथा कही :—

धुत्तोग्धि सम्म सुमुख जूते अक्ख पराजितो,
हरेहि अम्भपक्कानि विरियन्ते भक्खयामसे ॥

[मित्र सुमुख ! मैं जुए में हारा हुआ जुआरी हूँ । पके आम लो । तुम्हारे वीर्य (से प्राप्त फल) को खायेंगे ।]

यह सुन बन्दर ने शेष गाथायें कहीं :—

अल्लिकं वत्त मं सम्म अभूतेन पसंससि,
को ते सुतो वा विट्ठो वा सुमुखो नाम मक्कटो ॥
अज्जापि मे तं मनसि यं मं त्वं अहितुण्डिक,
धम्मपणं पविसित्वा मत्तो ज्ञातं हनासि मं ॥

ताडं सरं दुखसेव्यं अपि रज्जमि कारये,
नेवाहं याचितो दृज्जं तथा हि भयतज्जितो ॥
यच्च जम्भा कुलेजातं राग्गे तित्तं अमच्छरिं,
तेन सखिच्च मित्तच्च धीरो संघातुमरहति ॥

[मित्र ! तू मेरी झूठ-मूठ की प्रशंसा करता है । बता, तूने किस बन्दर को सुमुख देखा या सुना है ? हे सपेरे आज भी वह मेरे मन में है जो तूने धान्य की दुकान में घुसकर मस्ती में मुझ भूखे को मारा था । उस दुग्ध की याद करके मैं ऐसा भयभीत हूँ कि यदि तू राज्य भी कराये तो भी मैं मांगने पर भी (आम) नहीं दूँगा । धीर आदमी को उसे ही सखा बनाना चाहिये और उसीसे मैत्री करनी चाहिये जिसे जाने की वह (अच्छे) कुल में पैदा हुआ है, (माता के) गर्भ से ही संतोषी है और है मात्सर्य-रहित ।]

यह कह बन्दर तुरन्त जंगल में घुस गया । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय सपेरा वृद्ध स्थविर था । बन्दर आमणेर । धान्य व्यापारी तो मैं ही था ।

३६६. गुम्बिय जातक

“मधुवणं मधुरसं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्विग्नचित्त भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा — “भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्नचित्त है ?” “भन्ते ! सचमुच” कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्नचित्त हुआ है ? उत्तर मिला—अलंकृत स्त्री को देखकर । शास्ता ने “भिक्षु ! यह पांच काम-भोग गुम्बिय यक्ष द्वारा हलाहल विष मिलाकर रास्ते में रखे मधु की तरह हैं” कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बंजारों के नेता के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वाराणसी से पाँच सौ गाड़ियाँ सामान लेकर व्यापार के लिये जाते समय उसने महामार्ग में जंगल-द्वार पर पहुँच बंजारों को इकट्ठा किया और कहा—भो ! इस रास्ते में बिपैले पत्ते, फूल फलादि हैं। तुम किसी ऐसी चीज को जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझे पूछे मत खाना। अमनुष्य भी विप मिलकर भात की पोटली, शहद के छत्ते तथा फलादि रास्ते पर रख देते हैं। वह भी बिना मुझे पूछे न खाना। यह उपदेश दे रास्ते पर चला।

गुम्बिय नाम का एक यक्ष जंगल के बीच में रास्ते पर पत्ते फैला, उन पर विप मिले मधु-पिण्ड रखकर स्वयं रास्ते के पास ही शहद एकत्र करता हुआ, वृक्षां को छीलता हुआ घूमता था। अज्ञानकार समझते थे कि पुण्यार्थ रखें होंगे। वे खाकर मर जाते थे। अमनुष्य आकर उन्हें खाते थे।

बोधिसत्व के सार्थ के आदमियों में से भी कुछ लोभी संयम न कर सकने के कारण उन्हें खा गये। बुद्धिमान लोग लिये खड़े रहे कि पूछ कर खायेंगे। बोधिसत्व ने देखते ही जो हाथ में लिये थे उनसे फिक्का दिये। जिन्होंने पहले ही खा लिये वे मर गये। जिन्होंने आधे खाये थे, उन्हें वमन-विरेचन करा चतुर्मधु^१ दिये। उसके प्रताप से उन्हें जीवन मिला। बोधिसत्व सकुशल जहाँ जाना था वहाँ पहुँचे और सामान बेच अपने घर लौटे। यह बात सुनाकर शास्ता ने ये अभिसम्बुद्ध गाथाये^२ कहीं :—

मधुवण्यं मधुरसं मधुरान्धं विसं अहु,
गुम्बियो घासमेसानो अरब्जे ओदही विसं ॥
मधु इति मञ्जमाना ये तं विसमसायिसुं,
तेसं तं कटुकं आसि मरणं तेनुपागसुं ॥
ये च खो पटिसङ्काय विसन्तं परिवज्जयुं,
ते आतुरेसु सुखिता दयहमानेसु निव्वुता ॥

^१ शहद, मक्खन, घी तथा खाण्ड ।

एवमेव मनुस्सेसु विसं कामा समोहिता,
 आग्निसं बन्धनञ्चेतं मच्चुवासो गुहासयो ॥
 एवमेव इमे कामे आतुरा परिचारिके,
 ये सदा परिवर्ज्यन्ति सङ्गं लोके उपच्छगुं ॥

[गुम्बिय ने (मृत मनुष्यों के) आहार की खोज करते हुये जङ्गल में मधु-वर्ण, मधु-रस तथा मधु-गन्ध का विष ढाला ॥१॥ जिन्होंने उसे मधु समझ चखा, उन्हें वह बड़ा तीक्ष्ण लगा और उससे वे मर गये ॥२॥ जिन्होंने बुद्धि पूर्वक उस विष को ग्रहण नहीं किया, वे उन दुखियों में सुखी रहे और (विष से) दग्ध होते हुआओं में शान्त ॥३॥ उसी प्रकार मनुष्य-लोक में जो यह काम भोग बिखरे पड़े हैं—वे विष हैं, लौकिक-बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं और गुह्याशय हैं ॥४॥ इसी प्रकार क्लेश-परिचारकों वाले इन काम भागों को जो (मरणासन्न) बुद्धिमान जानकर छोड़ देते हैं, वे सङ्ग से मुक्त हो जाते हैं ॥५॥]

शास्ता ने सत्त्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में उद्दिग्ध-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय सार्य का नेता मैं ही था ।

३६७. सालिय जातक

“ध्यायं सालियज्जापो...” यह शास्ता ने वेळु वन में विहार करते समय ‘आयुष्मान् देवदत्त त्रास-कारक भी नहीं हो सका’ वचन के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने ‘न केवल अभी भिक्षुओं, पहले भी यह मेरा त्रास-कारक भी नहीं हो सका’ कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गाँव में एक गृहस्थ के घर में पैदा हुए । तरुण होने पर (वह) लंगोटिया यारों के साथ ग्राम-द्वार पर ही गूलर के पेड़ पर खेलता था । एक दुर्बल वैद्य को जब गाँव में कुछ काम न मिला तो उसने वृक्ष के खोंडर में से सिर निकाल कर सोये एक सर्प को देखकर सोचा—मुझे गाँव में कुछ नहीं मिला । इन लड़कों को ठग कर, साँप से डसवा कर (फिर) चिकित्सा कर कुछ भी प्राप्त करूँगा । उसने बोधिसत्व से पूछा—यदि मैना का बच्चा मिले तो लोगे ?

“हाँ, लूँगा ।”

“देख, यह खोंडर में सोया है ।”

उसने बिना यह जाने कि वह साँप है वृक्ष पर चढ़ उसे गर्दन से पकड़ लिया । जब ज्ञात हुआ कि सर्प है तो उसे मुड़ने न देकर अच्छी तरह पकड़े रहकर जोर से फेंक दिया । वह जाकर वैद्य की गर्दन पर गिरा और उसकी गर्दन में लिपट ‘कर कर’ इस, उसे वहीं गिरा भाग गया । आदमियों ने घेर लिया । बोधिसत्व ने इकट्ठे हुए आदमियों को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कहीं:—

ध्वायं साल्लियद्धापेति कण्हसप्यं अगाहयि,
 तेन सप्पेनयं दट्ठो हतो पापानुत्तासको ॥
 अहन्तारमहन्तारं यो नरो हन्तुमिच्छति,
 एवं सो निहतो सेति यथायं पुरिसो हतो ॥
 अहनन्तमघातेन्तं यो नरो हन्तुमिच्छति,
 एवं सो निहतो सेति यथायं पुरिसो हतो ॥
 यथा पंसुमुट्ठिं पुरिसो पटिवातं पटिक्खिपे,
 तमेव सो रजो हन्ति तथायं पुरिसो हतो ॥
 यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
 सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स,
 तमेव बालं पच्चेति पापं
 सुत्तुमो रजो पटिवातं व खिप्पो ॥

[जिसने कृष्ण सर्प को 'मैना का बच्चा' कह कर पकड़वाया, वह बुराई करने वाला उसी सर्प से डसा जाकर मर गया ॥१॥ जो नर उसकी हत्या करना चाहता है, जो किसी की हत्या नहीं करता, वह इस पुरुष की ही तरह मर कर सोता है ॥२॥ जो नर उसका घात करना चाहता है, जो किसी का घात नहीं करता वह इस पुरुष की ही तरह मर कर सोता है ॥३॥ जैसे आदमी बालू की मुट्ठी को हवा के विरुद्ध फेंके; वह उसी आदमी को चोट पहुँचाती है; वैसे ही यह आदमी मारा गया ॥४॥ जो शुद्ध, निर्मल, दोष-रहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोषी ठहराने वाले मूर्ख को ही पाप लगता है। जैसे हवा की दिशा के विरुद्ध फेंकी हुई सूत्रम धूलि फेंकने वाले पर ही पड़ती है ॥५॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दुर्बल वैद्य देवदत्त था। बुद्धिमान लड़का तो मैं ही था।

३६८. तचसार जातक

“अमिच्छहृत्यगता...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा-पार्विता के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने 'न केवल अभी भिक्षुओं, किन्तु पहले भी तथागत प्रज्ञावान तथा उपाय-कुशल थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व गांव में एक गृहस्थ के कुल में पैदा हो.....(सब कुछ पूर्व जातक की तरह कहना चाहिए)। इस कथा में वैद्य के मरने पर ग्रामवासियों ने उन लड़कों

को मनुष्य की हत्या करने वाला समझा और डण्डे से बांध राजा के सामने पेश करने के लिये वाराणसी ले गये । बोधिसत्व ने रास्ते में ही शेष सब लड़कों को उपदेश दिया—तुम डरना नहीं । राजा के सामने जाने पर भी सन्तुष्ट-चित्त तथा प्रसन्न-वदन ही रहना । राजा पहले हमसे बात करेगा । तब उसके बाद मैं जानूँगा (क्या करना चाहिये ?) । उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वैसा ही किया । राजा ने उन्हें निर्भीक, प्रसन्न-चित्त देख सोचा—“यह ‘मनुष्य-हत्यारे’ माने जाकर डण्डे से बांध कर लाये गये हैं, इस प्रकार के दुःख में पड़े हुए भी डरते नहीं हैं, प्रसन्न-वदन ही हैं । इनके चिन्ता न करने का क्या कारण है ? पूछूँगा ।”

उनसे प्रश्न करते हुए उसने पहली गाथा कही:—

अमिच्छहृत्थगता तच्चसारसमप्पिता,

पसन्नमुखवण्णात्थ कस्मा तुम्हे न सोचथ ॥

[अमित्रों के हाथ में पड़े हुए, बांस के डण्डे से बँधे हुए भी तुम प्रसन्न-वदन ही हो ? तुम्हें चिन्ता क्यों नहीं है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष गाथाये कहीं—

न सोचनाय परिदेवनाय

अथो च लब्भा अपि कप्पकोपि,

सोचन्तमेनं दुखितं विदित्वा,

पञ्चत्थिका अत्तमना भवन्ति ॥

यतो च खो पण्डितो आपदासु

न वेधती अथ विनिच्छयञ्जु,

पञ्चत्थिरास्स दुखिता भवन्ति

दिस्वा सुखं अविकारं पुराणं ॥

जप्पेन मन्तेन सुभासितेन

अनुपदानेन पवेणिया वा,

यथा यथा यत्थ लभेथ अर्थं

तथा तथा तत्थ परक्कमेव ॥

यतो च जानेव्य अलम्भनेव्यो

सया व अञ्जेन वा एस अत्थो,

असोचमानो अधिवासपेय्य

कम्मं दळ्हं किन्ति करोमिदानी ॥

[न चिन्ता करने से, न रोने पीटने से ही थोड़ा भी लाभ होता है । इसे चिन्तित और दुःखी देखकर शत्रु प्रसन्न होते हैं ॥१॥ जब भी अर्थ-विनिमय का ज्ञाता परिणत आपत्ति में अस्थिर नहीं होता, तो इसके शत्रु इसके पूर्ववत् अविकारी मुँह को देखकर दुःख को प्राप्त होने हैं ॥२॥ जिस जिस उपाय से भी जहाँ अर्थ सिद्ध होंगे, वह वह उपाय करे—चाहे (मन्त्र) जाप से, चाहे मन्त्रणा से, चाहे सुभाषण से, चाहे (रिश्वत आदि ?) देने में और चाहे कुलागत सम्बन्ध करने से ॥३॥ जब समझ ले कि मेरे अथवा अन्य के द्वारा इस अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती तो चिन्ता न करते हुए यह समझ कर कि (पूर्व) कर्म दृढ़ है, क्या कलँ ? सहन करे ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्त्व की धार्मिक-कथा सुन, मुकदमे कर, लड़कों को निर्दोष जान डण्डे खुलवा दिये और बोधिसत्त्व का बहुत सत्कार कर उसे अपना अर्थधर्मानुशासक अमात्यरत्न बना लिया । शेष लड़कों का भी सत्कार कर उन्हें दूसरे दूसरे पद दिये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया, उस समय वाराणसी राजा आनन्द था । लड़के स्थविरानुस्थविर । परिणत लड़का तो मैं ही था ।

३६६. मितविन्दक जातक

“क्याहँ देवानमकरं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही ।

ख. अतीत कथा

कथा महामित्तविन्दक जातक^१ में आएगी। लेकिन यह मित्त-विन्दक समुद्र में फँका जाने पर अति-लोभी हो, आगे जा नरक-गामी प्राणियों के (आग में) पकने के स्थान उत्सद-नरक को देख सोचने लगा कि यह एक नगर है। उसने उसमें प्रवेश कर खुर-चक्र का दुःख भोगा। उस समय बोधिसत्व देव-पुत्र की योनि में उत्सद-नरक में घूमते थे। उसने उन्हें देख प्रश्न करते हुए पहली गाथा कही—

क्याहं देवामनकरं किं पापं पकतं मया,
यं मे सिरस्मि ओहृच्च चक्कं भमति मत्थके ॥

[स्वामी ! मैंने देवताओं का क्या (अपराध) किया ? मेरे द्वारा कौनसा पाप किया गया, जिसके फलस्वरूप मेरे सिर में लगाकर मेरे मस्तक पर चक्र घूमता है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

अतिकम्भ रमणकंसदामत्तद्धूभकं,
ब्रह्मत्तरञ्च प्रासादं केनट्ठेन ह्यधागतो ॥

[तू रमणक, सदामत्त, दूभक तथा ब्रह्मत्तर प्रासाद छोड़ कर यहाँ क्यों आया ?]

तब मित्तविन्दक ने तीसरी गाथा कही—

इतो बहुतरा भोगा अत्र मज्जे भविस्सरे,
इति एताय सम्भाय पस्स मं व्यसनं गतं ॥

[इन सब प्रासादों से अधिक भोग यहाँ होंगे। इस समझ के कारण देख मैं (किस) दुःख में आ पड़ा हूँ ।]

तब बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीः—

चतुग्भि अट्ठगममात्ता अट्ठका हि च सोळस,
सोळसाहि च द्वत्तिस अत्रिच्छं चक्कमासदो,
इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके ॥

^१ महामित्तविन्दक जातक (४३३)

उपरि विस्तार दुप्परा इच्छा विसदगामिणी,
येतं अनुगिज्जन्ति वे होन्ति चक्रधारिनो^१ ॥

[चार से आठ, आठ से सोलह, सोलह से वत्सि की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमने वाला चक्र प्राप्त हुआ । इच्छा (लोभ) से ताड़ित मनुष्य के सिर पर चक्र घूमता है ।]

[यह तृष्णा ऊपर की ओर चढ़नी जाने वाली, पूरी न हो सकनेवाली, तथा फैलती जाने वाली है । जो इस तृष्णा में लुब्ध होते हैं, वे ही चक्रधारी होते हैं ।]

मिच्छविन्दक के घोलते रहते ही वह चक्र उसे मरोड़ कर स्वयं भी लुप्त हो गया । इससे वह फिर कुछ न कह सका । देवपुत्र अपने देवस्थान को चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मिच्छ-विन्दक बात न मानने वाला भिक्षु था । देवपुत्र तों में ही था ।

३७०. पलास जातक

“हंसो पलासमवच ...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता के निग्रह के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पञ्चासजातक^२ में आएगी । उस कथा में शास्ता ने भिक्षुओं को बुलाकर ‘भिक्षुओ, कामुकता से सशङ्कित ही रहना चाहिये । थोड़ी भी बट

^१ मिच्छविन्द जातक (१०४)

^२ पञ्चा जातक भी पाठ है, किन्तु यह पञ्चा जातक कौनसी है, निश्चित रूप से कहना कठिन है ।

के वृक्ष की तरह विनाश का कारण होती है। पुराने पण्डितों ने भी शङ्कनीय विषयों में शङ्का की ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बांधिसत्व स्वर्ण (वर्ण) हंस की योनि में पैदा हुए। बड़े हाने पर चित्र-कूट पर्वत पर स्वर्ण-गुफा में रह (वह) हिमालय-प्रदेश के जलाशय में अपने से उत्पन्न धान खाकर आता। उसके आने जाने के मार्ग में पलास का महान् वृक्ष था। वह जाता हुआ भी वहाँ विश्राम करके जाता और आता हुआ भी वहाँ विश्राम करके आता। उस वृक्ष पर रहने वाले देवता से उसको मैत्री हां गई। आगे चल कर एक चिड़िया एक बट के पेड़ से पका गोदा खाकर आई और उस पलास वृक्ष पर बैठ, शाखाओं के बीच बीट कर दी। उसमें से बट का वृक्ष पैदा हो गया। वह जब चार अङ्गुल मात्र था, तब लाल लाल पत्ते होने से शांभा देता था। हंस राजा ने उसे देख वृक्ष-देवता को आमन्त्रित कर कहा—मित्र ! बड़ (का पौधा) जिस वृक्ष पर पैदा होता है, बढ़ने पर उसे नष्ट कर देता है। इसे बढ़ने मत दे। तेरे विमान को नष्ट कर देगा। इसे तुरन्त ही उखाड़ डाल। जो सशक्त बात हो, वहाँ शङ्का करनी चाहिए। उसने पलास-देवता से मन्त्रणा करते हुए पहली गाथा कही—

हंसो पलासमवच^१ निग्रोधो सम्म जायति,

अङ्गस्मिं ते निलिङ्गोव सो ते मग्मानि छेच्छति ॥

[हंस ने पलास से कहा—मित्र, बट पैदा हो रहा है। वह तेरी गोद में बैठा हुआ ही तेरा प्राण ले लेगा।]

यह सुन उसका कहना अस्वीकार करते हुए वृक्ष-देवता ने कहा—

बद्धतामेव निग्रोधो पतित्ठस्स भवामहं,

यथा पिता च माता च एवमेसो भविस्सति ॥

[यह बट बढ़े। मैं इसका आधार होऊँगा। जैसे माता पिता होते हैं, (वैसा ही) इसका। (और मेरा) सम्बन्ध होगा।]

^१ इस गाथा का पहला पद शास्ता द्वारा कहा गया है।

तब हंस ने तीसरी गाथा कही—

यं त्वं अङ्गरिमं वद्देसि खीरकृत्स्नं भयानकं,

आमन्त खो तं गच्छामि बुद्धिमस्स न रुचति ॥

[मैं तुझे यह जताकर जाता हूँ कि तू जिस भयानक दुग्ध-वृक्ष (बट) को गोद में पालता है, मुझे इसका बढ़ना अच्छा नहीं लगता ।]

यह कह हंस-राज पंख पसार कर चित्र-कूट पर्वत पर ही चला गया । इसके बाद फिर नहीं आया । आगे चलकर बट बढ़ा । उसपर एक वृक्ष देवता भी रहने लगा । उसने, बढ़ते हुए, पलास को तोड़ा । शाखाओं के साथ (पलास-) देवता का विमान भी गिर गया । उसने उस समय हंस-राजा के वचन को याद किया कि इसी भावी-भय को देख कर हंसराज कहता था । लेकिन मैंने उसका कहना नहीं माना । उसने रोते-पीटते चौथी गाथा कही—

इदानी खो मं भायति महानेहनिदस्सनं,

हंसस्स अनभिञ्जाय महा मे भयमागतं ॥

[अब यह मुझे डराता है । हंस की बात न समझने से मुझ पर यह महानेह (पर्वत) के समान महान् आपत्ति आई ।]

बट ने बढ़ते हुए सारे पलास को तोड़ टूट मात्र कर दिया । देवता का सारा विमान नष्ट हो गया ।

पाँचवीं गाथा अभिसम्बुद्ध-गाथा है—

न तस्स बुद्धि कुसलप्पसत्था

यो वद्दमानो घसते पत्तिट्ठं,

तस्सूपरोधं परिसङ्गमानो

पतारयी मूलवधाय धीरो ॥

[जो बढ़ता हुआ उसी को खाता है जिस पर वह प्रतिष्ठित है, उसकी बढ़ती कुसल लोगों द्वारा प्रशंसित नहीं है । उससे उत्पन्न हुए उपरोध की शङ्का कर धीर उसके मूल को ही नष्ट करने का प्रयत्न करे ।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में पाँच सौ भिक्षुओं को अर्हत्व प्राप्त हुआ । उस समय स्वर्ण-हंस मैं ही था ।

पाँचवाँ परिच्छेद

३. अड़ढ वर्ग

३७१. दीधिति जातक

“एवं भूतस्स ते राजा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोसम्बी के भगड़ालुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उनके जेतवन आकर क्षमा-याचना करने के समय शास्ता ने उन्हें आमन्त्रित कर कहा—भिक्षुओ, तुम मेरे पुत्र हो, मुँह से उत्पन्न पुत्र हो। पुत्रों को चाहिये कि पिता के दिये गये उपदेश का उलंघन न करें। लेकिन तुम उपदेश के अनुसार नहीं चलते। पुराने परिदृश्यों ने अपने माता-पिता को मार, राज्य प्राप्त करने वाले चोरों को, जङ्गल में हाथ आ जाने पर भी केवल इसलिये नहीं मारा कि माता-पिता की आज्ञा का उलङ्घन नहीं करेंगे। यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

इस जातक की दोनों कथायें संघभेदक जातक^१ में विस्तार से आयेंगी। उस दीर्घायुकुमार ने जङ्गल में अपनी गोद में पड़े वाराणसी राजा को बालों से पकड़तलवार उठाई कि अब मैं अपने माता पिता की हत्या करने वाले के चौदह टुकड़े करूँगा, लेकिन उसी क्षण माता-पिता द्वारा दिये गये उपदेश को याद कर सोचा कि प्राण जाने पर भी उनकी आज्ञा का उलङ्घन नहीं करूँगा। इसे केवल धमका भर दूँगा। यह सोच उसने पहली गाथा कही—

^१ संघ-भेदक जातक अनिश्चित है।

एवं भूतस्स ते राज आगतस्स वसे ममं,
अस्थि नु कोचि परियायो यो तं दुक्खा पमोचये ॥

[हे राजन् ! इस प्रकार मेरे वश में आ पड़ने पर क्या कोई ऐसी बात है, जो तुम्हें दुःख से छुड़ा सके ?]

राजा ने दूसरी गाथा कही—

एवं भूतस्स मे तात आगतस्स वसे तव,
नस्थि नो कोचि परियायो यो मं दुक्खा पमोचये ॥

[हे तात ! इस प्रकार तेरे वश आ पड़ने पर कोई ऐसी बात नहीं है, जो दुःख से छुड़ा सके ।]

तब बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीं :—

नाम्बं सुचरितं राज नाम्बं राज सुभासितं,
तायते मरणकाले एवमेवितरं धनं ॥
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे,
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे,
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं,
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

[राजन । सुचरित या सुभाषित को छोड़ और कुछ इस मरने के समय रक्षा नहीं कर सकता, इसी प्रकार इतर धन भी (निरर्थक) है ॥१॥ 'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें सोचते रहते हैं उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ॥२॥ 'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें नहीं सोचते, उन्हीं का वैर शान्त होता है ॥३॥ वैर, वैर से कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है —यही संसार का सनातन नियम है ॥४॥]

यह कह बोधिसत्व ने उसके हाथ में तलवार देते हुए कहा—महा-राज ! मैं तुम से द्वेष नहीं करता हूँ । तुम मुझे मार डालो । राजा ने भी शपथ की—मैं तुम से द्वेष नहीं करता हूँ । उसके साथ नगर जा उसने अमा-त्यो को दिखाकर कहा—भण्ये ! यह कोशल-नरेश का पुत्र दीर्घायुकुमार है ।

इसने मुझे जीवन दान दिया है। मैं इसका कुछ बदला नहीं दे सकता। उसने उसे अपनी लड़की दे, पिता के राज्य पर प्रतिष्ठित किया। तब से दोनों परस्पर मेल से राज्य करने लगे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मातापिता महाराज-कुल थे। दीर्घायु कुमार तां मैं ही था।

३७२. मिगपोतक जातक

“अगारा पञ्चुपेतस्स...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वृद्ध के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उसने एक लड़के को प्रव्रजित किया। भ्रामण्योर उसकी अच्छी तरह सेवा करते रह कर, रोसी हो मर गया। उसके मरने से वृद्ध शोकाभिभूत हो बड़े जोर से रोता-चिल्लाता फिरता था। भिक्षुओं ने समझाने में असमर्थ हो धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक वृद्ध भ्रामण्योर के मरण से रोता-पीटता फिरता है। यह मरणानुस्मृति-भावना से बाहर होगा। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

“अमुक बातचीत।”

“न केवल अभी, पहले भी यह इसके मरने पर रोता-पीटता फिरता था” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने शक्रत्व (लाभ) किया। उसी समय काशी राष्ट्र निवासी किसी एक आदमी ने हिमालय में जा ऋषि-प्रव्रज्या ली। वह फल-मूल खाकर रहता था। एक

दिन उसने जंगल में एक मृगी का बच्चा देखा, जिसकी मां मर गई थी। वह उसे आश्रम में ले आया और चारा खिलाकर पालपोस लिया। मृगी का बच्चा बड़े होने पर बड़ा सुन्दर लगने लगा। तपस्वी उसे अपने पुत्र की तरह रखता था। एक दिन मृगी का बच्चा बहुत अधिक तृण खाकर अजीर्ण से मर गया। तपस्वी 'मेरा पुत्र मर गया' कहता हुआ रोता-पीटता फिरने लगा। तब देवराज शक्र ने लोक का विचार करते हुए उस तपस्वी को देखा। उसने उसके मन में संवेग पैदा करने के लिये आकर आकाश में उड़े हो पहली गाथा कही—

अगारा पचुपेतस्स अनागारस्स ते सतां,

समणस्स न तं साधु यं पेतमनुसोचसि ॥

[तू घर से बेघर हुआ है, अनगारिक है, श्रमण है, तेरे लिये यह अच्छा नहीं कि तू किसी के मरने पर चिन्तित हो।]

इसे सुन तपस्वी ने दूसरी गाथा कही—

संवासेन हवे सक्क मनुस्सस्स मिगस्स वा,

हदये जायते पेमं न तं सक्का असोचितुं ॥

[हे शक्र ! साथ रहने से चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु, हृदय में प्रेम पैदा हो जाता है। यह सम्भव नहीं कि मैं उसके लिये चिन्तित न होऊँ।]

तब शक्र ने दो गाथायें कहीं—

मतं मरिस्सं रोदन्ति यं रुदन्ति लपन्ति च,

तस्मा त्वं इसि मारोदि रोदितं मोघमाहु सन्तो ॥

रोदितेन हवे ब्रह्मे मतो पेतो समुद्गहे,

सब्बे सङ्गम रोदाम अञ्जमञ्जस्स जातके ॥

[वे मरों और मरने वालों को रोते हैं, जो रोते हैं और प्रलाप करते हैं। इसलिये हे ऋषि तू मत रो। सन्त पुरुष रोने को बेकार कहते हैं ॥१॥ हे ब्रह्म ! यदि रोने से मरा प्रेत उठ जाये, तो हम सब एक दूसरे के रिशतेदार इकट्ठे होकर रोयें ॥२॥]

इस प्रकार शक्र के कहते-कहते तपस्वी ने यह समझ कि रोना बेकार है, शक्र की स्तुति करते हुए तीन गाथायें कहीं—

आदिच्चं वत मंसन्तं घतसिच्चं व पावकं,

वारिना विय ओसिण्चं सब्बं निब्बापये दरं ॥१॥

अब्बूळहं वत मे सल्लं यमासि हृदयनिस्सितं,
 यो मे सोकपरेतस्स पुत्तसोकं अपानुदि ॥२॥
 सोहं अब्बूळहसल्लोस्मि वीतसोको अनाविलो,
 न सोचामि न रोदामि तव सुत्त्वान वासव ॥३॥

[घी पड़ी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे (हृदय के) दुःख को पानी से अग्नि शान्त कर देने की तरह शान्त कर दे ॥४॥ मेरे हृदय में लगे हुए शोक शल्य को निकाल दिया, जो यह मुझ शोकातुर का पुत्र-शोक दूर कर दिया ॥२॥ हे इन्द्र ! तेरी बात सुन कर मैं शोक-रहित हो गया हूँ । चञ्चलता-रहित हो गया हूँ, शल्य-रहित हो गया हूँ । अब मैं न चिन्ता करता हूँ, न रोता हूँ ॥३॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय तपस्वी बूढ़ा था । शक्र तो मैं ही था ।

३७३. मूसिक जातक

“कुहिं गता कथं गता...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय अजात-शत्रु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त थुस जातक^१ में विस्तार पूर्वक आ ही गई है । इस कथा में भी राजा को जरा देर पुत्र के साथ खेल, फिर जरा देर धर्म सुनते देख और यह जान कि इसी पुत्र के कारण राजा पर आपत्ति आयगी शास्ता ने राजा को कहा—महाराज ! पुराने राजाओं ने सन्देह करने की जगह

^१ थुस जातक (३३८)

पर सन्देह कर, हमारा पुत्र हमारे चितारोहण के बाद राज्य करे, सोच उसे एक ओर कर दिया है।

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तत्तशिला में ब्राह्मण-कुल में पैदा हो प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। उसके पास वाराणसी राजा के यव नामके पुत्र ने सब विद्यायें सीखीं। अभ्यास कर चुकने पर, जाने की इच्छा से उसने आज्ञा मांगी। आचार्य्य ने अङ्ग विद्या से जाना कि इसे अपने पुत्र से खतरा होगा। सोचा—इसका खतरा दूर करूँगा। आचार्य्य एक उपमा सोचने लगे।

उस समय आचार्य्य के पास एक घोड़ा था। उसके पाँव में जखम होगया। उसके जखम की हिफाजत के लिए उसे घर में ही रखा था। वहीं पास में एक जलाशय भी था। एक चूहिया घर से निकल कर उसके पाँव के जखम को खाती। घोड़ा उसे हटा न सकता।

एक दिन जब वह वेदना नहीं सह सका तो जखम खाने के लिये आई चूहिया को उसने पाँव से मार जलाशय में गिरा दिया। घोड़े का साईस चूहिया को न देख, बोला—और-दिन चूहिया आकर जखम खाती थी, अब नहीं दिखाई देती। कहाँ गई ?

बोधिसत्व ने उस बात को प्रत्यक्ष देख सोचा—दूसरे नहीं जानते कि चूहिया कहाँ गई, इसीलिये पूछते हैं कि वह कहाँ गई ? मैं ही जानता हूँ कि चूहिया को मारकर जलाशय में फेंक दिया गया है। उसने इसी बारे में पहली गाथा बनाकर राजकुमार को दी।

एक दूसरी उपमा खोजते हुए उसने उसी घोड़े को देखा कि उसका जखम अच्छा होगया है और वह निकल कर एक जौ के खेत में जौ खाने जाकर खेत की बाड़ में से मुँह ढाल रहा है। उसने उसी उपमा को ले दूसरी गाथा बना, उसे दी।

तीसरी गाथा उसने अपनी ही सूझ से बनाई और वह भी उसे देकर कहा—तात ! राज्य पर प्रतिष्ठित होकर शाम को स्नान-पुष्करिणी पर

जाते समय अन्तिम सीढ़ी तक पहली गाथा का पाठ करते हुए जाना, अपने रहने के महल में प्रविष्ट होते समय सीढ़ियों के नीचे तक दूसरी गाथा का पाठ करते हुए जाना और सीढ़ियों के सिरे तक तीसरी गाथा का पाठ करते हुए । यह कह विदा किया ।

वह कुमार जाकर उपराज बना और पिता के मरने पर राज्य करने लगा । उसको एक पुत्र पैदा हुआ । उसने सोलह वर्ष की आयु होने पर राज्य-लोभ के वशी-भूत हो सोचा—पिता को मारूँगा । तब उसने अपने सेवकों को बुलाकर कहा—मेरा पिता तक्ष्ण है । मैं इसके चितारोहण समय की प्रतीक्षा करता हुआ बूढ़ा हो जाऊँगा । जराजीर्ण होने पर उस समय राज्य मिला भी तो उससे क्या प्रयोजन ?

वे बोले—देव ! प्रत्यन्त-जनपद में जाकर विद्रोह नहीं कर सकते । अपने पिता को किसी न किसी उपाय से मारकर राज्य लें ।

उसने 'अच्छा' कहा और महल के अन्दर ही जहाँ राजा की शाम को स्नान करने की पुष्करिणी थी । वहाँ समीप ही जाकर तलवार लेकर खड़ा हो गया कि यहाँ मारूँगा । राजा ने शाम को मूसिका नाम की दासी को भेजा—जा पुष्करिणी की सफाई करके आ, नहाऊँगा । उसने जाकर पुष्करिणी की सफाई करते समय कुमार को देखा । कुमार को डर हुआ कि उसकी करतूत कहीं प्रकट न हो जाय । इसलिये उसने उसके दो टुकड़े कर उसे पुष्करिणी में गिरा दिया । राजा नहाने गया । आदमी कहने लगे—आज भी मूसिका दासी लौटी नहीं, कहाँ गई, किधर गई ? राजा पहली गाथा कहता हुआ पुष्करिणी के किनारे पहुँचा :—

कुहिं गता कथं गता इति लालपती जनो,

अहमेव एको जानामि उदपाने मूसिका हता ॥

[जनता प्रलाप करती है कि मूसिका कहाँ गई, किधर गई ? मैं ही अकेला जानता हूँ कि मूसिका मरकर जलाशय में पड़ी है ।]

कुमार ने समझा कि मेरी करनी पिता पर प्रकट हो गई । वह डर कर भाग गया और यह बात सेवकों को कही । उन्होंने सात आठ दिन के बाद उसे फिर कहा—देव ! यदि राजा जान जाता, तो चुप न रहता । अन्दाज से ही उसने वैसा कह दिया होगा । उसे मारें । वह फिर एक दिन हाथ में

तलवार ले सीढ़ियों के नीचे खड़ा हुआ और राजा के आने के समय इधर-उधर प्रहार करने का अवसर देखने लगा। राजा दूसरी गाथा का पाठ करता हुआ आया—

यन्चेतं इतिचितिव रात्रभोव निवत्तसि,
उदपाने मूसिकं हन्त्वा यवं भक्खितुमिच्छसि ॥

[यह जो तू गधे की तरह इधर उधर (देखता हुआ) खड़ा है। (इस से मालूम होता है) जलाशय में मूसिका को मार कर अब यव (जौ) को खाना चाहता है ।]

कुमार ने समझा—मुझे पिता ने देख लिया है। वह डर के मारे भाग गया। फिर आधे महीना पर 'राजा को लाठी की मार से मारूँगा' सोच एक लम्बी लाठी ले उसके सहारे खड़ा हुआ। राजा तीसरी गाथा कहता हुआ सीढ़ियों पर चढ़ा—

दहरो चसि दुम्मेघ पठमुप्पत्तितो सुसू,
दीघन्चेतं समासज्ज न ते दस्सामि जीवितं ॥

[प्रथम उत्पत्ति के दिन से ही तू लड़का है, मूर्ख है और बाल है। लम्बी (लाठी) लेकर खड़ा है। अब मैं तुझे जीता नहीं छोड़ूँगा ।]

उस दिन वह भाग न सका और जाकर राजा के पाँव पर गिर पड़ा—
देव ! मुझे जीवन दान दें। राजा ने उसे धमका, जंजीर से बंधवा बन्धनागार ने डलवा दिया। फिर श्वेत-छत्र के नीचे अलंकृत राजासन पर बैठ सोचा—
हमारे आचार्य ने, चारों दिशाओं में प्रसिद्ध ब्राह्मण ने मेरे लिये यह खतरा देख कर ही ये गाथाएँ कही (होंगी)। उसने प्रसन्न हो प्रीति-वाक्य कहते हुये शेष गाथाएँ कहीं—

नान्तलिक्खभवेनेन नाङ्गपुत्तसिरेनवा,
पुत्तेन हि पत्थयितो सिलोकेहि पमोचितो ॥
सब्बं सुतमधीयेथ हीनमुक्कुट्टमज्झिमं,
सब्बस्स अत्थं जानेय्य न च सब्बं पयोजये,
होति तादिसको कालो यत्थ अत्थावहं सुतं ॥

[न तो मैं विमान (में बैठा होने) से बचा हूँ और न अङ्गसदृश पुत्र द्वारा ही बचाया गया हूँ । पुत्र द्वारा ही मुझ पर आक्रमण हुआ । श्लोको द्वारा रक्षा हुई ॥१॥]

हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ट सभी विद्याओं को सीखे, सभी के अर्थ को जाने, किन्तु सभी का प्रयोग न करे । ऐसा समय आता है जहाँ श्रुत (ज्ञान) से काम होता है ॥२॥]

आगे चलकर राजा के मरने पर कुमार राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य मैं ही था ।

३७४. चुल्लधनुग्गह जातक

“सब्बं भण्डं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्या की आसक्ति के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु के यह कहने पर कि भन्ते पूर्व-भार्या उमे उद्विग्न करती है, शास्ता ने ‘भिक्षु ! यह स्त्री केवल अभी तेरी अनर्थ-कारिणी नहीं है, इसके कारण पहले भी तू तलवार से काटा गया है’ कह भिक्षुओं के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र हुये । उस समय एक ब्राह्मण-तटुण तक्षशिला में सभी शिल्प सीख धनुष-विद्या में पूर्णता प्राप्त कर चुल्ल-धनुग्गह-पण्डित कहलाया । उसके आचार्य ने यह देख कि यह मेरे जैसे ही शिल्प जान गया है, उसे अपनी लड़की दे

दी। वह उसे ले बाराणसी आने के लिये रास्ते पर निकला। मार्ग में एक प्रदेश था, जिसे एक हाथी ने (आदमियों से) शून्य कर दिया था। कोई भी वहाँ जाने का साहस न करता था। चुल्ल-धनुग्गह-परिडित आदमियों के मना करते रहने पर भी भार्या को ले जंगल की ओर बढ़ा।

जंगल के बीच पहुँचने पर हाथी ने उस पर आक्रमण किया। उसने हाथी के सिर में तीर मारा। तीर उसे भीँव कर पिछली ओर से निकल गया। हाथी वहीं गिर पड़ा। धनुग्गह-परिडित उस स्थान को निष्कण्टक बना आगे दूसरे जंगल में घुसा। वहाँ भी पचास चोर बट-मारी करते थे। आदमियों ने रोका। तो भी वह उधर बढ़ा। चोर मृगों को मार, रास्ते पर बैठे उनका माँस पकाकर खा रहे थे। सजी सजाई स्त्री के साथ उसे आते देख चोरों ने सोचा—‘इसे पकड़ें’। चोरों का सरदार पुरुष-लक्षण (विद्यामं) कुशल था। उसने उसे देख और यह जान कि यह उत्तम-पुरुष है किसी एक को भी उठने नहीं दिया। धनुग्गह-परिडित ने अपनी भार्या को भेजा—जा ‘हमें भी एक कबाब दो’ कह कर एक कबाब ले आ।

उमने जाकर कहा—एक माँस की सलाई दे दो। चोरों के सरदार ने ‘यह बढ़िया आदमी है’ साँच माँस सलाई दिलाई। चोरों ने ‘पकी मांस-सलाई हम खा चुके’ कह कच्ची माँस-सलाई दे दी। धनुग्गह के मन में मान पैदा हुआ। वह यह सोच कि मुझे कच्चा माँस देते हैं, चोरों पर क्रुद्ध हुआ। चोर भी उठ खड़े हुए—क्या यही एक पुरुष है, हम स्त्रियाँ हैं!

धनुग्गह ने उनचास तीरों में उनचास जनों को भीँव कर गिरा दिया। चोरों के सरदार को भीँवने को तीर नहीं रहा। उसके तरकश में पूरे पचास ही तीर थे। एक तीर से हाथी को भीँवा। उनचास तीरों से चोरों को भीँव, चोरों के सरदार को गिरा, उसकी छाती पर बैठ सोचा—इसका सिर काटूँगा। उसने भार्या से तलवार मंगाई। उसने उसी क्षण चोरों के सरदार के प्रति आसक्त हो स्वामी के हाथ में म्यान और चोर के हाथ में दस्ता दे दिया। चोर ने दस्ता पकड़, तलवार निकाल, धनुग्गह का सिर काट दिया।

उसने उसे मार, स्त्री को ले जाते समय उससे जाति-गोत्र पूछा। वह बोली—मैं तत्तशिला के प्रसिद्ध आचार्य्य की लड़की हूँ।

“इसे तू कैसे मिली?”

“मेरे पिता ने इस पर प्रसन्न हो कि इसने भी उसके सदृश शिल्प सीख लिया है, मुझे इसे दे दिया। और मैंने तुम पर आसक्त हो अपने कुल-प्राप्त स्वामी को मरवा दिया।”

चोरों के सरदार ने सोचा—इसने अपने कुल-प्राप्त स्वामी को मरवा दिया। किसी दूसरे को देख मुझसे भी यही बर्ताव करेगी। इसे छोड़ना चाहिए। रास्ते में एक छोटी नदी देखी जिसका पाट चौड़ा था और जो उस समय पानी से लबालब थी। वह बोला—भद्रे। इस नदी के मगर-मच्छ भयानक हैं। क्या करें ?

“स्वामी ! तुम मेरी चादर में गहनों की गठरी बांध दूसरी ओर ले जाओ। फिर दूसरी बार आकर मुझे ले जाना।”

उसने ‘अच्छा’ कहा और सारे गहनों की गठरी ले, नदी में उतर, तैर कर, पार कर, दूसरे किनारे पर पहुँच, उसे छोड़ चला गया। उसने देखा तो बोली “स्वामी ! क्या मुझे छोड़ कर जा रहे हो ? ऐसा क्यों करते हो। आओ मुझे भी लेकर जाओ।”

इस प्रकार उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही—

सब्बं भयङ्गं समादाय पारं तिण्णोसि ब्राह्मण,
पच्चागच्छ लहूँ खिप्पं मन्निपतारेहि दानितो ॥

[ब्राह्मण ! सब सामान लेकर अब तू पार होगया है। अब तू शीघ्र लौट कर मुझे भी जल्दी पार उतार।]

चोर ने यह सुन दूसरे किनारे पर खड़े ही खड़े दूसरी गाथा कही :—

असन्धुतं मं चिरसंथुतेन
निमीसि भोति अशुवं धुवेन,
मयापि भोति निमिनेच्च अञ्जं
इतो अहं दूरतरं गमिस्सं ॥

[आपने चिरकाल से संसर्ग किये हुए, ध्रुव-स्वामी को छोड़कर मुझे जिसका पूर्व संसर्ग नहीं था, और जो अध्रुव था अपनाया। अब आप मुझ से भी किसी दूसरे को बदल सकती हैं। इस लिए मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ।]

चोर 'तू ठहर, मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ' कह उसके विलाप करते रहते ही गहनों की गठरी ले भाग गया। तब वह मूर्खा इच्छा-बाहुल्यता के कारण इस प्रकार की विपत्ति में पड़, अनाथ हो, पास ही एलगाज (?) की झाड़ी में बैठ रोने लगी।

उस समय शक्र ने दुनियाँ की ओर देखते हुए उसकी ओर देखा, जो इच्छा-बाहुल्य होने के कारण दुःख-प्राप्त थी और जिसे उसके स्वामी तथा चोर ने छोड़ दिया था। शक्र ने उसे रोते देख सोचा—इसकी गद्दी कर तथा इसे लज्जित कर आता हूँ। उसने मातलि और पञ्चशिख को साथ लिया, और नदी किनारे खड़े हो मातलि को कहा—तू मच्छ बन, पञ्च-शिख को कहा—तू पत्नी बन। मैं गीदड़ होकर मुँह में मांस का टुकड़ा ले इसके सामने जाऊँगा। तू मेरे वहाँ पहुँचने पर पानी में से उछल मेरे सामने गिरना। मैं मुँह में लिए हुए मांस के टुकड़े को छोड़ मछली पकड़ने के लिए लपकूँगा। उस समय पञ्चशिख तू उस मांस के टुकड़े को ले आकाश में उड़ जाना। उसने मातलि को आज्ञा दी—तू पानी में उतर।

“देव ! अच्छा।”

मातलि मच्छ हो गया। पञ्चशिख पत्नी हुआ।

शक्र गीदड़ बन, मांस का टुकड़ा मुँह में ले, उसके सामने आया। मच्छ पानी में से उछल गीदड़ के सामने गिरा। वह मुँह में के मांस के टुकड़े को छोड़ मच्छ के लिए लपका। मच्छ उछल कर पानी में गिरा। पत्नी मांस का टुकड़ा ले आकाश में उड़ गया। गीदड़ को दोनों में से एक भी नहीं मिला—वह एलगाज (?) की झाड़ी की ओर देखते हुए दुःखित मन हो बैठा।

उसने उसे देख, 'यह इच्छा-बाहुल्य होने के कारण न मांस पा सका, न मछली' सोच घड़ा फूटने की तरह की महान् हँसी हँसी। उसे सुन गीदड़ ने तीसरी गाथा कही—

कायं एलगाळान्धे करोति अट्टहासियं,
नपिध नब्बं वा गीतं वा ताळं वा सुसमाहितं,
अनन्धिकाळे सुस्सोयि किन्नु जग्घसि सोभने ॥

[एलगाज भाड़ी में बैठी हुई हँसने वाली यह कौन है ? न यहाँ नाचना है, न गाना है, न ताल देना है । हे सुन्दरी ! हे सुश्रोणी ! तू रोने के साथ किस लिये हँसी ?]

यह सुन उसने चौथी गाथा कही—

सिगाल बाल दुम्मेध अप्पपञ्जोसि जम्बुक,

जिनो मच्छञ्च पेसिञ्च कपणो विथ मायसि ॥

[हे शृगाल ! हे जम्बुक ! तू मूर्ख है, दुबुद्धि है, प्रज्ञारहित है । मच्छ और मांस-पेशी दोनों से रहित होकर कृपण की तरह चिन्ता करता है ।]

तब गीदड़ ने पांचवीं गाथा कही --

सुदस्सं वज्जं अञ्जेसं अत्तनोपन दुहसं,

जिना पतिञ्च जारञ्च मग्गि त्वञ्जेव मायसि ॥

[दूसरों का छिद्र देखना आसान है, अपना छिद्र देखना कठिन । तू भी अपने पति और अपने जार से विहीन होकर मेरी ही तरह चिन्तित होती है ।]

उसने उसका कहना सुन गाथा कही—

एवमेतं मिगराज यथा भाससि जम्बुक,

सा नूनाहं इतो गन्त्वा भत्तु हेस्सं वसानुगा ॥

[हे मृगराज ! हे जम्बुक ! जैसा तू कहता है, वैसा ही है । अब मैं यहाँ से जाकर स्वामी की वशवर्तिनी बनूंगी ।]

उस अनाचारिणी, दुराचारिणी का कहना सुन देव-राज शक्र ने अन्तिम गाथा कही—

यो हरे मत्तिकं थालं कंसथालमि सो हरे,

कतंयेव तथा पापं पुनपेवं करिस्ससि ॥

[जो मिट्टी की थाली चुराता है, वह काँसे की थाली भी चुराता है । तूने पाप किया है, और फिर भी तू करेगी ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिन्नु सोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय धनुग्गाह उद्विग्न-चित्त भिन्नु था । वह स्त्री पूर्व-भार्या । देव-राज शक्र तो मैं ही था ।

३७५. कपोत जातक

“इदानी खोम्हि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

लोभी-कथा अनेक प्रकार से आ ही गई है। शास्ता ने उस भिक्षु को ‘भिक्षु, क्या तू सचमुच लोभी है?’ पूछा, उसके ‘भन्ते ! हाँ’ कहने पर ‘भिक्षु ! न केवल अभी तू लोभी है, पहले भी लोभी ही रहा है, और लोभ के ही कारण जान गँवाई है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा हो, वाराणसी सेठ की रसोई में, पिंजरे में रहता था। मत्स्य-मांस लोभी एक कौवा उसके साथ मैत्री कर वहाँ ही रहने लगा।

एक दिन बहुत सा मत्स्य-मांस देख उसे खाने की इच्छा से वह बुड़-बुड़ाता हुआ पिंजरे में ही पड़ा रहा। जब कबूतर ने उसे बुलाया कि मित्र चल चुगने चलें, तो बोला तू जा मुझे अजीर्ण हुआ है। उसके चले जाने पर ‘मेरा शत्रु-कण्टक चला गया है। अब मैं यथा-रुचि मत्स्य-मांस खाऊँगा’ सोच पहली गाथा कही—

इदानी खोम्हि सुखितो अरोगो निष्कण्टको निष्पतितो कपोतो,

काहामि दानि हृदयस्य तुट्ठिं तथा हिमं मंसं साकं वलेत्ति ॥

[अब मैं सुखी हूँ, निरोग हूँ, और निष्कण्टक हूँ, क्योंकि कबूतर चला गया है। अब मैं हृदय को सन्तुष्ट करूँगा, मेरे लिए मांस शाक का ऐसा ही आकर्षण है।]

जिस समय रसोइया मत्स्य मांस पका, रसोई-घर से निकल शरीर से पसीना बहा रहा था, वह पिंजरे से निकला और देगची पर बैठ 'किरी किरी' आवाज की। रसोइये ने जल्दी से आकर कौवे को पकड़ उसके सब पर नोच डाले। और कच्चे अदरक को सरसों के साथ पीस तथा उसमें लहसुन और सड़ा हुआ मठा मिला सारे शरीर में माल दिया। फिर एक लकड़ी के टुकड़े को रगड़ उसमें छेद कर सूत से उसकी गरदन में बाँधा। और पिंजरे में ही डाल कर चला गया।

कबूतर ने आकर उसे देख 'यह कौन बगुला है जो मेरे मित्र के पिंजरे में आकर लेटा है। वह तो बड़ा प्रचण्ड है। आकर इसे मार डाल भी सकता है' कह हँसी करते हुए दूसरी गाथा कही।

कायं बलाका सिखिनी चोरी लंघि पितामहा,

ओरं बलाके आगच्छ चण्ढो मे वायसो सखा

[यह कौन बगुली है जिसके सिर पर शिखा है, जो चोर है, और जो बादल की पोती है। हे बगुली, इधर आ मेरा मित्र कौवा प्रचण्ड है।]

यह सुन कौवे ने तीसरी गाथा कही।

अलं हिते जग्घिताय ममं दिस्वान येदिसं,

विलूनं सूदपुत्तेन पिठ्ठमहेन मक्खिमं।

[मुझे इस हालत में देख कर मज़ाक मत कर, मैं रसोइये द्वारा नोच डाला गया हुआ हूँ और पिसे हुए (अदरक आदि) से पोत डाला गया हूँ।]

उसने हँसी मज़ाक करते हुए चौथी गाथा कही।

सुन्हातो सुविल्लित्तोसि अन्नपाणेन तप्पितो,

कण्ठे च ते वेल्लुरियो अगमानुकजंगलं।

[अच्छी तरह नहाया हुआ है, अच्छी तरह (चन्दनादि का) लेप किया हुआ है, अन्न पान से सन्तुष्ट है, और तेरे गले में बिल्लौर है, क्या तु क-जंगल (वाराणसी को ?) गया है।]

तब कौवे ने पाँचवीं गाथा कही—

मा ते मित्तो अमित्तो वा अगमाति कजंगलं,

पिण्डानि तथ ज्ञायित्वा कण्ठे बन्धन्ति बद्धनं।

[तेरा मित्र या शत्रु कोई भी क-जंगल न जाय । वहाँ पर नोच कर गले में लकड़ी बाँध देते हैं ।]

यह सुन कबूतर ने अन्तिम गाया कही—

पुन पापजसि सम्मसीलं हि तव तादिसं,

नहि मानुसका भोगा सुभुंजा होन्ति पक्खिना ।

[मित्र तू फिर भी ऐसा ही करेगा । तेरा स्वभाव ही ऐसा है, पक्षी के लिए मनुष्यों के भोजन सुभोज्य नहीं होते ।]

इस प्रकार उसे उपदेश दे, वहाँ न रह, पंख फैला अन्यत्र ही चला गया । कौवा भी वहीं मर गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्त्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय कौवा लोभी भिक्षु था । कबूतर तो मैं ही था ।

छठा परिच्छेद

१. अवारिय वर्ग

३७६. अवारिय जातक

“मास्सु कुब्जि भूमिपति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक घाटवाल के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह मूर्ख था अज्ञानी—न बुद्ध आदि के, न औरों के ही गुणों को पहचानता था, प्रचण्ड, कठोर, दुस्साहसी। एक जानपद भिक्षु ने बुद्ध-दर्शन करने की इच्छा से शाम को अचिर-वती के घाट पर पहुँच उसे कहा—उपासक ! मुझे नौका दे, पार जाऊँगा।

“भन्ते ! अब असमय है, यहीं किसी जगह रहें।”

“उपासक ! यहाँ कहाँ रहूँगा, मुझे लेकर चल।”

उसने क्रोधित हो कहा—आ रे, भ्रमण ले चलूँ; और स्थविर को नौका पर चढ़ा, सीधे न जा, नौका को नीचे की ओर ले जा, (नौका को) हिला-डुला, उसका पात्र चीवर भिगा दिया। (इस प्रकार) उसे कष्ट दे, किनारे पर पहुँचा, अन्धेरा होने पर उतारा। वह विहार पहुँचा। उस दिन बुद्ध की सेवा में जाने का अवसर न पा वह दूसरे दिन शास्ता के पास गया और प्रणाम करके एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशल-समाचार के बाद पूछा—

“कब आया है ?”

“भन्ते ! कल।”

“तो बुद्ध की सेवा में आज कैसे आया है ?”

उसने वह हाल कहा। शास्ता ने सुन ‘भिक्षु ! न केवल अभी वह प्रचण्ड तथा कठोर है, पहले भी ऐसा ही रहा है। इस समय उसने तुझे कष्ट

दिया है, पहले भी पण्डितों को कष्ट दिया है' कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला में सब विद्यायें सीख, ऋषि-प्रब्रज्या ले, चिरकाल तक हिमालय में फल-मूल खाते रह कर, निमक-खटाई खाने के लिये वाराणसी आ, राजोद्यान में ठहर, अगले दिन भिक्षा के लिये निकला । उमे राजाङ्गन में आया देख, राजा ने उसकी चर्या पर प्रसन्न हो, अन्तःपुर में ला, भोजन कराया और वचन ले राजोद्यान में बसाया । राजा प्रतिदिन सेवा में जाता था । बोधिसत्व उसे 'महाराज ! राजा को चार अगतिगामी-धर्मों में न पड़, अप्रमादी हो, क्षमा, मैत्री तथा दया के साथ धर्मानुसार राज्य करना चाहिये' कह प्रतिदिन उपदेश देते हुए दो गाथायें कहते थे—

मास्सु कुज्झि भूमि-पति मास्सु कुज्झि रथेसभ,

कुद्धं अप्पट्टिकुज्झन्तो राजा रट्ठस्स पूजितो ॥

गामे वा यदि वा रज्जे निन्ने वा यदि वा थले,

सब्बत्थमनुसासामि मास्सु कुज्झि रथेसभ ॥

[हे भूमिपति क्रोध मत कर । हे रथेसभ ! क्रोध मत कर । क्रुद्ध के प्रति भी क्रोधी न होने वाला राजा राष्ट्र में पूजित होता है ॥ मैं गाँव, जंगल, निम्न-स्थान वा (ऊँचे) स्थल पर जहाँ कहीं भी रहता हूँ, यही अनुशासना करता हूँ कि हे रथेसभ ! क्रोध न करें ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने जब-जब राजा आया उस-उस दिन ये गाथायें कहीं । राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्व को लाख की आमदनी का एक गाँव दिया । बोधिसत्व ने स्वीकार नहीं किया । इस प्रकार बारह वर्ष तक वहाँ रहते हुए बोधिसत्व ने सोचा—दीर्घकाल तक (एक जगह) रहा । जन-पद में घूम कर आता हूँ । उसने राजा को सूचना न दे उद्यान-पाल को बुलाकर कहा—तात ! मैं जनपद-चारिका के लिये उत्सुक हूँ । घूम कर आऊँगा । तू राजा को कहना । वह चलकर गङ्गा के घाट पर पहुँचा । वहाँ अवारिय-

पिता नाम का नाविक था । वह मूर्ख न गुणवानों के गुण पहचानता था और न ही अपना आमदनी का उपाय जानता था । वह गङ्गा पार जाने की इच्छा करने वालों को पहले गङ्गा-पार उतार देता और तब उतराई माँगता । उतराई न देने वालों के साथ झगड़ते हुए उसे लाभ तो कम होता अधिक तो गाली और प्रहार ही मिलते । इस प्रकार के अन्धे-मूर्ख के बारे में शास्ता ने बुद्ध होकर तीसरी गाथा कही—

अवारियः पिता नाम अहू गङ्गाय नाविको,
पुब्बे जन्तं तारयित्वा पच्छा याचति वेतनं,
तेनस्स भण्डं होति न च भोगेहि वड्ढति ॥

[गङ्गा पर अवारिय-पिता नाम का नाविक था, जो पहले लोगों को पार उतार कर पीछे उतराई माँगता था । उससे उसका झगड़ा ही होता था, भोगों में वृद्धि नहीं ॥]

बोधिसत्व ने उस नाविक के पास जाकर कहा—

“आयुष्मान ! मुझे पार ले चल ।”

यह सुन वह बोला :—

“श्रमण ! क्या मुझे उतराई देगा ?”

“आयुष्मान ! मैं भोगों में वृद्धि, अर्थ की वृद्धि तथा धर्म की वृद्धि का उपाय कहूँगा ।”

नाविक ने सोचा, यह मुझे निश्चय से कुछ देगा । पार पहुँचा कर बोला :—

“मुझे नौका की उतराई दो ।”

‘अच्छा, आयुष्मान’ कह बोधिसत्व ने उसे भोगों में वृद्धि का उपाय कहते हुए पहली गाथा कही—

अतिण्णञ्जेव याचस्सु अपारं तात नाविक,
अञ्जो हि तिण्णस्स मनो अञ्जो होति तरेसिनो ॥

[तात नाविक ! पार जाने से पहले इस पार ही उतराई मांगा कर । पार जाने की इच्छा वाले का मन दूसरा होता है, और जो पार पहुँच गया उसका मन दूसरा ।]

यह सुन नाविक ने सोचा—यह तो उपदेश हुआ, अब यह मुझे कुछ देगा। बोधिसत्व ने ‘आयुष्मान ! यह तो भोगों की वृद्धि का उपाय हुआ, अब अर्थ की वृद्धि तथा धर्म की वृद्धि का उपाय सुन’ कह उसे उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

गामे वा यदि वा रण्णे निन्ने वा यदि वा थले,

सव्यस्थमनुसालामि मात्तु कुञ्जिक्कथ नाविक ॥

[गाँव में, आरण्य में, निम्न-स्थान वा (ऊँचे) स्थल पर जहाँ कहीं भी रहता हूँ यही अनुशासन करता हूँ। नाविक ! क्रोध न कर ।]

अर्थ-धर्म वृद्धि के लिये यह गाथा कह कर कहा—यह तेरी अर्थ-धर्म-वृद्धि के लिये हुई। उस दुष्ट-पुरुष ने इसे कुछ नहीं समझा। बोला—

“अमण ! तूने मुझे यही नौका की उतराई दी है ?”

“आयुष्मान् ! हाँ ।”

“मुझे इससे प्रयोजन नहीं। और दे ।”

आयुष्मान् ! मेरे पास यह छोड़ और कुछ नहीं।

“तब तू क्यों नौका पर चढ़ा ?” कह तपस्वी को गङ्गा के किनारे पर गिरा, छाती पर बैठ उसका मुँह पीट दिया।

शास्ता ने ‘भिक्षुओं जो उपदेश देकर तपस्वी ने राजा से गांव पाया, वही उपदेश अन्ये मूर्ख नाविक को देकर मुँह पर चोट खाई। इसलिए उपदेश उसे देना चाहिए जिसे उचित हो, उसे नहीं जिसे उपदेश देना अनुचित हो’ कह अभिसंबुद्ध होने पर यह बाद की गाथा कही—

यायेव अनुसासनिया राजा गामवरं अदा,

तायेव अनुसासनिया नाविको पहरी सुखं ॥

[जिस अनुशासना से राजा ने श्रेष्ठ गांव दिया, उसी उपदेश के देने पर नाविक ने मुँह पर प्रहार किया ।]

उसके उसे मारते समय ही उसकी भार्या भात लेकर आ पहुँची। वह तपस्वी को देखकर बोली—स्वामी ! यह तपस्वी राजकुल सम्मानित है। इसे मत मार। उसने क्रोधित हो ‘तू ही इस कुटिल तपस्वी को पीटने नहीं देती है’ कह उठकर उसे पीट गिरा दिया। भात की हांडी गिरकर फूट गई। भारी, गर्भ वाली भार्या का गर्भ गिर पड़ा। मनुष्यों ने उसे पुरुष की हत्या करने वाला

चोर समझ पकड़ लिया और बांधकर राजा के पास ले गये । राजा ने मुकद्दमा कर उसे राजदण्ड दिया ।

शास्ता ने अभिसंबुद्ध हो उस बात को प्रकट करते हुये अन्तिम-गाथा कही:—

भक्तं भिन्नं हता भरिया गम्भो च पतितो छमा,

मिगोव जातरूपेन न तेनत्थं अबंधिसु ॥

[भात की हांडी टूट गई, भार्या मर गई और पृथ्वी पर गर्भ गिर पड़ा । जिस प्रकार सोना (पैला रहने) से भी मृग की अभिवृद्धि नहीं होती वैसे ही उसे कुछ लाभ नहीं हुआ ।]

शास्ता ने धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में भिक्षु सोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय नाविक अब कानाविक हुआ । राजा आनन्द था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३७७. सेतकेतु जातक

“मा तात कुञ्जि नहि साधु कोधो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही । वर्तमान-कथा कुहाल जातक^१ में आयेगी ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ ब्रह्मचारियों को मन्त्र बँचवाते थे ।

^१ सिंहल अक्षरों में सुद्रित मूल-प्रति में उहालक जातक (४८७) के स्थान पर कुहाल जातक छप गया है । कुहाल जातक (७०) तो प्रथम खण्ड में आ ही चुकी है ।

उनमें से प्रधान-शिष्य का नाम था श्वेतकेतु । वह उदीच्य ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ था, और उसके मन में बड़ा ही जाति-अभिमान था । एक दिन वह दूसरे ब्रह्मचारियों के साथ नगर से बाहर जा रहा था । उसने नगर में प्रविष्ट होते हुए एक चाण्डाल को देख पूछा —

“तू कौन है ?”

“मैं चाण्डाल हूँ ।”

उसे डर लगा कि उसके शरीर को छूकर आने वाली हवा कहीं उसको न लग जाय । वह उस चाण्डाल को ‘मनहूस कहीं के, जिधर हवा जा रही है, उधर होकर चल’ कह, भागकर जिधर से हवा आ रही थी, उधर हो गया । चाण्डाल भी शर्मिता से जाकर उससे भी ऊपर की ओर हो गया ।

तब उसने उसे ‘वृषल, मनहूस’ कहकर अच्छी तरह गालियाँ दीं । ये सुन चाण्डाल ने पूछा:—“तू कौन है ?”

“मैं ब्राह्मण-माणवक हूँ ।”

“भले ही ब्राह्मण हो, मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा ?”

“हाँ, सकूँगा ।”

“यदि नहीं दे सकेगा तो टांगों के बीच से निकलना होगा ।”

उसने अपनी सामर्थ्य का अन्दाजा लगा कहा—पूछ । चाण्डाल-पुत्र ने उसकी बात का लोगों को साक्षी बना कर प्रश्न किया—दिशायें कितनी हैं ?

“पूर्व आदि चार दिशायें हैं ।”

“मैं तुझसे इन दिशाओं के बारे में नहीं पूछता । तू इतनी बात भी नहीं समझता और मेरे शरीर से छुई हवा से घृणा करता है !”

उसने उसे कन्धे से पकड़, झुका अपनी टांगों के बीच में से निकाला । ब्रह्मचारियों ने यह समाचार आचार्य से कहा ।

यह सुन आचार्य ने पूछा—“तात श्वेतकेतु ! क्या सचमुच चाण्डाल ने तुझे अपनी टांगों में से निकाला ?”

“हाँ आचार्य ! उस चाण्डाल दासी-पुत्र ने मुझे ‘यह दिशा मात्र भी नहीं जानता है’ कह अपनी टांगों के बीच से निकाला । अब मिलने पर उसका जो करना है, करूँगा ।”

इस प्रकार क्रुद्ध हो उसने चाण्डाल-पुत्र को गालियां दीं। आचार्य्य बोला—तात श्वेतकेतु। उस पर क्रोधित मत हो। चाण्डाल-पुत्र पण्डित है। वह तुझे यह दिशा नहीं पूछता है। दूसरी ही दिशा पूछता है। तूने जो देखा, सुना व जाना है, उसकी अपेक्षा न देखा, न सुना, न जाना ही अधिक है।

इस प्रकार उपदेश देते हुए ये दो गाथायें कहीं :—

मा तात कुज्झि नहि साधु कोधो
बहुमि ते अदिट्ठं अस्सुतच्च,
माता पिता दिसता सेतकेतु
आचरियमाहु दिसतं पसत्था ॥
अगारिनो अन्नदपाणवत्थदा
अह्मायिका तमि दिसं वदन्ति,
एसा दिसा परमा सेतकेतु
यं पत्वा दुक्खी सुखिनो भवन्ति ॥

[तात ! क्रोध मत कर। क्रोध करना अच्छा नहीं। जो तूने देखा सुना नहीं, ऐसा बहुत है। हे श्वेतकेतु ! माता-पिता (पूर्व-) दिशा हैं और आचार्य्य श्रेष्ठ (दक्षिण-) दिशा कहलाते हैं ॥ अन्न-वस्त्र देने वाले, बुला कर (देने वाले) गृहस्थ उस (भ्रमण-ब्राह्मणों की दिशा) को भी एक दिशा कहते हैं। हे श्वेत-केतु वह दिशा परं-श्रेष्ठ है, जिसे प्राप्त कर दुखी-जन सुखी होते हैं ॥]

कहा भी गया है :—

माता पिता दिसा पुब्बा आचरिया इत्थिणादिसा,
पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्तामच्चा च उत्तरा ॥
दासकम्मकरा हेट्ठा उद्धं समया ब्राह्मणा,
एता दिसा नमस्सेय्य अप्पमत्तो कुल्ले गिहि ॥

[मातापिता पूर्व-दिशा हैं। आचार्य्य दक्षिण-दिशा। पुत्र तथा दारा पश्चिम-दिशा। यार दोस्त उत्तर-दिशा। दास-कर्मचारीगण नीचे की दिशा और भ्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। गृहस्थ को चाहिये कि प्रमाद रहित हो इन दिशाओं को नमस्कार करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने ब्रह्मचारी को दिशायें समझाईं । वह 'चाण्डाल ने मुझे टांगों में से गुजारा है' सोच वहाँ न रह तक्षशिला चला गया । वहाँ प्रसिद्ध आचार्य के पास सब शिल्प सीख, आचार्य से आज्ञा ले, तक्षशिला से निकल, सभी सम्प्रदायों की विद्यायें सीखता हुआ विचरने लगा । एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचने पर उसने उस के आश्रित रहने वाले पाँच सौ तपस्वियों को देखा । उनके पास प्रब्रजित हो उसने जो कुछ भी वह शिल्प या मन्त्र या चरण जानते थे सीखा और मण्डली का नेता बन वाराणसी आया । फिर एक दिन भिक्षाटन करता हुआ राजाङ्गण में पहुँचा ।

राजा ने तपस्वियों की चर्चों पर प्रसन्न हो, उन्हें महल में बिठा भोजन करा अपने उद्यान में ठहराया । राजा ने तपस्वियों को भोजन करा चुकने पर कहा—आज शाम को उद्यान में आकर आर्य्यों को प्रणाम करूँगा ।

श्वेतकेतु ने उद्यान में लौटने पर तपस्वियों को एकत्र कर कहा— मित्रो ! राजा ने कहा है कि वह आज आएगा । किसी राजा को एक बार प्रसन्न कर लेने से जीवन भर सुखपूर्वक रहा जा सकता है । आज कुछ लोण चिमगादड़-व्रत का आचरण करो, कुछ कांटों की शैय्या पर सोओ, कुछ पञ्चाग्नि-ताप करो, कुछ उकड़ू बैठने का परिश्रम करो, कुछ पानी पर चढ़ने (चलने) का कर्म करो, और कुछ मन्त्रों का पाठ करो । इस प्रकार उन्हें आदेश दे वह स्वयं पर्ण-कुटी के द्वार पर एक तकियेदार आसन पर, पाँच वर्णों के चमकते हुए वस्त्र में लिपटी पोथी को विचित्र-वर्ण की घोड़ी पर रख, चार पाँच सुशिक्षित विद्यार्थियों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए (की तरह) बैठा ।

उसी समय राजा ने आकर उन्हें मिथ्या-तप करते देखा और प्रसन्न हो श्वेतकेतु के पास जाकर प्रणाम किया । फिर एक ओर बैठ पुरोहित के साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही :—

खराजिना जटिला पङ्कदन्ता
दुसुक्खरूपा ये मे जपन्ति मन्ते,
कश्चि नु ते मानुसके पयोगे
इदं विद् परिमुक्ता अपाया ॥

[जो ये रुद्र अजिनचर्म पहने, जटाधारण किये, मैले दान्तों वाले और भोण्डी शकल बनाये मन्त्रों का जप कर रहे हैं, क्या वे मानुषिक-कृत्यों में इस (सब) के जानकार होकर अपाय से मुक्त हो गये हैं ?]

यह सुन पुरोहित ने चौथी गाथा कही :—

पापानि कम्मानि करित्वान राज

बहुस्सुतो चे न चरेय्य धम्मं,

सहस्सवेदोपि न तं पीटच्च

दुक्खा पमुञ्चे चरणं अपत्वा ॥

[राजन ! यदि बहुश्रुत होकर पाप करे और धर्म का आचरण न करे, तो हजार वेद पढ़ा हुआ भी बिना आचरण किये दुःख से मुक्त नहीं होता ॥]

यह सुन तपस्वियों पर से राजा की श्रद्धा जाती रही । तब श्वेतकेतु सोचने लगा—

इस राजा की तपस्वियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, किन्तु इस पुरोहित ने वासी से प्रहार देने की तरह उसे ठुकड़े ठुकड़े कर दिया । मुझे अब उससे बात करनी चाहिये । उसने उससे बात चीत करते हुए पाँचवीं गाथा कही—

सहस्सवेदोपि न तं पटिच्च

दुक्खा पमुञ्चे चरणं अपत्वा,

मञ्जामि वेदा अफला भवन्ति

ससंयमं चरणञ्जेव सच्चं ॥

[यदि हजार वेद पढ़ा हुआ भी, उसके कारण बिना आचरण किये दुःख से मुक्त नहीं होता, तो क्या मैं मानूँ कि वेद निष्फल हैं और संयम-सहित आचरण ही सत्य है ?]

यह सुन पुरोहित ने छठी गाथा कही:—

न हेव वेदा अफला भवन्ति

ससंयमं चरणञ्जेव सच्चं;

किंतिच्च पप्पोति अधिच्च वेदे

सन्तं पुनेति चरणेन दन्तो ॥

[नहीं, वेद निष्फल नहीं होते । संयम-सहित आचरण ही सत्य है । वेद पढ़ने से कीर्ती की प्राप्ति होती है । संयत-आदमी आचरण से शान्त-पद को प्राप्त होता है ।]

इस प्रकार पुरोहित ने श्वेतकेतु के सिद्धान्त का खण्डन कर उन सब को गृहस्थ बनवाया और उन्हें ढाल (तथा अन्य) आयुध दिला महन्त बनवा राजा के सेवक बना दिया । यही महंतकारकों के वंश (की उत्पत्ति) है ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठायी । उस समय श्वेत-केतु ढोंगी भिक्षु था । चाण्डाल-पुत्र सारिपुत्र था । पुरोहित तो मैं ही था ।

३७८. दरीमुख जातक

“पङ्कोच कामा...“यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाभिनिष्क्रमण के बारे में कही । (वर्तमान-) कथा पहले आ ही गई है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में राजगृह में मगध-राज नामक राजा राज्य करता था । तत्र बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में गर्भ धारण किया । नाम रखा गया ब्रह्मदत्त कुमार । उसके पैदा होने के दिन ही पुरोहित को भी पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका मुँह बड़ा सुन्दर था इसलिये उसका नाम दरीमुख रखा गया । वे दोनों राज-कुल में ही पले, और परस्पर बड़े प्रेम से रहते थे । सोलह वर्ष की आयु होने पर तत्तशिला जा, सभी शिल्प सीख, सभी मतों की विद्यार्थे तथा देश-व्यवहार सीखने के लिये ग्राम-निगम आदि में घूमने लगे । इस प्रकार घूमते घूमते वाराणसी पहुँच देव-कुल (?) में रह

अगले दिन वाराणसी में भिक्षार्थ निकले। एक घर में खीर तैयार थी और आसन बिछे थे कि ब्राह्मणों को भोजन करा कर दक्षिणा^१ देंगे।

आदमियों ने उन दोनों को भिक्षा मांगते देख सांचा—ब्राह्मण आये हैं। वे उन्हें घर ले आये और बोधिसत्व के आसन पर श्वेत-वस्त्र तथा दरी-मुख के आसन पर लाल-कमल बिछाया। दरी मुख ने यह लक्षण देख जाना कि आज मेरा मित्र वाराणसी का राजा होगा और मैं सेनापति। वे दोनों वहाँ भोजन कर, दक्षिणा ले, आशीर्वाद दे, जाकर राजोद्यान में रहे।

वहाँ बोधिसत्व मङ्गल-शिला पर लेटे; दरी-मुख उनके पैर दक्षता हुआ बैठा था। उस समय वाराणसी-राज को मरे सातवां दिन था। पुरोहित ने राजा का शरीर-कृत्य कर पुत्र-रहित राज्य में सातवें दिन पुण्य-रथ चालू किया। पुण्यरथ-कृत्य का वर्णन महाजनक जातक^२ में आयागा। चतुरङ्गिनी सेना से घिरा-हुआ पुण्यरथ नगर से निकल सैकड़ों तुरियों के बजने के साथ उद्यान-द्वार पर पहुँचा।

दरी-मुख ने तुरिय शब्द सुन सोचा—मेरे साथी के लिये पुण्य-रथ आ रहा है। वह आज राजा होकर मुझे सेनापति पद देगा। लेकिन, मुझे गृहस्थी से क्या? निकलकर प्रव्रजित होऊँगा। वह बिना बोधिसत्व को सूचित किये एक ओर जाकर छिप कर खड़ा हो गया। पुरोहित उद्यान-द्वार पर रथ खड़ा कर उद्यान में गया, तो वहाँ उसने बोधिसत्व को मङ्गल शिला पर लेटे देखा। उसके पाँव में (महापुरुष) लक्षण देख सोचा—यह पुण्यवान् प्राणी है। दो हजार द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों का राज्य कर सकता है। इसमें धैर्य कितना है, देखने के लिये सब बाजे जोर से बजवाये।

बोधिसत्व ने जागकर मुँह पर से कपड़ा उठाया। जन-समूह को देख कर फिर कपड़ा मुँह पर ढक, थोड़ी देर लेटे रह, जब थकावट उतर गई तो उठ कर शिला पर पालथी मार कर बैठा। पुरोहित ने धुटने के बल बैठकर कहा—देव! आप राज्य के अधिकारी हैं।

^१ वाचनकं, शब्द अस्पष्ट है। कदाचित् किसी प्रकार की पाठ कराई हो।

^२ महाजनक जातक (५३१)

“भरो ! क्या राज्य अपुत्रक है ?”

“देव ! हाँ ।”

तो ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया । उन्होंने उद्यान में ही उसका राज्याभिषेक कर दिया ।

महान् वैभव प्राप्त होने से वह दरी-मुख को भूल गया । रथ पर चढ़ जनता के साथ उसने नगर में प्रवेश किया और राजद्वार पर रुक अमात्यों को उनके पद दे प्रासाद पर चढ़ा । तब दरी मुख ‘अब उद्यान खाली है’ सोच आकर शिला पर बैठा । उसी समय उसके सामने सूखा पीला पत्ता गिरा । उसने उस सूखे पीले पत्ते को ही लेकर क्षय-व्यय का विचार करते हुए त्रिलक्ष्णों^१ का मनन कर पृथ्वी को गुर्जिते हुए प्रत्येक-बोधी को प्राप्त किया । उसी समय उसका गृहस्थ वेप अन्तर्धान हो गया । आकाश से ऋद्धि-मय पात्र चीवर उतर कर उसके शरीर पर धारण हो गया । उसी समय वह आठ परिष्कारधारी^२ सम्यक् चर्या-युक्त सौ वर्ष के स्थविर जैसा हो, ऋद्धि-बल से आकाश में उड़, हिमालय प्रदेश में नन्द-मूलक प्रपात पर पहुँचा ।

बोधिसत्व भी धर्मानुसार राज्य करते रहे । लेकिन वैभव की अधिकता में, वैभव में मस्त हो चालीस वर्ष तक दरीमुख को याद नहीं किया । लेकिन चालीसवाँ वर्ष बीतने पर उन्हें उसके देखने की इच्छा हुई—दरीमुख नामक मेरा मित्र कहाँ है ? तब से वे अन्तःपुर में भी तथा सभा में भी यही कहते—मेरा दरीमुख नामक मित्र कहाँ है ? जो मुझे उसका निवासस्थान बतायेगा उसे मैं बहुत यश दूँगा । इस प्रकार बार बार उसकी याद करते करते और दस वर्ष बीत गए ।

दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध ने भी पचास वर्ष बीत जाने पर ध्यान-बल से देखा—उन्हें मित्र याद कर रहा है । यह जान ‘अब वह बूढ़ा हो गया है, पुत्र-पुत्रियों से (परिवार) बढ़ गया है, जाकर घमोंपदेश दे उस प्रब्रजित करूँगा’ सोच वह ऋद्धि-बल से आकाश मार्ग से आ उद्यान में उतर स्वर्ण-प्रतिमा की तरह शिला पर बैठे ।

^१अनित्य, दुःख, अनात्म

^२भिक्षु की आठ व्यक्तिगत चीजें—तीन चीवर, पात्र, काय बंधन, उस्तरा, सूई, धागा तथा पानी छानने का बक्का ।

उद्यान पाल ने उन्हें देख, जाकर पूछा—“भन्ते ! कहाँ से आये ?”

“नन्दमूलक पर्वत से ।”

“आपका नाम क्या है ?”

“आयुष्मान् ! मुझे दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध कहते हैं ।”

“भन्ते ! हमारे राजा को जानते हैं ?”

“हाँ, जानता हूँ, जब मैं गृहस्थ था तो वह मेरा मित्र था ।”

“भन्ते ! राजा आप से मिलना चाहता है, मैं उसे आप के आगमन की सूचना देता हूँ ।”

“जा, कह ।”

उसने जल्दी जल्दी जा राजा को सूचना दी—वे शिला पर बैठे हैं ।

राजा को जब यह पता लगा कि उसका साथी आया है तो वह उसे देखने के लिये रथ पर चढ़ अनेक अनुयायियों के साथ उद्यान गया और प्रत्येक-बुद्ध को प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा ।

प्रत्येक-बुद्ध ने उसे धर्मोपदेश दिया—ब्रह्मदत्त ! क्या करता है ? धर्मानुसार राज्य करता है ? अगति-गामी कर्म तो नहीं करता है ? तू धन के लिए लोगों को कष्ट तो नहीं देता, पुण्य करता है ? फिर कुशल-क्षेम पूछ ‘ब्रह्मदत्त ! तू वृद्ध हो गया । अब काम भोगों को छोड़ प्रव्रजित होने का समय है’ कह उसे धर्मोपदेश देते हुए पहली गाथा कही:—

पङ्को च कामा पलिपो च कामा

भयञ्च मेतं तिमूलं पबुत्तं,

रजो च धूमो च मया पकासित्वा

हित्वा तुवं पब्बज ब्रह्मदत्त ॥

[काम-भोग कीचड़ है, काम-भोग दलदल है, मैंने इस महान् खतरे को कहा है । मैंने इन्हें रज और धुआँ (भी) कहा है । ब्रह्मदत्त ! तू इन्हें छोड़ प्रव्रजित हो ।]

यह सुन राजा ने काम-भोगों में अपने आप को जकड़ा हुआ प्रकट करते हुये दूसरी गाथा कही:—

गथितो च रत्तो अधिमुच्छित्तो च
कामेस्वाहं ब्राह्मण भिसरूपं,
तं नुरुहे जीविकस्थो पहातुं
काहामि पुञ्जानि अनप्पकानि ॥

[हे ब्राह्मण ! मैं काम-भोगों में भयानक रूप से उलझा हुआ हूँ, अनुरक्त हूँ, मूर्छित हूँ । मैं उस जीविका की इच्छा करता हुआ भी, उन्हें नहीं छोड़ सकता । मैं अनेक पुण्य (-कर्म) करूँगा ।]

बोधिसत्व ने उसके 'प्रव्रजित नहीं हो सकता' कहने पर भी कन्धा न गिरा उसे और भी उपदेश देते हुए दो गाथायें कहीं—

यो अत्यकामस्स हितानुकम्पिनो
ओवज्जमानो न करोति सासनं,
इदमेव सेय्यो इति मञ्जमानो
पुनप्पुनं गम्भमुपेति मन्दो ॥
सो घोररूपं निरयं उपेति
सुभासुभं मुत्तकरीसपूरं,
सत्ता सक्काये न जहन्ति गिद्धा
ये होन्ति कामेसु अवीतरागा ।

[जो भलाई चाहने वाले, हितेच्छु के उपदेश देने पर उसके अनुसार आचरण नहीं करता, और समझता है (कि जो मैं करता हूँ) वही श्रेष्ठ है, ऐसा मूर्ख पुनः पुनः गर्भ में आकर पड़ता है ।

वह भयानक नरक में जाता है, जिसे योगी-जन अशुभ समझते हैं, जो मल-मूत्र से भरा है, लेकिन जो काम-भोगों के प्रति रागी हैं, आसक्त हैं, चिमटे हुए हैं, वे माता की कोख को नहीं छोड़ते हैं ।]

इस प्रकार दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध ने गर्भ-प्रवेश, तथा गर्भ-निवास मूलक दुःख को कह कर गर्भ से बाहर आने के दुःख को प्रकट करते हुए डेढ़ गाथा कहीः—

मीळहेन लिक्का रुहिरेन मस्खिता
सेग्गेन लिक्का उपनिक्खमन्ति,

यं यं हि कायेन फुसन्ति तावदे
 सव्यं असातं दुःखमेव केवलं,
 दिस्वा वदामि नहि अञ्जतो सव्यं
 पुण्येनिवासं बहुकं सरामि ॥

[गूह में लिबड़े हुए, रुधिर में नाखे हुए तथा श्लेष्म में लिपटे हुए (गर्भ से बाहर) निकलते हैं ।

उस समय जिस जिम चीज़ को शरीर से स्पर्श करते हैं; वह सभी प्रतिकूल ही होता है, केवल दुःख ही होता है । मैं यह (स्वयं) देखकर कहता हूँ, किसी से सुनी सुनाई बात नहीं । मैं बहुत से पूर्व-जन्मों को याद करता हूँ ।]

अब शास्ता ने अभिमम्बुद्र होने पर 'इस प्रकार उस प्रत्येक-बुद्ध ने राजा को सुभाषित गाथाओं द्वारा उपदेश दिया' कह अन्त में आधी गाथा कही —

चित्राहि गाथाहि सुभाषिताहि
 दरीमुखो निष्कापयी सुमेधं ॥

[नाना अर्थ-पूर्ण सुभाषित गाथाओं द्वारा दरीमुख ने सुमेध राजा से अपनी बात स्वीकार कराई ।]

इस प्रकार प्रत्येक-बुद्ध ने काम-भोगों में दोष दिखा, अपनी बात मनवा, राजा को कहा—महाराज ! अब चाहे आप प्रव्रजित हों, चाहे न हों । मैंने तुम्हें काम-भोगों के दुष्परिणाम और प्रव्रज्या का माहात्म्य कह दिया । तुम अप्रमादी रहो । इतना कह स्वर्ण राजहंस की तरह आकाश में उड़, बादलों को चीरते हुए नन्दमूलक पर्वत पर ही गया । बोधिसत्व ने दसों नखों के मेल से प्रकाशमान् अञ्जलि को मस्तक पर रख नमस्कार किया । फिर जब उसका दिखाई देना बन्द हो गया तो ज्येष्ठ पुत्र को बुला उसे राज्य सौंप, जनता के रोते पीटते रहने पर काम-भोगों को छोड़ हिमालय में प्रवेश किया । वहाँ पर्ण-कुटी बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, थोड़ी ही देर में अभिञ्जा तथा समा-पक्षियाँ प्राप्त कर, आयु के अन्त में ब्रह्मलोक-गामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में अनेक स्रोतापन्न-आदि हुए । उस समय राजा मैं ही था ।

३७६. नेरु जातक

“काकोळा काकसङ्घा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह शास्ता से कर्मस्थान (= योग-विधि) ग्रहण कर एक सीमा-पार के गांव में गया। मनुष्यों ने उसकी चर्या से प्रसन्न हो, उसे भोजन करा, बचन ले, जंगल में पर्ण-कुटी बनवा वहाँ बसाया। उसका बहुत सत्कार किया। तब तक दूसरे शास्वत-वादी आ गये। उन्होंने उनका सिद्धान्त सुना तो स्थविर के सिद्धान्त को त्याग शास्वत-वाद को स्वीकार कर उनका सत्कार किया। तब तक उच्छेद-वादी आ गये। उन्होंने शास्वत-वाद छोड़ उच्छेदवाद स्वीकृत कर लिया। तब तक दूसरे नग्नता-वादी आ गये। उन्होंने उच्छेद-वाद छोड़ नग्नता-वाद स्वीकार कर लिया। वह उन गुणावगुण न समझने वाले लोगों के पास दुःख से रहा। वर्षा-वास के बाद प्रवारणा कर शास्ता के पास पहुँचा।

शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछने के बाद पूछा—

“वर्षा-वास कहाँ किया ?”

“भन्ते ! सीमा-पार के गाँव में।”

“सुख-पूर्वक रहा ?”

“भन्ते ! गुणावगुण न समझ सकने वालों के पास दुःख से रहा।”

“भिक्षु ! पुराने पण्डित पशु-योनि में पैदा होने पर भी गुणावगुण न जान सकने वालों के साथ एक दिन भी नहीं रहे, तू ऐसी जगह पर जहाँ कोई तेरे गुणावगुण को नहीं समझता था क्यों रहा ?”

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व स्वर्ण हंस की योनि में पैदा हुए । उसका एक छोटा भाई भी था । वे चित्रकूट पर्वत पर रहते हुए हिमालय-प्रदेश में अपने से उत्पन्न होने वाला धान खाते थे । एक दिन वहाँ चुगकर चित्रकूट को लौटते समय रास्ते में नेरु नाम के कञ्चन-पर्वत को देख उस पर बैठे । उस पर्वत पर रहने वाले पत्नी, खरगोश तथा अन्य चौपाये उस गोचर-भूमि में नाना वर्ण के होते थे; लेकिन पर्वत पर आने के बाद उसके प्रकाश के प्रभाव से स्वर्ण-वर्ण हो जाते । यह देख बोधिसत्व के छोटे भाई ने यह बात न समझ, भाई से 'क्या कारण है ?' पूछते हुए दो गाथायें कहीं—

काकोला काकसङ्गा च मयञ्च पततं वरा,
सब्बेव सदिसा होम इमं आगम्म पब्बतं ॥
इध सीहा च व्यग्घा च सिगाला च मिगाधमा,
सब्बेव सदिसा होन्ति अयं को नाम पब्बतो ॥

[जंगली कौवे, सामान्य कौवे तथा हम जो पत्तियों में श्रेष्ठ हैं इस पर्वत पर आकर सभी समान हो जाते हैं । यहाँ सिंह, व्याघ्र और नीच शृगाल सभी समान (वर्ण) हो जाते हैं, इस पर्वत का क्या नाम है ?]

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

इमं नेरुन्ति जानन्ति मनुस्सा पब्बतुत्तमं,
इध वण्णेन सम्पन्ना वसन्ति सब्बपाणिनो ॥

[इस उत्तम-पर्वत को मनुष्य 'नेरु' कहते हैं । यहाँ सभी प्राणी (सु-वर्ण) युक्त हो बसते हैं ।]

यह सुन छोटे भाई ने शेष गाथायें कहीं:—

अमानना यत्थसिया सन्तानं दा विमानना,
हीनसम्मानना वापि न तत्थ वसतिं वसे ॥
यत्थालसो च दक्खो च सूरु भीरु च पूजिया,
न तत्थसन्तो निदसन्ति अविसेसकरे नगे ॥

नायं नेरुविभजति हीनमुक्कट्टमणिकमे,
अविसेसकरो नेरु हन्व नेरुं जहामसे ॥

[जिस जगह शान्त-पुरुषों का मान न हो अथवा अपमान हो तथा हीन-पुरुषों का सम्मान हो वहाँ न बसे ।

जिस पर्वत पर बिना किसी विशेषता के ख्याल के आलसी होशियार बहादुर तथा डरपोक समानरूप से पूजित होते हैं वहाँ पण्डित जन नहीं रहते ।

यह नेरु हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ट का भेद नहीं करता । यह नेरु सभी को समान समझता है । हन्त ! हम नेरु को छोड़ दें ।]

यह कह वे दोनों हंस उड़ कर चित्रकूट पर्वत को ही चले गये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में वह भिन्नु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय छोटा हंस आनन्द था । ज्येष्ठ-हंस तो मैं ही था ।

३८०. आसङ्ग जातक

“आसावती नाम लता...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्या की आसक्ति के बारे में कही । (वर्तमान-) कथा इन्द्रिय जातक^१ में आएगी ।

इस कथा में तो शास्ता ने पूछा—भिन्नु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित हुआ है ? उसके “भन्ते ! सचमुच” कहने पर शास्ता ने पूछा—किसने उत्कण्ठित किया है ? भिन्नु बोला—पूर्व-भार्या ने । शास्ता ने कहा—भिन्नु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है, पहले भी तू इसके कारण चतुरङ्गिनी सेना को छोड़ हिमालय-प्रदेश में महान् दुःख भोगता हुआ तीन वर्ष रहा ।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी के ग्राम में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर तत्तशिला जा, शिल्प सीख, ऋषि-प्रब्रज्या ले, जंगल के फल-मूल खाते हुए, अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश में रहने लगा।

उस समय एक पुण्यवान् प्राणी त्र्यंश-भवन से च्युत होकर उस जगह कमल-सरोवर में एक कमल में लड़की होकर पैदा हुआ। शेष कमलों के पुराने होकर गिर पड़ने पर भी वह फूल बड़ी-कोख वाला होकर लगा ही रहा।

तपस्वी जब नहाने के लिये कमल-सरोवर पर आया तो और कमलों के गिर जाने पर भी उस एक कमल को बड़ी-कोख वाला हो लगा देख उसने सोचा—क्या कारण है ? उसने नहाने का वस्त्र पहना और उतर कर वहाँ पहुँचने पर कमल को खोला तो लड़की दिखाई दी। वह उसे पुत्री मान पूर्ण-कुटी में ले आया और पालन-पोषण किया।

आगे चल कर सोलह वर्ष की होने पर वह सुन्दर हुई, उत्तम रूपवान्, मानुषी-रूप तथा देव-रूप के बीच की। उस समय शक्र बोधिसत्व की सेवा में आता था। उसने उसे देख पूछा—यह कहाँ से ? जब उसे उसकी प्राप्ति का क्रम मालूम हो गया, तब उसने पूछा, इसके लिये क्या चाहिये ?

“रहने के लिये स्फटिक का महल बना, दिव्य-शयन, दिव्य वस्त्रालङ्कार तथा (वैसा ही) भोजन प्रबन्ध (कर) मित्र !”

यह सुन उसने “भन्ते ! अच्छा” कह उसके निवास के लिये स्फटिक प्रासाद बना, दिव्य-शयन, दिव्य वस्त्रालङ्कार तथा दिव्य अन्न-पान तैयार किये।

वह प्रासाद उसके चढ़ने के समय जमीन पर उतर आता और उसके चढ़जाने पर उछल कर आकाश में जा टहरता। वह बोधिसत्व की सेवा करती हुई महल में रहती। उसे एक जंगली-मनुष्य ने देखा तो पूछा—“भन्ते ! यह आप की कौन होती है ?”

“मेरी लड़की है।”

उसने वाराणसी-राज को सूचना दी—देव ! मैंने एक तपस्वी की इस तरह की कन्या देखी है ।

यह सुन राजा सुनना मिलने मात्र से आसक्त हो, जंगली-मनुष्य को मार्ग-दर्शक बना, चतुरङ्गिनी सेना को साथ ले वहाँ पहुँचा । उसने वहाँ पड़ाव डाल दिया और जंगली मनुष्य को साथ ले, अमात्यों सहित आश्रम पहुँच, बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कहा—

“भन्ते ! स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य के लिये मल (-स्वरूप) हैं, तुम्हारी लड़की का पालन पोषण मैं करूँगा ।”

बोधिसत्व “इस कमल में क्या है ?” इस प्रकार की आशङ्का कर पानी में उतर कर लाये थे । इसलिये उन्होंने उसका नाम आशङ्का-कुमारी रखा था । इसलिये राजा को सीधे सीधे ‘इस कुमारी को ले जायें’ न कह बोधिसत्व ने कहा—“यदि कुमारी का नाम जानते हों, तो ले जायें ।”

राजा बोला—“भन्ते । आप के बताने पर जान जायेंगे ”

“मैं नहीं बताऊँगा । तू अपने प्रज्ञा-बल से ही पता लगा कर इसे ले जा ।”

उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया और तब से मन्त्रियों के साथ विचार करने लगा कि इसका क्या नाम है ? वह जो असाधारण नाम हैं, ऐसे नाम लेकर बोधिसत्व को कहता—“भन्ते ! अमुक नाम होगा, अमुक नाम होगा ।” बोधिसत्व ने कहा—“नहीं, ये नाम नहीं हैं ।”

इस प्रकार नाम का विचार करते करते ही राजा को एक वर्ष बीत गया । सिंह आदि बनैले-पशु हाथी, घोड़ों तथा आदमियों को मार डालते । साँपों का खतरा हो गया । (डंक मारने वाली) मक्खियों का खतरा हो गया । शीत से कष्ट पाकर बहुत मनुष्य मरने लगे । तब राजा को क्रोध आया—मुझे इस से क्या ? वह बोधिसत्व को कह कर चल दिया ।

आशङ्का-कुमारी उस दिन स्फटिक-खिड़की खोल अपने को दिखाती हुई खड़ी थी । राजा ने उसे देख कर कहा “हम तेरा नाम नहीं जान सके । तू हिमालय में ही रह । हम जाते हैं ।”

“महाराज कहाँ जाने से मेरे सदृश स्त्री मिलेगी । मेरी बात सुनें । त्र्यम्बक देवलोक में, चित्तलतावन में, आशावती नामक लता है । उसके फल

का दिव्य-पान होता है। उसे एक बार पीकर चार महीने तक दिव्य-शैल्या पर सोते रहते हैं। वह हजार वर्ष में एक बार फलती है। सुरा-प्रेमी देव-पुत्र 'यहाँ से फल मिलेगा' इस आशा से प्यास को सहते हुए हजार वर्ष तक लगातार जाकर देखते रहते हैं कि वह लता ठीक से तो है। तू एक ही वर्ष में उद्विग्न हो गया है। आशा फलीभूत होने पर सुख देती है। उद्विग्न मत हो।”

यह कह उसने तीन गाथायें कहीं :—

आसावती नाम लता जाता चित्तलतावने,

तस्सा वस्स सहस्सेन एकं निब्बत्ते फलं

तं देवा पयिरूपासन्ति ताव दूरफलंसतिं ॥

[चित्तलता वन में आशावती नाम की लता पैदा हुई। हजार वर्ष में वह एक फल देती है। उतना दूर फल होने पर भी देवता उसकी सेवा में रहते हैं।]

राजा ने उसकी बात में आ फिर अमात्यों का इकट्ठा कर दस-दस नामों की कल्पना कराई। इस प्रकार नाम की खोज करते हुए और भी एक वर्ष बीत गया। दस नामों में भी उसका नाम नहीं था। ‘अमुक नाम की है’ कहने पर बोधिसत्व ने अस्वीकार किया। राजा ने फिर सोचा कि मुझे इससे क्या, और घोंड़े पर चढ़ चल दिया।

उसने भी फिर खिड़की में खड़े होकर अपने को दिखाया। राजा ने उसे देखा तो कहा—तू टहर हम जाते हैं।

“महाराज क्यों जाते हैं ?”

“तेरा नाम नहीं जान सकता हूँ।”

“महाराज ! नाम क्यों नहीं जान सकोगे ? आशा फलती ही है। मेरी बात सुनें। एक बगुला पर्वत शिखर पर खड़ा था। उसकी इच्छा पूरी हुई। तुम्हारी इच्छा क्यों नहीं पूरी होगी। महाराज सन्न करें। बगुला एक कमल-सरोवर से शिकार पकड़ उड़कर एक पर्वत पर जा बैठा। वह उस दिन वहीं रहा। अगले दिन सोचा—मैं इस पर्वत शिखर पर सुख से बैठा हूँ। यदि यहाँ से न उतर कर यहीं बैठे-बैठे शिकार ग्रहण कर, पानी पी, आज का दिन यहीं रहूँ तो मेरे लिए कितना अच्छा हो ! उसी दिन देवेन्द्र शक्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी। शक्र ने

त्रयोन्विश-भवन में देवैश्वर्य प्राप्त कर सोचा—मेरा मनोरथ पूरा हुआ । क्या कोई ऐसा है जिसका मनोरथ अपरिपूर्ण हो ? उसने ध्यान लगाने पर उस बगुले को देख निश्चय किया कि इसका मनोरथ पूरा करूँगा । बगुले के बैठने की जगह के पास ही एक नदी थी । उस नदी में बाढ़ लाकर उसे पर्वत शिखर तक पहुँचा दिया । बगुले ने वहीं बैठे बैठे मछलियाँ खा, पानी पी, वह दिन वहीं बिता दिया । पानी उतर कर नीचे चला गया । इस प्रकार, महाराज, बगुले की भी आशा पूरी हुई आपकी क्यों न होगी ?”

उसने ये गाथाये कहीं :—

आसिसेव तुवं राज आसा फलवती सुखा,
आसिसथेव सो पक्खी आसिऽथेव सो दिज्जो ॥
तस्सचासा समिज्झिअथ तावदूगता सती,
आसिसेव तुवं राज आसा फलवती सुखा ॥

[राजन् ! तुम आशा न छोड़ो । आशा फलवती होने पर सुखदायक होती है । वह पत्नी भी आशा लगाये रहा, वह विहंग भी आशा लगाये रहा । उसकी इतनी दूर की भी आशा पूरी हुई । राजन् तुम आशा न छोड़ो । आशा फलवती होने पर सुखदायक होती है ।]

राजा उसकी बात सुन, उसके रूप-पाश में बँध, उसकी बात में आ, न जा सका । तब उसने अमात्यों को बुला सौ नामों की कल्पना कराई । सौ-सौ करके नाम की खोज करते हुए भी एक और वर्ष बीत गया । उसने बोधिसत्व के पास जा सौ नामों में से ‘अमुक नाम होगा । अमुक नाम होगा’ पूछा ।

“महाराज, नहीं जानते हो ।”

वह ‘हम जाते हैं’ कह बोधिसत्व को प्रणाम कर चल दिया ।

आशंका-कुमारी फिर स्फटिक-खिड़की पर खड़ी हुई । राजा उसे देख बोला—तू रह, हम जाते हैं ।

“महाराज क्यों ?”

“तू मुझे वचन-मात्र से ही सन्तुष्ट करती है, कामरति से नहीं । तेरी मधुर-बाणी के पाश में बँध मुझे यहाँ रहते तीन वर्ष बीत गये । अब जाऊँगा ।”

उसने ये गाथाये कहीं :—

सम्पेसि खो मे वाचाय न च सम्पेसि कम्मुना,
 बाला सेरेय्यक्स्सेव वण्णवन्ता अगन्धिका ॥
 अफलं मधुरं वाचं यो मित्तेसु पकुब्बति,
 अददं अविस्सजं भोगं सन्धि तेनस्स जीरति ॥
 यं हि कयिरा तं हि वदे यं न कयिरा न तं वदे,
 अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पण्डिता ॥
 बलं च वत मे खीणं पाथेय्यञ्च न विजजति,
 सङ्के पाशपरोधाय हन्दवानि वजामहं ॥

[वाणी से ही मुझे सन्तुष्ट करना चाहती है, कर्म से नहीं । सेरेय्यक (?) की माला की तरह जिसका वर्ण होता है, किन्तु सुगन्धि नहीं ॥ जो मित्रों से निष्फल मधुर-वाणी बोलता है (देने को कहता है, किन्तु) न देता है, न त्याग करता है, उसकी मैत्री जाती रहती है ॥ जो करे उसे ही कहे जो न करे उसे न कहे । जो करता नहीं है, केवल कहता है, उसे पण्डित पहचान लेते हैं ॥ मेरी मेना क्षीण हो गई, और मेरे पास खर्च भी नहीं रहा । मुझे अपनी जान जाने की शङ्का होती है । हन्त ! मैं अब जाता हूँ ।]

आशङ्का कुमारी ने राजा की बात सुनी तो बोली :—

“महाराज ! आप मेरा नाम जानते हैं । आप ने जो कहा, वही मेरा नाम है । यही नाम मेरे पिता को कह कर मुझे साथ लेकर जायें ।” उसने राजा से बात चीत करते हुए कहा—

एतदेवहि मे नामं यं नामस्मिं रथेसम,

आगमेहि महाराज पितरं आमन्तयामहं ॥

[राजन ! जिस नाम वाली मैं हूँ, वह यही मेरा नाम है । प्रतीक्षा करो । मैं पिता को बुलाती हूँ ।]

यह सुन राजा बोधिसत्व के पास गया और प्रणाम करके बोला—
 आप की लड़की का नाम आशङ्का है । बोधिसत्व ने उत्तर दिया—जब से नाम जान लिया है, तभी से लेकर जा सकते हो । यह सुन बोधिसत्व को प्रणाम किया और स्फटिक विमान के द्वार पर पहुँच कर बोला—भद्रे ! आज तेरे पिता ने भी तुझे मुक्त को दे दिया है । आ अब चलो । यह सुन वह ‘राजाप्रतीक्षा करें । मैं पिता से मिललूँ’ कह प्रासाद से उतरी और पिता

को प्रणाम कर, रो, क्षमा याचना कर राजा के पास आई। राजा उसे ले वाराणसी आया और पुत्र-पुत्रियों के साथ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ प्रेम-पूर्वक रहा। बोधिसत्व ध्यानारूढ रह ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के अन्त में उद्दिग्ध-चित्त भिन्नु श्रोतारत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय आशङ्का कुमारी पूर्व-भार्या थी। राजा उद्दिग्ध-चित्त था। तपस्वी तो मैं ही था।

३८१. मिगालोप जातक

“न मेरुच्चि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न सह सकने वाले भिन्नु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिन्नु को बुलाकर पूछा—भिन्नु ! क्या तू सचमुच बात न सह सकने वाला है ? ‘हाँ भन्ते !’ कहने पर ‘भिन्नु ! न केवल अभी तू बात न सह सकने वाला है, तू पहले भी बात न सह सकने वाला ही रहा है। लेकिन बात न सह सकने की आदत के कारण परिणतों का कहना न कर भङ्गावाल में फँस दुःख को प्राप्त हुआ’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की योनि में पैदा हुआ। उसका नाम था अपररण गीध। वह गीधों की नण्डली से घिरा गृध्र-कूट पर्वत पर रहता था। उसका मिगालोप नाम का पुत्र बड़ा शक्तिशाली था। वह दूसरे गीधों की सीमा लांघ, बहुत ऊँचे पर उड़ता। गीधों ने गृध्र-राज को कहा—तेरा पुत्र बहुत ऊँचे पर उड़ता है।

गृध्र-राज ने उनकी बात सुन उसे बुलाकर कहा—तात ! तू बहुत ऊँचे पर उड़ता है । बहुत ऊँचे पर उड़ने से जान गँवा बैठेगा ।

यह कह तीन गाथायें कहीः—

न मे रुचि मिगालोप यस्सते तादिसा गति,
अतुच्चं तात पतसि अभूमिं तात संवसि ॥
चतुक्कण्णं केदारं यदा ते पठवी लिया,
ततो तात निवत्तस्सु मास्सु एत्तो परंगमि ॥
सन्ति अग्गेपि सकुणा पत्तयाना विहङ्गमा,
अखित्ता वातवेगेन नट्ठा ते सस्सतोसमा ॥

[मिगालोप ! तेरी यह गति मुझे अच्छी नहीं लगी । तू बहुत ऊँचे पर उड़ता है, तू आकाश पर रहता है । तात ! जब यह पृथ्वी तुझे चतुष्कोण खेत जैसी प्रतीत होने लगे, तो वहाँ से तू लौट आ । उससे ऊपर मत जा । और भी पत्ती हैं, जो पङ्क्तों रूपी यान पर चढ़कर आकाश में उड़े हैं, जिन्हों ने अपने आप को पृथ्वी की तरह (टढ़) माना; वे हवा के झोंके की चपेट में आकर नष्ट हो गये ।]

उपदेश न मानने वाला होने के कारण मिगालोप ने पिता का कहना न माना । ऊपर जाते हुए पिता की बताई सीमा को देख, उसे पार कर काली-वायु के भी उस पार जा भंभावात में जा कूदा । उसे भंभावात की मार पड़ी । उसकी चोट से टुकड़े टुकड़े हो वह आकाश में ही अन्तर्धान हो गया ।

ये तीन अभिसम्बुद्ध गाथायें हैंः—

अक्खा अपरयणस्स पितु बुद्धस्स सासनं,
काज्जवाते अतिक्कम्म वेरम्भानं वसं गतो ॥
तस्स पुत्ता च दारा च ये चग्गे अनुजीविनो,
सग्गे व्यसनमापादुं अनोवादकरे दिजे ॥
एवम्पि इध बुद्धानं यो वाक्कं नावबुद्धन्ति,
अतिसीमं चरो दित्तो गिउम्भो वातीतसासनो,
सग्गे व्यसनं पप्पोन्ति अक्खा बुद्धसासनं ॥

[वृद्ध पिता अपररण का कहना न मान काली-वायु को पार कर भग्नावात के वशीभूत हुआ । उस पत्नी के कहना न मानने के फल स्वरूप उसके पुत्र भार्या तथा अन्य जितने भी आश्रित थे, सभी दुःख को प्राप्त हुए । इसी प्रकार जो यहाँ बड़ों के कहने पर ध्यान नहीं देते, वे सभी बड़ों का कहना न मान उसी प्रकार दुःख को प्राप्त होते हैं, जैसे कहना न मान सीमा के पार जाने वाला अभिमानी गीध ।]

शास्ता ने यह धर्म देशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । उस समय मिगालोप बात न मानने वाला भिन्नु था । अपररण तो मैं ही था ।

३८२. सिरिकालकणिय जातक

“कानु काळेन वण्णेन...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथ पिण्डिक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित होने के बाद से अखण्ड पञ्चशीलों का पालन करता था । उसकी भार्या भी, बेटी-बेटा भी । दास भी तथा मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूर भी—सभी पालन करते थे । एक दिन भिन्नुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो ! अनाथ पिण्डिक स्वयं पवित्र जीवन व्यतीत करता है । उसका परिवार भी पवित्र जीवन व्यतीत करता है । शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने ‘भिन्नुओ, न केवल अभी, पहले भी पिण्डिक-जन स्वयं भी पवित्र हुए हैं और उनके परिवार भी’ कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सेठ (पैदा) हो दान दिया, शील की रक्षा की तथा उपोसथ-व्रत किये। उसकी भाय्या भी पञ्च शीलों की रक्षा करती थी, वेटा वेटी तथा दास और नौकर चाकर भी। वह शुचि-परिवार सेठ ही कहलाने लगा। एक दिन उसने सोचा—यदि मुझमें भी अधिक पवित्रता का ख्याल रखने वाला कोई आ जायगा, उसे अपना बैठने का आसन या सोने की शैय्या देना ठीक न होगा, उसे जो उपयोग में न आया हो वही देना ठीक होगा। उसने अपनी उपस्थान शाला में ही एक ओर बिना उपभोग में आया हुआ आसन तथा शैय्या बिछवा दी।

उस समय चानुर्महाराजिक देव-लोक से विरूपन् महाराज की काल-कण्णी नाम की लड़की तथा धृतराष्ट्र महाराज की सिरि नाम की लड़की—ये दोनों बहुत सुगन्धि तथा मालायें ले अनोतत-दह पर कीड़ा करने के लिये अनोतत-सरोवर पहुँची। उस अनोतत-सरोवर पर बहुत से घाट थे—उनमें बुद्धों के घाट पर बुद्ध ही स्नान करते थे, प्रत्येक-बुद्धों के घाट पर प्रत्येक-बुद्ध स्नान करते थे, भिन्नुओं के घाट पर भिन्नु स्नान करते थे, तपस्वियों के घाट पर तपस्वी स्नान करते थे, चानुर्महाराजिक आदि छः स्वर्गों के देवपुत्रों के घाट पर देव-कन्यायें ही स्नान करती थीं।

वहाँ ये दोनों पहुँच घाट के लिये भगड़ने लगीं—मैं पहले स्नान करूँगी, मैं पहले स्नान करूँगी। कालकण्णी बोली—मैं लोक का पालन करती हूँ, विचार करती हूँ, इसलिये मैं पहले स्नान करूँगी। सिरि बोली—मैं लोगों के ऐश्वर्य-दायक सम्यक-कर्मों में रहती हूँ, इसलिए मैं पहले स्नान करूँगी। उन्होंने निश्चय किया कि हममें से किसे पहले स्नान करना चाहिये, इसका निर्णय चार-महाराज करेंगे और चारों महाराजों के पास पहुँच कर पूछा—हम में से किसे पहले अनोतत-सरोवर में स्नान करना चाहिये ?

धृतराष्ट्र तथा विरूपन् ने विरुद्धक तथा वैश्रवण पर जिम्मेवारी डाल दी—हम निर्णय नहीं कर सकते। उन्होंने भी कहा—हम भी निर्णय नहीं कर

सकते, शक्र के चरणों में भेजेंगे और उन्हें शक्र के पास भेज दिया । शक्र ने उनकी बात सुन सोचा—ये दोनों ही मेरे आदमियों की कन्यायें हैं, मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता । तब शक्र बोला— वाराणसी में शुचि-परिवार नाम का सेठ है । उसके घर उपभाग में न आया हुआ आसन तथा शैय्या है, जो वहां उस पर बैठ या सो सके, वही पहले स्नान करने के योग्य है । यह सुन कालकण्णि उसी क्षण नीले वस्त्र पहन, नीला लेप लगा, नीलमणि का गढ़ना पहन, ढेलवांस की तेजी से देवलोक से उतर, (रात्रि के) मध्यम-याम के बाद ही, सेठ के प्रासाद की उपस्थान-शाला के द्वार पर शैय्या के पास ही नीले रंग की किरणें छोड़ती हुई आकाश में खड़ी हुई । सेठ की नजर उस पर पड़ी । दिखाई देते ही वह सेठ को अच्छी नहीं लगी, अप्रिय लगी । उसने उसमें बातचीत करते हुये पहली गाथा कही—

कानु काळेन वण्णेन न चापि पियदस्सना,

का वा त्वं कस्सवाधीता कथं जानेमुतं मयं ॥

[काले रंग वाली तू कौन है ? तेरा दर्शन प्रिय नहीं है । तू कौन है ? अथवा किसकी लड़की है ? हम तुम्हें कैसे पहचानें ?]

यह सुन काल-कण्णि ने दूसरी गाथा कही—

महाराजस्सहं धीता विरूपक्खस्स चण्डिया,

अहं काली अलक्खिका कालकण्णीति मंविदु,

ओकासं याचितो देहि वसेमि तव सन्तिके ॥

[मैं विरूपन् महाराज की प्रचण्ड स्वभाव वाली, काले वर्ण की पुण्य-रहित लड़की हूँ । मुझे कालकण्णी कहते हैं । मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दें ।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

किं सीले किं समाचारे पुरिसे निवससे तुवं,

पुट्ठा मे कालि अक्खाहि यथा जानेसु तं मयं ॥

[हे कालि ! हम पूछते हैं तू बता कि तू किस स्वभाव के और किस आचरण के आदमियों के साथ वास (पसन्द) करती है, जिससे हम तुम्हें पहचानें ।]

तब उसने अपने गुण बताते हुए चौथी गाथा कही—

मक्खी पलासी सारम्भी इस्सुकी मच्छरी सडो,
सो मय्हुं पुरिसो कन्तो लद्धं यस्स विनस्सति ॥

[मुझे ऐसा पुरुष प्रिय है जो अकृतज्ञ हो, बात न मानने वाला हो, भगड़ालू हो, ईर्ष्यालु हो, कंजूस हो, शठ हो तथा जो मिले उसे (व्यसनों में) नष्ट कर देता हो ।]

तब उसने स्वयं ही पाँचवीं छठी तथा सातवीं गाथा कही—

कोधनो उपनाही च पिसुणो च विभेदको,
कण्टकवाचो फरुसो सोमे कन्ततरो ततो ॥
अज्ज सुवेति पुरिसो सद्धं नावबुद्धति,
ओवज्जमानो कुप्पति सेय्यंसो अतिमज्जति ॥
दवप्पलुद्धो पुरिसो सम्बमित्तेहि धंसति,
सो मय्हुं पुरिसो कन्तो तस्मिं होमि अनामया ॥

[क्रोधी, बद्ध-वैरी, चुगल-खोर, फूट डालने वाला, कटु-भाषी तथा कठोर (आदमी) मुझे पूर्वोक्त से भी अधिक प्रिय है । आज (करने योग्य है) या कल (करने योग्य है) को भी जो नहीं समझता है, नसीहत देने से क्रोध करता है, श्रेष्ठ पुरुषों से अपने को बहुत बड़ा समझता है, (रूप आदि में) बुरी तरह आसक्त है तथा सब मित्रों द्वारा परित्यक्त है—वही मेरा प्रिय-स्वामी है, उसे प्राप्त कर मैं सुखी होता हूँ ।]

उसकी निन्दा करते हुए बोधिसत्व ने आठवीं गाथा कही—

अपेहि एत्तो त्वं कालि नेतं अग्गेसु विज्जति,
अज्जं जनपदं गच्छ निगमे राजधानियो ॥

[कालि ! तू यहाँ से दूर हो । हमारे में ये गुण नहीं हैं । किसी दूसरे जनपद में जा, दूसरे निगम में, दूसरी राजधानियों में ।]

यह सुन कालकण्ठ ने दबकर इसके बाद की गाथा कही—

अहम्पि चेत्तं जानामि नेतं तुग्गेसु विज्जति,
सन्ति लोके अलक्खिका सद्धरन्ति बहू धनं,
अहं देवो च मे माता उभो नं विषमामसे ॥

[मैं भी यह जानती हूँ कि ये बातें तुम में नहीं हैं। लोक में दूसरे अपुण्यवान् प्राणी हैं, जो बहुत धन इकट्ठा करते हैं। मैं और मेरा भाई देव-पुत्र दोनों उस धन को नष्ट करेंगे ।]

वह बोली—हमारे पास देव-लोक में बहुत दिव्य-परिभोग हैं, दिव्य शयनासन हैं, तू दे या न दे, हमें उनसे क्या प्रयोजन ? यह कह चली गई ।

उसके चले जाने पर सिरि देव-कन्या स्वर्ण-वर्ण सुगन्धित लेपों से युक्त हो, स्वर्णालङ्कारों को पहन, उपस्थान शाला के द्वार पर पीली किरणें बिखेरती हुई, पृथ्वी पर पैरों को बराबर स्थिर कर, गौरव-युक्त हो खड़ी हुई । यह देख बोधिसत्व ने पहली गाथा कही—

कानु दिव्येन वरणेन पठम्या सुप्पतिट्ठिता,

का वा त्वं कस्स वा धीता कथं जानेसु तं मयं ॥

[पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित दिव्य-वर्ण वाली तू कौन है ? तू कौन है ? अथवा किसकी लक्ष्मी है ? हम तुझे कैसे पहचाने ?]

यह सुन सिरि ने दूसरी गाथा कही—

महाराजस्सहं धीता धतरट्ठस्स सिरिमतो,

अहं सिरि च लक्खी च भूरिपब्बा ति मं विदू,

ओकासं याचितो देहि विसेसु तव सन्तिके ॥

[मैं श्रीमान् महाराज धृतराष्ट्र की कन्या हूँ। मेरा नाम सिरि है और लक्ष्मी है। मुझे अति-प्रज्ञावान् समझते हैं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पास रहने दे ।]

तब बोधिसत्व ने कहा—

किं सीले किं समाचारे पुरिसे निविससे तुवं,

पुट्ठो मे लक्खि अक्खाहि यथा जानेसु तं मयं ॥

[हे लक्ष्मी ! हम पूछते हैं, तू बता कि तू किस स्वभाव के, किस आचरण के आदमियों के साथ वास (पसन्द) करती है, जिससे हम तुझे पहचानें ।]

वह बोली—

यो वापि सीते अथवापि उग्रहे

वातातपे षंससिरिसपे च,

खुदं पिपासं अभिभूय सत्त्वं
रत्तिन्द्वं यो रत्ततं नियुत्तो,
कालागतञ्च न हापेति अर्थं
सो मे मनापो निवसे वतग्निह ॥

[जो शीत अथवा उष्णता; हवा, धूप तथा डाँस (मक्खि) और सर्प आदि; भूख-प्यास तब को जीत कर, रात दिन लगा रह कर, काल के आने पर भी अपने अर्थ को नहीं छोड़ता है, वैसा आदमी मुझे प्रिय है और वैसे के साथ रहना मैं (पसन्द) करती हूँ ।]

अक्रोधनो मित्रवा चागवा च
सीलूपपन्नो असञ्जोभुत्तो,
सङ्गाहको सखिलो सण्हवाचो
महत्पत्तोपि निवातुत्ति
तस्माहं पोसे विपुला भवामि
उग्गी समुहस्स यथापि वण्णं ॥
यो चापि मित्रं अथवा अमित्रं
सेट्ठे सरिक्खे अथवापि हीने
अत्थं चरन्तं अथवा अनत्थं
आवीरहो सङ्गहमेव वत्ते,
वाचं न वज्जं फलं कदाचि
मतस्स जीवस्स च तस्स होमि ॥
एतेसं यो अञ्जतरं लभित्वा
कन्ता सिरी मज्जति अप्पपञ्जो,
तं दिक्खुं विज्जमे चरन्तं
करीत्वाचं विवज्जयामि ॥
अत्तना कुरुते लक्खिं अलक्खिं कुरुत्तना,
न हि लक्खिं अलक्खिं वा अञ्जो अञ्जस्स कारको ॥

[जो अक्रोधी है, जिसके मित्र हैं, जो त्यागी है, जो शीलवान् हैं, जो शठ नहीं है, जो शृजु है, जो (मित्रादि का) संग्रह करने वाला है, जो मृदु-भाषी है, जिसकी वाणी विश्वसनीय है तथा जो ऊँचे (पद को) प्राप्त होकर

भी नम्र है ऐसे आदमी को प्राप्त होकर मैं उसी तरह फूल जाती हूँ जैसे समुद्र की लहर । जो मित्र, अमित्र, अथवा श्रेष्ठ, समान वा हीन के प्रति, अर्थ तथा अनर्थ कुछ भी करते हुए, अकेले में अथवा प्रकट रूप में, संग्रह ही करता है; जो कभी भी कठोर वाणी नहीं बोलता, मैं उस आदमी के मरने पर भी उसी की हूँ । इन गुणों में से किसी एक गुण के प्रति भी जो (प्रिय) कान्ता सिरि को प्राप्त करके प्रमाद करता है, उस अभिमानी, दुराचारी को मैं गूह की तरह त्याग देती हूँ । अपने से भाग्यवान् होता है, अपने से अभाग्यवान्, एक दूसरे को कोई भाग्यवान् अथवा अभाग्यवान् नहीं करता ।]

वांघिसत्त्व ने सिरि देवी की इस प्रकार की बात सुन, उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—यह उपभोग में न आया हुआ आसन और शैय्या तेरे ही योग्य है । तू आसन और पतंग पर बैठ तथा लेट । वह वहाँ रह, बहुत प्रातः ही निकल चातुर्महारात्रिक देव-लोक पहुँची और अनोतम-सरावर में पहले स्नान किया । वह शैय्या सिरि-देवता के उपयोग में आने से श्री-शैय्या कहलायी । श्री-शैय्या कहलाने की यही परम्परा है । इसी कारण से आज तक श्री-शैय्या कहते हैं ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी । उस समय सिरि देवी उत्पल वर्णा थी । शुचि-परिवार सेठ तो मैं ही था ।

३८३. कुक्कुट जातक

“सुचित्तपत्तञ्जदन...” यह शास्ता ने जीवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान यथा

उस भिक्षु को शास्ता ने पूछा—किसलिये उद्विग्न-चित्त है ? ‘भन्ते ! एक अलङ्कार-युक्त स्त्री को देखकर आसक्ति के कारण ।’ शास्ता ‘भिक्षु !

खियाँ ठगकर, बहका कर, अपने बश में होने पर नष्ट कर डालती हैं। लोभी बिल्ली की तरह होती हैं' कह चुप हो गये। तब उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जङ्गल में मुर्गों की योनि में पैदा हो सैकड़ों मुर्गों के साथ रहने लगे। उसके पास ही एक बिल्ली भी रहती थी। उसने बोधिसत्व के अतिरिक्त शेष सभी मुर्गों को ढंग से खा डाला। बोधिसत्व उसके काबू न आते थे। उसने सोचा—मुर्गा बड़ा शट है। हमारी शटता तथा चातुरी नहीं जानता है। इसे 'हम तेरी भाख्या होंगी' कह बहका कर अपने वशीभूत होने पर खाना चाहिये। वह जिस वृक्ष की शाखा पर वह मुर्गा बैठा था वहाँ पहुँची और उसकी प्रशंसा पूर्वक याचना करती हुई बोली—

सुचित्तपत्तच्छुदन तम्बचूळ विहङ्गम,
ओरोह दुमसाखाय मुधा भरिया भवामिते ॥

[सुचित्तिल पङ्क्तों में आच्छादित, तम्य (-वर्ण) शिखा वाले पक्षी ! वृक्ष की शाखा से उतर। हम मुक्त में तेरी भाख्या बनेंगी ।]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—यह मेरे सभी सम्बन्धियों को खा गई। अब मुझे लुभा कर खाना चाहती है। इसे विदा करूँगा। उसने दूसरी गाथा कही—

चतुष्पदी त्वं कल्याणि द्विपदाहं मनोरमे,
मिगी पक्खी अरयुत्ता अन्नं परियेस सामिकं ॥

[हे कल्याणि ! तू चतुष्पदी है। हे मनोरमे ! मैं द्विपद हूँ। पशु तथा पक्षी का मेल नहीं बैठता। तू दूसरा स्वामी खोज।]

तब उसने सोचा, यह अत्यन्त शट है। इसे किसी न किसी उपाय से ठगकर खाऊँगी ही। वह बोली—

कोमारिका ते हेस्सामि मञ्जुका पिय भायिनी,
विन्द मं अरियेन वेदेन सावयामं यद्विच्छसि ॥

[मैं सुन्दर प्रिय भाषिणी (अभी तक) कुमारी हूँ । मैं तेरी भाव्या बनूँगी । मुझे श्रेष्ठ लाभ जान ग्रहण कर, और यदि मुझे चाहता है, तो (यह मेरी दासी है) इसे सब को मुना दे ।]

तब बोधिसत्व ने सोचा—इसे धमका कर भगाना चाहिये । उसने चौथी गाथा कही—

कुणपादिनि लोहितपे चोरि कुक्कुट पोथिनि,

न त्वं अरियेन वेदेन समं भत्तारमिच्छसि ॥

[मृतजीवों को खाने वाली ! रक्त पायिनी ! चोर ! मुर्गों को मार डालने वाली ! तू मुझे श्रेष्ठ लाभ जान स्वामी नहीं बनाना चाहती है ।]

वह भाग गई । पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा । ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

एवमि चतुरा नारी दिस्वान पवरं नरं,

नेन्ति सण्हाहि वाचाहि बिळारी विय कुक्कुटं ॥

यो च उत्पतितं अत्थं न खिप्पमनुबुज्झति,

अमित्तवसमन्वेति पच्छा च मनुतप्पति ॥

यो च उत्पतितं अत्थं खिप्पमेव निबोधति,

मुच्चते सत्तु सम्बाधा कुक्कुटोव बिलारिया ॥

[इस प्रकार भी चतुर नारियाँ श्रेष्ठवर को देख मृदु-वाणी से उसे अपने वश में करती हैं, जैसे बिल्ली ने मुर्गों को (वश में करने का प्रयत्न किया) । जो उत्पन्न परिस्थिति को शीघ्र ही नहीं बूझ लेता है, वह शत्रु के वशीभूत हो जाता है और पीछे अनुताप करता है । जो उत्पन्न परिस्थिति को शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के फंदे से बच निकलता है, जैसे मुर्गा बिल्ली के फंदे से ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में उद्दिग्ध-भिन्नु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय कुक्कुट राज मैं ही था ।

३८४. धम्मद्वज जातक

“धम्मं चरथ जातयो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही ।

उस समय शास्ता ने ‘भिक्षुओ, न केवल अभी यह ढोंगी है, पहले भी ढोंगी रहा है’ कह पूर्वजन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पत्नी की योनि में उत्पन्न हो, बड़े होने पर पत्नियों के भुण्ड के साथ समुद्र में एक द्वीप पर रहते थे । कुछ कार्या-राष्ट्र-वार्मा व्यापारी दिशा-काक ले जहाज से समुद्र में उतरे । समुद्र में जहाज टूट गया । उस कौवे ने उस द्वीप में पहुंच सोचा—यह पत्नियों का महान् भुण्ड है, मुझे ढोंग करके इनके अण्डे तथा बच्चे समय समय पर खाने चाहिये ।

वह पत्नियों के भुण्ड में उतर कर, चोंच खोल, पृथ्वी पर एक पाँव से खड़ा हुआ । पत्नियों ने पूछा—

“स्वामी ! तुम्हारा क्या नाम है ?”

“मेरा नाम धार्मिक है ।”

“एक पाँव से क्यों खड़े हो ?

“मेरे दूसरा पाँव रखने पर पृथ्वी (भार) सहन नहीं कर सकेगी ।”

“और चोंच खोलें क्यों खंड हो ?”

“मैं और कुछ नहीं खाता, केवल हवा खाता हूँ ।”

इस प्रकार उत्तर दे, उसने उन पत्नियों को सम्बोधित कर “मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, सुनो” कह उपदेश देते हुए पहली गाथा कही—

धम्मं चरथ जातयो धम्मं चरथ भद्दं वो.

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परग्गि च ॥

:[रिस्तेदारो ! धर्म करो । धर्म करो, भला होगा । धर्मचारी इस लोक तथा परलोक में सुख से सोता है ।]

पत्तियों ने यह नहीं समझा कि यह कौवा अण्डे खाने के लिये इस प्रकार बात बना रहा है । उन्होंने उस दुश्शील की प्रशंसा करते हुए दूसरी गाथा कही—

भदको वतयं पक्खी द्विजो परमधम्मिको,

एकपादेन तिट्ठन्तो धम्ममेवानुमासति ॥

[यह पत्नी भद्र है । यह द्विज परम-धार्मिक है । एक पाँव से खड़ा होकर धर्म का ही उपदेश देता है ।

पत्तियों ने उस दुराचारी में श्रद्धावान् हो कहा—स्वामी ! आप और कुछ शिकार नहीं ग्रहण करते, हवा ही खाते हैं । तो हमारे अण्डे और बच्चों की देख भाल करें । वे स्वयं चुगने चले जाते । वह पापी उनकी अनुपस्थिति में उनके अण्डे-बच्चे पेट भर खा उनके आने के समय शान्त-आकृति बना, चोंच खोल एक पाँव में खड़ा हो जाता । पत्नी आते और बच्चों को न देख बड़े जोर से चिल्लाते—(इन्हें) कौन खा जाता है ? उस कौवे को धार्मिक समझ उस पर तनिक शङ्का न करते ।

एक दिन बोधिसत्व ने सोचा—यहाँ पहले कोई खतरा नहीं था । इसके आने के समय से ही पैदा हुआ । इसकी जाँच करनी चाहिये । वह पत्तियों के साथ चुगने जाने जैसा हा, लौटकर छिपे स्थान पर खड़ा रहा ।

कौवे ने भी जब पत्तियों को गया समझा तो उठा और जाकर अण्डे बच्चे खा, लौटकर चोंच खोल एक पाँव से खड़ा हो गया । पत्तिराज ने पत्तियों के आने पर सभी को इकट्ठा कर कहा—मैंने बच्चों के खतरे की जाँच करते हुए इस पापी कौवे को उन्हें खाते देखा । आज इसे पकड़े । उसने सभी पत्तियों को आज्ञा दी—यदि भागे तो धर दबाना । यह कह शेष गाथायें कहीं—

नास्स सीलं विजानाथ अनञ्जाय पसंसथ,

भुत्वा अण्डञ्च छापे च धम्मो धम्मोति भासति ॥

अब्भं भणति वाचाय अब्भं कायेन कुब्बति,

वाचाय नो च कायेन न तं धम्मं अधिद्वितो ॥

वाचाय सखिलो मनोविदुगो,
 छन्नो कूपसयोव कण्हसप्पो,
 धम्मधजो गामनिगमासु साधुसम्मतो,
 दुज्जानो पुरिसेन बालिसेन ॥
 इमं तुण्डेहि पक्खेहि पादाचिमं विहेउथ,
 छवं हिमं विनासेथ नायं संवासनारहो ॥

[इसके स्वभाव को नहीं जानते हो । बिना जाने प्रशंसा करते हो । यह अण्डों तथा वृक्षों को खाकर 'धर्म-धर्म' कहता है । वाणी से दूसरी बात कहता है, शरीर से दूसरी बात करता है । यह वाणी से ही धर्म में स्थित है, शरीर से नहीं । वाणी का कोमल, किन्तु मन दुःप्रवेश्य, वैसा ही छिपा हुआ जैसे बिल में सोया हुआ काला सर्प । ऐसा धर्मध्वजी, जो ग्राम-निगम आदि में 'धर्मात्मा' प्रसिद्ध होता है किसी मूर्ख पुरुष द्वारा नहीं पहचाना जाता । इसे चोंच से, पक्षियों से तथा पैरों से मारो । इस दुष्ट को नष्ट कर डालो । यह साथ रहने योग्य नहीं है ।]

यह कह पत्तिराज ने स्वयं ही उछल कर उसके सिर पर ठोंग मारी । शेष पत्तियों ने चोंच, नख, पैर तथा पंखों से प्रहार किया । वह वहीं मर गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का ढोंगी कौवा इस समय का ढोंगी भिक्षु था । पत्ति-राज तो मैं ही था ।

३८५. नन्दियमिगराज जातक

“सचे ब्राह्मण गच्छसि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक माता का पालन-पोषण करने वाले भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसे शास्ता ने पूछा—भिन्नु ! क्या तू सचमुच गृहस्थों का पालन-पोषण करना है ? ‘भन्ते ! सचमुच ।’ ‘वह तेरे क्या लगते हैं ?’ ‘भन्ते ! माता-पिता ।’ भिन्नु ! साधु ! तू पुराने पण्डितों की परम्परा की रक्षा करता है । पुराने पण्डितों ने पशु योनि में पैदा होकर भी माता-पिता को जीवन दान दिया है, कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कोशल राष्ट्र में साकेत (नगरी) में कोशल-राज के राज्य करने के समय बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हुआ । बड़े हाने पर नन्दिय मृग नाम हुआ । वह सदाचारी हो माता-पिता का पालन-पोषण करने लगा । उस समय कोशल राजा मृगों के पीछे पड़ा रहता था । वह मनुष्यों को कृषि-कर्म आदि न करने देकर बहुत से आदमियों को साथ ले नित्य शिकार खेलने जाता ।

मनुष्यों ने इकट्ठे हो सोचा --आर्यों ! यह राजा हमारे काम का हर्जा करता है, गृहस्थी नष्ट होती है । क्यों न हम अब्जजनवन उद्यान को घेर कर, दरवाजा लगाकर, पुष्करिणी खोद, घास बोंदें । फिर दण्ड मुद्गार आदि हाथ में ले, जंगल में घुस, भाड़ियों को पीटते हुए, मृगों को निकाल उन्हें घेर जैसे गौवें ब्रज में दाखिल होती हैं, वैसे ही उन्हें उद्यान में दाखिल कर दरवाजा बन्द कर दें । फिर जाकर राजा को सूचना दे दें और अपना काम करें । सभी ने एक मत हो, इस उपाय को स्वीकार कर उद्यान बना, अरण्य में प्रविष्ट हो एक योजन भर जमीन घेर ली ।

उस समय नन्दिय एक छोटी सी भाड़ी में, माता-पिता को लिये जमीन पर पड़ा था । नाना प्रकार के अब्ज-शस्त्र हाथ में लिये मनुष्यों ने एक दूसरे की बाँह को पकड़े हुए उस भाड़ी को घेर लिया । कुछ आदमी मृगों को ढूँढते हुए उस भाड़ी की ओर बढ़े । नन्दिय ने उन्हें देख सोचा । आज अपना जीवन देकर भी मुझे मातापिता की रक्षा करनी चाहिये । वह उठा और माता पिता को प्रणाम करके बोला—अम्मा ! तात ! ये मनुष्य

इस भाड़ी में दाखिल हो हम तीनों को देख लेंगे। तुम किसी न किसी उपाय से जीते रहना। जीवित रहना श्रेष्ठ है। मैं तुम्हें जीवन-दान दे, ज्योंहि मनुष्य भाड़ी के सिरे पर खड़े हों, भाड़ी को पीटेंगे, तुरन्त निकल भागूँगा। वे समझेंगे कि इस छोटी भाड़ी में एक ही मृग रहा होगा, और भाड़ी के अन्दर प्रवेश नहीं करेंगे। तुम हुशियार रहो। वह माता-पिता को प्रणाम कर चलने को तैयार हुआ। ज्योंहि मनुष्यों ने भाड़ी के एक सिरे पर खड़े हो, हल्ला करके भाड़ी को पीटा, वह वहाँ से निकल पड़ा। उन्होंने समझा यहाँ एक ही मृग होगा, और भाड़ी में अन्दर नहीं घुसे। नन्दिय जाकर दूसरे मृगों में शामिल हो गया। मनुष्यों ने उन्हें घेरा, सभी मृगों को उद्यान में दाखिल किया, फिर द्वार बन्द कर राजा को सूचना दी और अपने अपने निवासस्थान को चले गये।

तब से राजा स्वयं जाकर किसी एक मृग को बंध, किसी को भेजता—उसे ले आ। मृगों ने बारी बांध ली। जिसकी बारी आती वह मृग एक ओर खड़ा हो जाता। उसे बंधकर ले जाता। नन्दिय पुष्करिणी में पानी पीता था, घास चरता था किन्तु अभी उसकी बारी नहीं आई थी। तब बहुत से दिन गुजरने पर उसके माता-पिता के मन में उसे देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा—हमारा पुत्र नन्दिय मृग-राज हाथी के बल का है, शक्तिशाली है; यदि जीता होगा तो अश्वय दीवार लांघ कर भी हम से मिलने आयेगा। हम उसे सन्देश भेजें। उन्होंने रास्ते पर खड़े हो, एक ब्राह्मण को जाता देख मानुषी वाणी में पूछा—आर्य ! कहाँ जाते हो ? वह बोला—साकेत। उन्होंने पुत्र को सन्देश भेजते हुए पहली गाथा कही :—

सचे ब्राह्मण गच्छसि साकेतं अञ्जनावनं,
वज्जासि नन्दियं नाम पुत्रं अम्हाक ओरसं,
माता पिता च ते बुद्धा ते तं इच्छन्ति पस्सुतं ॥

[ब्राह्मण ! यदि तू साकेत (नगरी) के अञ्जन-वन को जाता है, तो वहाँ हमारे नन्दिय नामके ओरस-पुत्र को कहना कि तेरे माता पिता बुद्ध हैं, और तुझे देखना चाहते हैं।]

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और साकेत पहुँचने पर अगले दिन उद्यान में जाकर पूछा—नन्दिय मृग कौनसा है ? मृग ने आकर उसके पास खड़े हो कहा—मैं हूँ। ब्राह्मण ने वह सन्देश कहा। नन्दिय ने उत्तर

दिया—ब्राह्मण ! मैं जाऊँ, दीवार फाँद कर भी मैं जाऊँ । लेकिन मैंने राजा के पास (उसका दिया) घास-पानी भोजन किया है । मैं उसका ऋणी हूँ । इन मृगों के बीच मैं चिरकाल से रहता हूँ । मेरे लिये यह उचित नहीं है कि मैं राजा का तथा इनका कल्याण किये बिना और अपना बल दिखाये बिना चल दूँ । अपनी बारी आने पर मैं इन्हें सकुशल कर आऊँगा । यह बात कहते हुए दो गाथायें कहीं :—

भुक्ता मया निवापानि राजिनो पाणभोजनं,
सं राज पियबं अवभोक्तुं नाहं ब्राह्मणमुस्सहे ॥
ओदहिस्सामहं पस्सं खुरप्पाणिस्स राजिनो,
तदाहं सुखितो मुत्तो अपि पस्सेय्य मातरं ॥

[मैंने राजा का दिया हुआ अन्न-जल ग्रहण किया है । हे ब्राह्मण ! मैं राज-पिण्ड के प्रति नमक हराम नहीं होना चाहता । मैं राजा के तीर के सामने अपने आप को कर दूँगा । फिर, सकुशल मुक्त हो कर माता के दर्शन करूँगा ।]

यह सुन ब्राह्मण चला गया । आगे चलकर जब उसकी बारी आई तो राजा अनेक अनुयाइयों के साथ उद्यान आया । बोधिसत्व एक ओर खड़ा था । राजा ने मृग को बीधने के लिये तीर खींचा । जिस प्रकार मृत्यु-भय से डरकर दूसरे मृग भागते थे, बोधिसत्व उस प्रकार भागे नहीं । वह निर्भीत हो, मैत्री-भावना करते हुए, अपना कोमल पहलू सामने कर निश्चल खड़े रहे । राजा उसकी मैत्री भावना के कारण तीर नहीं छोड़ सका ।

बोधिसत्व ने पूछा—महाराज ! तीर क्यों नहीं छोड़ते ? छोड़े ।

“मृग-राज ! छोड़ नहीं सकता हूँ ।”

“महाराज ! तो गुणवानों का गुण पहचानें ।”

तब राजा ने बोधिसत्व के प्रति श्रद्धावान् हो धनुष त्याग कहा—यह बेजान लकड़ी का टुकड़ा भी तेरे गुणों को पहचानता है, मैं मनुष्य होकर नहीं पहचानता हूँ । मुझे क्षमा कर । मैं तुझे अभय करता हूँ ।

“महाराज ! मुझे तो अभय देते हैं, यह उद्यान के मृग-गण क्या करेंगे ?”

“इन्हें भी अभय देता हूँ ।”

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने मृगगाज-जाति में कहे गये अनुसार सभी जंगली मृगों, आकाशचारी पक्षियों तथा जलचारी मछलियों को अभय दिलवा राजा को पाँच-शीलों में स्थापित किया। फिर राजा को 'महाराज ! चार-अग्रतियों^१ में न पड़, दस-राजधर्मों^२ के विरुद्ध न जा धर्म से, न्याय से राज्य करना चाहिये' कह, कुछ दिन राजा के पास रहा। उसने 'सभी प्राणियों को अभयदान मिल गया है' को प्रसिद्ध कराने के लिये सुनहरी मुनादी फिराई। तब वह 'महाराज ! अप्रमादी रहें' कह माता पिता के दर्शनार्थ गया।

ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

मिगराज पुरे आसिं कोसलस्स निकेतवे,
नन्दियो नाम नामेन अभिरूपो चतुप्पदो ॥
तं मं वधितुमागच्छि दायस्मिं अञ्जनवने,
धनुं अदेज्झं कत्वा न उसुं सन्धाय कोसलो ॥
तस्साहं ओद्धिं पस्सं खुरप्पाणिस्स राजिनो,
तदाहं सुखितो मुत्तो मातरं दग्गुमागतो ॥

[मैं पहले कोशल-राज के घर (के पास के जङ्गल) में नन्दिय नाम का सुन्दर चतुष्पाद मृग था। अञ्जन-वन के उद्यान में मुझे वध करने के लिये कोशल-राज आया और उसने धनुष को तान उस पर तीर चढ़ाया। मैंने उस राजा के सामने, जिसके हाथ में तीर था अपने आप को कर दिया। तब मैं सकुशल मुक्त हो, माता को देखने आया।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के अन्त में माता का पोषण करने वाला भिक्षु सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। तब माता पिता महाराज-कुल थे। ब्राह्मण सारिपुत्र था। राजा आनन्द था। नन्दिय मृगराज तो मैं ही था।

^१ छन्दागति, दोसागति, मोहागति तथा भयागति।

^२ दान, शील, त्याग, अजु भाव, मृदुता, तप, अक्रोध, अविहिंसा, जमा तथा अविरोध ॥

छठा परिच्छेद

२. सेनक वर्ग

३८६. खरपुत्त जातक

“सच्चं किरेवमाहंसु...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्या की आसक्ति के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न है ?” “भन्ते ! हाँ” कहने पर पूछा—किसने उद्विग्न किया है ? “पूर्व भार्या ने ।” “भिक्षु ! यह स्त्री अनर्थ-कारिणी है, पहले भी तू इसी के कारण आग में गिर कर मरता मरता पण्डितों के कारण जीता बचा” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में सेनक नाम के राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुआ । उस समय सेनक राजा की एक नागराजा के साथ मित्रता थी । वह नाग-राज नागभवन से निकल भूमि पर शिकार पकड़ता फिरता था । गाँव के लड़कों ने उसे देख ‘यह सर्प है’ ढेलों तथा डण्डों से पीटा । राजा ने क्रीड़ा के लिये उद्यान जाते समय देखकर पूछा—यह लड़के क्या कर रहे हैं ? जब सुना कि एक सर्प को मार रहे हैं तो ‘मारने मत दो, इन्हें भगा दो’ कह उन्हें भगा दिया ।

नाग-राज जीवित रह नाग-भवन गया । वहाँ से बहुत से रत्न ले आधी रात के समय राजा के शयनागार में घुस, वह रत्न दे, ‘मेरी जान तुम्हारे ही कारण बची’ कह राजा के साथ मैत्री स्थापित की । वह बार बार जाकर राजा से भेंट करता था । उसने अपनी नाग-कन्याओं में से एक काम-भोगों में

अतृप्तकन्या को राजा की सेवा में रहने के लिये नियुक्त किया, और राजा को एक मन्त्र दिया कि जब उसे न देखे, तब उस मन्त्र को जपे। एक दिन राजा ने उद्यान में पहुँच नाग-कन्या के साथ पुष्करिणी में जल-क्रीड़ा की। नाग-कन्या ने एक जल-सर्प देखा तो रूप बदल कर उसके साथ अनौचित्य का सेवन किया। राजा ने जब उसे नहीं देखा तो सोचा—कहाँ गई? मन्त्र जपने पर वह उसे अनाचार करती हुई दिखाई दी। राजा ने उसे बाँस की चपटी से मारा।

वह क्रोधित हो वहाँ से नाग-भवन पहुँची। 'क्यों लौट आई?' पूछने पर बोली—तुम्हारे मित्र ने जब देखा कि मैं उसका कहना नहीं करती हूँ, तो उसने मुझे पीठ पर मारा। उसने पीठ की चोट दिखाई। नागराज ने बिना सच्ची बात जाने ही चार नाग-तरुणों को बुलाकर भेजा—जाओ, सेनक के शयनागार में घुस फुङ्कार से ही उसे भूसे की तरह जला दो। वे राजा के सोने के समय उसके शयनागार में प्रविष्ट हुए। उनके प्रवेश करने के समय ही राजा देवी ने बोला—भद्रे ! मालूम है नाग-कन्या कहाँ गई?

“देव ! नहीं जानती हूँ।”

“आज जिस समय हम पुष्करिणी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे उसने एक उदक-सर्प के साथ अनाचार किया। मैं ने उसे 'ऐसा न करे' शिक्षा देने के लिये बाँस की लुपटी से मारा। मुझे डर लगता है कि वह नाग-भवन जाकर मेरे मित्र को और कुछ कह कर हमारी मैत्री तोड़ेगी।”

यह सुन नाग-तरुण वहीं से लौट पड़े और नाग-भवन पहुँच उन्होंने राजा से वह समाचार कहा। उसके मन में संवेग उत्पन्न हुआ। वह उसी क्षण राजा के शयनागार में पहुँचा और वह बात कह क्षमा मांगी। फिर उसने राजा को 'सबकी बोली जानने का मन्त्र' दिया और कहा कि यह मेरा जुर्माना है, साथ ही यह भी कहा कि यह मन्त्र अति मूल्यवान् है, यदि किसी और को देगा तो आग में जल कर मरेगा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

तब से वह चींटियों की बात-चीत भी समझ सकता था। एक दिन वह महान् तल्ले पर बैठा हुआ मधु-खाण्ड के साथ भोजन कर रहा था। खाते खाते मधु की एक बून्द, खाण्ड की एक बून्द तथा पूँक का एक ड़कड़ा

भूमि पर गिर पड़ा। एक चींटी उसे देख चिल्लाती घूमती थी—राजा के महान् तल्ले पर शहद की मटकी फूट गई, खाण्ड की गाड़ी और पूँछों की गाड़ी उलट पड़ी; शहद, खाण्ड तथा पूँछ खाँधो। राजा उसकी आवाज सुनकर हंसा। राजा के पास खड़ी देवी ने सोचा—राजा क्या देखकर हंसा !

जब राजा खाकर, नहाकर पलंग पर बैठा था, तो एक मक्खी से उसके स्वामी ने कहा—भद्रे ! आरमण करें। वह बोली—स्वामी ! थोड़ा सबर करें। अभी राजा के लिये सुगन्धियाँ लायेंगे। उसका लेप करते समय पैरों में सुगन्धित-चूर्ण गिरेगा। मैं उस में लोट-पोट कर सुगन्धित शरीर वाली हो जाऊँगी। तब राजा की पीठ पर लेट कर रमण करेंगे। राजा यह भी शब्द सुन कर हंसा। देवी भी फिर सोचने लगी—राजा क्या देख कर हंसा !

फिर शाम को जब राजा भोजन कर रहा था, भात का एक दाना जमीन पर गिर पड़ा। चींटियाँ चिल्लाई—राज-कुल में भात की गाड़ी टूट (कर बिखर) गई। भात खाँधो। यह सुन राजा फिर हंसा। देवी सोने की कड़खी लिये राजा को परोस रही थी। वह सोचने लगी कि मुझे देखकर राजा हँसता है। उसने राजा के साथ शैथ्या पर लेटने के समय पूछा—देव क्यों हंसे ? वह बोला—मेरे हंसने के कारण से तुम्हें क्या ? लेकिन फिर जिद्द करने पर कह दिया।

तब वह बोली—आप जो मन्त्र जानते हैं, वह मुझे दें। “नहीं दे सकता हूँ” वह इनकार करने पर भी बार बार जिद्द करने लगी। राजा बोला—यदि मैं यह मन्त्र तुम्हें दूँगा। तो मैं मर जाऊँगा।

“देव ! मर भी जायें तो भी मुझे दें।”

राजा ने स्त्री के वशीभूत हो ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर लिया और सोचा इसे मन्त्र दे अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा। वह रथ पर चढ़ उद्यान गया।

उस समय शक्र ने संसार पर नजर डालते हुए यह बात देखी। उस ने सोचा—मूर्ख-राजा स्त्री के लिये आग में जल मरने जा रहा है। मैं इस की जान बचाऊँगा। उसने ‘सुजा’ नामकी असुर-कन्या को लिया और वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। वह बकरी बनी और शक्र स्वयं बकरा। शक्र ने

ऐसा संकल्प किया कि जनता उन्हें न देखे और वे रथ के आगे हो लिये । उस बकरे को राजा और उसके रथ के घोड़े देखते थे, और कोई नहीं देखता था ।

बकरे ने बात-चीत पैदा करने के लिये ऐसा आकार बनाया जैसे बकरी के साथ मैथुन करने जा रहा हो । रथ में जुते एक घोड़े ने उसे देखा तो बोला—मित्र बकरे ! हमने पहले सुना था कि बकरे मूर्ख होते हैं, निर्लज्ज होते हैं, लेकिन देखा नहीं था । तू छिपकर करने योग्य अनाचार को हमारी इतने जनों की नजर के सामने ही करता है । जो हमने पहले सुना था, उसका यह जो देखते हैं उससे मेल खाता है । उसने पहली गाथा कही:—

सच्चं किरवमाहंसु भस्तं बालोति, पण्डिता

पस्स बालो रहो कम्मं आवीकुब्बं न जुज्झति ॥

[पण्डितों ने सच ही कहा है कि बकरा मूर्ख होता है । देखो ! यह मूर्ख छिपकर करने योग्य कर्म को प्रकट रूप से नहीं करना चाहिए, नहीं जानता ।]

यह सुन बकरे ने दो गाथाएँ कहीं—

त्वं नुखो सम्म बालोसि खरपुत्त विजानहि,

रज्जुयाहि पारिक्खित्तो वड्ढोदुट्ठो ओहितो मुखो ॥

अपरम्पि सम्म वे बाल्यंयो मुत्तो न पलायसि,

सो च बालतरो सम्म यं त्वं वहसि सेनकं ॥

[हे गर्दभ-पुत्र ! यह समझ कि तू भी मूर्ख है, जो रस्तियों से बंधा है, टेढ़े होंट है और नीचे मुँह है तथा यह तेरी और भी मूर्खता है जो मुक्त होने पर भागता नहीं है । और तुझ से बढ़कर मूर्ख यह सेनक (राजा) है जिसे तू (रथ में) खींचता है ।]

राजा उन दोनों की बात समझता था, इसलिये उसे सुनते हुए उसने धीरे धीरे रथ हाँका । घोड़े ने भी उसकी बात सुन चौथी गाथा कही—

यन्नु सम्म अहं बालो अजरारज विजानहि,

अथ केन सेनको बालो तं मे अस्साहि पुण्डितो ॥

[हे अजरारज ! जिस कारण से मैं मूर्ख हूँ, वह तू जान ; लेकिन मैं पूछता हूँ—बता कि सेनक क्यों मूर्ख है ?]

यह कहते हुए बकरे ने पाँचवीं गाथा कही :—

उत्तमर्थं लभित्वान भरियाय यो पदस्सति,
तेन जहिस्सत्तत्तानं सा चेवस्स न हेस्सति ॥

[जो उत्तम-वस्तु को प्राप्त करके भार्य्या को दे देगा, जिस से उसकी अपनी मृत्यु होगी, और वह भी उसकी न रहेगी ।]

राजा ने उसकी बात सुन कर कहा—अजराज ! तू ही हमारा कल्याण करेगा । हमें बता कि हमें क्या करना चाहिये ?

“महाराज ! प्राणी के लिये अपने आप से बढ़कर प्रिय-तर कुछ नहीं है । एक प्रिय-वस्तु के लिये अपना विनाश करना वा प्राप्त यश को छोड़ना उचित नहीं ।”

उसने छठी गाथा कही : —

नवे पियम्ममि जनिन्द तादिस्सो
अत्तं निरंक्त्वा पियाणि सेवति,
अत्ताव सेय्यो परमाव सेय्या
लब्भा पिया ओचित्तथेन पच्छा ॥

[हे जनिन्द । तुम्हारे सदृश (आदमी) ‘यह मुझे प्रिय है’ ऐसा समझ (यदि उसके लिये) अपनी जान दे देता है, तो वह उस प्रिय-वस्तु का सेवन नहीं करता । अपना-आप ही श्रेष्ठ है, परं श्रेष्ठ है । उचित उपाय से प्रिय-वस्तुओं की प्राप्ति पीछे भी हो जाती है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को उपदेश दिया । राजा ने प्रसन्न हो पूछा—अजराज ! कहाँ से आया ?

“महाराज ! मैं शक्र हूँ, तुम पर दया करके तुम्हें मृत्यु से मुक्त करने के लिये आया हूँ ।”

“देवराज ! मैंने इसे वचन दिया है कि तुम्हें मन्त्र दूँगा । अब क्या करूँ ?”

“महाराज ! तुम्हारे दोनों के नाश को प्राप्त होने की जरूरत नहीं ।”

‘यह (मन्त्र-) शिल्प सीखने की तैयारी है’ कह इसे कुछ थप्पड़ लगा-वाइये । तब यह नहीं ग्रहण करेगी ।

राजा ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया । बोधिसत्व राजा को उपदेश दे अपने स्थान ही को गया । राजा ने उद्यान पहुँच देवी को बुलाकर कहा—
“भद्र ! मन्त्र लेगी ?”

“देव ! हाँ ।”

“तो तैय्यारी करता हूँ ।”

“क्या तैय्यारी ?”

“पीठ पर सौ कोड़े पड़ने पर भी मुँह से आवाज़ नहीं निकालनी होगी ।”

“उसने मन्त्र-लोभ से ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया । राजा ने जल्लाद को बुलवा दोनों और चाबुक लगवाये । वह दो तीन चाबुक सहने के बाद बोली—

“मुझे मन्त्र नहीं चाहिये ।”

तब राजा बोला—तू मुझे मार कर भी मन्त्र लेना चाहती थी ! उसने उसकी कमर की चमड़ी उधड़वा कर छोड़ी । उसके बाद फिर वह कुछ नहीं बोल सकी ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के प्रकाशन के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिन्न स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय राजा उद्विग्न चित्त भिन्न था । देवी पूर्व-भाष्या थी । अश्व सारिपुत्र था । देवराज शक्र तो मैं ही था ।

३८७. सूची जातक

“अकवकसं.....” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कही । (वर्तमान -) कथा उम्भग जातक में आयेगी ।

उस समय शास्ता ने ‘भिन्नो! न केवल अभी तथागत प्रज्ञावान् तथा उपाय कुशल हैं’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र में एक लोहार के घर पैदा हुए; बड़े होने पर अपने शिल्प में खूब

हुशियार । इसके मातापिता दरिद्र थे । उनके गांव से थोड़ी ही दूर एक दूसरा हजार घर का लोहारों का गांव था । वहाँ उन हजारों लोहारों में प्रधान लोहार राजा का बड़ा प्रिय तथा बहुत धनवाला था । उसकी एक लड़की थी — सुन्दर रूपवाली, देव-अप्सरा सदृश, तथा जनपद सुन्दरी के लक्षणों से युक्त । आस पास के गांव के मनुष्य छुरी-कुल्हाड़ी, फरसा, फाल, आदि बनवाने के लिये उस गांव में आते और प्रायः सभी उस कुमारी को देखते । वे अपने अपने गांव लौटकर बैठकों आदि में उसके रूप की प्रशंसा करते । बोधिसत्व ने सुना तो श्रवण-मात्र से आसक्त हो सोचा कि उसे अपनी चरण-दासी बनाऊँगा । उसने उत्तम जाति का अयस^१ (-धातु) ले एक सूक्ष्म ठोस सूई तैयार कर, उसके एक ओर छेद कर पानी में डुबाया, और दूसरी उसकी वैसे ही फोफ़ी बना उगे भी एक ओर से वीधा । इस तरह उसकी सात फोफ़ियाँ बनाईं । यह नहीं पूछना चाहिए कि कैसे बनाईं ? बोधिसत्वों के ज्ञान की अधिकता से काम हो जाता है ।

उसने वह सूई नली में डाली और फेंट में लगा उस गांव में पहुँचा । वहाँ प्रधान-लोहार के रहने की गली पूछ, उसके दरवाजे पर खड़ा हो, सूई की बड़ाई करता हुआ 'कौन है जो मुझसे यह सूई खरीदेगा ?' कहता हुआ, पहली गाथा बोला:—

अककसं अकस्सं खरधोतं सुपासियं,

सुखुमं तिखियगगच्च को सूचिं केतुमिच्छति ॥

[कौन है जो यह सूई खरीदेगा—अकर्कश, गोल, अच्छे सुन्दर पत्थर से रगड़ी हुई, चिकनी तथा तीखी नोक वाली ।]

यह कह उसी की प्रशंसा करते हुए और भी एक गाथा कही—

समज्जच्च सुपासच्च अनुपुब्बं सुविहत्तं,

घनघातिसं पटिथद्धं को सूचिं केतुमिच्छति

[कौन है जो यह सूई खरीदेगा—अच्छी तरह मंजी हुई, सुन्दर छेद वाली, क्रमशः गोल, (वस्त्र आदि में) प्रवेश कर जाने वाली तथा मजबूत ।]

उस समय वह कुमारी अपने पिता को जो भोजनोपरान्त सुस्ती

१ अयस का अनुवाद प्रायः लोहा कर दिया जाता है ।

मिटाने के लिये छोटी चारपाई पर लेटा था ताड़ के पंखे से पंखा भल रही थी। उसने बोधिसत्व का मधुर शब्द सुना तो उसे ऐसा लगा मानो उसके हृदय में गीला माँस-पिण्ड आकर लगा हो अथवा हजार घंटों (से नहाने) से थकावट उतर गई हो। उसने साँचा—कौन है जो अत्यन्त मधुर स्वर से लोहारों के गाँव में सूई बेचना है ? मैं मालूम करूँगी, यह क्यों आया है ? उसने ताड़ का पङ्खा रग दिया और बरामदे में बाहर निकल कर उससे बात करने लगी। बोधिसत्वों के संकल्प पूरे होते हैं। वह उसी के लिये उस गाँव में आया था, और वह ही उसके साथ बात चीत कर रही थी—युवक ! सारे राष्ट्र वासी सूई आदि के लिये इस गाँव में आते हैं। तू मूर्खता के कारण लोहारों के गाँव में सूई बेचना चाहता है। यदि सारे दिन भी सूई की बड़ाई करता रहेगा, तो भी तेरे हाथ में कोई मूई नहीं लेगा। यदि कीमत चाहता है तो दूसरे गाँव जा। उसने दो गायार्थें कहीं—

इतोदानि पतायन्ति सूचियो बलिसानि च,
कोयं कम्मरगामस्मिं सूची विक्केतुमिच्छति ॥
इतो सत्थानि गच्छन्ति कम्मन्ता विविधा पुथू
कोयं कम्मरगामस्मिं सूची विक्केतुमरहति ॥

[इसी गाँव से श्रव सुझाँतथा दूसरे लोहे के उपकरण बाहर जाते हैं। कौन है यह जो लोहारों के गाँव में सूई बेचना चाहता है ? इसी गाँव से शस्त्र तथा नानाप्रकार के कर्मान्न (बाहर) जाते हैं। कौन है यह जो लोहारों के गाँव में सूई बेचना उचित समझता है ?]

बोधिसत्व ने उसकी बात सुन 'भद्रे ! तू न जानने के कारण ही ऐसा कहती है' कह दो गायार्थें वहीं:—

सूचिं कम्मरगामस्मिं विक्केतव्वा पजानता,
आचरियाव जानन्ति कम्मं सुकतदुक्कतं ॥
इमञ्च ते पिता भद्रे सूचिं जञ्जा मया कतं,
तथा च मं निमन्तेय्य यञ्जथञ्जं घरे धनं ॥

[बुद्धिमान आदमी द्वारा सूई लोहार के गाँव में ही बेची जानी चाहिये। शिल्प के गुण-दीप को उसके आचार्य ही जान सकते हैं। भद्रे !

यदि तेरा पिता यह जान ले कि यह सूई मैंने बनाई है, तो वह तुम्हको मुझे दे दे और जो घर में धन है ।]

ज्येष्ठ लोहार ने उनकी सब बात सुन ली और पूछा—वेटी ! तू किस के साथ बात कर रही है ?”

“तात ! एक पुरुष सूई बेच रहा है, उसके साथ ।”

“उसे बुला ।”

उसने जाकर बुलाया । बोधिसत्व ने घर में प्रवेश किया और ज्येष्ठ लोहार को प्रणाम करके एक ओर खड़ा हो गया । उसने पूछा—किस गाँव में रहता है ?

“अमुक गाँव का वासी हूँ, तथा अमुक लोहार का पुत्र ।”

यहाँ किस लिये आया है ? ला, तेरी सूई देखें ।”

बोधिसत्व ने सबकी उपस्थिति में अपना गुण प्रकट करने की इच्छा से कहा—क्या अकेले देखने की अपेक्षा सब के साथ देखना अधिक अच्छा न होगा ?

उसने ‘अच्छा’ कह सभी लोहारों को इकट्ठा करवा, उनसे घिर जाने पर कहा—तात ! ला हम तेरी सूई देखें ।

“आचार्य्य ! एक (लोहे का घड़ा) और एक पानी भरी कांसे की थाली मंगवायें ।”

उसने मंगवाई । बोधिसत्व ने फेंट में से सूई की नली निकाल कर दी । ज्येष्ठ-लोहार ने, उसमें से सूई निकालकर पूछा—तात ! यह सूई है ?

“यह सूई नहीं है, यह सूई की फोफी है ।”

उसने इधर उधर बहुत देखा, उसे न आरम्भ का पता लगा न सिरे का ।

बोधिसत्व ने मँगवा, नख से फोफी हटा, जनता को ‘यह सूई है, यह फांफी है’ दिखा, सूई आचार्य्य के हाथ पर रख दी और फोफी उसके पैरों में डाल दी । जब उसने फिर कहा ‘तात ! यह सूई है ?’ तो ‘यह भी सूई नहीं है, सूई की फोफी है’ कह उसने नख से हटा हटा कर सूई की छ फोफियाँ ज्येष्ठ-

लोहार के चरणों में डाल, सूई उसके हाथ पर रखी। हजारों लोहारों ने (आश्चर्य से) अंगुलियाँ चटखाई और वज्र ऊपर उछाले।

तब ज्येष्ठ-लोहार ने पूछा—तात ! इस सूई की क्या ताकत है ?

“तात ! शक्तिशाली आदमी से घड़ा उठवाकर, घड़े के नीचे पानी की थाली रखवा कर, इस सूई को घड़े के बीच में मारें।”

उसने वैसा करके घड़े के बीच में सूई की नोक को मारा। वह घड़े को बीँध पानी के ऊपर बाल-मात्र भी ऊपर-नीचे न हो सीधी खड़ी हो गई। सभी लोहार बोले—हमने इससे पहले कान से भी यह नहीं सुना कि लोहार ऐसे भी होते हैं। उन्होंने अंगुलियाँ चटखाई और वज्र उछाले।

ज्येष्ठ लोहार ने वेटी को बुलवाया और उसी परिपद के बीच में ‘यह कुमारी तेरे ही योग्य है’ कह पानी गिराकर उसे दे दिया। आगे चलकर वह ज्येष्ठ-लोहार के मरने पर उस गाँव में ज्येष्ठ लोहार हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय लोहार-लड़की राहुल-माता थी। पण्डित लोहार-पुत्र तो मैं ही था।

३८८. तुण्डिल जातक

“नवकुन्दके...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक मृत्यु से भयभीत भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-वासी कुल पुत्र (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो मृत्यु से भयभीत था। जरा पत्ता हिलता, कोई टहनी टूटकर गिरती, किसी पशु पक्षी का वा वैसा अन्य किसी का कोई शब्द सुनाई देता तो वह मृत्यु-भय से ऐसे काँपता जैसे खरगोश पेट में तीर लगाने पर। भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत

चलाई—आयुष्मानों ! अमुक भिन्नु मृत्यु से भयभीत है, थोड़ी सी भी आवाज सुनकर काँपता हुआ भागता है। क्या इसी बात को मन में रखना नहीं चाहिये कि इन प्राणियों का जीते रहना अनिश्चित है, मरना ही निश्चित है ? शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर उस भिन्नु को बुलवाकर पूछा—भिन्नु ! क्या तू सचमुच मृत्यु से भयभीत है ? उसके स्वीकार करने पर शास्ता ने 'भिन्नुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह भिन्नु मृत्यु से भयभीत रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सूअरी के गर्भ में प्रवेश किया। गर्भ परिपक्व होने पर सूअरी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वह एक दिन उन्हें लिये एक गढ़ में पड़ी थी। वाराणसी द्वारवासी एक वृद्धा कपास के पेत से टोकरी भर कपास लिये जमीन पर लाठी टेकती हुई आई। सूअरी उस आवाज का सुन मृत्यु-भय से डरकर बच्चों को छोड़ भागी। बुढ़िया ने सूअरी के बच्चों को देखा तो उसके मन में पुत्र-स्नेह जागा। वह उन्हें टोकरी में डाल, घर ले आयी और बड़े का नाम महानुष्टिल तथा छोटे का चुल्ल-नुष्टिल रख उन्हें पुत्र के समान पोसा।

वे बड़े होने पर बड़े मोटे हुये। बुढ़िया से यदि कोई कहता कि इन्हें बेच दें तो वह किसी को न देती। वह कहती—यह मेरे पुत्र हैं। एक उत्सव के अवसर पर जब कि धूर्त लोग शराब पी रहे थे, उनका मांस समाप्त हो गया। 'मांस कहाँ मिलेगा' सोचते हुये उन्हें पता लगा कि बुढ़िया के घर में सूअर हैं। वे शराब लेकर वहाँ पहुँचे और बुढ़िया से बोले—मां ! कीमत ले लो और एक सूअर हमें दे दो। उसने 'क्या कोई मांस खाने के लिये खरीदने वालों को अपने पुत्र बेचता है ?' कह अस्वीकार किया।

धूर्त बोले—मां ! सूअर आदमियों के पुत्र नहीं होते। हमें दो। लेकिन जब बार-बार माँगने पर भी नहीं दिये तो उन्होंने बुढ़िया को मुरा पिलाई और कहा—मां ! सूअरों का क्या करेगी ? कीमत लेकर खर्चा चला। उन्होंने उसके हाथ पर कार्ष्ण रख दिये।

वह कार्पापण ले बोली—तात ! महातुण्डिल को नहीं दे सकती ।
चुल्लतुण्डिल को ले जाओ ।

“वह कहाँ है ?”

“यहाँ इस भाड़ी में ।”

“उसे आवाज दे ।”

“कुछ खिलाने को नहीं दिखाई देता ।”

धूर्त भात की एक थाली खरीद लाये । बुड़िया ने वह ले दरवाजे पर रखी हुई सूअर की नाद भर दी और स्वयं नाद के पास खड़ी हुई । तैसों धूर्त भी हाथ में जाल ले वहीं खड़े हुए ।

बुड़िया ने आवाज दी—रे चुल्लतुण्डिल आ । यह सुन महातुण्डिल समझ गया—आज तक हमारी माता ने कभी चुल्लतुण्डिल को नहीं बुलाया, मुझे ही सदा पहले बुलाती रही है । आज हमारे लिये अवश्य ही कोई खतरा पैदा हो गया है ।

उसने छोटे भाई को बुलाकर कहा—तात ! मां तुझे बुला रही है । जा, मालूम कर । वह भाड़ी से निकला तो भात की नाँद के पास उन्हें खड़े देख ‘आज मुझे मरना हाँगा’ सोच मृत्यु से भय-भीत हो लौटा और काँपता हुआ भाई के समीप पहुँच, सभल न सकने के कारण काँपता हुआ लड़खड़ा कर गिर पड़ा । महातुण्डिल ने उसे देख पूछा—तात । तू आज काँपता है, लड़खड़ाता है, छिपने की जगह देखता है, यह क्या कर रहा है ? उसने जो देखा था कहते हुए पहली गाथा कही—

नव छन्दके दानि दिग्यति,

पुण्यथां दोषि सुवामिनी ठिता,

बहुके जने पासपाणिके,

नो च खो मे पटिभाति भुञ्जिहुं ॥

[अब नया-आहार दिया जा रहा है, नाँद (भात से) भरी है; स्वामिनी पास खड़ी है तथा बहुत से दूसरे आदमी भी हाथ में जाल लिये हैं । मुझे खाना अच्छा नहीं जँचता ।]

यह सुन बोधिसत्व ने ‘तात ! इसी उद्देश्य से सूअर पाले जाते हैं, और मेरी माता ने भी जिस मतलब के लिये पाला है, आज उस उद्देश्य की

पूति का समय आ गया । तू चिन्ता मत कर' कह मधुर-स्वर से बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश देते हुये दो गाथायें कहीं—

तससि भमसि लेणमिच्छसि,
अत्ताणोसि कुहिं गमिस्ससि,
अप्पोस्सुको भुजं तुण्डल,
मंसत्थाय हि पोसियामसे ॥
ओगह रहदं अकहमं,
सब्बं सेदमलं पवाहय,
गणहाहि नवं विलेपनं,
यस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥

[त्रसित होता है, भटकता है, शरण-स्थान खोजता है । कोई त्राण दाता नहीं है । कहाँ जायगा ? तुण्डल ! उत्सुकता छोड़ कर (भात) खा । माँस के लिये ही हमारा पोषण होता है । कर्दम-रहित तालाब में उतर । सारे पसीने-युक्त मल को धो । उस नये लेप को लगा, जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नहीं होती ।]

दसों पारमिताओं का ध्यान कर मैत्री पारमिता पूर्वक उसके पहला पद कहते ही वह शब्द सारी बारह योजन की वाराणसी में फैल गया । जिस-जिसने जब सुना, वाराणसी-राज तथा उप-राज से लेकर सभी वाराणसी निवासी आ पहुँचे । जो नहीं आ सके उन्हें घर में बैठे ही बैठे सुनाई दिया । राज-पुरुषों ने भाड़ियाँ उखड़वा, जमीन बराबर करवा बालू भिछवा दिया । धूर्तों का शाराब का नशा उतर गया । जाल छोड़ कर खड़े हो धर्म सुनने लगे । बुढ़िया का भी नशा उतरा । बोधिसत्व ने जनता के बीच में तुण्डल को धर्मोपदेश देना आरम्भ किया ।

यह सुन चुल्लतुण्डल ने सोचा—मेरा भाई ऐसा कहता है । पुष्करिणी में उतर कर स्नान करना, सरिर से पसीना छुड़ाना तथा पुराना लेपा हटा नया लेप लगाना—यह सब कभी हमारी वंश-परम्परा में तो रहा नहीं । मेरे भाई के कहने का क्या मतलब है ? उसने चौथी गाथा कही—

कतमो रहदो अकहमो,
किंसु सेदमलंति बुच्चति,
५६

कसमञ्च नवं विलेपनं,
कस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति

[कर्दम-रहित तालाब कौन सा है? पसीना रूपी मत किसे कहते हैं ?
जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नहीं होती, ऐसा नया लेप कौन सा है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने 'ध्यान देकर सुन' कह बुद्ध की तरह धर्मोपदेश
देते हुए ये गाथायेँ कहीं :—

धम्मो रहदो अकहसो
पापं सेवमलं बुच्चति,
शीलञ्च नवं विलेपनं
तस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥
नन्दन्ति सरीरघातिनो
न च नन्दन्ति सरीरधारिनो,
पुण्णाय च पुण्णमासिया
रममाना व जहन्ति जीवितं ॥

[धर्म कर्दम-रहित तालाब है । पाप पसीना-रूपी मैल है । शील ही
बह नया विलेपन है जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नहीं होती । प्राणी की हत्या
करने वाले आनन्द मनाते हैं । शरीर-धारी (मृत्यु-भय होने से) प्रसन्न नहीं
रह सकते हैं । (गुणों से) पूर्ण प्राणी पूर्णिमा की रात्रि में आनन्द लेते हुए
की तरह प्राण त्याग देते हैं ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने मधुर स्वर से बुद्ध की तरह धर्मोपदेश दिया ।
जनता के लाखों आदिमियों ने आश्चार्य से अंगुलियाँ चटखाईं । (आकाश में)
बल्ल फेंके । सारा आकाश 'साधु' 'साधु' की आवाज से गूँज उठा ।

वाराणसी राजा ने बोधिसत्व को राज्य से पूजित कर, बुढ़िया को
सम्पत्ति दे, उन दोनों को सुगन्धित जल से स्नान करवा, बल्ल पहनवा गर्दन
में मणि-रत्न कण्ठे डलवा, नगर में लाकर पुत्र का स्थान दिया । उसने बहुत
से नौकरों चाकरों द्वारा उन की सेवा कराई ।

बोधिसत्व ने राजा को पञ्चशील दिये । सभी वाराणसी निवासियों
तथा काशी राष्ट्रवासियों ने शीलों की रक्षा की । बोधिसत्व ने उन्हें पूर्णिमा

तथा श्रमावस्था के दिन धर्मोपदेश दिया । न्यायाधीश बनकर न्याय किया । उसके न्यायाधीश रहते समय झूठा मुकद्दमा करने वाले नहीं थे ।

आगे चलकर राजा मर गया । बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा निर्णयों को पुस्तक में लिखवा कहा—इस पुस्तक को देखकर मुकद्दमों का फैसला करो । फिर जनता को धर्मोपदेश दे, अप्रमाद से रहने के लिये प्रेरित कर, सभी को रोता पीटता छोड़ चुल्ल-नुण्डिल के साथ जंगल में प्रवेश किया । बोधिसत्व का उपदेश साठ हजार वर्ष तक चला ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । वह मृत्यु से भय-भीत भिन्न स्रोतागति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय राजा आनन्द था । चुल्ल-नुण्डिल मृत्यु से भय-भीत भिन्न । परिषद बुद्ध परिषद थी । महा-नुण्डिल तो मैं ही था ।

३८६. सुवर्णकण्टक जातक

“सिङ्गी मिगो...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर के अपने लिये आत्मोत्सर्ग करने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

धनुष्धारियों को नियुक्त करने तक की कथा खण्डहाल जातक^१ में आयेगी और धन-पाल (हाथी) का गर्जन चुल्लहंस जातक^२ में कहा गया है । उस समय धर्मसभा में बात चीत चली—आयुष्मानो ! धर्म-स्वजानची आनन्द स्थविर ने शैक्षज्ञान प्राप्त कर धन-पालक (हाथी) को देख सम्यक् सम्बुद्ध के लिये आत्मोत्सर्ग किया । शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ ! यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ? ‘अमुक बात चीत’ कहने पर शास्ता ने ‘न केवल अभी

^१खण्डहाल जातक (२४२) २. चुल्लहंस जातक (२३३)

किन्तु पहले भी भिक्तुओ ! आनन्द ने मेरे लिये आत्मोत्सर्ग किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में राजग्रह के पूर्व की ओर सालिन्दिय नाम का ब्राह्मण गाँव था । उस समय बोधिसत्व उस गाँव में एक कृपक-ब्राह्मण परिवार में पैदा हुये । बड़े होने पर कुटुम्ब वाला हो वह उस गाँव की पूर्वोत्तर दिशा में मगध (राज्य) के खेत में हजार कराँप की खेती करने लगा । एक दिन वह आदमियों के साथ खेत पर गया और मजदूरों को 'हल चलाओ' कह मुँह धोने के लिये खेत के सिरे पर एक बड़े तालाब पर पहुँचा । उस तालाब में एक सुनहरी केकड़ा रहता था—सुन्दर, मनोज्ञ । बोधिसत्व दानुन करके उस तालाब में उतरे । उसके मुँह धोने के समय केकड़ा समीप आ गया ।

उसने उसे उठाकर अपनी चादर में रख लिया और ले जाकर, खेत का काम कर चुकने पर वापिस घर जाते समय उसे वहीं तालाब में डाल दिया । तब से आते समय पहले उस तालाब पर जा केकड़े को अपनी चादर में लेने के बाद ही खेती को देखता । उनका एक दूसरे के प्रति दृढ़ विश्वास हो गया ।

बोधिसत्व नियमित रूप से खेत पर जाते । उसकी आँख में पाँच प्रसाद और तीन मण्डल साफ दिखाई देते । उसके खेत के सिरे पर एक ताड़ का वृक्ष था । उस कौवे के घोंसले में रहने वाली कौवी ने उसकी आँखें देखी तो उन्हें खाने की इच्छा हुई । वह कौवे से बोली—स्वामी मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है ।

“क्या दोहद ?”

“इस ब्राह्मण की आँखें खाना चाहती हैं ।”

“बड़ा कठिन दोहद उत्पन्न हुआ है । इन्हें कौन ला सकेगा ।”

“यह मैं जानती हूँ कि तू नहीं ला सकता । इस ताड़ से थोड़ी ही दूर पर उस बाँधी में में काला सांप रहता है उसकी सेवा कर । वह इसे डस-कर मार डालेगा । तब तू इसकी आँखें निकाल कर ला सकेगा ।”

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और तब से काले साँप की सेवा करने लगा। बोधिसत्व की बोई हुई खेती में जब अंकुर-फूटा तब तक केकड़ा भी बढ़ा हो गया।

एक दिन सर्प कौवे से बोला—मित्र तू नित्य मेरी सेवा में आता है। तेरे लिये मैं क्या करूँ ?

“स्वामी तुम्हारी दासी के मन में इस खेत के मालिक की आँखों का दोहद उत्पन्न हो गया है। मैं तुम्हारी सेवा में इसीलिये आता हूँ कि तुम्हारी कृपा से उसकी आँखें मिलें।”

सर्प ने उसे 'हो, यह कोई भारी चीज़ नहीं है। मिलेगी' कह उसे आश्वसन दिया। अगले दिन वह खेत के बांध पर घास में छिप, ब्राह्मण के आने के रस्ते में उसके आने की प्रतीक्षा करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व आकर पहले तालाब पर गये, मुँह धोया और तब स्नेह के कारण सुनहरी केकड़े का आलिंगन कर उसे चादर में लिटा खेत की ओर बढ़े। सर्प ने उसे देखते ही जल्दी से कूद पिण्डली का मांस डसा। वह वहीं गिर पड़ा। साँप बाँधी की ओर भागा। बोधिसत्व का गिरना, सुनहरी केकड़े का चादर में से निकल पड़ना तथा कौवे का आकर बोधिसत्व की छाती पर बैठना ठीक एक दूसरे के बाद हुआ। कौवे ने बैठकर आँखों की ओर चोंच बढ़ाई। केकड़े ने सोचा—इसी कौवे के कारण मेरा मित्र खतरे में पड़ा। इसे पकड़ूँगा तो सर्प आयेगा। उसने संण्डासी से पकड़ने की तरह कौवे की गर्दन को जंजर से पकड़ा और दबाकर थोड़ा ढीला कर दिया। कौवा चिल्लाया—मित्र मुझे क्यों छोड़े भागे जा रहे हो ? यह केकड़ा मुझे कष्ट दे रहा है। मेरे मरने से पहले पहले आओ। उसने साँप को बुलाते हुए पहली गाथा कहीः—

सिंगीमिगो आयत्तच्चक्षुनेत्तो
अट्टित्तचो वारिसयो अलोमो,
तेनाभिभूतो कपणं रुदामि
हरे सखा किस्सनु मं जहासि ॥

[स्वर्ण वर्ण, बड़ी आँखों वाला, अस्थी त्वचा मात्र, पानी में रहने वाला तथा बालहीन (यह केकड़ा है) इससे अभिभूत हो मैं, दुःख है, रो रहा हूँ। अरे सखा ! मुझे क्यों छोड़ रहा है ?]

शास्ता ने इस बात को प्रकट करते हुए अभिसंबुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही:—

सो पस्ससन्तो महता फणेन
भुजङ्गमो कक्कट मज्झपतो
सखा सखारं परितापमानो
भुजङ्गमं कक्कटको गहेसि ॥

[मित्र मित्र की सहायता करने के लिये वह सर्प बड़े फन से फुफकारता हुआ केकड़े के पास पहुँचा। केकड़े ने सर्प को पकड़ा।]

उसने उसे कष्ट दे थोड़ा डीला किया। सर्प ने सोचा केकड़े न कौवे का मांस खाते हैं न सर्प मांस। इसने हमें क्यों पकड़ा है? यह पूछते हुए उसने तीसरी गाथा कही:—

न वायसं नो पन सप्पराजं
घासत्थिको कक्कटको अदेय्य,
पुच्छामि तं आग्रतचक्खुनेत्त
अथ किस्स हेतुम्ह उभो गहीता ॥

[न कौवे को और न सर्प राज को ही केकड़ा खाने के लिये पकड़ता है। हे बड़ी आँखों वाले! मैं पूछता हूँ कि तूने हम दोनों को किस लिये पकड़ा है।]

केकड़े ने पकड़ने का कारण कहते हुए दो गाथायें कहीं:—

अथं पुरिसो मम अत्यकामो
यो मं गहेत्त्वान दकाय नेति,
तस्मिं मते दुक्खमनप्प कम्मे
अहंच एसोच उभोन होम ॥
ममञ्च दिस्वान पवद्धकायं
सब्बो जनो हिंसितुमेवमिच्छे,
सादुञ्च थुल्लञ्च मुदुञ्च मंसं
काकापि मं दिस्व विहेठयेरयुं

[यह पुरुष मेरा हितैषी था, मुझे लेकर तालाब ले जाता था। उसके मरने से मुझे बहुत दुःख होगा—यह और मैं दोनों नहीं रहेंगे। मेरे

बढ़े हुये शरीर को देखकर सभी मेरी हिंसा करना चाहेंगे, कौवे तक भी; यह देख कि इसका मांस स्वादु, मोटा तथा कोमल होगा, मुझे कष्ट देंगे ।]

यह सुन सर्प ने सोचा कि एक उपाय से इसे ठग कर कौवे को और अपने को छुड़ाऊँ । उसे ठगने के लिये छठी गाथा कही—

सचेतस्स हेतुम्ह उभो गहीता

उट्ठातु पोसो विसमाचन्तामि,

ममञ्च काकञ्च पमुञ्च खिप्पं

पुरे विसंगाळहमुपेति मच्चं ॥

[यदि इसके कारण दोनों को पकड़ा है तो यह पुरुष उठ खड़ा हो, मैं इसका विष चूसता हूँ । मुझे और कौवे को शीघ्र छोड़ । आरम्भ में आदमी को विष जोर से चढ़ता है ।]

यह सुन केकड़े ने सोचा—यह ढंग बनाकर मुझसे दोनों को छुड़ा कर भाग जाना चाहता है । मेरी उपाय कुशलता को नहीं जानता है । मैं अब अपनी संदासी को ढीला करूँगा, जिसमें साँप हिल-डोल सके, कौवे को तो नहीं ही छोड़ूँगा । उसने सातवीं गाथा कही—

सप्पं पमोक्खामि न ताव काकं

पटिवद्धको होहिति ताव काको.

पुरिग्गच्च दिस्वान सुखिं अरोगं

काकं पमोक्खामि यथेव सप्पं ॥

[सर्प को छोड़ता हूँ, लेकिन कौवे को नहीं । कौवा तब तक प्रतिबन्धक रहे । पुरुष को सुखी तथा निरोग देखकर सर्प के समान कौवे को भी छोड़ दूँगा ।]

यह कह उसके सुविधा से हिल-डोल सकने के लिये 'संदासी' को ढीला कर दिया । साँप ने विष चूस कर बोधिसत्व के शरीर को विष रहित कर दिया । वह सुखी हो स्वाभाविक अवस्था में खड़ा हुआ । केकड़े ने सोचा यदि ये दोनों जीवित रहेंगे तो मेरे मित्र का कल्याण नहीं । इन दोनों को मार डालूँगा । उसने कैची से कमल की नाल काटने की तरह अपनी 'संदासी' से दोनों के सिर काट, जान से मार डाला । कौवी भी उस जगह से भाग गयी । बोधिसत्व ने साँप का शरीर लकड़ी पर लपेट भाड़ी के पीछे फेंक

दिया । सुनहरी केकड़े को तालाब में छोड़, स्नान कर सालिन्दिय ग्राम को ही लौट गया । तब से केकड़े के साथ उसका विश्वास और भी अधिक बढ़ गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठा अन्तिम गाथा कही—

काको तदा देवदत्तो अहोसि
मारो पन कण्हसम्पो अहोसि,
आनन्दो भवो कक्कटको अहोसि
अहं तदा ब्राह्मणो होमि तत्थ ॥

[कौआ उस समय देवदत्त था, मार काला-साँप था । आनन्द भद्रे केकड़ा था और मैं तब-वहाँ ब्राह्मण था ।]

सत्य के अन्त में अनेक स्रोतापन्न आदि हुए । कौबी की बात गाथा में नहीं कही गई—वह चिञ्चामाणविका थी ।

३६०. मय्हक जातक

“सकुणो मय्हको नाम...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आगन्तुक-सेठ के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

भावस्ती में आगन्तुक-सेठ नाम का एक धनवान रहता था । वह न स्वयं खाता-पीता था, न किसी को कुछ देता था । नाना प्रकार के स्वादिष्ट बढ़िया भोजन सामने लाने पर, उन्हें न खाता, कण्ठाज तथा बिलङ्ग ही खाता । धूप दिये गये सुगन्धि वाले वस्त्र लाने पर उन्हें रखवाकर मोटे, घने बालों वाले वस्त्र पहनता । आज्ञानीय घोड़े जुते, मणि तथा स्वर्ण से चित्रित रथ के लाये जाने पर उसे हटवा, पत्तों की छतवाले, लकड़ी के डण्डों के रथ पर चढ़ कर जाता ।

उसने जन्म भर दानादि पुण्य कर्मों में से एक भी नहीं किया और मर कर रोरुव नरक में पैदा हुआ। उस अपुत्र का धन राज-सेना द्वारा सात ही दिन-रात में राजकुल में पहुँचा दिया गया। उसके पहुँचा दिये जाने पर प्रातःकाल का भोजन कर चुकने के बाद राजा जेनवन गया और शास्ता को प्रणाम कर बैठा। शास्ता ने पूछा—क्यों महाराज ! बुद्ध की सेवा में नहीं आते ?

“भन्ते ! श्रावस्ती में आगंतुक सेठ मर गया। उसके बिना मालिक के धन को हमारे घर ढोंकर लाने में ही सात दिन लग गये। उसने इतना धन प्राप्त कर न स्वयं खाया पिया, न दूसरों को दिया। उसका धन राजस द्वारा सुरक्षित पुष्करिणी की तरह रहा। उसने एक दिन भी नाड़िया भोजन आदि का मजा नहीं लिया और मर गया। इस प्रकार के कंजूस अपुण्यवान् आदमी को इतना धन कैसे मिला ? धन को भोगने की इसकी इच्छा क्यों नहीं हुई ?”

“महाराज ! धन की प्राप्ति तथा धन का न भोगना दोनों उसी के कर्मों का फल हैं।”

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी-सेठ अश्रद्धावान् था, कंजूस, किसी को न कुछ देता था, न खिलाता-पिलाता था। उसने एक दिन राज-दरबार जाते समय नगर में प्रत्येक-बुद्ध को भिक्षा-टन करते देखा, प्रणाम कर पूछा—भन्ते ! भिक्षा मिली ? “सेठ ! भिक्षा माँग रहे हैं” कहने पर (अपने) आदमी को आज्ञा दी—जा, इन्हें हमारे घर ले जा, हमारे पलंग पर बिठा, हमारे लिये तैयार भोजन में से पात्र भरवा कर दिलवा।

वह प्रत्येक-बुद्ध को घर ले गया, बिठाया और सेठ की भाव्या को कहा। उसने नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन से पात्र भर कर उसे दिया। वे भोजन ले, सेठ के घर से निकल, रास्ते पर आये।

सेठ ने राज दरबार से लौटते समय उसे देख, प्रणाम कर पूछा—
“भन्ते ! भोजन मिला ?”

“महासेठ ! मिला ।”

उसने पात्र देखा तो उसका मन प्रसन्न न रह सका । सोचने लगा—
“इस भोजन को मेरे दास या मजदूर खाते तो कोई कठिन काम भी करते ।
ओह ! मेरी हानि !” वह तीसरी चेतना की पूर्ति नहीं कर सका । दान उसी
को महाफल देता है, जो तीनों चेतनाओं की पूर्ति कर सके ।

पुब्बेव दाना सुमना भवाम,

ददम्पि चे अत्तमना भवाम,

दत्त्वापि चे नानुत्तपाम पच्छा,

तस्मा हि अग्रहं दहरा न मीयरे ॥

पुब्बेव दाना सुमनो ददं चित्तं पसादये,

दत्त्वा अत्तमनो होति ऐसा यज्जस्स सम्पदा ।

[दान (देने) से पहले भी प्रसन्न-मन रहते हैं, दान देते समय भी
प्रसन्न-मन रहते हैं, देकर भी पीछे अनुताप नहीं करते हैं; इसलिये हमारे
(यहां पिता के रहते) पुत्र नहीं मरते ।

दान देने से पूर्व प्रसन्न-मन रहे, देते समय चित्त प्रसन्न रखे, देकर
प्रसन्न हो—यही (दान) यज्ञ की सम्पत्ति है ।]

“इस प्रकार महाराज । आगन्तुक-सेठ ने तगरसिखी प्रत्येक-बुद्ध को
दान देने के कारण बहुत धन प्राप्त किया; लेकिन चेतना को पूर्ण रूप से
पवित्र न रख सकने के कारण धन का उपभोग नहीं कर सका ।”

“भन्ते ! उसे पुत्र क्यों नहीं हुआ !”

“महाराज ! पुत्र न होने का कारण भी वह स्वयं ही है ।”

उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ग. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व
अस्सी करोड़ धन वाले सेठ-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर माता-पिता की
मृत्यु के बाद छोटे भाई को खाने-पीने की सुविधाकर, परिवार का पालन-

पोषण करते हुये रहने लगा। उसने गृह-द्वार को दान-शाला बना दिया और महादान देता हुआ घर पर रहने लगा। उसको एक पुत्र हुआ।

जब बच्चा पैर से चलने लगा तो वह काम-भोगों में दोष तथा अभि-निष्क्रमण में कल्याण देख पुत्र-दारा सहित सारा वैभव छोटे भाई को सौंप, 'अप्रमादी हांकर दान देते रहना' उपदेश दे, ऋषि-प्रब्रज्या के ढंग पर प्रब्रजित हुआ और समापत्तियां प्राप्त कर हिमालय में रहने लगा।

छोटे भाई को भी एक पुत्र हुआ। उसने उसे बड़े होते देख सोचा— मेरे भाई के पुत्र के जीते रहने से घर के दो हिस्से हो जायेंगे। भाई के पुत्र को मार डालूँ। एक दिन उसने उसे नदी में डुबा कर मार डाला। उसके नहाकर लौटने पर भाई की स्त्री ने पूछा—पुत्र कहां है? "पानी में जल-क्रीड़ा कर रहा था। डूँडने पर नहीं मिला।" वह रोकर चुप हो गई।

बोधिसत्व ने यह समाचार सुन, सोचा—(इसकी) यह करनी प्रकट करूँगा। वह आकाश से आकर वाराणसी में उतरा और अच्छी प्रकार वस्त्रादि पहन उसके गृहद्वार पर जब उसने दान-शाला नहीं देखी तो समझ गया कि असत्पुरुष ने दान-शाला भी नष्ट कर दी होगी। छोटे भाई को जब उसके आने का समाचार मिला, तो उसने आकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और महल पर ले जा अच्छी तरह भोजन कराया।

भोजन कर चुकने पर, मुखपूर्वक बातचीत करने के समय उसने पूछा— बच्चा नहीं दिखाई देता है। वह कहां है?

"भन्ते ! मर गया।"

"कैसे !"

"उदक-क्रीड़ा के समय। नहीं कह सकता कैसे?"

"असत्पुरुष ! क्या ! क्या तू नहीं जानता ? तेरी करतूत तुझे पता है। क्या तूने इस कारण से उसे नहीं मारा है ? क्या तू राजादि से नष्ट हो सकने वाले धन की रक्षा कर सकता है ? मरहक पक्षी का और तुम्हारा क्या अन्तर है ?"

बोधिसत्व ने बुद्ध-लीला से उपदेश देते हुये ये गाथायें कहीं—

सकुणो मरहको नाम गिरिसानुदरी चरो,

पक्कं पिप्पल्लिमारुह मरह-मरहति कन्दति ॥

तस्सेवं विलपन्तस्स दिज-सङ्गा समागता,
 भुत्वान् पिप्फलिं यन्ति विलपित्वेव सो दिजो ॥
 एवमेव इधेकच्चो सङ्गरित्वा बहुं धनं,
 नेवत्तनो न जातीनं यथोधिं पटिपञ्जति ॥
 न सो अच्छादनं भत्तं न मालं न विलेपनं,
 अनुभोतिं सकिं किञ्च न सङ्गहाति जातके ॥
 तस्सेवं विलपन्तस्स मय्हमय्हाति रक्खतो,
 राजानो अथवा चोरा दायादा येव अप्पिया,
 धनमादाय गच्छन्ति विलपित्वेव सो नरो ॥
 धीरो च भोगे अधिगम्स सङ्गहाति च जातके
 तेन सो किंतिं पप्पोति पेच्च सग्गे च मोदति ॥

[पर्वत, जङ्गल तथा कन्दराओं में रहता हुआ 'मयहक' पत्नी पके पिप्फलि वृक्ष पर चढ़ 'मेरा मेरा' पुकारता है ; उसने इस प्रकार चिल्लाते रहते पत्नी गण आकर पिप्फलि-फल खा जाते हैं । वह पत्नी रोता ही रहता है । इसी प्रकार यहाँ कोई कोई आठमी बहुत धन इकट्ठा करके न स्वयं खाना है, न अपने रिश्तेदारों को यथोचित ढंग में देना दिलाता है—न पहनना, न खाना, न माला, न लेर किसी भोग को भी न वह स्वयं भोगता है, न रिश्तेदारों को खिलाता-पिलाता है । इस प्रकार उसके 'मेरा मेरा' करके संभालते और रोते पीटते रहते हुए ही या तो धन राजा ले जाते हैं, या चोर ले जाते हैं, या अप्रिय-दायाद ले जाते हैं । वह नर रोता-धोता रह जाता है । धीर-पुरुष भोग्य-वस्तुओं को एकत्र कर रिश्तेदारों को खिलाता पिलाता है, इससे उसे कीर्ति की प्राप्ति होती है और मरने पर स्वर्ग जाता है ।]

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उने धर्मोपदेश दे पूर्ववत् दान चालू कराया और हिमालय जा ध्यानावस्थित हो ब्रह्म-लोक गामी हुआ ।

-शास्ता ने यह धर्मदेशना ला "महाराज ! इस प्रकार आगन्तुक सेठ ने क्योंकि अपने भाई के पुत्र को मार दिया था, इसलिये उसे इतने समय तक न पुत्र हुआ, न पुत्री, कह जातक का मेल बैठायो । उस समय छोटा भाई आगन्तुक सेठ था । बड़ा तो मैं ही था ।

३६१. धजविहेठ जातक

“दुब्बणरूपं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लोकोपकार के बारे में कही। (वर्तमान) कथा महा कह जातक में आयेगी। उस समय शास्ता ने “भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पूर्व (-जन्म) में भी तथागत ने लोकोपकार किया है” कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक था। उस समय एक विद्याधर मन्त्र-बल से आधी रात के समय आकर वाराणसी राज की पटरानी के साथ अनाचार करता था। उसकी परिचारिकायें जान गईं। तब उसने स्वयं ही राजा के पास जाकर कहा—

“देव ! एक आदमी आधी रात के समय शयनागार में प्रवेश कर मुझे दूषित करता है।”

“उसको कोई चिन्ह लगा सकेगी ?”

“देव सकुं गी।”

उसने प्राकृतिक हल्दी की थाली मँगा, जिस समय वह आदमी रमण करके जाने लगा उसकी पीठ पर पंचांगुलि चिन्ह बना राजा से कहा।

राजा ने आदमियों को आज्ञा दी—जाओ चारों दिशाओं में ढूँढो। जहाँ कोई आदमी ऐसा मिले जिसकी पीठ पर प्राकृतिक हल्दी का पाँच अँगुलियों का चिन्ह हो, उसे पकड़ो। विद्या-धर भी रात को अनाचार कर दिन में सूर्य को नमस्कार करता हुआ एक पाँव से खड़ा था। राज-पुरुषों ने देख उसे घेर लिया। उसे जब पता लगा कि उसकी करनी प्रकट हो गई तो वह मन्त्र-बल से आकाश में उड़ गया। राजा ने उन आदमियों से जो उसे देखकर आये थे पूछा—

“देखा ?”

“हाँ ! देखा ।”

“वह कौन है ?”

“देव ! प्रव्रजित है । वह रात को अनाचार कर दिन में साधु वेश से रहता है ।”

राजा को साधुओं पर क्रोध आया—ये दिन में साधु वेश में रहते हैं और रात को अनाचार करते हैं । उसने मिथ्या-संकल्प कर मुनादी करा दी—मेरे राज्य से सभी साधु भाग जायें; अन्यथा जो कोई दिग्विहारी देगा, उसे ही राज-दण्ड भोगना होगा । तीन सौ योजन के काशी-राष्ट्र में से भाग कर सभी साधु दूसरी दूसरी राजधानियों में चले गये । सारे काशी-राष्ट्र में आदमियों को उपदेश दे सकने वाला एक भी श्रमण-ब्राह्मण नहीं रहा । उपदेश न मिलने में आदमी कठोर स्वभाव के हो गये । दान-शील से विमन्य होने के कारण मरने पर अधिकतर नरक में पैदा हुए । स्वर्ग में पैदा होने वाले ही नहीं रहे ।

शक्र ने जब नये देवता नहीं देखे तो ध्यान लगाकर मोचा—क्या कारण है ? उसे पता लगा कि विद्याधर के कारण वाग्यसी-राज ने क्रुद्ध हो, मिथ्या-संकल्प कर प्रव्रजितों को देश में निहाल दिया है । शक्र ने सोचा कि उसे छोड़कर और कोई राजा के मिथ्या-आग्रह को नहीं लुढ़ा सकता । उसने निश्चय किया कि वह राजा तथा देशवासियों का उपकार करेगा । तब शक्र तक्रमूलक पर्वत के प्रत्येक-बुद्धों के पास गया और बोला—भन्ते ! मुझे एक वृद्ध प्रत्येक-बुद्ध दें । मैं काशी-राज को प्रसन्न करूँगा ।

उसे संघ-स्थविर ही मिले ।

उनका पात्र चीवर ले, उन्हें आगे-आगे कर, स्वयं पीछे हो, सिर पर हाथ जोड़ प्रत्येक-बुद्ध को नमस्कार करते हुये शक्र सुन्दर तरुण के रूप में सारे नगर के ऊपर तीन बार घूम, राज-द्वार पर पहुँच, आकाश में ठहरा । राजा को सूचना मिली—देव ! एक सुन्दर तरुण एक श्रमण को लाकर राज-द्वार पर आकाश में खड़ा है ।

राजा ने आसन से उठ, खिड़की में खड़े हो, ‘तरुण ! तू स्वयं सुन्दर है, इस कुरूप श्रमण का पात्र चीवर लिये प्रणाम करता हुआ क्या खड़ा है ?’ पूछते हुए पहली गाथा कही :—

दुग्धवण्यरूपं तुवमरियवण्यं
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्ससि,
सेय्योनु तेसो उदवा सरिक्खो
नामं परस्सत्तनो चापि ब्रूही ॥

[हे सुन्दर रूप ! तू इस कुरूप को आगे कर हाथ जोड़ नमस्कार करता है । यह तुझमें श्रेष्ठ है अथवा समान ? इसका तथा अपना नाम कह ।]

शक्र बोला—महाराज, श्रमण आदरास्पद होते हैं इसलिए मैं इनका नाम नहीं कह सकता । श्रमण नाम बताता हूँ । उसने दूसरी गाथा कही :—

न नामगोत्तं गणहन्ति राज
सम्मगातानुज्जुगता न देवा,
अहं च ते नामधेयं वदामि
सक्कोहमस्मि तिवसानमिन्दो ॥

[राजन्, देवता अरहत्व-प्राप्त तथा निर्वाण-प्राप्त जनों का नाम या गोत्र मुँह ने ही नहीं लेते हैं । हाँ मैं अपना नाम तुम्हें बताता हूँ । मैं (त्रयस्-) त्रिंश देवों का इन्द्र शक्र हूँ ।]

यह सुन राजा ने तीसरी गाथा द्वारा भिक्षुओं को नमस्कार करने का फल पूछा :—

यो दिस्वा भिक्खुं चरणूपपन्नं
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्सति,
पुच्छामि तं देवराजेतमत्थं
इतो चुतो किं लभते सुखं सो ॥

[हे देवराज ! मैं तुझसे यह जानना चाहता हूँ कि जो सदाचारी भिक्षु को आगे कर, हाथ जोड़ नमस्कार करता है, उसे यहाँ सेमरने पर क्या सुख मिलता है ?]

शक्र ने चौथी गाथा कही :—

यो दिस्वा भिक्खुं चरणूपपन्नं
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्सति
द्विद्देवधम्मे लभते पसंसं
सग्गं च सो याति सरीरभेदा ॥

[जो सदाचारी भिन्नु को देख, आगे कर, हाथ जोड़ प्रणाम करता है उसकी इस जन्म में प्रशंसा होती है, तथा मरने पर स्वर्ग-लाभ ।]

राजा ने शक्र की बात सुन अपना मिथ्यामत छोड़ प्रसन्न-चित्त हो, पाँचवीं गाथा कही :—

लक्ष्मी वत मे उदपादि अञ्ज
यं वासवं भूतपतहसाम,
भिक्षुञ्च दिस्वान तवज सक्क
काहामि पुञ्जानि अनप्पकानि ॥

[आज भूतपति इन्द्र का दर्शन होने से मुझे प्रज्ञा प्राप्त हुई । हे शक्र आज मैं तुम्हारे भिन्नु को देखकर बहुत पुण्य करूँगा ।]

यह सुन शक्र ने पण्डित की प्रशंसा करते हुए छठी गाथा कही :—

अद्धा हवे सेवितब्बा रूपञ्जा
बहुस्सुता ये बहुट्ठानचिन्तिनो,
भिक्षुञ्च दिस्वान ममञ्च राज
करोहि पुञ्जानि अनप्पकानि ॥

[निश्चय से जो बहुश्रुत हैं, जो बहुत बातों का विचार कर सकते हैं, तथा जो प्रज्ञावान हैं उनकी सेवा करनी चाहिए । राजन् ! मुझे तथा भिन्नु को देखकर बहुत पुण्य करो ।]

यह सुन राजा ने अन्तिम गाथा कही :—

अक्रोधनो निच्चपसन्नचित्तो
सब्बातिथीयाचयोगो भवित्वा,
निहच्चमानं अभिवादयिस्सं
सुखान देविन्दु सुभासितानि ॥

[हे देवेन्द्र, तुम्हारे सुभाषित सुनकर मैं अक्रोधी, नित्य-प्रसन्नचित्त तथा सब अतिथियों के प्रति यथायोग्य करनेवाला हो अपने मान का मर्दन कर अभिवादन करूँगा ।]

ऐसा कह प्रासाद से उतर प्रत्येक-बुद्ध को नमस्कार कर एक ओर बैठा । प्रत्येक-बुद्ध ने आकाश में पालथी मार राजा को उपदेश दिया— महाराज, विद्याधर भ्रमण नहीं हैं । अब से तू यह जान कर कि लोक धार्मिक

श्रमण-ब्राह्मणों से खाली नहीं है दान दे, शील रख तथा उपोसथ कर्म कर । शक्र ने भी शक्र के प्रताप से आकाश में खड़े हों नगरवासियों को उपदेश दिया कि अप्रमादी रहो और मुनादी करा दी कि भागे हुए श्रमण-ब्राह्मण लौट आएँ । वे दोनों भी अपनी-अपनी जगह गये । राजा ने उपदेशानुसार चल पुण्य किये ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला गत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । उस समय के प्रत्येक-बुद्ध परिनिवृत्त हो गये । राजा आनन्द था । शक्र तो मैं ही था ।

३६२. भिसपुष्प जातक

“यमेतं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कहा ।

क. वर्तमान कथा

उसने जेतवन से निकल कोशल राष्ट्र में एक आरण्य के आश्रय विहार करते समय एक दिन पद्म-सरोवर में उतर फूले-कंवल देख जिधर वायु जा रही थी, उधर खड़े हो सुगन्धि ली । उस वन-खण्ड में रहने वाले देवता ने उसे धमकाया—मित्र ! तू गन्ध-चोर है । यह तेरी चोरी का एक अङ्ग है । वह उससे धमकाया जाकर जेतवन लौट आया और शास्ता को प्रणाम करके बैठा । शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! कहां रहा ? “असुक वन-खण्ड में, और वहाँ देवता ने मुझे इस प्रकार धमकाया ।” “भिक्षु ! फूल सूँघने पर देवता ने केवल तुझे ही नहीं धमकाया है, पुराने पण्डितों को भी धमकाया है” कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक निगम में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर तत्तशिला में शिल्प सोख, और आगे चलकर ऋषियों के ढंग की प्रव्रज्या ले, एक पद्म-सरोवर के पास रहने लगे । एक दिन तालाब में उतर खिले फूल को खड़े सूँघते थे । एक देव-कन्या ने वृत्त-स्कन्ध के धिवर में खड़े हाँधमकाते हुए पहली गाथा कही—

यमेतं वारिजं पुष्पं अदिन्नं उपसिद्धसि,

एकङ्गमेतं धेयानं गन्धधेनोसि मारिस ॥

[यह जो तू बिना दिये हुए कंवल-फूल को सूँघता है, यह भी चोरी का एक प्रकार है । मित्र ! तू गन्ध-चोर है ।]

तब बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

न हरामि न भञ्जामि आरा सिद्धामि वारिजं,

अथ केन नु वरणेन गन्धधेनोति बुद्धति ॥

[न ले जाता हूँ, न तोड़ता हूँ, केवल दूर से सूँघता हूँ । मैं किस प्रकार गन्धचोर कहला सकता हूँ ?]

उसी समय एक आदमी उस तालाब में भिसें उखाड़ रहा था और कंवल तोड़ रहा था । बोधिसत्व ने उसे देख 'दूर खड़े होकर सूँघने वाले को चोर करती है, इस आदमी को क्यों कुछ नहीं कहती' कह उसके साथ बात चीत करते हुए तीसरी गाथा कही—

यो यं भिसानि खणति पुण्डरीकानि भञ्जति,

एवं आक्खिण्णकम्मन्तो कस्मा एसो न बुद्धति ॥

[जो यह भिस उखाड़ता है और कमलों को तोड़ता है, वह ऐसा दाक्खिण-कर्म करता है । उसे कुछ क्यों नहीं कहती ?]

उसे कुछ न कहने का कारण बताते हुये देव-कन्या ने चौथी तथा पाँचवीं गाथा कही—

आक्खिण्णल्लो पुरिसो धातिचेळं व मक्खितो,

तस्मिं मे वचनं नत्थि तच्च अरहामि वत्तवे ॥

अनङ्गणस्स पोसस्स निच्चं सुचिगवेसिनो,

वाळ्ळामत्तं पापस्स अग्गामत्तं व खायति ॥

[जो लोभ में डूबा हुआ आदमी है, जो दाई के बख की तरह मैला है, उसे कुछ कहने के लिये मेरे पास वचन नहीं हैं। लेकिन श्रमण को कहना उचित समझती हूँ। जो निर्दोष पुरुष है, जो नित्य पवित्रता के लिये प्रयत्नशील है, उसका बाल की नोक के समान पाप भी महा-मेघ के समान प्रतीत होता है।]

उस देव-कन्या द्वारा संविग्न-हृदय बोधिसत्व ने छठी गाथा कही—

अद्धा मं यक्ख जानासि अथो मं अनुकम्पसि,

पुनपि यक्ख वज्जासि यदा पस्ससि एदिसं ॥

[हे देवते ! तू मुझे जानती है। इसलिये मुझ पर अनुकम्पा करती है। यदि फिर भी इस प्रकार का कोई दोष देखे, तो सावधान करना।]

तब देव-कन्या ने सातवी गाथा कही—

नेव तं उपजीवाम नपिते भतकम्हसे,

त्वमेव भिक्खु जानेद्य येन गच्छेय्य सुमार्तिं ॥

[न हम तुझ पर निर्भर करते हैं, न तेरी मजदूरी करते हैं। हे भिक्खु ! तू ही जान कि किस सुकर्म से सुगति की प्राप्ति होती है।]

इस प्रकार वह उभे उपदेश दे अपने विमान में चली गई। बोधिसत्व भी ध्यान-प्राप्त कर ब्रह्म-लोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्खु सोतापत्तिकल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय देव-कन्या उत्पल्ल-वर्णा थी। तत्सर्वी तो मैं ही था।

३६३. विधास जातक

“सुसुखं वत जीवन्ति...” यह शास्ता ने पूर्वाराम में विहार करते समय क्रीड़ा-शील भिक्षुओं के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

महामौदगल्यायन स्थविर ने जब प्रामाद को कैपकर उनके मन में संवेग उत्पन्न कर दिया तो धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उनके दोष कहने लगे । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुगो, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने ‘भिक्षुओं, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह क्रीड़ा-शील ही थे’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय योगसिद्ध शक्र हुये । एक काशी-गाँव में सात भाई कान-भंगों को दोष-पूर्ण समझ, निकल, ऋषियों की प्रव्रज्या के ढंग पर प्रव्रजित हुए । वे मेधवारण्य में रहते समय योगाभ्यास में न लग, शरीर का ही दृढ़ बनाने में लगे रहकर नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करने रहते थे । शक्र देवराज ने संचा, इनके मन में संवेग पैदा करूँगा । वह ताने का रूप बना उनके निवास-स्थान पर आया और एक वृत्त पर बैठ उनके मन में संवेग पैदा करने हुये पड़ली गाथा कही—

सुसुखं वत जीवन्ति ये जना विधासादिनो,

दिट्ठे व धम्मे पासंसा सगपराये च सुगति ॥

[जो खाये हुये अवशिष्ट भोजन का खाते हैं, वे सुख से जीते हैं । इसी जन्म में उनकी प्रशंसा होती है और परलोक में सुगति मिलती है ।]

उनमें से एक ने उसकी बात सुन शेष सब जनों को सम्बोधित कर दूसरी गाथा कही :—

सुकस्स भासमानस्स न निसामेथ पण्डिता,

इदं सुणाय सोदरिया अम्हे वायंपसंसति ॥

[पण्डितो ! क्या तोते का कहना नहीं सुनते हो ? भाइयो ! इसे सुनो, यह हमारी ही प्रशंसा करता है ।]

उसका विरोध करते हुये शक्र ने तीसरी गाथा कही :—

नाहं तुम्हे पसंसामि कुणपाद्वा सुण्णथ मे,

उच्छिष्टभोजिनो तुम्हे न तुम्हे विधासादिनो ॥

हे मुर्दार खाने वालो ! मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं करता हूँ । तुम जूठन खाने वाले हो, वचा हुआ खाने वाले नहीं ।]

उसकी बात सुन उन सब ने चौथी गाथा कही :—

सत्तवस्सा पब्बजिता मेज्झारज्जे भिखण्डिनो,

विधासेनेव यापेन्ता मयं चे भोतो गारह्णा,

कोनु भोतो पसंसिया ॥

[सान वर्ष ने हम शिखा-धारी साधु हो मेध्यारण्य में रहते हैं, और वचा हुआ हा खाकर जाते हैं । यदि आप हमारी निन्दा करते हैं तो आप के प्रशंसित कौन हैं ?]

उन्हें लज्जित करते हुये बोधिसत्व ने पाँचवीं गाथा कही :—

तुम्हे सीहानं व्यग्वानं वाटानञ्चावसिट्ठकं,

उच्छिष्टेनेव यापेन्ता मज्झिह्वा विधासादिनो ॥

[तुम सिंह, व्याघ्र तथा अन्य जंगली पशुओं का उच्छिष्ट खाकर जीते हो और अपने को अवशिष्ट खाने वाले मानते हो !]

यह सुन तपस्वियों ने पूछा—यदि हम विधासादी नहीं हैं, तो विधासादी कौन होते हैं ?

उसने उन्हें यह समझाते हुये छठी गाथा कही :—

ये ब्राह्मणस्स समणस्स अञ्जस्स च वणिब्बिनो,

दत्त्वाव सेः भुञ्जन्ति ते जना विधासादिनो ॥

[जो ब्राह्मण, श्रमण अथवा अन्य किसी याचक को देकर ही खाते हैं, वे जन विधासादी कहलाते हैं ।]

इस प्रकार उन्हें लज्जित कर बोधिसत्व अपने स्थान पर चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्थों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । उस समय वह सात भाई ये क्रीड़ा-शील भिक्षु थे । शक्र तो मैं ही था ।

३६४. वट्टक जातक

“पणीतं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक लोभी भिळु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसे शास्ता ने पूछा—भिळु ! क्या तू सचमुच लोभी है ? ‘भन्ते ! हाँ’ कहने पर ‘भिळु ! केवल अभी नहीं, पहले भी तू लोभी ही रहा है। लोभ के कारण ही वाराणसी में हाथी, बैल, घोड़ा, तथा मनुष्य के मुर्दार से अतृप्त रह ‘इससे बड़कर मिलेगा’ सोच जंगल में प्रविष्ट हुआ था।” यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. वर्तमान कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व बटेर की योगि में पैदा हुए। वह आरण्य में रुखे निनके तथा दाने खाकर रहता था। उस समय वाराणसी में रहने वाला एक लोभी कौवा हाथी आदि के मुर्दार से अतृप्त रह ‘इससे बड़कर मिलेगा’ सोच जंगल में गया। वहाँ उसने फल मूल खाते हुए बोधिमत्त्व का देख सोचा—यह बटेर बड़ा मोटा है। मालूम होता है मधु-चोरा चुगता है। इसका खाना पूछकर, वही खाकर मैं भी मोटा होऊँगा। वह बोधिमत्त्व से ऊपर की शाखा पर जा बैठा और बोला—भो बटेर ! आप कौन सा बड़िया भोजन करते हैं जिससे खूब मोटाये हैं ? बोधिसत्व ने उसके पहुँचने पर उसके साथ बातचीत करते हुये यह गाथा कही—

पणीतं भुज्जं से भत्तं सप्पितेलञ्च मातुलं,

अथ केन नु वण्णेन किंलो स्वमसि वायस ॥

[हे मातुल ! तू मक्खन-तेल के साथ बड़िया भोजन करता है । हे कौवे ! तू किस कारण से दुबला है ?]

उसकी बात सुन कौवे ने तीन गाथायें कहीं—

अमिस्तमग्गे वसतो तेनु आमिसमेसतो,
निच्चं उब्बिग्गहदयरस्स कुतो काकस्स दडिहयं ॥
निच्चं उब्बेधिना काका धट्ठा पापेन कम्मुना,
लद्धो पिण्डो न पीयेति किसो तेनस्मि वट्ठक ॥
लूत्रानि तिण्णीजानि अप्परनेहानि भुञ्जसि,
अथ केननु वरणेन थूलो त्वमसि वट्ठक ॥

[शत्रुओं के धीच में रहने वाले, उनका भोजन चुराचुरा कर खाने वाले, नित्य ही उद्विग्न-हृदय मुझ कौवे में (शरीर की) दृढ़ता कहाँ से आ सकती है ? हे बटेर ! पाप-कर्म के कारण कौवे नित्य उद्विग्न रहते हैं । इसी लिये उन्हें जो भोजन मिलता है वह उनके शरीर को नहीं लगता । बटेर ! इसी लिये मैं दुर्बल हूँ । हे बटेर ! तू तो घास-तिनके खाता है, जिनमें कुछ स्निग्धता नहीं रहती । हे बटेर ! तू किस कारण से मोटा है ?]

यह सुन बटेर ने अपने मोटे हाने का कारण कहते हुये ये तीन गाथायें कही—

अप्पिच्छा अप्पचिन्ताय अविदूरागमनेन च,
लद्धा लद्धेन यापेन्तो थूलो तेनस्मि वायस ॥
अप्पिच्छस्स ही पोसस्स अप्पचिन्ति सुखस्सच,
सुसंगह्मितपमाणस्स वुत्ती सुसमुदानिय ॥

[हे कौवे ! मैं अल्पेच्छा, अल्प चिन्ता, अधिक दूर न जाना पड़ने तथा जो भी मिल जाये उसी से गुजारा कर लेने के कारण मोटा हूँ ॥ जो अल्पेच्छुक है, जिसे अल्प-चिन्ता रूपी सुख प्राप्त है, तथा जिसे अपने भोजन की मात्रा का ठीक ज्ञान है, उस आदमी की जीवन-चर्या सुख पूर्वक चल सकती है ॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में लोभी भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय कौवा लोभी भिक्षु था । बटेर तो मैं ही था ।

३६५. काक जातक

“चिरस्मं वत पस्साम...” यह भी शास्ता ने जेनवन में विहार करते समय लोभी भिक्षु के ही बारे में कही। (वर्तमान) कथा उक्त कथा की तरह से है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर वाराणसी-मेठ की रसोई में छुीके पर रहते थे। कौवा भी उसके साथ दोस्ती करके वहीं रहता था...सब विस्तार से कहनी चाहिये। रमोइये ने कौवे के पङ्क नोच, उसकी पीठ को मात्र, एक कौड़ी में छेद कर उसकी माला बनाई और कौवे के गले में पहना उसे छुीके में डाल दिया। बोधिसत्व ने जंगल से आ, उसे देख मजाक करते हुए पहली गाथा कही -

चिरस्मं वत परसाम सहायं मणिधारिनं,

सुकताय मस्सु कुत्तिया सोभते वत मे सखा ॥

[अपने मणि धारण किये हुये मित्र को बड़ी देर के बाद देखते हैं।
अच्छी बनी हुई मानुषी डाढ़ी के साथ मेरा सखा सुशोभित होता है।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही :—

परुद्धकच्छनखलोमो अहं कम्मेसु व्यावटो,

चिरस्मं नहापितं लद्धा लोमन्तं अपहारयि ॥

[काम में व्यावृत होने के कारण मेरे शरीर के बाल, नख तथा केश बढ़ गये थे। देर में नाई मिला। आज उससे हजामत बनवाई।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

यन्नु लोमं अहारेसि दुख्खं लद्धकप्पकं,

अथ किञ्चरहि ते सम्म कण्ठे किण्णकियावति ॥

[बड़ी मुश्किल से मिले नाई को पाकर तूने हजामत तो बनवाई है, लेकिन मित्र ! तेरे गले में यह क्या घण्टी सी बजती है ?]

तब कौवे ने दो गाथायेँ कहीं :—

मनुस्स सुखुमाज्जनं मणि कण्ठेषु लग्नति,
तेसाहमनुलक्ष्णामि मा त्वं मञ्जो दवाकृतं ॥
सचेपिमं पिहयसि मस्सु कुत्तिं सुकारितं,
कारयिस्सामि ते सम्म मणिच्चापि द्दामिते ॥

[सुकुमार मनुष्यों के कण्ठ में मणि लटकती है, उनकी मैंने नकल की है। यह मत मान कि मैंने अभिमान से पढ़नी हूँ ॥ यदि तू मेरी, जिसके चेहरों पर अच्छी तरह से बनाई गई दाढ़ी है, ईर्ष्या करता हूँ, तो हे मित्र ! मैं तुझे दाढ़ी करवा दूँगा और मणि दे दूँगा ॥]

यह सुन बांधिसत्व ने छुटी गाथा कहीं—

त्वञ्जेव मणिना छन्नो सुकताय च मस्सुया,
आमन्त खो तं गच्छामि पिदम्मे तवदस्तनं ॥

[हे मित्र ! तू ही मणि के याग्य हूँ और इस अच्छी प्रकार बनाई गई दाढ़ी के। मे तुझे कह कर जाता हूँ। मुझे तू तेरा अदशेन प्रिय है ॥]

यह कह उड़कर अन्यत्र चला गया। कौवा वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्या को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्या के अन्त में लोभी भिलु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिलु था। कबूतर तब ही था।

सातवाँ पारिच्छेद

१. कुक्कु वर्ग

३६६. कुक्कु जातक

“दियड्टकुक्कु...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय राजा को उपदेश देने के बारे में कही। (वर्तमान) कथा ‘तेसकुण-जातक’ में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे। राजा अनुचित-मार्ग में लग्न अर्थ से राज्य करने लगा। जन-पद को कष्ट देकर केवल धन ही इकट्ठा करता था। बोधिसत्व राजा को उपदेश देने के लिये कोई न कोई उपमा खोज रहे थे। उद्यान में राजा का निवास-स्थान अधूरा बना था, छत पूरी नहीं हुई थी, शहतीरों पर कड़ियाँ रखी थीं। राजा खेलने के लिये उद्यान में गया, तो वहाँ घूमते हुए उसने उस घर में प्रवेश किया। फिर शहतीरों के धरे को देख इस डर से कि कहीं वह उस पर न गिर पड़े बाहर निकल आया। बाहर खड़े हो कर देखते हुए उसने यह सोचकर कि शहतीर और कड़ियाँ किसके सहारे खड़ी हैं, बोधिसत्व से पूछने के लिये पहली गाथा कही—

दियड्टकुक्कु उदयेन कणिका

विदस्थियो अट्ठ परिक्खपन्ति नं,

संभिसपा सारमया अफेगुका

कुहिं ठिता उपरितो न धंसति ॥

[डेढ़ रतन ऊँची शहतीर हैं, और आठ बालिशत का घेरा है । ये सारवान्, मजबूत सिरिस लकड़ी की बनी हैं । ये कहाँ स्थित हैं जो ऊपर नहीं गिरती है ?]

तब बोधिसत्व ने यह सोच कि अब मुझे राजा को उपदेश देने का अवसर मिला है, ये गाथाएँ कहीं

यं तिसति सारमया अनुज्जुका
परिकरिय गोपाणसियो समदिठता,
ता सङ्गहीता बलसा च पीळिता
समदिठता उपरितो न धंसति ॥
एवं मित्ते हि दळहेहि पण्डितो
अभेजरूपेहि सुचीहि मन्तिहि,
सुसङ्गहीतो किरिया न धंसति
गोपाणसी भारवहाव कण्ठिका ॥

[जो तीस, मजबूत, टेढ़ी कड़ियाँ घेर कर खड़ी हैं, वे अच्छी प्रकार इकट्ठी होने से तथा बल-युक्त होने से खड़ी हैं, तथा ऊपर नहीं गिरती ॥ इसी प्रकार राजा यदि वह ऐसे मन्त्रियों से युक्त हो, जो उसके दृढ़ मित्र हों, जो अभेद्य हों, तथा जो शुचि-परायण हों तो वह राज्य-श्री से रहित नहीं होता जैसे छज्जे का शिखर जो बुढ़-मुँह पर टिका है ॥]

राजा ने बोधिसत्व के कहते कइते ही अपने कर्म का विचार कर सोचा—शहतीर के न रहने पर कड़ियाँ नहीं ठहरती हैं और कड़ियों से न मिला रहने पर शहतीर नहीं ठहरता । शहतीर के टूटने पर कड़ियाँ टूटकर गिर पड़ती हैं । इसी प्रकार जो अधार्मिक राजा अपने मित्र-अमात्य, सेना तथा ब्राह्मण-गृहपतियों का ख्याल नहीं करता, वह उनके पृथक् हो जाने के कारण उनकी अन्वेलना होने से ऐश्वर्य से पतित हो जाता है । राजा को धार्मिक होना चाहिये ।

उस समय राजा को भेंट देने के लिये जंवीर-नीबू लाये । राजा ने बोधिसत्व से कहा—मित्र ! यह नीबू खा । बोधिसत्व ने लेकर कहा—महा-राज ! जो खाना नहीं जानते वे इसे कडुवा कर देते हैं खट्टा, लेकिन जान-कार पण्डित कडवाहट निकाल, बिना खटाई निकाले, बिना नीबू का रस

बिगाड़े खाते हैं। इस प्रकार राजा को धन-संग्रह का उपाय बताते हुए ये दो गाथायें कहीं:—

अनामसन्तोपि करोति तिक्तं,
समाहरं सादुकोति पथिवा
असादुकयिरा तनुवट्मुद्धरं ॥
एवम्पि गामनिगमेसु पण्डितो
असाहसं राज धनानि संहरं,
धम्मावती पटिपज्जमानो
सफाजि कयिरा अग्निहेट्ठं परं ॥

[जैसे शस्त्र हाथ में लिये आदमी कठोर झिलके वाले नीबू को बिना छीले ही कड़ुआ कर देता है, और हे राजन् ! बाहर के झिलके को उतार कर स्वादु तथा थोड़ा उतार कर अस्वादु कर देता है; उसी प्रकार राजन् ! पण्डित-पुरुष ग्राम निगमों में बिना जबरदस्ती किये, धन संग्रह करता हुआ, धर्मानुसार चलता हुआ, बिना दूसरों को कष्ट दिये वृद्धि करता है ।]

राजा ने बोधिसत्त्व से वागर्चात करते हुए पुष्करिणी तट पर पहुँच बाल-सूर्य के समान पानी से अलित खिला हुआ कमल देखा। वह बोला— मित्र यह फूल जल में पैदा हुआ है तो भी जल से, अलित है। बोधिसत्त्व ने 'महाराज ! राजा को भी ऐसा ह्रां होना चाहिये' उपदेश देते हुए यह दो गाथायें कहीं:—

ओदातमूलं सुचिवारिसम्भवं
जातं यथा पोक्खरिणीसु अम्बुजं,
पटुमं यथा अग्निनिःसांसिफालिमं
नकहमो नरजो न वारिखिम्पति ॥
एवम्पि वोहारसुचिं असाहसं
विमुद्धकम्मन्तमपेत पावकं,
नखिम्पति कम्मकिलेस तादिसो
जातं यथा पोक्खरणीसु अम्बुजं ॥

[जैसे श्वेत मूल वाले, पवित्र जलोत्पन्न, पुष्करिणियों में पैदा हुआ तथा सूर्य किरण से पुष्पित कमल न कीचड़ से लिप्त होता है, न धूलि से न पानी से; उसी प्रकार जो जवरदस्ती नहीं करता, जिसका व्यवहार पवित्र है, जो विशुद्ध कर्मा है तथा जो निष्पाप है वह कर्म-मैल से लिप्त नहीं होता ।]

राजा बोधिसत्व का उपदेश सुन, तबसे धर्मानुसार राज्य कर, दानादि पुण्य कर्म करके स्वर्गगामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्वों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । पण्डित अमात्य तो मैं ही था ।

३६७. मनोज जातक

“यथा चापो निजमति...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपत्ती भित्तु के बारे में कही । (वर्तमान) कथा महिलामुख जातक^१ में विस्तार से आ ही गई है । उस समय शास्ता ने ‘भित्तुओ’ न केवल अभी किन्तु पहले भी यह विपत्ती रहा है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ग्व. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व सिंह की योनि में पैदा हुए । सिंहनी के साथ रहते हुए उससे दो बच्चे हुए—पुत्र और पुत्री । पुत्र का नाम मनोज रक्खा गया । उसने भी बड़े होकर एक सिंह बच्ची रक्खी । इस प्रकार वे पाँच जने हो गये । मनोज जंगली भैंसे आदि को मार मांस लाता और माता पिता, बहन तथा भाग्यी को पोसता । एक दिन वह शिकार खेलने गया तो भागने में असमर्थ गिरी

^१ महिला मुख जातक (२६)

नाम के एक शृगाल को छाती के बल लेटा देखा । उसने पूछा—“सौम्य ! क्या है ?”

‘स्वामी । सेवा में रहना चाहता हूँ ।’

उसने ‘अच्छा’ कहा और अपने साथ गुफा में ले आया ।

बोधिसत्व ने उसे देखा तो मना किया—तात मनोज शृगाल दुश्शील होते हैं, पापी होते हैं, अनुचित कर्म में लगा देते हैं । इसे अपने पास मत रख । किन्तु वह मना न कर सका ।

एक दिन शृगाल ने अश्वमांस खाने की इच्छा से मनोज से कहा—“स्वामी ! घोड़े का मांस छोड़ काँई ऐसा मांस नहीं जो हमने न खाया हो । घोड़े को पकड़ें ।”

“घोड़े कहाँ होते हैं ?”

“वाराणसी में नदी के किनारे ।”

उसने उसकी बात सुन घोड़ों के नदी पर नहाने के समय वहाँ पहुँच एक घोड़े को पकड़ा और पीठ पर चढ़ा जल्दी से अपने गुहा-द्वार पर आ पहुँचा । उसके पिता ने घोड़े का मांस खा चुकने पर कहा—तात ! घोड़े राजा का भोग होते हैं । राजा अनेक माया वाले होते हैं । वे कुशल धनु-धरियों द्वारा बंधवा देते हैं । घोड़े का मांस खाने वाले सिंह दीर्घायु नहीं होते । अब से अश्व को मत पकड़ना ।

सिंह ने पिता का कहना न माना और घोड़े पकड़े ही । राजा ने जब सुना कि सिंह घोड़े ले जाता है तो उसने नगर के भीतर अश्व पुष्करिणी बनवाई । वहाँ से भी आकर ले जाना । राजा ने घुड़साल बनवाई और उसके अन्दर ही घोड़ों को घास पानी दिलाने लगा । सिंह प्राकार के ऊपर से जाकर घुड़साल में से भी ले ही जाता । राजा ने एक अचूक निशाना लगाने वाले धनुर्धारी को बुला कर पूछा—तात ! सिंह को तीर से बंधसकेगा ।

वह बोला ‘सकता हूँ’ और सिंह के आने के रास्ते में, प्राकार के पास मच्चान बनाकर उस पर रहा । सिंह आया और शृगाल को बाहर श्मशान में छोड़, घोड़े को उठा लाने के लिये नगर में कूदा । धनुर्धारी ने आने के समय सिंह का वेग बहुत होने के कारण उसे न बंध, घोड़े को उठा कर लेजाने के समय भार से शिथिल-वेग सिंह को तेज तीर से पिछले हिस्से में बंधा ।

तीर अगले हिस्से से आर पार हो आकाश में जा उड़ा । शेर चिल्लाया । मैं मारा गया । धनुषधारी ने उसे बीध विजली की तरह धनुष की डोरी की आवाज की । शृगाल ने सिंह तथा डोरी की आवाज सुनी तो समझ गया कि उसका मित्र बीध कर मार डाला गया है । उसने सोचा—जो मरगया उससे दोस्ती क्या ? अब मैं अपने निवास-स्थान को जाता हूँ । तब उसने अपने से ही बात करते हुए दो गाथायें कहीं :—

यथाचापो निब्रमति जियाचापि विकृजति,

हञ्जते नून मनोजो मिंगराजा सखा मम ॥

हृन्दवानि वनं ताणं पक्कमामि यथासुखं,

नेतादिसा सखा होन्ति लब्भा मे जीवतो सखा ॥

[जैसे धनुष भुक्तता है और जैसे उसकी डोरी की आवाज आती है उससे यह निश्चित है कि मेरा सखा मृगराज मनोज मारा जा रहा है । अब मेरे लिये वन में ही प्राण है । मैं सुख पूर्वक जाता हूँ । ऐसे (मरे हुए प्राणी) सखा नहीं होते । जीते रहते (और) सखा प्राण्य हैं ।]

सिंह भी बहुत तेज दौड़कर गुफा के द्वार पर पहुँचा और वहाँ घोड़े को गिरा स्वयं ही गिर कर मर गया । तब उसके संबंधियों ने बाहर निकल कर देखा कि वह खून में सना है, घाव में खून बह रहा है और कुसंगति के कारण मर गया है । यह देख उसके पिता, माता, बहन तथा भार्या ने क्रमशः चार गाथायें कहीं :—

न पापजनसेवी अच्चन्तं सुखमेधति,

मनोजं परस सेमानं गिरियस्सानुसासनी ॥

[दुर्जन की संगति करने वाले को चिरकाल तक सुख नहीं मिलता । (तीर खाकर) पड़े हुए मनोज की ओर देखो—यह गिरिय की अनुशासना है ।]

न पाप सम्पवङ्केन याता पुत्तेन नन्दति,

मनोजं परस सेमानं अच्चन्नं रुद्धि लोहिते ॥

[कुसंगति करने वाले पुत्र से माता को आनन्द नहीं होता । स्वयं रक्त बहते हुये, (तीर खाकर) लेटे हुये मनोज को देखो ।]

एवमापज्जती पोसो पापियो च निगच्छति,

यो वे हितानं वचनं न करोति अथदस्सिनं ॥

[इस प्रकार मनुष्य दुरवस्था को प्राप्त होता है और दुःख भोगता है जो अपने हितैषी बुद्धिमानों का कहना नहीं करता ।]

एवञ्च सो होति ततोव पापियो

यो उत्तमो अधम जनूपसेवी,

पसुत्तमं अधमजनूपसेवितं

मिगाधिपं सरवर वेगानीधुतं

[जो उत्तम पुरुष अधमजन की संगति करता है उसकी अवस्था उससे भी बुरी होती है । श्रेष्ठ मृगेन्द्र की अवस्था देखो जो अधमजन की कुसङ्गति के कारण शर से मारा गया ।]

अन्तिम सम्बुद्ध गाथा—

निहीर्याति पुरिसो निहीन सेवी

न च हायेथ कदाचि तुल्य सेवी,

सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं

तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथ ॥

[नीच की संगति करने वाले पुरुष का हास होता है । (अपने)ममान की संगति करने वाले का कभी हास नहीं होता । श्रेष्ठ की संगति करने वाले की शीघ्र उन्नति होती है । इसलिये अपने से श्रेष्ठ की ही संगति करनी चाहिये ।]

शास्त्रा ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में विपत्ती स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय शृगाल देवदत्त था । मनोज विपत्ती की संगति करने वाला । बहन उत्पल-वर्णा । भार्या चेमा भिक्षुणी । माता राहुल-माता । पिता तो मैं ही था ।

३६८. सुतनु जातक

“राजा ते भक्त...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय माता का पोषण करने वाले भिक्षु के बारे में कही। (वर्तमान) कथा साम जातक^१ में आयगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक दरिद्र कुल में उत्पन्न हुये। नाम रखा गया सुतनु। वह बड़े होने पर मजदूरी कर माता पिता को पालता था। पिता के मरने पर माता का पोषण करने लगा।

उस समय वाराणसी राजा शिकार का बड़ा प्रेमी था। एक दिन वह बहुत से लोगों के साथ योजन-दो योजन के जंगल में गया और घोषणा की कि जिसके पास से मृग भाग जायगा वह उसी मृग (के मूल्य) को दारेगा।

अमात्यों ने राजा के लिये (मृगों के) निश्चित रास्ते पर एक कोठा बनवा दिया। मृगों के निवास-स्थानों को घेरकर हस्ता मचाने वाले लोगों के कारण उठकर भागने वाले मृगों में से एक बारसिंगा वहां पहुँचा जहाँ राजा खड़ा था। राजा ने उसे वीधने के लिये तीर छोड़ा। मृग भागा जानता था। जब उसने देखा कि उसके अत्यन्त कोमल पार्श्व की ओर तीर चला आ रहा है तो वह पलट कर तीर से विधे की तरह होकर गिर पड़ा। राजा ने समझा, मैंने मृग मार लिया और पकड़ने के लिये दौड़ा। मृग उठकर हवा की तेजी से भाग गया। अमात्य आदि राजा पर हँसने लगे।

उसने मृग का पीछा किया। जब वह थक गया तो तलवार से उसके दो टुकड़े कर एक ढण्डे पर टाँग बैहूँगी उठाते हुए की तरह लाया। आते हुए थोड़ा विश्राम लेने के लिये सड़क के किनारे स्थित एक वट के वृक्ष के नीचे पहुँचा और लेट कर सो गया। उस वट वृक्ष पर रहने वाले

^१साम जातक (२४०)

मखादेव यत्न को कुबेर से यह अधिकार मिला था कि वहाँ जो आये वह उन्हें खा सकता है। जिस समय राजा उठकर जाने लगा उसने उसे हाथ से पकड़ लिया—ठहर ! तू मेरा भोजन है।

“तू कौन है ?”

“मैं यहाँ रहने वाला यत्न हूँ। जो इस स्थान पर आते हैं, उन्हें खाने का मुझे अधिकार है।”

राजा ने होश गंभाले रख पूछा—क्या आज ही खायेगा, अथवा प्रतिदिन खाना चाहेगा।

“मिलें तो रोज खाऊँगा।”

“आज इस मृग को खाकर मुझे छोड़। मैं कल से तेरे लिये एक भातू की थाली के साथ एक आदमी भेजूँगा।”

“तो भूल मत करना। जिस दिन नहीं भेजेगा, उस दिन तुझे ही खाऊँगा।”

“मैं वाराणसी का राजा हूँ। मेरे पास सब कुछ है।”

यत्न ने प्रतिज्ञा करा उसे छोड़ दिया।

उसने नगर में प्रवेश कर अपने निजी मंत्री से सारा हाल कह कर पूछा—क्या करना चाहिये ? मंत्री बोला—देव ! क्या दिनों की मर्यादा बांधी है ?

“नहीं बांधी।”

“यदि ऐसा किया तो अनुचित किया। तब भी चिन्ता न करें। कारागार में बहुत मनुष्य हैं।”

“तो तू ही यह काम कर मुझे जीवनदान दे।”

अमात्य ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया। वह प्रतिदिन कारागार से एक आदमी को निकाल भोजन की थाली के साथ बिना उसे कुछ जताये यत्न के पास भेज देता। यत्न भोजन कर आदमी को खा जाता। आगे चलकर कारागारों में कोई आदमी न रहा। राजा को जब कोई भोजन ले जाने वाला न मिला तो वह मृत्यु-भय से कांपने लगा। अमात्य ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—देव ! जीने की तृष्णा से धन की तृष्णा अधिक बलवान होती है। हाथी के कंधे पर हज़ार की थैली रखवा मुनादी

करायें—कौन है जो यह धन लेकर यत्न के पास भोजन ले जायगा ? उसने वैसी घोपणा कराई । बोधिसत्व ने सोचा मैं मज़दूरी कर माता, आधा-माता कमा कठिनाई से माता का पोषण करता हूँ । यह धन ले माता को दे यत्न के पास जाऊँगा । यदि यत्न का दमन कर सकूँगा तो अच्छा, यदि नहीं कर सकूँगा तो भी मेरी माता सुख से जीवन बितायेगी ।

उसने यह बात मां से कही तो उसने दो बार मना किया—तात् ! तुझे धन नहीं चाहिये । तीसरी बार उसने माता से बिना पूछे ही कहा—आर्यों ! हजार लाओ । मैं भोजन ले जाऊँगा । उसने हजार ले, जा माता को दिये और प्रणाम करते हुए कहा—मां ! चिन्तन कर । मैं यत्न का दमन कर जनता को सुखी बना आज ही तुझ रोती हुई को हँसाता हुआ लौटूँगा । वह राज-पुरुषों के साथ राजा के पास जा खड़ा हुआ ।

राजा ने पूछा —“तात ! भात ले जायगा ?”

“देव हाँ”

“तुझे क्या चाहिये ?”

“देव ! आपकी सोने की खड़ाऊँ ।

“किसलिये ?”

“देव ! वह यत्न वृत्त के नीचे भूमि पर खड़े हुआ को खा सकता है, मैं उसके पास भूमि पर खड़ा न रह खड़ाऊँ पर खड़ा होऊँगा ।”

“और क्या चाहिये ?”

“देव ! आपका छाता ।”

“यह किसलिये ?”

“देव ! यत्न अपने वृत्त की छाया में खड़े होने वालों को ही खा सकता है, मैं उसके वृत्त की छाया के नीचे खड़ा न रह छात्र की छाया के नीचे खड़ा होऊँगा ।”

“और क्या चाहिये ?”

“देव ! आपकी तलवार ।”

“इसका क्या काम ?”

“देव ! शस्त्रधारियों से श्रमनुष्य भी डरते हैं ।”

“और क्या चाहिये ?”

“देव ! सोने की थाली में रक्खा हुआ आपका खाना ।”

“तात् ! किसलिये ।”

“देव ! मेरे जैसे पण्डित आदमी के लिए यह योग्य नहीं कि वह मिट्टी के वर्तन में रूखा सूखा भोजन ले जाये ।”

राजा ने स्वीकार कर सब सामान दिलवा अपने नौकरों को उसकी सेवा में नियुक्त किया । बोधिसत्व ने राजा को प्रणाम किया—‘महाराज ! डरें मत । आज मैं यत्न का दमन कर आपका मंगल कर लौटूँगा । वह सामान लिवा वहाँ पहुँचा । उसने मनुष्यों को वृत्त से दूर खड़ा किया और स्वयं स्वर्ण-पादुका पर चढ़, तलवार बांध, श्वेत छत्र धारण कर, सोने की थाली में भोजन ले यत्न के पास पहुँचा ।

यत्न प्रतीक्षा कर रहा था । उसे देख यत्न ने सोचा—यह आदमी दूसरे दिन आने वालों की तरह नहीं आता है । क्या कारण है ? बोधिसत्व ने भी वृत्त के पास पहुँच वृत्त की छाया के किनारे खड़े हो तलवार की नोक से भोजन की थाली को छाया के अन्दर कर पहली गाथा कही—

राजा ते भक्तं पाहेसि सुचिमंसूपसेचनं,

मखा देवमिप्रं अधिवथे एहि निक्खम्य भुञ्जस्सु ॥

[हे मखा देव ! (वृत्त) पर रहने वाले (यत्न) ! राजा ने तेरे लिये पवित्र मांस युक्त भोजन भेजा है । आ बाहर निकल कर खा ।]

यत्न ने यह सुना तो उसे छाया के भीतर बुता कर खाने की नियत से ठगने के लिये दूमी गाथा कही—

एहि माणव ओरेन भिक्खमादाय सूपितं,

त्वच्च माणव भिक्खा च उभो भक्खा भविरसथ ॥

[हे माणवक ! सूप सहित भिक्षा लेकर इधर आ । हे माणवक ! तू और भोजन दोनों मेरे भोजन बनेंगे ।]

तब बोधिसत्व ने दो गाथायें कहीं—

अप्पकेन तुवं यक्ख थुल्लमत्थं जहिस्ससि,

भिक्खं ते नाहरिस्सन्ति जना मरणासञ्जिनो ॥

लद्धायं यक्ख तव निच्चभिक्खं

सुचिं पणीतं रससा उपेतं,

भिक्षुं च ते आहरियो नरो इध,
सुदुःखलो होहिति खादिते मयि ॥

[हे यत् तू अल्प लाभ के लिये महान् लाभ को छोड़ दे रहा है ।
(यदि तू मुझे खा जायगा) तो आगे से मृत्यु से भयभीत (लोग) तेरे लिये
भोजन नहीं लायेंगे । हे यत् ! तुझे यह पवित्र, बढ़िया, सरस भोजन नित्य
प्राप्य है । लेकिन मेरे खा लेने पर इस भोजन को यहाँ लाने वाला आदमी
दुर्लभ हो जायगा ॥]

यत् ने 'माणवक टीक कहता है' सोच दो गाथायें कहीं:—

ममेस सुतनो अथो यथा भाससि माणव,
मया त्वं समनुज्ञातो सोऽयि पस्ससि मातरं ॥
खमां छत्तञ्च पात्तिञ्च गच्छेवादाय माणव,
सोऽयि पस्सतु ते माता त्वञ्च पस्साहि मातरं ॥

[हे माणव ! जैसे तू कहता है, यह मेरे ही हित में है । मैं तुझे जाने
देता हूँ । तू सकुशल लौट माता को देखेगा । हे माणव ! तू तलवार, छतरी
तथा धाली लेकर जा । तू अपनी माता को सकुशल देखे और तेरी माता
तुझे सकुशल देखे ।]

यत् की बात सुन यह सोच कि मेरा काम पूरा हो गया, मैंने यत् का
दमन कर लिया, मुझे बहुत धन प्राप्त हुआ तथा राजा का कहना हो गया ।
बोधिसत्व ने प्रसन्नचित्त हो यत् की बात का समर्थन करते हुये अंतिम गाथा
कही:—

एयं यस्स सुखी होहि सह सब्बेहि जातिहि,
धनञ्च मे अधिगतं रञ्जो च वचनं कतं ॥

[हे यत् ! अपने सभी सम्बन्धियों सहित तू सुखी हो । मुझे धन मिला
है, और राजा का कहना हो गया है ।]

इतना कह चुकने पर यत् को सम्बोधित कर फिर कहा—मित्र ! तू
ने पहले अकुशल कर्म किये । उसी के परिणाम स्वरूप तू कठोर, परुष, दूसरों
का रक्त-मांस खाने वाला यत् हो पैदा हुआ । अब से प्राणातिपात आदि मत
कर । इस प्रकार सदाचार का सुपरिणाम तथा दुःशीलता का दुष्परिणाम
कह यत् को पंचशील में प्रतिष्ठित किया । उसने यत् को 'जंगल में रहने से

तुम्हें क्या लाभ । आ तुम्हें नगरद्वार पर बिठा श्रेष्ठ-भोजन का लाभ बनाऊँ कहा और उसे साथ ले, निकल, खड्ग आदि यत्न से ही उठवाकर वाराणसी पहुँचा । राजा को सूचना दी गई—सुतनु माणव यत्न को लिये आता है । अमात्यों सहित राजा ने बोधिसत्व का स्वागत किया । यत्न को नगर-द्वार पर बिठाया और उसे श्रेष्ठ-भोजन मिलने की व्यवस्था की । फिर नगर में प्रविष्ट हो, मुनादी करा, नगरवासियों को एकत्र किया और बोधिसत्व के गुणों की प्रशंसा कर उसे सेनापति बना दिया । उसने स्वयं बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, दानादि पुण्य कर्म कर स्वर्ग-लाभ किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में माता का पोषण करने वाला भिक्षु सोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय यत्न अङ्गुलि-माल था । राजा आनन्द । माणव तो मैं ही था ।

३६६. गिज्झ जातक

“ते कथन्तु करिस्सन्ति...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक माता का पोषण करने वाले भिक्षु के बारे में कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की रं नि में पैदा हुये । बड़े होने पर वह बूढ़े अन्वे माता-पिता को गृध्र (-गुफा) में रख गोमांस आदि लाकर पोसने लगा । उस समय वाराणसी की श्मशान भूमि में एक निपाद ने लगभग सभी जगह गीधों को फँसाने के लिए जाल फैलाया । एक दिन बोधिसत्व गोमांस खोजते-खोजते श्मशान में दाखिल हुआ । वहाँ जाल में पैर फँस गये । उसे अपनी चिन्ता न थी । किन्तु बूढ़े माता-पिता की याद कर और यह सोच कि मेरे माता-पिता कैसे जियेंगे,

उन्हें मेरे जाल में फँसने तक का ज्ञान न होगा, वे निराश्रय हो पर्वत-गुफा में ही सूखकर मर जायँगे उसने रोते हुये पहली गाथा कही :—

ते कथन्नु करिस्सन्ति बुद्धा गिरिद्वरिसया,
अहं वद्धोस्मि पाप्मेन नीलियस्स वसङ्गतो ॥

[पहाड़ की दरार में रहने वाले बुद्ध क्या करेंगे ? मैं बन्धन में बँधकर नीलिय नामक चिड़ीमार के वशीभूत हो गया ।]

तब चिड़ीमार पुत्र ने गृधराज का विलाप सुन दूसरी गाथा कही —

किं गिउक परिदेवसि कानुतेपरिदेवना,
न मे सुतो वा वट्ठो वा भासन्तो मानुसिं दिजो ॥

[हे गीध किसके लिये विलाप करता है और क्या विलाप करता है ? मैंने (इससे पूर्व) मानुषी बोली बोलने वाला पक्षी न सुना, और न देखा ।]

गीध बोला—

भरामि माता पितरो बुद्धे गिरिद्वरिसये,
ते कथन्नु करिस्सन्ति अहं वसङ्गतो तव ॥

[मैं पर्वत की दरार में रहने वाले माता-पिता का पोषण करता रहा । अब जब मैं तेरे वशीभूत हो गया हूँ तो वे क्या करेंगे ?]

चिड़ीमार बोला—

यन्नु गिउम्भो योजनसतं कुणपानि अपेक्खति,
कस्मा जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जो गीध सौ योजन ऊपर से मुर्दार को देख लेता है वह पास के ही जाल और बन्धन को क्यों नहीं देख सकता ?]

गीध बोला:—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसङ्कये,
अथ जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जब मनुष्य का जीवन क्षीण होता है तो वह पास होने पर भी जाल और बन्धन को नहीं देखता ।]

चिड़ीमार बोला:—

भरस्सु माता पितरो बुद्धे गिरिद्वरिसये,
मयात्वं समनुजातो सोत्थि पस्साहि जातके ॥

[पर्वत की दरार में रहने वाले अपने वृद्ध मातापिता का पालन-पोषण कर । मैंने तुम्हें मुक्त किया । सकुशल अपने संबंधियों को देख ।]

गीध बोला:—

एवं लुहक नन्दरसू सह सञ्जेहि जातिभि,

भरिस्सं मातापितरो बुद्धे गिरिदरीसये ॥

[इसी प्रकार हे चिड़ीमार ! तू भी सब रिश्तेदारों के साथ आनन्दकर । मैं पर्वत की दरार में रहने वाले बूढ़े माता पिता का पालन करूँगा ।]

बोधिसत्त्व मरण-दुःख से मुक्त हो, शिकारी के सुखी रहने की कामना कर, अन्तिम गाथा कह, मुँह भर मांस लेकर गये और माता पिता को दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्वों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया ।

सत्त्वों के अन्त में माता का पोषण करनेवाला भिक्षु सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय चिड़ीमार पुत्र छत्र था । मातापिता महाराज-कुल थे । गीध-राज तो मैं ही था ।

४००. दुग्ध पुष्प जातक

“अनुत्तीरचारि भदन्ते...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उपनन्द शाक्य पुत्र के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह बुद्धशासन में प्रव्रजित हो अल्पेच्छता आदि गुणों को छोड़ अत्यधिक तृष्णा वाला हुआ । वर्षा वास करने के समय दो तीन विहारों में वर्षा वास करना स्वीकार कर एक में छाता या जूता रख देता, एक में हाथ की लाठी या पानी का तूरा और एक में स्वयं रहता । एक बार उसने वर्षाऋतु में एकजनपदीय विहार में वर्षा-वास करना स्वीकार कर ‘भिक्षुओं को अल्पेच्छ

होना चाहिये' कह आकाश में चन्द्रमा को प्रकट करते हुये की तरह भिन्नुओं को परिभोग-वस्तुओं में सन्तोषी रहने की प्रेरणा करने वाली आर्यवंश प्रतिपदा कही। उसे सुन भिन्नुओं ने सुन्दर पात्र-चीवर छोड़, मिट्टी के पात्र तथा फटे पुराने चीथड़ों के चीवर ले लिये। उसने सुन्दर पात्र-चीवरों को अपने निवास स्थान में रक्खा। वर्षा-वास समाप्त होने भर गाँधी भर जेतवन ले चला। रास्ते में एक आरक्षण विहार था। पाँव में लता जपड़े हुए उसके पीछे से गुजरते समय उसने सोचा, निश्चय से यहाँ कुछ मिलेगा और विहार में प्रवेश किया। उस विहार में दो बूढ़े भिन्नु वर्षा वाम करते थे। उन्हें दो स्थूल वस्त्र और एक बारीक कम्बल मिला। न बाँट सकने के कारण उसे देख वे प्रसन्न हुए कि स्थविर हमें बाँट कर देगा। बोले—भन्ते! हम वर्षा वास में मिले हम वस्त्र को बाँट नहीं सकते हैं। इसके कारण हमारा विवाद होता है। हमें हमें बाँट कर दें। उसने बाँटना स्वीकार कर दो स्थूल वस्त्र दोनों को दे दिये और यह कह कि कम्बल हम विनयधरों को मिलना चाहिये कम्बल ले चल दिया। उन स्थविरों का कम्बल से प्रेम था। वे भी उसके साथ जेतवन पहुँचे। और विनयधर भिन्नुओं को वह वान सुना पूछा—भन्ते क्या विनयधर इस प्रकार लूट ला सकते हैं?

भिन्नुओं ने उपनन्द स्थविर द्वारा लाये गये पात्र, चीवर के ढेर को देख कर कहा—आयुष्मान्! तुवहुन पुण्यवान है। तुम्हें बहुत पात्र चीवर मिले।

“आयुष्मानो! पुण्य कहां—इस उपाय से यह प्राप्त हुए हैं” सारी कथा कह सुनाई। धर्म-सभा में बातचीत चली—आयुष्मान् उपनन्द शाक्य-पुत्र बड़ी वृष्णा वाला है। महालोभी है। शास्ता ने आकर पूछा—भिन्नुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

“अमुक बातचीत” कहने पर ‘भिन्नुओ उपनन्द ने दूसरों को आर्य-चर्या का उपदेश दे अनुचित किया। दूसरों को उपदेश देने वाले भिन्नु को चाहिये कि वह पहले जो उचित है उसे करे तब दूसरों को उपदेश दे। इस प्रकार धम्मपद की गाथा से उपदेश देते हुए “भिन्नुओ न केवल अभी उपनन्द महान-लोभी है, यह पहले भी महालोभी रहा है। और न केवल अभी इनकी चीज़ें लूटी है, किन्तु पहले भी लूटी है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नदी तट पर वृक्ष-देवता हुए। उस समय मायावी नामक भार्या के साथ एक शृगाल नदी के किनारे एक जगह रहता था। एक दिन शृगाल से कहा—
स्वामी ! मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है। ताजी रोहित मछली खाना चाहती हूँ।
शृगाल बोला— व्यग्र न हो तेरे लिये लाऊँगा। पाँव में लता लपेटे वह नदी के साथ साथ धूपता हुआ टीक किनारे पर पहुँचा। उस समय गम्भीर-चारी तथा अनुतीर-चारी नामक दो ऊदबिलाव किनारे पर खड़े मछलियाँ शोज रहे थे। उनमें से गम्भीरचारी ने एक बड़ी मछली देख जल्दी से पानी में उतर उसे पूँछ से पकड़ा। बलवान मछली उसे खींचती ले गई। उस गम्भीरचारी ऊदबिलाव ने दूसरे को 'यह महा मछली हम दोनों से पार नहीं पा सकेगी, आ मदद कर' बुलाते हुए पहली गाथा कही—

अनुतीरचारि भदन्ते सहायमनुधाव मं,

महामेगहितो मच्छो सोमं हरति वेगसा ॥

[हे अनुतीरचारी ! तेरा भला हो। आ मेरी मदद कर। मैंने बड़ी मछली पकड़ी है। वह मुझे जोर से खींच लिये जाती है।]

यह सुन उसने दूसरी गथा कही—

गम्भीरचारि भदन्ते दृढं गणहाहि थामसा,

अहं तं उद्धरिस्सामि सुपण्णोउरगम्मिव ॥

[हे गम्भीरचारी ! तेरा भला हो। उसे दृढ़ता पूर्वक जोर से पकड़ा। मैं उसे खींच कर निकालूँगा जैसे गरुड़ साँप को।]

दोनों ने इकट्ठे हो रोहित मछली को बाहर निकाल जमीन पर रक्का। उसे मार कर 'तू बाँट, तू बाँट' कह भगड़ा करने लगे। जब न बाँट सके तो रखकर बैठ गये। उसी समय गाँदड़ वहाँ आ पहुँचा।

उसे देख उन दोनों ने उसका स्वागत कर निवेदन किया—मित्र दम्भपुष्प ! यह मछली हम दोनों ने इकट्ठे होकर पकड़ी है। उसे बाँट न सकने के कारण हम दोनों में विवाद झिड़ गया है। हमें ये बराबर बराबर बाँट दे। उन्होंने तीसरी गाथा कही—

विवादो नो समुपपन्नो दम्भपुष्प सुखोहिमे,
समेहि मेधरां सम्म विवादो उपसम्मतु ॥

[हे दम्भपुष्प ! हमारी बात सुन । हममें विवाद छिड़ गया है । मित्र हमारा न्याय कर जिससे विवाद शान्त हो ।]

उनकी बात सुन शृगाल ने श्रमना बल प्रकट करते हुए कहा:—

धम्मट्ठोहं पुरे आसिं बहु अत्थं मेतीरितं,
समेहि मेधरां सम्मा विवादो उपसम्मतु ॥

[मैं पहले न्यायाधीश था । मैंने बहुत मुकदमों का निर्णय किया है । मैं तुम्हारे भगड़े का भली प्रकार निर्णय करता हूँ जिससे विवाद शान्त हो ।]

और बाँटते हुए यह गाथा कही:—

अनुतीरचारि नङ्गुट्ठं सीसं गम्भीरचारिनो,
अथायं मज्झिमो खण्डो धम्मट्ठस्स भविस्सति ॥

[अनुतीर-चारी के लिये पूंछ, और गम्भी-चारी के लिये सिर और यह जो बीच का हिस्सा है यह न्यायाधीश का होगा ।]

इस प्रकार इस मज़ली का बाँट 'तुम भगड़ा न कर पूंछ और सिर खाओ' कह बीच का हिस्सा मुँह में ले, उनके देखते देखते ही भाग गया । वे (जुये में) हजार हजार हारों की तरह धुरी शकल बना कर बैठे और छठी गाथा कही:—

चिरप्पि भक्खो अभविस्स सचे न विवेदेमसे,
असीसिकं अनङ्गुट्ठं सिगालोहरति रोहितं

[यदि भगड़ा न करते तो निर कान तक भोजन हो सकता था । बिना सिर और पूंछ की रोहित मज़ली का गौद लिये जा रहा है ।]

शृगाल भी आज भार्या को रोहित मज़ली खिन्नाऊँगा सोच प्रसन्नता पूर्वक उसका पास गया । उसने आते देख स्वागत किया—

अथापि राजा नन्देय्य रज्जं लब्धान खत्तियो,
एवाहमज्ज नन्दामि दिस्वा पुण्णमुखंपतिं ॥

[जिस प्रकार क्षत्रिय राजा राज्य प्राप्त कर प्रसन्न होता है उसी प्रकार मैं भी आज पति को भरेमुँह आते देख प्रसन्न हूँ ।]

और वह प्राप्ति का उपाय पूछती हुई बोली—

कथन्नु थलजो सन्तो उदके मच्छं परामसि,

पुट्ठो मे सम्भ अक्खाहि कथं अधिगतं तया ॥

[सौम्य ! मुझे बता प्रो कि स्थलचारी होकर पानी में मछली को कैसे पकड़ा ? इस मछली की प्राप्ति कैसे हुई ?]

शृगाल ने उसकी प्राप्ति का उपाय बताते हुए यह गाथा कही :—

विवादेन किंसा होन्ति विवादेन धनक्खया,

जिना उद्वाविवादेन भुञ्ज मायावी रोहितं ।

[विवाद से दुर्बल होते हैं । विवाद से धन-क्षय होता है । विवाद से ही ऊद-विनाश मछली में वंशित हुए । हे मायावी ! रोहित मछली खा ।]

यह अभिसम्बुद्ध गाथा है—

एवमेवं मनुस्सेसु विवादो यत्थ जायति,

धम्मट्ठं पटिघावन्ति सोहि नेसं विनायको ।

धनापि तत्थ जीयन्ति राजकोसोपवड्ढति ॥

[इसी प्रकार मनुष्यों में जहाँ विवाद पैदा होता है, वे न्यायाधीश के पास दौड़ते हैं । वह उनका न्याय करता है । उनके धन की हानि होती है और राजकोप बढ़ता है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । उस समय शृगाल उपनन्द था । ऊदविलाऊ दो बूढ़े । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library

मुससूरी

MUSSOORIE

यह पुस्तक निर्मांकित तारीख तक वापिस करनी है।

This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 398.2
 KAU V.3



121878
 LBSNAA

H अवाप्ति सं०
 398.2 ACC. No. 13505
 वीसलया पुस्तक सं. 16 भाग 3
 वर्ग सं. भाग 3 Class No..... Book No.....
 लेखक
 Author..... कौसल्यायन, भदन्त भानुन्द
 शीर्षक जातक ।

H
 398.2 LIBRARY 13505
 वीसलया LAL BAHADUR SHASTRI
 National Academy of Administration
 भाग 3 MUSSOORIE

Accession No. 121876

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double